

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most.

| BORROWER'S No. | DUE DATE | SIGNATURE |
|-------------------|----------|-----------|
| | | |

हिन्दी उपन्यास : विविध आयाम

डॉ० चन्द्रमानु सोनवणे

हिन्दी-विभाग

मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (महा०)

सूर्यनारायण रणसुभे

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग

क्षयानन्द कला महाविद्यालय

लातूर (महा०)

ओम्प्रकाश होलीकर

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

क्षयानन्द वाणिज्य महाविद्यालय

लातूर (महा०)

७

पुस्तक संस्थान

१०९/५० ए, नेहरूनगर, कानपुर-२०८०१२

HINDI UPANYAS VIVIDH AYAM

Price Rs. Forty Five Only

मूल्य :
४५.००

प्रकाशक

पुस्तक संस्थान

१०९/५०ए, नेहरू नगर, कानपुर-२०६०१२

संस्करण : १९७७

मुद्रक

विनीत प्रेस

लेनिन पार्क, कानपुर-२०६०१२

दयानन्द महाविद्यालय (लातूर)
के
विद्यार्थी-विद्यार्थिनियो के नाम

भूमिका

पन्द्रह प्रमुख हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यधिक हर्ष हो रहा है। पिछले १०-१५ वर्षों के अध्यापन के कारण इन उपन्यासों पर चिन्तन मनन करना पड़ा। इन पन्द्रह उपन्यासों में से कुछ उपन्यासों की चर्चा (गबन, चित्रलेखा, गोदान, सुनीता, कल्याणो, सागर, लहरें और मनुष्य, मूरज का सातवां घोड़ा) अक्सर हुई है। यहाँ फिर उस चर्चा का पिष्टपेषण करने के बजाय उन्हें नये दृष्टिकोणों से अलग परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न हुआ है। उनमें जो कुछ भी नया, विशिष्ट और हिन्दी उपन्यास की यात्रा में महत्त्वपूर्ण लगा उसे रेखांकित करने का प्रयत्न हुआ है।

शह और गाँव, कितने चौराहे, लौटे हुए मुसाफिर और विपन्न-महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उपेक्षित से रहे हैं। इनकी चर्चा हमें आवश्यक लगी इसलिए इनका समावेश किया गया है। ठीक यही स्थिति 'घरती धन न अपना' इस उपन्यास की रही है।

'वे दिन' और 'तमस' अपेक्षाकृत नवीन उपन्यास हैं। इन दोनों को उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। इसलिए इन पर विस्तार से विचार किया गया है।

ये सभी उपन्यास हिन्दी औपन्यासिक यात्रा के छोटे मोटे पड़ाव हैं। इन पड़ावों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। इसी कारण तटस्थ होकर विविध सन्दर्भों में इनके महत्त्व को आँकने का प्रयत्न हमने किया है। समीक्षकों, अध्यापकों तथा छात्र-छात्राओं की प्रत्यक्ष प्रतिक्रियाओं से ही हम अपने इस कार्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।

दिनांक २ जून १९७७

डा० चन्द्रमानु सोनवण
सूर्यनारायण रणसुभे
ओमप्रकाश होलीकर

ऋण निर्देश

प्रस्तुत कार्य में हमें सबसे बड़ा प्रोत्साहन पुस्तक संस्थान के प्रबन्धक श्री महेश त्रिपाठी जी का मिला है। उनके सतत आग्रह से ही यह कार्य हो सका है। उनके द्वारा निर्धारित समय में हम यह कार्य पूर्ण नहीं कर सके हैं—इसका हमें जरूर खेद है। परन्तु हमारे आलस्य के बावजूद भी उन्होंने इसे शीघ्र प्रकाशित किया है इसके लिए हम उनके अत्यंत ऋणी हैं।

इस पुस्तक को पूर्ण करने में कई महानुभावों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग हमें मिला है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण सहयोग श्री पंढरीनाथ सरदेशमुख का है। इस पुस्तक के एक बहुत बड़े अंश की पांडुलिपि उन्होंने बड़ी लगन से तैयार की है, इसके लिए हम उनके अत्यधिक आभारी हैं। श्री सूर्यकान्त विश्वनाथ तथा श्री कमलाकर रणदिवे—इन दो विद्यार्थी-मित्रों ने भी पांडुलिपि तैयार करने में काफी सहयोग दिया है। कुमार स्वामी महाविद्यालय, ओसा-जि० उस्मानाबाद, महाराष्ट्र के हिन्दी प्राध्यापक श्री काशिनाथ राजे को इस पुस्तक के सिलसिले में काफी परेशानी उठानी पड़ी। यह परेशानी कभी आर्थिक थी, कभी प्रवास की थी और कभी संदेशवाहक की। ये सारी परेशानी उन्होंने आनन्द से स्वीकार की। उनका आभार मानना मात्र औपचारिकता ही होगी। मित्रवर्य श्री चन्द्रकान्त पुरोहित का सहयोग भी हमें मिला है। उनके प्रति भी आभार। पुस्तक संस्थान, कानपुर के कर्मचारियों तथा अन्य उन सभी मित्रों के प्रति जिनका सहयोग हमें समय-समय पर मिलता रहा है—हादिक आभार।

अनुक्रमणिका

| | |
|--|-----|
| १ गवन नारीत्व के जागरण की कहानी (प्रेमचन्द) | ९ |
| २ चित्रलेखा . पाप के रहस्य की खोज में (भगवतीचरण वर्मा) | २७ |
| ३. गोदान : दा समान्तर प्रदेश का उपन्यास (प्रेमचन्द) | ४५ |
| ४ सुनीता बाहर के प्रति घर की पुकार (जैनेन्द्र कुमार) | ६१ |
| ५ कन्याणी एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास (जैनेन्द्र कुमार) | ७५ |
| ६ सागर, लहरें और मनुष्य : शक्ति और सीमाएँ (उदयशंकर भट्ट) | ९७ |
| ७ सूरज का सातवाँ घोड़ा मध्यवर्गीय जीवन के विविध रंग (धर्मवीर भारती) | ११६ |
| ८ लौटे हुए मुसाफिर नफरत की आग में झुलसता आम आदमी (कमलेश्वर) | १३५ |
| ९ शह और मात . तरल प्रेम की सहज अभिव्यक्ति (राजेन्द्र यादव) | १६५ |
| १० कितने चौराहे एक सत्कारशील उपन्यास (फणीश्वरनाथ रेणु) | २१३ |
| ११ राग दरबारी : भारतीय जीवन का जीवन्त दस्तावेज (श्रीलाल शुक्ल) | २४१ |
| १२ विपात्र . दरमियानी दूरी का दर्द (गजानन माधव मुक्तिबोध) | २७३ |
| १३ वे दिन . अकेलेपन की अवसादपूर्ण गाथा (निर्मल वर्मा) | २८७ |

१४. घरती घन न अपना : युग युगान्तर के सर्वकष शोषण की कहानी ३०९
 (जगदीश चन्द्र) डा० चन्द्रभानु सोनवणे
१५. तमस : साम्प्रदायिकता के अंधेरे में भटकता आम आदमी ३२५
 (भीष्म सहानी) सूर्यनारायण रणमुभे

टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

२४, ४०, ५७, ७२, ९३, १११, १३२, १६२, २०८, २३७, २७०, २८४,
 ३०६, ३२३, ३७१ ।

गवन : नारीत्व के जागरण की कहानी

डॉ० चन्द्रमानु सोनवणे

“जालपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है।”

—डॉ० रामविलास शर्मा

जालपा की जीवनयात्रा ‘अंधेरे से उजाले की, मिथ्या से सत्य की’ दिशा में की गई यात्रा है।

“हिन्दी उपन्यास साहित्य में मध्यमवर्गीय जीवन का सफल चित्रण करने की दृष्टि से ‘गवन’ का महत्त्व बेजोड़ है।”

मुंशी प्रेमचन्द की दृष्टि में साहित्य 'जीवन की आलोचना' करने वाला 'मानव-संस्कार का एक सशक्त अस्त्र' है। इसीलिए उन्होंने 'विचारों का प्रचार' और 'उत्कर्ष का अनुभव' कराने के उद्देश्य से 'मानवचरित्र का चित्र' उपन्यास के माध्यम से उपस्थित किया। उन्होंने न केवल 'किमी देवता की कामना' की, अपितु 'उस देवता में प्राणप्रतिष्ठा' करने का कठिन कार्य भी किया। उनके कथासाहित्य के पात्र कठ-पुनलियों के समान नहीं हैं, जैसा कि उनके पूर्ववर्ती साहित्यकार देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में पाए जाते हैं। इसीलिए उन्हें कथाजगत् में मानव की प्रतिष्ठा करने का श्रेय दिया जाता है। मानव के लिए मानव की कहानी से अधिक रूचि का विषय और क्या हो सकता है? यही कारण है कि प्रेमचन्द को पाठकों का मन आकृष्ट करने के लिए अद्भुतरम्य कथानकों का सहारा नहीं लेना पड़ा। समाज के जीवित मानवों की उपेक्षा करके उन्होंने इतिहास के 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' के चक्कर में पड़ना भी पसन्द नहीं किया। अपने समय के समाज का उन्होंने जितनी ईमानदारी से चित्रण करने का प्रयत्न किया है, उतना अन्य किसी लेखक ने नहीं। विशेषतः मूक गरीब जनता को उन्होंने ही वाणी प्रदान की। वे स्वयं गरीबी में पलकर बड़े हुए थे। पिता ने उन्हें अपनी अतृप्त इच्छा के परिणामस्वरूप भले ही 'घनपतराय' के रूप में देखना चाहा, पर वे अपनी अन्तः प्रकृति के अनुकूल 'प्रेमचन्द' ही बने।

प्रेमचन्द का जन्म निम्न मध्यमवर्ग में हुआ था। इसीलिए उन्हें इस वर्ग की मनोवृत्ति की जानकारी निकटतम रूप से प्राप्त थी। 'गबन' उपन्यास में इसी वर्ग का चित्रण अत्यधिक सफल रूप में किया गया है। कामविषयक नैतिकता की दृष्टि से यह वर्ग सदा से जागरूक रहता आया है। वर्गगत इकार्ड के रूप में काम-समस्या इस वर्ग के लिए प्रायः गौण ही रही है। प्रस्तुत उपन्यास का एक भी पात्र काम-समस्या से प्रेरित नहीं है। रमेशबाबू की पत्नी वीस साल पहले मरी है, जब कि वे जवान थे। इसके बावजूद उनकी कामविषयक अतृप्ति या विकृति का लेखक ने कोई उल्लेख नहीं किया है। किसी महदुद्देश्य को साकार करने के स्वप्न में वे इस ओर से देखवर हों, ऐसी भी बात नहीं है। इसी प्रकार इसी वर्ग के, पर उच्च मध्यमवर्ग के

इन्दुमूषण वकील की पत्नी पैंतीस वर्ष पूर्व मरी थी, किन्तु उन्होंने पाँच वर्ष पूर्व जवान बेटे सिद्धू के मरने तक दूसरा विवाह नहीं किया। उन्होंने सिद्धू की मृत्यु के बाद वृद्धावस्था के प्रवेशकाल में जवानी में प्रवेश करती हुई रतन से विवाह किया। रतन को पति से पिता का स्नेह और 'सदेह आधार मिला किन्तु विवाह का सुख नहीं। उसका जीवन शिबलिंग के उपर बूँद-बूँद टपकने वाले जल के समान समर्पित था, जिसमें सरिता के जल के स्वच्छन्द प्रवाह का अभाव था।' युवा दम्पति रमानाथ और जालपा के प्रति उसका आकर्षण अवचेतन के स्तर पर कामप्रेरित होते हुए भी लेखक ने उसकी कामतृप्ति की समस्या पर बल नहीं दिया है। इतना ही नहीं, जोहरा नामक वेश्या की ओर रमानाथ के आकृष्ट हो जाने पर भी प्रेम त्रिकोण का सहारा लेने की यत्किञ्चित् प्रवृत्ति भी लेखक ने नहीं दिखाई। कहने का आशय यह है कि इस उपन्यास की समस्या कामप्रेरित नहीं है। इसकी समस्या के मूल में तो विहीनता है।

निम्न मध्यमवर्ग आमदनी की दृष्टि से निम्नवर्ग के निकट होते हुए भी सामाजिक सम्बन्धों की दृष्टि से उच्चवर्ग का नैकट्य पाने की लालसा मन में लिए रहता है। जिस अग्रजो शिधा ने मध्यमवर्ग की जन्म दिया है, उसी ने उसमें नगर-सम्पत्ता की प्रदर्शनप्रियता भी भर दी है। यह प्रदर्शनप्रियता व्यक्तित्व की अन्दरूनी रीतिना की मापक बनी जा सकती है। यह प्रदर्शनप्रियता एक थोर रमानाथ जैसे पुरुषों में टीमटाम और ठाठवाट का रूप ले लती है तथा दूसरी ओर जालपा जैसी स्त्रियों में आभूषण-लालसा का। स्त्री की आभूषण-लालसा का शिकार लेखक स्वयं रहे हैं। उन्होंने लिखा है—'वीरोजान की बरसो की जिद एक बड़ा बनवाया, जिसका मदमा अब तक न भूला।' मम्मवत इसीलिए लेखक ने सन् १९०७ में लिखे गए 'कृष्णा' नामक गयन के पूर्वमातरूप उपन्यास के बरसों बाद फिर से आभूषणलालसा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। गयन में एक भी स्त्री-पात्र ऐसा नहीं है जो इस लालसा में ग्रस्त नहीं रहा है। जाऊँगी की दादी सदा गहनों की चर्चा करती रहती है। मानकी की चन्द्रहार पाने की माय तो धनीयतम पृथ्वी जालपा की मिली है। विवाह के समय चढ़ाने में चन्द्रहार न पाकर जालपा की एक सखी कहती है कि चन्द्रहार तो गहनों का राजा होता है, तो दूसरी जाऊँगी को मर्याद देती है कि चन्द्रहार बनने तक घरवालों को चैन न लेने देना। तीसरी सखी ने तो अति ही कर दी है : 'उसकी झलक है कि चन्द्रहार बनने तक जालपा कोई दूसरा गहना ही न पहने। रमानाथ की माता रामेश्वरी की भी आभूषणलालसा अतृप्त ही रही है। बगनों की दो-दो जोड़ियों के बावजूद रतन का मन जालपा के नए डिजाइन के बगनों पर लुभा ही गया है। जगो जैसी बुद्धिया का गहनों से पेट नहीं मरा है। इसी कारण डॉक्टर त्रिभुवन सिंह ने गयन की नारियों को अर्थ मावनाप्रेरित कहा है।'

नया घर की और नया गाँव की, नया पढ़ी-लिखी और नया अनपढ़, हर स्त्री इस आभूषणलालसा के चक्कर में फँसी हुई है। जालपा की इसी लालसा के कारण रमानाथ को गवन करने के कारण मुसीबत में फँसना पड़ा। गवन के कारण ही देवीदीन को जेल की हवा खानी पड़ी थी। लेखक ने इस लालसा के दुष्परिणामों पर अत्यधिक बल दिया है। इसीलिए डॉक्टर एम्. एन्. गणेशन 'गवन' को "आभूषण-प्रेम तथा उसके दुरन्त परिणामों की कथा" माना है तथा डॉक्टर रामरतन भटनागर की दृष्टि में यह 'गहने की ट्रेजेडी' है। श्री विष्णुप्रभाकर ने इस उपन्यास को नाटक रूप देकर उसे 'चन्द्रहार' नाम दिया है। डॉक्टर रामबिन्धु शर्मा ने भी इस उपन्यास में गहनों की समस्या पाई है, परन्तु उन्होंने इस समस्या के अतिरिक्त स्वाधीनता की समस्या को भी उपन्यास का विषय माना है।^१ यहाँ यह प्रश्न खड़ा होता है कि आभूषणलालसा को अगर मूल समस्या माना जाए तो रमानाथ की प्रदर्शनप्रियता को खींच-तान कर ही इस समस्या का अंग बतलाया जा सकता है। इसलिए आभूषण लालसा की समस्या पर अधिक गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

मुशी प्रेमचन्द ने गहनों की गुलामी को पराधीनता से भी बढ़कर मान कर दरिद्र देश में सनक की सीमा तक बढ़े हुए इस रोग की व्यापकता पर दुःख व्यक्त किया है। महिलाओं के 'आभूषणमण्डित मसार' में चर्चा का मुख्य विषय गहने ही होते हैं। महिलाएँ आभूषणों पर जान देती हैं और उनका आभूषणों पर जान देना पुरुषों ने स्वामाधिक भी मान लिया है। इतना ही नहीं उन्होंने स्त्रियों की इस लालसा को भड़काने और मजबूत बनाने में सहयोग दिया है। उपन्यास का विसाती जालपा की चन्द्रहार की कामना को विवाह के सपने से तदाकार कर देता है। जालपा के पिता भी खिलौनों को व्यर्थ समझकर अपनी बेटी के लिए नकली गहने लाया करते थे। भारत के मध्यकालीन इतिहास के सामन्तयुग से भारतीय पति ने अपनी पत्नी के 'रमणी' रूप को उभारने के लिए गहनों का प्रयोग करना शुरू किया था। रमानाथ इसी परम्परा में आने वाला व्यक्ति है। इस प्रकार अलंकरण रमणी के 'रम्य' रूप को अल (पूर्ण) करने का साधन रहा है। व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता के छिन जाने के कारण स्त्री भी अपना मूल्य भोग्यत्व की दिशा में ही बढ़ा सकती थी। प्रेमचन्द के काल में मध्यमवर्ग की स्त्रियाँ अर्थोपार्जन की दृष्टि से शून्यवत् थी, क्योंकि पत्नी का अर्थोपार्जन करना पति की स्वामित्वभावना के विरुद्ध था। इन सब कारणों से स्त्रियों में आभूषणलालसा दृढ़ता से बढमूल हो गई थी। यह लालसा, एक प्रकार से पुरुष की प्रदर्शनप्रियता का ही अंग थी।

मध्यमवर्ग की प्रदर्शनप्रियता वस्तुतः अन्दरूनी रिक्तता की ही द्योतक है। निम्न मध्यमवर्ग का पुरुष अर्थभावजन्य-हीनता को तथा स्त्री-अस्मिता के अभाव के कारण प्रदर्शनप्रिय बनने के लिए विवश थे। गवन के बाद रमानाथ के व्यापता हो

जाने पर जालपा ने प्रदर्शनप्रियता का खोखलापन अनुभव किया। वह 'रमणी' से 'विचारशील' बन गई। परिणामतः अन्दरूनी रिश्ता का स्थान व्यक्तित्व ने ग्रहण किया। यही कारण है कि उसमें विकास की सम्भावनाएँ अपने आप समाविष्ट हो गईं। जालपा में नवजीवन का भूतपात हुआ। इसके बाद ही वह परिवार और समाज का मच्चे अर्थों में अलग बनी और रमानाथ में आत्ममर्यादा को जगाने में सफल हो सकी। जालपा के समान ही पति की मृत्यु के बाद रतन की आत्मनिर्भर होने के लिए विवश होता पडा। इस आत्मनिर्भरता ने उसकी अस्तित्व की चेतना को जागृत किया। देवीदीन और जगो निम्नवर्ग के होने के कारण पहले से ही मेहनत-मजदूरी बरने के कारण आत्मनिर्भर थे। यही कारण है कि 'गबन' उपन्यास में स्वाधीनता के भर्म को उसी ने सबसे अधिक समझा है, क्योंकि आत्मनिर्भरता और अस्मिता क्रमशः स्वाधीनता के व्यक्त और अव्यक्त रूप हैं। स्व की गुजलक से मुक्त होने पर व्यक्ति और समाज का स्वस्थ विकास सम्भव है। 'गबन' उपन्यास का यही प्रतिपाद्य है। इसी प्रतिपाद्य के कारण उपन्यास के पूर्वाद्ध और उत्तराद्ध, अर्थात् प्रयाग और बलवत्ते के कथानक जुड़े हुए हैं।

'गबन' उपन्यास के कथानक पर सविस्तार चर्चा करने में पूर्व यह जान लेना उपयोगी है कि इस उपन्यास से पूर्व सन् १९२४ में प्रेमचन्द का 'रगभूमि' नामक उपन्यास प्रकाशित हो चुका था। कुछ आलोचकों की दृष्टि में 'रगभूमि' प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास के बाद सन् १९२७ में 'बायाकल्प' तथा सन् १९३० के अन्त में 'गबन' प्रकाशित हुए। 'रगभूमि' की तुलना में ये दोनों ही उपन्यास उच्च स्तर के नहीं कहे जा सकते। आलोचकों को उपन्यास सम्राट के इस प्रतिविवास पर आश्चर्य हुआ है। प्रेमचन्द की जीवनी को ममझे बिना इसके रहस्य का उद्घाटन नहीं किया जा सकता। इन उपन्यासों के लेखनकाल में प्रेमचन्द की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उस समय लेखक को प्रतिपृष्ठ के हिसाब से पारिश्रमिक (बलम की मजदूरी) मिला करता था। इस विपरीतता के कारण ही प्रेमचन्द ने प्रदीर्घ कथानक लिखने के लिए 'बायाकल्प' में जन्मजन्मांतरो की कहानी का सहारा लिया है। इसी बाल में १९०७ ई० में लिखे गए 'प्रेम' के कथानक को परिवर्तित करके 'प्रतिज्ञा' उपन्यास लिखा गया है। 'बायाकल्प' और 'प्रतिज्ञा' के लेखनकाल में ही 'गबन' का लेखनकार्य चालू था। श्री मदनगोपाल के अनुसार 'गबन' के लेखन का प्रारम्भ सन् १९२६-२७ में किया गया था। श्री मदनगोपाल ने इस उपन्यास के लेखन की समाप्ति सन् १९२८ के अन्त में मानी है, किन्तु यह 'गबन' के पूर्वाद्ध की समाप्ति का काल ही माना जा सकता है। वस्तुतः 'गबन' उपन्यास का पूर्वाद्ध अपने-आप में एक स्वतन्त्र उपन्यास है ही। इसीलिए श्री मन्ददुलारे बाजपेयी ने यह कहा है कि अगर यह उपन्यास प्रयाग से ही सम्बन्धित होता तो अधिक सुग-

ठित होता । श्री अमृतराय ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में लिखा है कि सन् १९२९ ई० के मार्च में इसका लेखन प्रारम्भ हुआ और मार्च में ही आधा समाप्त भी हुआ । उनके कथन का पूर्वाह्न असत्य है और उत्तराह्न सत्य है । यदि यह उपन्यास एक ही मास में लिखा गया होता तो कथानक-विषयक स्थूल असंगतियाँ उसमें इतनी अधिक न होती । दयानाथ की पत्नी का नाम कहीं जागेश्वरी है, तो कहीं रामेश्वरी । रमानाथ का वेतन कहीं ३० रुपए दिया गया है, तो कहीं २५ रुपए । प्रयाग के इन्दुमूषण वकील को कहीं-कहीं काशी का निवासी लिख दिया गया है । चन्द्रहार की कीमत में भी इसी प्रकार की गड़बड़ है । अतः 'गवन' के लेखन का प्रारम्भ यदि श्री मदन-गोपाल के अनुसार मानकर पूर्वाह्न की समाप्ति श्री अमृतराय के अनुकूल स्वीकार की जाए तो इन असंगतियों का गगत कारण बनाया जा सकता है । श्री अमृतराय के अनुसार 'गवन' की छपाई प्रारम्भ होने की सूचना नवम्बर, सन् १९३० में प्रथमतः मिलती है । ऐसा प्रतीत होता है कि 'गवन' के आधा समाप्त होने के बाद प्रेमचन्द के मन में इसके कथानक की लम्बाई बढ़ाने का विचार आया और इसीलिए उन्होंने उसे कलकत्ते के नए कथानक की ओर मोड़ दिया । सन् १९२८ के प्रारम्भ में लाहौर काँग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया था । इस प्रस्ताव का लेखक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था, जिसका प्रतिकलन हमें देवीदीन के चरित्र में दिनाई पड़ता है । इस उपन्यास में आगे चलकर रमानाथ के पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने के बाद प्रेमचन्द का ध्यान मेरठ पड़्यन्त्र केस की ओर गया, जो इस वर्ष की सनसनीमेज घटना थी । जनकपुर डकैती केस की कल्पना कर लेने के बाद उन्होंने मेरठ पड़्यन्त्र केस के प्रभावस्वरूप जनकपुर डकैती के मामले को राजनीतिक रंग दे दिया और पुलिस के हथकण्डों और न्यायालय के असली स्वरूप का भण्डाफोड़ किया । सम्भवतः इन्हीं कारणों से उपन्यास का उत्तराह्न असंगठित-सा बन गया है । 'गवन' की लम्बाई अनपेक्षित रूप से बढ़ा दिए जाने का ही यह परिणाम है कि पारिवारिक क्षेत्र में हटकर राजनीतिक क्षेत्र में पहुँच गई और आभूषणों की समस्या स्वाधीनता की समस्या में परिवर्तित हो गई । सन् १९०७ में लिखी गई 'कृष्णा' की कहानी का पल्लवन करते हुए लेखक आदर्श ग्रामजीवन के स्वप्न में लौ गया । यह जीवन सेवासदन या प्रेमाश्रम के हवाई आदर्श से भले ही मुक्त हो, किन्तु 'गवन' के कथानक में से विकसित अवश्य नहीं है ।

कथानक में प्रामाणिक कथाओं के रूप में रतन और देवीदीन की कथाएँ हैं । रतन की कथा का प्रयाग में सम्बन्धित श्रृंग अधिक मुगठित एवं आधिकारिक कथा का उपकारक है, किन्तु रतन को कलकत्ते तक घसीट ले जाना और अन्त में मौत के हाथों सौं देना अनावश्यक विस्तार है । इसके अतिरिक्त जालपा का अर्चित अन्त भी गटकता है । उनके सिवाय मुन्धिर के पास पिस्तौल का होना, मुकदमे की

दुबारा सुनवाई होना आदि बातें असम्भव एवं असंगत है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पूर्वाद्ध और उत्तराद्ध के कथानक दो पृथक् उपन्यासों के कथानक हैं, जिन्हें लेखक ने अपने सम्बन्ध निर्वाह की कुशलता के कारण जोड़ रखा है तथा वर्णनशैली के सहज आद्यन्त मनोरंजक बनाए रखा है। पूर्वाद्ध की कथा का अन्त प्रदर्शनप्रियता के माहुर और पारस्परिक विस्वास पर आधारित दाम्पत्य-प्रेम के अनुभव के साथ हाना चाहिए।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'गबन' उपन्यास सफल है। छोटे-बड़े सब मिला कर इस उपन्यास में पचास से अधिक पात्र हैं। लेखक ने पात्रों की बाहरी वेशभूषा और मुद्राओं के चित्रण पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। अदालत के प्रसंग में रमानाथ के वयान का सुनकर जालपा के मन में होने वाली प्रतिक्रियाओं का प्रतिफलन उसके चेहरे पर व्यक्त होता हुआ चित्रित किया है। लेखक ने एक स्थान पर मनो-विज्ञान के आधार पर लिखी गई कथा को उत्तम माना है।^{१०} 'गबन' के चरित्रों में मनोविज्ञान का प्रयोग मनाविज्ञानिक उपन्यासों के समान नहीं किया गया है क्योंकि उपन्यास में एक स्थान पर नींद में अवचेतन (निम्न चेतना^{११}) के सन्निध रहने का उल्लेख हुआ है। उपन्यास में विभिन्न स्थानों पर चार स्वप्नों का उल्लेख हुआ है। पहले स्वप्न में जालपा गहनो की चारों ओर जाने का स्वप्न देखती है तथा दूसरे स्वप्न में 'गबन' की घटना के बाद पुलिस के मित्रों को रमानाथ को पकड़ कर ले जाते हुए देखती है। इसी प्रकार तीसरे स्वप्न में रमानाथ के लापता हो जाने की भावी सूचना है। अन्तिम स्वप्न में जालपा दिनेश की फाँसी का पन्दा काटकर उसी तलवार से रमानाथ पर भी वार करती है। इन चारों स्वप्नों का उद्देश्य भावी कथा का संकेत देना मात्र है, मनाविज्ञान के अनुकूल किसी मानसिक गुणों का स्पष्टीकरण नहीं। अन्तिम स्वप्न में जालपा द्वारा रमानाथ पर वार किया जाना अवश्य अलग कोटि की बात है। रमानाथ जैसे स्वार्थी, कायर, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के विरुद्ध जालपा की यह प्रतिक्रिया कही जा सकती है। मृत्यु से पूर्व इन्दुमूषण वकील का हैन्यूसिनेशनप्रस्त होकर सिड्नी को देखना भी अत्यन्त उपयुक्त है। यह उनकी प्रबल पुत्रपुत्री का सूचक है। पुत्रपुत्री के कारण ही उन्होंने बुढ़ापे में दूसरा विवाह किया था और अपनी पत्नी से 'पिता का सा स्नेह' करते थे। इसी प्रकार रमानाथ का अपनी पत्नी के सामने डींगें हड़िना आत्महीनता की ग्रन्थि की ओर संकेत करता है।

पात्रबाहुल्य के बावजूद उपन्यास में दो-तीन पात्र ही सबसे अधिक महत्त्व के हैं। इनमें पहला महत्त्व का पात्र रमानाथ है, जिसके चरित्रिक परिवर्तन के साथ उपन्यास का अन्त हुआ है। यह शहरी निम्न मध्यवर्ग की दुर्बलताओं का प्रतीक पात्र है। दरिद्रताजन्य आत्महीनता इसके व्यक्तित्व के केन्द्र में है। वह पढ़ा-लिखा कम है, पर उसमें दिखावा अधिक है। सहकारिता के आधार पर ठाठबाट में रहता

है और ससुर के पैसों से वाराणसी का टीमटाम भरा नाटक खड़ा करता है। विवाह के बाद भी पत्नी को प्रेम से जीतने के स्थान पर झूठमूठ के रोंब से वश में करना चाहता है। चुंगी दफ्तर का मामूली क्लर्क होते हुए भी अफसर की शान दिखाता है। उसे निर्बल रहकर जीना मरने से बदतर प्रतीत होता है। वैभवलालसा के सामने सात्त्विक जीवन का आदर्श उसे मुद्राता नहीं है। इसीलिए उसे रिश्वत लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। वह अपने नैतिक मन को समझाने के लिए अपनी रिश्वत को दस्तूरी कहता है और वीद्विकीकरण (Rationalisation) का सहारा लेकर कहता है कि वनियों से रुपया ऐंठने के लिए अवल चाहिए। वह रिश्वत के पक्ष में वेतन की कमी का तर्क भी पेश करता है। उसका यह तर्क दिल की सच्चाई से उद्भूत माना जा सकता था, अगर उसमें अतिरिक्त मात्रा में दिखाई देने वाली प्रदर्शना-प्रियता न होती। वस्तुतः उसके चरित्र की नींव में वैभवलालसा (वित्तीयता) ही है। घनलोभता के कारण ही वह क्रांतिकारियों के विरोध में वयान देने में उद्यत हो जाता है। विलासवृत्ति ने ही उसकी विवेकशक्ति को कुंठित बना रखा है। देवीदीन और जालपा के पुनः-पुनः किए गये प्रयत्नों के कारण ही वेगुनाहों का खून करने में सहायता देने से रुक पाता है। इस प्रसंग में वह पुलिस की सशक्तियों का उल्लेख करता है, पर ऐसी किसी सख्ती का वर्णन उपन्यास में कहीं नहीं है। भीखता के कारण ही वह अपने सत्संकल्पों पर दृढ़ नहीं रह पाता। इस प्रकार आत्मकेन्द्रित रमा की स्वार्थपरता ने उसे जहाँ राक्षस बना डाला है, वहाँ कायरता के कारण वह पशु से भी गया-बीता बन गया है। निःस्वार्थ देवीदीन और साहसपूर्ण जालपा के कंट्रास्ट में उसकी स्वार्थ और भीखता की वृत्तियाँ उभर कर सामने आई हैं।

रमानाथ को 'मुख के लिए आत्मा बेचने वाला' भन्ने ही कहा गया हो, पर उसमें आत्मा अवश्य है। वह पत्नी के गहने चुराने पर ग्लानि का अनुभव करता है। कलकत्ते में दान का कंवल लेने पर उसकी आत्ममर्यादा को ठेस पहुँचती है। भीखता के कारण-संकल्पों पर दृढ़ न रह सकने की दुर्बलता पर उसे बुरा महसूस होता है। उपन्यास के अन्त में डूबते हुए को बचाने के लिए माहस न कर सकने पर लज्जा का अनुभव होता है। उसकी यह धर्मिन्दगी उसके व्यक्तित्व के सत्पक्ष की शोक्त है। वह पूरी तरह से दिल का बुरा आदमी नहीं है। वह कमजोर स्वभाव का अवश्य है। इसीलिए जोहरा ने रमानाथ के लिए कहा कि उसके लिए मरहम की जरूरत है, जंजलों की नहीं।¹² उसने स्वयं अपनी दुर्बलता पर दुःखानुभव करते हुए कानरतापूर्वक जालपा से कहा है कि तुम मुझे ऊँचाई पर मत चढ़ाओ, क्योंकि मुझमें इतनी शक्ति नहीं है।¹³ स्पष्टतः ही वह रीढ़हीन व्यक्ति है।

रमानाथ और जालपा का सम्बन्ध विद्वान्ध का सम्बन्ध नहीं है। जालपा के अतिरिक्त रमानाथ का जोहरा से भी सम्बन्ध हुआ। जोहरा रमानाथ को विवेक-

विमुख बनाये रखने के लिए नियुक्त की गई थी किन्तु रमानाथ की सरलता के कारण जालपा इस 'अनुरागरत्न' से प्रभावित होकर स्वयं विलामविमुख बन गई। जोहरा के द्वारा रमानाथ के 'अनुरागरत्न' समझे जाने में अधिमूल्यांकन (Over estimation) दिखाई पड़ता है। उसका जालपा और जोहरा, दोनों के प्रति प्रेम का प्रदर्शन स्वयं को धाम्या देना मात्र है। इसीलिए प्रेमान्माद के आवेश में उसका दरोणा को धक्का देना भी अविश्वमनीय हो उठता है। जालपा, जोहरा और देवी-दीन के सम्मिलित प्रयत्नों में वह जिस किसी तरह स्वायं की दलदल से बाहर निकल पाता है। इसीलिए एक रीढ़हीन व्यक्ति के रूप में उसका चित्रण करने में लेखक पूर्णतः सफल हुआ है। श्री कामल कोठारी ने इसी कारण इस पात्र के सम्बन्ध में लिखा है कि—“इस दुर्बल चरित्र का चित्रण प्रेमचन्द ने बहुत ही सबल कलम और विश्वास के साथ किया है।” रमानाथ की तुलना में 'गोदान' का होरी अन्त में द्वारा अवश्य है, किन्तु अपने दृढमूल्य व्यक्तित्व के कारण वह रमानाथ से कहीं अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली है।

प्रस्तुत उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र जालपा है। वह जमींदार के कारिंदे को इकलौती बेटी है। चारा बार के चातावरण के कारण आभूषण-लालसा के अकुर बचपन में ही उसके मन में अकुरित हो गई हैं। वह चन्द्रहार के पीछे इतनी पागल है कि उसे देह में आँख के समान चन्द्रहार का महत्त्व लगने लगता है। विवाह के बाद चन्द्रहार पात्र पर ही उसका पतिमत्वा का भाव उदित होता है। आभूषण लालसा के इतना प्रबल होने के बावजूद उसमें एक अन्य गुण ऐसा है, जिसके कारण उसके व्यक्तित्व में विकास की सशक्त सम्भावनाएँ विद्यमान थीं। यह गुण है अस्मिता। इसी गुण के कारण आत्म-सम्मान के लिए बाधक समझकर गहनों की चोरी के बाद माता के द्वारा भेजे गये चन्द्रहार को जालपा ने लौटा दिया था। इसी के कारण गवन के बाद रमानाथ के लापता हो जाने पर मँके के आश्रय में नहीं चली गई। इसी के कारण अपने गहने बेचकर गवन की रकम भर देने के बाद उसे गर्वमय रूप का अनुभव हुआ। अस्मिता के कारण ही विलासिना की निर्बलता पर वह सहज ही विजय पा सकी। वैभवविलास की उमकी अमिलापाएँ ज्यों-की-तथा बनी रही और उसने इन अमिलापाओं को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के हिपोक्रिटिक बहप्यन का प्रदर्शन भी नहीं किया, किन्तु किसी का अनुमल करके स्वयं राज्य पाना उसे स्वीकार नहीं है। वह खून से तर रोटियाँ खाने की अपेक्षा कुलीगोरी करना अधिक श्रेष्ठ समझती है। इसीलिए समय पढ़ने पर इस 'प्राउड लेडी' ने प्रदर्शन-प्रियता से सर्वथा मुक्त होकर मौत की सजा पाये हुए दिनेश की निराश्रित माता की सेवा की है। अस्मिता के स्फुलिंग प्रज्वलित होकर उसे जाग्रत नारीत्व का प्रतीक बना दिया है। इसीलिए डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखा है कि—“जालपा भारत का उगता

हुआ नारीत्व है ।^{१८}

जालपा के व्यक्तित्व में प्रेम की योग्यता भी मूलतः ही है । वह वेश्या की तरह पति को नोच-खसोट कर अपनी वैभवलालसा को तृप्त करना नहीं चाहती । उसकी वैभवलालसा के परिणामस्वरूप ग्वन करने तक पहुँचने की नीवत नहीं आती, अगर रमानाथ, जालपा पर विश्वास करके अपनी परिस्थिति को पहले से ही स्पष्ट कर देता । उसके विपरीत माखियों को लिखे गये पत्रों में की गई पतिनिन्दा को विश्वास के कारण अपने पति के सामने खुद होकर स्वीकार कर लेती है । पति-प्रेम के कारण ही वैभवलालसा के होते हुए भी वह रमा को अपने निजी रुपये आवश्य-कता पड़ने पर माँप देती है । वह वैभवलालसा को पतिप्रेम में बाधक एवं पतिवियोग के कारण रूप में जानते ही प्रसावन-धिलास की वस्तुओं को गंगा में बहा डालती हैं । इसी के बाद उसके नवजीवन का आरम्भ होता है । वह मिथ्या का परित्याग करके सत्य के मार्ग पर चल पड़ती है । इसी मार्ग पर चलकर ही वह विन्हासिनी से त्यागनी एवं देवी बनी है । जालपा का यह देवत्व का विकास मानवत्व के विकास का रूप है । यह मानवत्व मे बाहर की वस्तु नहीं है, इसीलिए मानव मुलम भाव-नाएँ उसमे बनी रही है ।^{१९} वह रमानाथ को स्वार्थपरता के कारण पशु से भी बदतर कहकर भी उसे आग में जोंकने के लिए तैयार नहीं है ।^{२०} गंगा की मरी बाढ़ में डूबते हुए व्यक्ति को बचाने से रोकती है । मानवप्रकृति की इस स्वाभाविक कमजोरी ने उसके चरित्र को निस्पंद देवचरित्र होने से बचा लिया है । व्यक्तित्व के इन केन्द्रीय गुणों के अतिरिक्त जालपा सूझबूझ, बुद्धिचातुर्य आदि अनेक अन्य गुण जालपा के चरित्र में हैं ।

‘सेवासदन’ और ‘निर्मला’ के समान ‘ग्वन’ नायिकाप्रधान उपन्यास है । ‘ग्वन’ की नायिका प्रधानता शेष दो उपन्यासों की नायिकाप्रधानता से भिन्न कोटि की है । सुमन और निर्मला के समान आधिकारिक कथा का सर्वप्रमुख पात्र होने के कारण ही जालपा नायिका नहीं है, अपितु परिस्थितियों को अपना अनुगमन करने के लिए बाध्य करने के कारण भी वह नायिका है । सुमन की तरह उसका विद्रोह क्षणिक नहीं है और न ही निर्मला की तरह अगति होकर घुट-घुटकर मरी है । उसका विद्रोह तात्कालिक कारणों से प्रेरित नहीं है । अतः वह प्रेमचन्द के माहित्य की वह अमर नारी है, जिम्ने अच्छे या बुरे पति को देवता मानकर उसका अनुगमन मात्र करने मे इत्कार कर दिया है । इतना ही नहीं उसने प्रतिगामी पति को अपना अनुगामी बनाकर छोड़ा है । उसी के हृदयपरिवर्तन से कथा का विकास हुआ है । उसके इस हृदयपरिवर्तन के मूल में जो क्रांतिकारी सामाजिक बोध है, वह प्रेमचन्द की किसी भी नायिका में नहीं है । ‘ग्वन’ के स्थान पर प्रस्तुत उपन्यास का नाम-करण यदि ‘जालपा’ कर दिया जाये, तो अधिक उचित होगा । दो कथानकों को

मिला दिये जाने के कारण 'गबन' नामकरण में जो अपूर्णता प्रतीत होने लगती है उसे दूर करने के लिए 'गबन' का अर्थ 'गुणा का गबन' आदि करने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः उपन्यास का विकाससूत्र जालपा के चित्रित विकास के साथ जुड़ा हुआ है। जालपा ही प्रयाग और कलकत्ते के कथाविकास की सूत्रधारिणी है।

'गबन' उपन्यास का तीमरा प्रमुख पात्र देवीदीन है, जो पताका कथानक का नायक है। वह खटिब नामक निम्न जाति का व्यक्ति है, पर उसका चरित्र इस बात का प्रतीक है कि आत्मा की उच्चता जाति पर निर्भर नहीं है। शायित समाज का व्यक्ति होने के कारण वह समाजशापका के रूप में मलीभांति परिचित है। वह इस बात को जानता है कि पाप का घन पचाने के लिए ही शापक समाज ने दान धर्म के रक्षक वक्ता का निर्माण किया है।^{३१} वह शोषण प्रक्रिया का समाप्ति करने के उद्देश्य से ही स्वदेशी का समर्थन करता है। स्वदेशी की खातिर उमर का भवान बेटे की बलि चढ़ गई है। इसके बाद से उसके घर में विदेशी दियामलाई तक नहीं आती। विलायती शराब पीकर विलायत का घर करने वाले स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं की पोल से वह खूब अच्छी तरह से परिचित है। ये ठागी नेता ही अगर स्वराज्य के रहस्य, तो वे अपने भागविलास के लिए साधारण जनता पीसकर पी जाएँगे,^{३२} इसे उसने अपनी पत्नी दृष्टि से सन् १९३० में ही देख लिया है। वकील, अक्सर और पुलिस वाले स्वराज्य की लूट करेंगे, इस बात की आगवा व्यक्त की है। देवीदीन के स्वराज्य विषयक चिंतन में स्वयं लेखक का ही चिंतन व्यक्त हुआ है। देवीदीन के घन से ही अन्त में प्रयाग के पास मैनी खरीदी गई है, जिस पर उसका एव रमानाथ का समस्त परिवार ही नहीं, अपितु निराश्रित स्तन एव समाज से बहिष्कृत जोहरा भी रहते हैं।

देवीदीन हँसोड़ प्रकृति का व्यक्ति है। अपने बेटा और बहूओं को मरने के दुःख को भुलाकर उसके व्यक्तित्व का स्वस्थ एव सहज बनाये रखने में उसकी इस प्रकृति ने भी वक्ता का काम किया है। "जो दूसरा का गला काटे उसको जहर दे देना भी पाप नहीं है"^{३३}—बहने वाला देवीदीन कच्चे दिल के रमा के प्रति बठार हो नहीं पाता, क्योंकि पुत्रहीन हो जाने की स्थिति ने उसकी बठोरता को गला दिया है। पुत्रतुल्य रमानाथ के प्रति उसकी ममता वह पड़ी है। वह उसकी अमहाय दशा में अकारण ही सहायक बन जाता है। पुत्रहीनता ने उसके हृदय की विशालता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। उदात्तीकरण ने उसके व्यक्तित्व का और भी अधिक समाजोपयोगी बना दिया है। उसकी अकारण ममता का महारा पाने वाला रमानाथ उसके सम्बन्ध में कहता है कि—"तुमने ऐसे गाढ़े समय में बाँट पकड़ी जब मैं बीबघार में बहा जा रहा था।"^{३४}

जगमो और देवीदीन में गहरा प्रेम है। जगमो का देवीदीन के पियवकड़पन पर उलाहने देना निश्चय प्रेमधारा का ही परिवर्तित होकर अभिव्यक्त हुआ रूप है। नेक और परदुःखकातर देवीदीन इस उपन्यास का अविस्मरणीय पात्र है।

रमानाथ, जालपा और देवीदीन, इन तीन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त जगमो, जोहरा और रतन, ये तीन पात्र द्वितीय स्तर के प्रमुख पात्र हैं। जगमो का बुढ़ापे में भी गहनों से मन नहीं भरा है। वह साग-सब्जी की दुकान चलाती है और घर की व्यवस्था का भार उमी पर है। बेटों को खोने के कारण उसके दिल को गहरा आघात पहुँचा है। उसके अतृप्त वात्सल्य ने अपने बेटों की लकड़ी की बनी मुदगर की जोड़ी में जीवन डाल दिया है। वह रमानाथ के मुखविर बनने के दुष्कर्म से चिढ़ कर कहती है कि—“अगर तुम मेरे लड़के होते तो तुम्हें जहर दे देती।”^{११} किन्तु इसके बावजूद उसका मातृवात्सल्य रमानाथ के लिए तड़प उठता है।

रतन की कथा उपन्यास में प्रकरी कथा के रूप में आई है। माता-पिता की सुखद छाया से वंचित रतन का विवाह एक वृद्ध वकील से कर दिया गया है। उसे पति की जीवितावस्था में वैवाहिक सुख नहीं मिल पाया है और पति की मृत्यु के बाद हिन्दू समाज की संयुक्त परिवार के उत्तराधिकार के नियमों के कारण वैभव से भी वंचित हो जाना पड़ा है। पति की जीवितावस्था में वह अपनी वैवाहिक सुख की अतृप्ति वैभवलालसा में बहला लेती है किन्तु वैधव्य की विपन्नावस्था में उसके पास सिवाय रोने के और कोई सहारा नहीं रहा है। विवाहमुख की अतिपूर्ति के रूप में उसका मन जालपा की ओर आकृष्ट हुआ है और वह संतति के अभाव के दुःख को पड़ोस के बच्चों के साथ खेलकर यन्किचित् माया में कम कर पाती है। गवन की घटना के बाद रमानाथ के लापता हो जाने के बाद जालपा के प्रति उसका सहज बहिर्भाषा प्रकट हुआ है। वह उसके साथ गेहूँ पीसते हुए चक्की का गीत गाते हुए जीवन के श्रमजन्य आनन्द में अपने दुःख को डुबी देती है। मानिनी होने के कारण भतीजे के पास दीन होकर रहने के स्थान पर मजदूरी करके जीवन-निर्वाह करना उसे अधिक पसन्द है। पीड़ा को भोगकर पराई पीड़ा को समझने की शक्ति उसमें आ गई है। जालपा को उसके जितना सहानुभूति का सहारा किसी अन्य से नहीं मिला है। मरणनिकट पहुँचे हुए अपने वृद्ध पति से बसीयत के रूप में अपने लिए कुछ न लिखा लेना उसके हृदय की उच्चता का प्रमाण है।

जोहरा एक बेध्या है, जिसे पुलिस वालों ने रमानाथ को विवेकविमुख बनाए रखने के लिए नियुक्त किया है; किन्तु जोहरा का प्रेम पाने के लिए लालायित मन रमानाथ की सरलता से आकृष्ट हो जाता है। किसी के प्रति अपने प्रेम को समर्पित करने की इच्छा ने रमानाथ को ‘अनुरागरत्न’ का रूप दे दिया है। उसका पाक प्रेम ईर्ष्या के कलंक से सर्वथा मुक्त है, इसीलिये वह रमानाथ को सन्मार्ग पर लाने के

लिए जालपा की सर्वतोभावेन महायत्ना करती है। उसे रमा पर तरस आता है। इसीलिए वह समझती है कि रमानाथ को मरहम की जरूरत है, जर्जरो की नहीं। काजल की कोठरी में रहकर भी उसका हृदय निष्कलक बना हुआ है इसीलिए रमानाथ को अधिकारवत् समझी गई एक वेश्या की ओर से प्रकाश मिला है। उसका निष्कपट प्रेम रमानाथ को जालपा के हाथों साँप कर और भी अधिक उदात्त एवं व्यापक रूप में प्रकट हुआ है। इसी उदात्तता एवं व्यापकता के कारण वह अपने जीवन की घोखे में डालकर बहके हुए अज्ञान व्यक्ति को बचाने के लिए उसे विवश कर देता है और वह इसी प्रयत्न में वह जाती है। जोहरा के उपकार के कारण कृतज्ञ रमानाथ कहता है कि—'तुमने उस वक्त मुझे समाला, जब मेरे जीवन की टूटी हुई किस्ती गोते खा रही थी।' ^{११} पर दुख यह है कि जोहरा के अतृप्त प्रेम को कोई किनारा न मिल सका। उसका अमिश्रित प्रेम उसे वेश्या में विधवा ही बना सका।

हिन्दी उपन्यास-जगत् के पानों में प्राण फूँकने का सर्वप्रथम श्रेय मुन्शी प्रेमचन्द को ही है। जीवन्त बन जाने के कारण उनके पात्र स्वयं बोलने लगे हैं। उनकी ओर से लेखक की बोलने की आवश्यकता बहुत कम हो गई है। 'गवन' में इसी कारण दो तिहाई भाग सवादमय है। गवन के उत्तरार्ध के कुछ दीर्घ सवादों का अपवाद-रमक भाग छोड़ दें, तो यह दियाई देता है कि सवाद स्वामाविक एवं छाटे हैं। सवादों की प्रसंगानुकूलता के उदाहरण के तौर पर रमानाथ द्वारा गहने लाने पर सोने से पूर्ण पति पत्नी के बीच हुए प्रेमालाप को देखा जा सकता है। ^{१२} दरोगा के सवादों में 'धरम' आदि शब्दस्वरूप स्वामाविक रूप में आये हैं तथा डिण्टी के सवादों में 'प्राउड लेडी' आदि महज ही आ गए हैं। टीमल पूर्वी हिन्दी के देन लेव जैसे स्वामाविक प्रयोग करता है, पर उसके मुख से 'हलफ से कहता हूँ' जैसे वाक्य प्रयोग खटकते हैं। सवादों में ही नहीं, अपितु वर्णनों में भी छोटे-छोटे वाक्यों का प्रायः प्रयोग हुआ है।

प्रेमचन्द ने बोल-चाल में प्रयुक्त होने वाले उर्दू अंग्रेजी आदि के शब्दों का प्रयोग करने में सकोच नहीं किया है। गवन की भाषा में उर्दू का प्रभाव कुछ अधिक ही है, क्योंकि यह कायस्थ परिवार की कहानी है। कायस्थ समाज मुस्लिम मस्जिदों में बहुत अधिक प्रभावित रहा है। उनमें उर्दू के अध्ययन का शौक भी पर्याप्त है। इसीलिए 'गवन' जैसे अनिवार्य शब्दों के अतिरिक्त 'पाकीजा' जैसे अप्रचलित उर्दू शब्दों का भी जहाँ-तहाँ प्रयोग हुआ है। अदालत के प्रसंग में तो 'मुखविर' जैसे उर्दू शब्दों का आना अनिवार्य ही था। 'गवन' में डॉक्टर कमलकिशोर गोयनका के अनुमार १७० अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस्पेक्टर, डाक्टर आदि शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं। भाषा की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की भाषा में

‘हिन्दीपन’ पूर्णतः है। हिन्दी का प्रवाही रूप मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से व्यक्त हुआ है। ‘मियाँ की जूती मियाँ के मिर’; ‘माँई के सौ खेल’ आदि प्रयोग उन्होंने किए हैं। हिन्दी में मुहावरों की शक्ति को सबसे अधिक प्रेमचन्द ने ही पहचाना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ‘दौगड़ा’; ‘लवडिया’ आदि ठेठ हिन्दी के महज प्रयोग भी किए हैं। उनके पात्रों के नाम भी हिन्दी भाषी प्रदेश में पाये जाने वाले बहुप्रचलित नाम हैं। इसीलिए उन्हें एक लेखक ने ‘नाममंथार’ का सर्वश्रेष्ठ पुरोहित^{१६} कहा है।

‘गवन’ के एक-तिहाई आगन्तव्यकाल के भाग में प्रेमचन्द के वर्णन-विवरण का सामर्थ्य दिखाई देता है। इतिवृत्त की रोचकता को देखने के लिए उदाहरण के रूप में दीनदयाल के परिचय को लिया जा सकता है, जिनमें जमींदार के कारिंदे की महत्ता पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं कि दीनदयाल किसान न होते हुये भी खेती करते थे और अफसर न होते हुए भी शासन करते थे।^{१७} विरोधाभासयुक्त इस वर्णन द्वारा परिस्थिति के जोषक रूप पर विदाशक प्रकाश डाला है। प्रेमचन्द की भाषा में अनायास उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का समावेश हुआ है। विशेषतः प्रकरणगत अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त सूक्तियों के कारण प्रेमचन्द की भाषा शैली अत्यधिक सुन्दर एवं प्रभावशाली बन गई है। “प्रेम अपने उच्चतम स्थान पर पहुँच कर देवत्व ने मिल जाता है”^{१८}; “मनोव्यथा साँम की माँति अन्दर घुट कर अमल हो जाती है”^{१९} जैसी सूक्तियाँ उपन्यास में सर्वत्र हैं। संवाद, भाषा और शैली की दृष्टि से ‘गवन’ सफल उपन्यास है।

उपन्यासकाल के तथ्य के रूप में देशकाल पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। देशकाल संबद्ध युगीन चेतना के रूप में प्रारम्भ में विचार किया गया है। स्वदेशी, स्वराज्य, पुर्निक के हथकण्डे आदि ने सम्बद्ध समस्याओं का उपन्यास पर प्रभाव स्पष्ट है। देशकालविषयक दूसरा स्वरूप उस देश और काल से संबद्ध है, जिनमें उपन्यास जगत् की घटनाएँ घटित होती हैं। यद्यपि गवन उपन्यास की कथा का आद्यन्त काल नेहरू वर्षों का है, तथापि ‘मान वर्ष कट गए’ और ‘तीन साल गुजर गए’ कह कर उपन्यास में दस वर्षों के काल को उल्लिखित मात्र कर दिया गया है। वस्तुतः सम्पूर्ण उपन्यास केवल ६२ दिनों की कहानी है और ये दिन दो वर्ष दो मास के काल में बिखरे हुए हैं। उपन्यास का घटनास्थल स्थूलतः पूर्वार्ध में प्रयाग है और उत्तरार्ध में कलकत्ता। अन्तिम परिच्छेद में इन दो नगरों के अनिरिक्त प्रयाग के समीपस्थ अनाम स्थान पर रमानाथ आदि जाकर रहते हैं। देश और काल के चित्रण की ओर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है, क्योंकि लेखक का उद्देश्य चरित्रों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित करना रहा है।

प्रस्तुत निबन्ध के प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास

की प्रमुख समस्या वित्तीयता से सम्बद्ध है। इसी समस्या से सम्बन्धित जमींदारी व्यवस्था के अन्यायपूर्ण शोषण, पूँजीवादी वर्ग द्वारा शोषण से प्राप्त धन को पचाने के लिये दान-धर्म का आश्रय, निम्न मध्यमवर्ग को मिलने वाला अपर्याप्त वेतन, अल्प वेतन के कारण निम्न वर्गों में कर्ज लेने की प्रवृत्ति या रिश्वत लेने की मजबूरी आदि मुख्य समस्या से सम्बद्ध उपागों का प्रसंगत स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है। आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न हीनता को छिपाने के लिये प्रदत्त निप्रियता का प्रसार निम्न मध्यमवर्ग के लिए अत्यन्त ही अपायकारक सिद्ध हुआ है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से वृद्धिगत हुई वैभवलालमा ने इस प्रदर्शनप्रियता को अत्यधिक सीमा तक बढ़ा दिया है, जिसके परिणामस्वरूप गवन की घटनाएँ समाज में आम हो गई हैं। चादर देख पाँव न फैलाने के कारण रमानाथ का विपत्तिचक्र म फँसना पड़ा। लेखक ने वित्तीयता के क्षेत्र की ही अर्थशोषण से सम्बद्ध विदेशी शासन की समस्या को उपन्यास के उत्तरार्ध का विषय बनाया है। स्वदेशी और स्वराज्य की आवश्यकता शोषण से मुक्ति पाने के लिये है।

'गवन' उपन्यास में स्त्रियों से सम्बद्ध समस्याएँ भी बहुत बड़े अंग में अर्थ से सहज ही जुड़ी हुई हैं। अर्थोत्पादन की दृष्टि से परगन्ना मध्यम वर्ग की स्त्रियों का आभूषण लालमा से श्रुत होना स्वान्तर्दिव ही है। दहेज न दे सकने की विवशता से कारण रतन जैसी मुग्धा स्त्रिया का वृद्धों के पल्ले में पड़ना आश्चर्य की बात नहीं है। समुक्त परिवार के उत्तराधिकार सम्बन्धी अन्यायकारक कानून के कारण विधवा स्त्री का दुर्दशाग्रस्त बनना भी आर्थिक समस्या का ही अंग है। समाज में वैध्या समस्या भी मूलतः आर्थिक है। लेखक ने उस दृष्टि से उस ओर संकेत नहीं किया है। इसके अतिरिक्त रुढ़िगत विचारों के कारण कठिन बनी हुई वैध्याओं की समस्या का समाधानकारक उत्तर देने से लेखक ने अपने को बचा लिया है। वैध्या व्यवसाय में विरक्त होकर सन्मार्ग पर चलने के लिए दूढ़ सक्न्प जाहरा के लिए लेखक ने समाज में स्थान दिलाने के लिए कुछ नहीं किया है। वह समस्या से कभी बाट कर-जोहरा का विधवा दिखाकर निकल जाता है। मभवत जोहरा को समाज में यथोचित स्थान दिलाने में असमर्थ होकर ही उसने जोहरा का बाढ़ के पानी में बहाकर छुटकारा पा लिया है।

मुन्शी प्रेमचन्द शोषितों के लेखक हैं। समाज में शोषित वर्ग के समान घर-घर में शोषित व्यक्ति भी हैं। समाज का तथाकथित बरीयअर्धाय (Better half) उत्तरअर्धाय के अत्याचारों के कारण मुग्धा-मुगों में अभिशप्त जीवन जीने के त्रिण बाध्य है। इस अभिशप्त जीवन से मुक्ति पाने के लिए पुरुषों द्वारा संचालित स्त्री आन्दोलन की अपेक्षा स्वयं अस्मितामय स्त्रियों के द्वारा अपने पैरों पर खड़े होने के प्रयत्न बड़ी अधिक महत्व के हैं, स्थायी उपाय हैं। जात्मनिर्मलता के अभाव में प्राप्त

सुख-सुविधाएँ पुरुषों की सद्भावना और दया पर आश्रित हैं। सब प्रकार की सुविधाओं के मिलने पर भी यह स्थिति अस्मिताहीन दयनीयता की स्थिति है। किसी का साधन बन कर जीने की स्थिति है। सुखसुविधाओं पर लात मार कर अपने ही कण्ठ और श्रम पर निर्भर होने पर ही इस स्थिति से मुक्त बना जा सकता है। बिना मरे स्वर्ग कैसे पाया जा सकता है ? जालपा ने अपने क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के द्वारा यही संदेश दिया है। विभिन्न दोषों के बावजूद 'गवन' की महत्ता इसी बात में है। प्रेमचन्द के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में जालपा का महत्त्व इसी कारण है। इस दृष्टि से वह प्रेमचन्द के उपन्यास संसार की अद्वितीय नारी है। कोख के अँधेरे में कीमर, याँवन और चारुचक्र में क्रमशः पिता, पति, और पुत्र से रक्षा पाने के लिये परमुखा-पेक्षिणी बन कर मृत्यु के अंधकार में डूब जाने वाली नारी के लिए एकमात्र प्रकाश का दीपक जालपा का आत्ममर्यादा से प्रदीप्त जीवन ही है। नान्यः पन्थाः विद्यतेऽन्याय ।

टिप्पणियाँ

१. साहित्य का उद्देश्य (प्र. संस्करण) — जे० प्रेमचन्द, पृ० ९४
२. गवन, पृ० १२१
३. प्रेमचन्द (द्वि० संस्करण) — जे० श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० ४५
४. हिन्दी उपन्यास : चित्त और प्रयोग (प्र० संस्करण), पृ० ३७७
५. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० ६५
६. प्रेमचन्द और उनका युग (१८३७ ई० का संस्करण), पृ० ७३
७. गवन, पृ० २७
८. प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन, पृ० ३६
९. प्रेमचन्द : कलम का निपाही, पृ० ४४४
१०. साहित्य का उद्देश्य, पृ० ४५
११. गवन, पृ० १२४
१२. गवन, पृ० ३१५
१३. गवन, पृ० २५५
१४. गवन, पृ० २९७
१५. प्रेमचन्द के पात्र (प्रथम संस्करण), पृ० १४७
१६. गवन, पृ० २७४
१७. गवन, पृ० २७४
१८. प्रेमचन्द और उनका युग (१९६७ ई० का संस्करण), पृ० ७०
१९. गवन, पृ० १६१
२०. गवन, पृ० ३०८

२१ प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्पविधान—ले० डॉ० कमलकिशोर गोयतका,
पृष्ठ ४०७

२२ गवन्, पृ० १६१

२३ गवन्, पृ० १७२

२४ गवन्, पृ० २३४

२५ गवन्, पृ० १६७

२६ गवन्, पृ० २०५

२७ गवन्, पृ० २९०

२८ गवन्, पृ० २२

२९ प्रेमचन्द के पात्र, पृ० ३२

३० गवन्, पृ० २

३१ गवन्, पृ० ३०९

३२ गवन्, पृ० २८

चित्रलेखा : पाप के रहस्य की खोज में

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

‘ससार में पाप कुछ भी नहीं है । मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है ।’

“हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं, जो हमें करना पड़ता है ।’

“स्त्री शक्ति है । वह सृष्टि है, यदि उसे सञ्चालित करने वाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है, यदि उसे सञ्चालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है ।”

“कामनाओं की पूर्ति से सम्बन्धित पाप पुण्य विषयक समस्या को ‘चित्रलेखा’ में स्पष्ट करने का प्रयत्न श्री भगवती चरण वर्मा ने किया है ।”

पश्चिमी संसार के संपर्क के फलस्वरूप भारत में आधुनिकता का प्रसार प्रारम्भ हुआ। इस आधुनिकता की विधिष्ट प्रवृत्तियाँ ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा हैं। इन प्रवृत्तियों के कारण ही आधुनिक काल मध्यकाल से पृथक् पहचाना जाता है। ज्ञाननिष्ठा या बुद्धि प्रामाण्य की प्रवृत्ति मध्यकाल की शास्त्र प्रामाण्य की प्रवृत्ति की विरोधिनी है। शास्त्रप्रामाण्य श्रद्धा या विश्वास पर बल देता है तथा “श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्” ही नहीं कहता, अपितु “मंथयात्मा विनश्यति”^१ पर भी बल देता है। इसके विपरीत बुद्धिप्रामाण्य सात्त्विक संशय को अंधविश्वानों की त्वाड़ी में गिरने से बचने के लिए अनिवार्य समझता है। शास्त्रवादी और बुद्धिवादी दोनों ही भिन्न-भिन्न रूप में ज्ञान की महिमा को मान्य करते हुए भी कर्म के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न ढंग से विचार करते हैं। शास्त्रवादी के अनुसार ज्ञान संसार की पवित्रतम वस्तु है तथा वह कर्मवन्धनों को भस्ममान् करने का एक मात्र उपाय है। उनके विपरीत बुद्धिवादियों के अनुसार ज्ञान मनुष्य को अनन्त सम्भावनाओं से परिचित कराता है। अनन्त सम्भावनाओं के परिचय के साथ मनुष्य में अनन्त कामनाएँ जग जाती हैं। इसीलिए ऋग्वेद ने मनुष्य के लिए कहा है कि—“पुलुकामो हि मर्त्यः”^२ अर्थात् मनुष्य बहुकामनावान् है। अनन्त सम्भावनाओं और अनन्त कामनाओं के कारण मनुष्य अपूर्णता की पीड़ा से व्रन्त और व्यन्त हो उठता है। अपूर्णता की पीड़ा से स्पन्दित होकर वह परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए जुट जाता है। अपूर्णता से पूर्णता की ओर सनत गतिशील रहने के लिए किए गए संघर्ष ने ही मनुष्य को ऐतिहासिक प्राणी कहलाने का अधिकार प्रदान किया है। ऐतिहासिक प्राणी के नाते किए गये संघर्ष ने मानव-संस्कृति को जन्म दिया है।

मनुष्य की कामनाएँ अनन्त हैं। इन कामनाओं को पूर्ण करने के लिए मनुष्य को दो प्रकार की बाधाओं से संघर्ष करना पड़ता है। प्रथम प्रकार की बाधाएँ प्राकृ-

तिव है। प्राकृतिक परिस्थितियों की असुविध ओ को दूर करने के लिए मनुष्य ने सभ्यता का विकास किया है। द्वितीय प्रकार की बाधा सामाजिक है। सामाजिक बाधाओं को कम करने के लिये मनुष्य ने संस्कृति का विकास किया है। सामाजिक क्षेत्र में एक से अधिक मनुष्यों की सामान्य कामनाओं में मध्यम स्वभाविक है। आहार-निद्रा भय मैथुन आदि के पशुसामान्य घरातल से ऊपर उठ कर मध्यम को दूर करने वाली संस्कृति का विकास किया जा सकता है। संस्कृति ही पशु और मनुष्य के बीच का भेदक तत्त्व है। सांस्कृतिक सभ्यता के अभाव में सभ्यता का वैभव भीत का घाट बन कर रह जाता है। सामाजिक सम्बन्धों की समाजधारणा के अनुकूल नियन्त्रित करने के लिए नीतिनियमों का निर्धारण तर्ज के आधार पर किया जाता है। समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों और व्यक्ति समूहों द्वारा निर्धारित नीति नियम विराधी तर्कों के कारण अस्थिर न बने रहे, इसीलिए उन्हें धार्मिक विश्वास का आधार दिया जाता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य चाणक्य ने धर्म को समाज निर्मित बतलाया है। परिस्थितियों के बदलने के साथ नीति-नियमों में समय-समय पर स्मृतिकारों ने परिवर्तन किया है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण शास्त्रप्रामाण्य के मानने वाले लोग दिग्भ्रमित बन जाते हैं। “श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वच प्रमाणम्” की स्थिति में भी मुनिविशेष के शास्त्र को प्रमाण मानकर चलने की परम्परा अधश्चक्र समाज में चल पड़ती है। ज्ञान विज्ञान के प्रसार के साथ यह परम्परा सतरे में पड़ जाती है। बड़े-बड़े विचारक कर्म और अकर्म, पुण्य और पाप का निर्धारण करते समय चक्कर में पड़ जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि सज्जना को पाप-पुण्य का निर्धारण करते समय अन्तःकरण को प्रमाण मानना चाहिए, तो वह भी ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अन्तःकरण या अन्तरात्मा समाज द्वारा निर्मित होती है। आचार्य चाणक्य ने इसे भली-भाँति विनश्वर किया है।

कामनाओं की पूर्ति से सम्बन्धित पाप पुण्य विषयक समस्या को ‘चित्रलेखा’ में स्पष्ट करने का प्रयत्न श्री मणवतीचरण वर्मा ने किया है। मनुष्य जीवन में कामनाएँ अनन्त हैं। इन कामनाओं को सहज ही दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ कामनाएँ अस्तित्वरक्षा से सम्बन्धित हैं तथा कुछ सुरक्षा के बाद जीवन भोग से सम्बन्धित। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें आनन्द की साधनावस्था और ध्यानन्द की सिद्धावस्था की कामनाएँ माना है। प्रस्तुत उपन्यास में केवल आनन्द की सिद्धावस्था के काम सम्बन्धों पर ही पापपुण्य की दृष्टि में चिन्ता किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि पापपुण्य का एकमेव क्षेत्र काम सम्बन्धित ही है।

मनुष्य के जीवन में काम का स्वरूप विचित्र है। उसके सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित रही है कि उपभोग के द्वारा काम को शान्त नहीं किया जा सकता।

काम का उपभोग धी की आहुति की तरह कामाग्नि को ओर भी अधिक बढ़का देता है । इसीलिए काम के सम्बन्ध में प्राचीन काल से ही यह धारणा रही है कि जिस प्यास को बुझाया नहीं जा सकता, उसे बुझाने के प्रयत्न में जीवन को क्यों वरबाद किया जाए । क्यों न, सच्चे परलोक सुख को पाने के लिए साधना की जाए । कुमारगिरि इसी मत का समर्थक है । उसकी दृष्टि में 'वासना पाप है', क्योंकि वासना के कारण ही मनुष्य पाप करता है । "वासना की होते हुए ममत्व प्रधान रहता है ।" और ममत्व के भ्रातिकारक आवरण के रहते हुए आनन्द का पाना असम्भव है । कुमारगिरि को यह भी पता है कि "इच्छाओं का दवाना उचित नहीं", किन्तु उसकी यह धारणा है कि इच्छाओं को निर्मूल कर देने के बाद इच्छाओं के दवाने का प्रश्न ही नहीं उठता । वह वासना के स्थान पर माधना का उपासक है । उसकी दृष्टि में "जीवन की उत्कृष्टता वासना से युद्ध करने में है ।"

कुमारगिरि का वासना-विषयक विरागपरक दृष्टिकोण अस्वाभाविक है, क्योंकि यह नकारात्मक है । यदि इस विराग को ईश्वरानुराग का पर्याय भी मान लिया जाए, तो भी वासनाओं का हनन जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के प्रतिकूल है । यदि ईश्वरानुराग को ही अपनाया है, तो भी शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को उपेक्षा नहीं की जा सकती । शरीर की क्षुधा स्वाभाविक रूप से यदि शान्त न की जाए, तो वह ईश्वरानुराग में चित्त को केन्द्रित ही नहीं होने देगी । इसीलिए संत कबीर ने कहा है—“कबीर क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग । या को टुकरा डारिके भजन करौ निस्संग ।” आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को दवाना घातक है । उसके अनुसार साधना के मार्ग पर ही अग्रसर होना हो, तो मनुष्य को जनक की तरह विदेह बनना चाहिए, शृंगी ऋषि नहीं । जनक बनने पर ही वासनामय संसार के बीच रहते हुए भी वह वासनाओं से अनासक्त बना रह सकता है । कुमारगिरि ने जनक बनने की अपेक्षा शृंगी ऋषि बनना चाहा और जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विरोध करने का फल उसे भुगतना पड़ा । मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ अस्वाभाविक रीति से दबा दी जाने पर विकृत रूप में फूट कर बाहर आ जाती हैं । इसीलिए कुमारगिरि वासना को दबाकर ममत्वहीन बनना चाहते हुए भी ममत्व का बुरी तरह से शिकार हो जाता है । उसकी सारी साधना एक तरह से ममत्व की दासता बन कर रह जाती है । उसकी ममत्व के विस्मरण की बात निस्सार सिद्ध होती है, इसीलिए चित्रलेखा कहती है—“वासना के कीड़े,तुम अपने लिए जीवित हो—ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है ।”^x

महाप्रभु रत्नाकर की यह बात बिल्कुल सत्य है—“मनुष्य में ममत्व प्रधान है ।” किन्तु यह बात भी उत्तनी ही सत्य है कि ममत्व का दूसरों तक विस्तार करके

मनुष्य ने अपने को पशुस्तर से ऊपर उठाया है। ममत्व के विस्तार की क्षमता ने ही मनुष्य को 'मनुष्य' बनाया है। मनुष्य के विविध सम्बन्धों में ममत्व विस्तार का ही विशेष महत्त्व है। मनुष्य के इन विविध सम्बन्धों में कामसम्बन्ध का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है। काम भावना की स्वस्थ पूर्ति मित्रालिङ्गी महयोगी के अभाव में असम्भव है। आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है किन्तु मित्रालिङ्गी व्यक्तियों का कामसम्बन्ध कई व्यक्तियों के साथ सम्भव हाते हुए भी सामाजिक दृष्टि से अव्यावहारिक हो जाता है। इसका पहला कारण तो यह है कि किसी व्यक्ति के साथ एक साथ दो व्यक्तियों का सम्बन्ध सम्भव नहीं है। इसलिए कामसम्बन्ध के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता आ सकती है। इस प्रतिद्वन्द्विता या संघर्ष को दूर करने के लिए समाज ने विवाह-संस्था को विकसित किया है। विवाह के द्वारा स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाकर संघर्ष को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। स्त्री-पुरुष के कामसम्बन्ध की एक अन्य विशेषता यह भी है कि यह सम्बन्ध केवल दो व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं होता, अपितु इसके माध्यम से तीसरे व्यक्ति का भी जन्म हो जाता है, जिसका उत्तरदायित्व निभाने का कार्य कामसम्बन्ध की तरह क्षणिक न होकर दीर्घकालीन हो जाता है। इस दृष्टि से भी वैवाहिक सम्बन्ध की स्थिरता एवं सामाजिकता महत्त्वपूर्ण है। मृत्युञ्जय ने इसी दृष्टि से बीजगुप्त से कहा है—“विवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए हाता है। चित्रलेखा की सन्तान बीजगुप्त की सन्तान न होगी और न वह सन्तान बीजगुप्त की उत्तराधिकारी ही हो सकती है।” इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध के औचित्य पर बीजगुप्त ने कोई उत्तर न दिया। तत्कालीन समाज में प्रचलित अस्यामाविक जातिभेद या उच्चनीच के भेदभाव के विरुद्ध बीजगुप्त ने कभी विचार ही नहीं किया था। वह तो केवल इतना ही जानता था कि उसके प्रेम की अधिकारिणी स्त्री चित्रलेखा ने अतिरिक्त कोई नहीं हो सकती। चित्रलेखा में शास्त्रानुसार विवाहित न होने पर भी वह अपने और चित्रलेखा के सम्बन्ध को पति-पत्नी के सम्बन्ध के समान ही मानता था। आत्मिक सम्बन्ध के लिए एक और सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए दूसरे कामसम्बन्ध की बात वह मोच भी न सकता था। प्रेमोत्तर विवाह या विवाहोत्तर प्रेम के विवाह को छोड़ भी दिया जाए, तो भी यह निश्चित है कि प्रेम से रहित कामसम्बन्ध निरर्थक पशुता है।

चित्रलेखा ने कुमारगिरि के पास जाने के बाद भी बीजगुप्त यशोधरा से विवाह करने में सकोच करता है। उसे इस बात का विश्वास नहीं है कि वह विवाह के बाद यशोधरा से प्रेम कर सकेगा या नहीं ? तान्कालिक उद्धिम्भता के प्रभाव में यशोधरा से विवाह करके यशोधरा के जीवन की अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह का साधन मात्र बनाने की उसकी इच्छा नहीं थी। इसके अतिरिक्त यशोधरा से उसका विवाह करना इसलिए भी अनुचित था कि यशोधरा श्वेताक को चाहने

लगी थी। उसने श्वेतांक से यह स्पष्टतः कह दिया था—“मैं आर्य वीजगुप्त से प्रेम नहीं करती।” श्वेतांक भी यशोधरा से प्रेम करने लगा था। ऐसी स्थिति में वीजगुप्त का यशोधरा से विवाह करना अनुचित था। कामसम्बन्ध की पहली शर्त यह है कि सहभोक्ताओं में पारस्परिक सीहार्दपूर्ण सहमति हो और सहभोक्ता अपने सम्बन्ध के भावी सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने की क्षमता और इच्छा रखते हों। इस दृष्टि से वीजगुप्त और कुमारगिरि के कामसम्बन्धों की तुलना की जा सकती है। वीजगुप्त के कामसम्बन्ध इस प्राथमिक शर्त को सब प्रकार से पूरा करते हैं, किन्तु कुमारगिरि के कामसम्बन्ध के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। कुमारगिरि अपने काम की तृप्ति के लिए चित्रलेखा को बोखे में डालकर उसकी सहमति प्राप्त करता है। परिस्थिति के स्पष्ट होने पर चित्रलेखा कुमारगिरि से इसीलिए कहती है—“नीच और झूठे पशु ! अलग रहो। तुमने मुझे बोखा दिया।”

कामसम्बन्ध की दृष्टि से एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि असमय का विराग जीवन की भूल है। यह भूल कुमारगिरि ने की है। इसके विपरीत वीजगुप्त ने जीवन की प्रवृत्तियों का भोग सहजता के साथ किया है, इसलिए वह सहजता से उन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित पशुता को त्याग सका है। वह श्वेतांक से कहता है—“मैंने इस वैभव को काफी भोगा है—अब चित्त फिर गया है।” वीजगुप्त उन व्यक्तियों में से नहीं है, जो केवल अपने लिए जीते हैं। केवल अपने लिए जीने वालों की पशुता से वह मुक्त है। वह अपने वैभव को दान में देकर यह सिद्ध करता है कि वह उस स्थिति को भी पार कर चुका है, जिसमें कोई व्यक्ति अपने साथ दूसरों के लिए भी जीता है। वह दूसरों के लिए निजी स्वार्थ का परित्याग करके देवत्व को प्राप्त कर लेता है। वैभव का परित्याग करके अकिञ्चन बन जाने के बाद भी वह चित्रलेखा के प्रेम को मुला नहीं सका है। वह ‘प्रेम और केवल प्रेम’ के आधार पर सर्वस्व का परित्याग करके घर से निकल पड़ा है। अकिञ्चनता के प्रति उसका यह आकर्षण इतना अधिक है कि वह चित्रलेखा के अतुल्य वनवैभव को भी अपनाते से इनकार कर देता है। वीजगुप्त का यह कार्य स्वच्छन्दतावादी आदर्श से प्रेरित है। वार्मिक परम्परा में प्रशंसित अकिञ्चनता के आदर्श से अनजाने ही प्रभावित है। इस प्रकार का आदर्श जनसामान्य की पहुँच से परे है तथा वह पापपुण्य की समस्याओं के मुलझाने के लिए व्यवहार्यता के क्षेत्र से परे की वस्तु है। इसे आदर्शवाद की भावुकता ही कहा जा सकता है। डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान ने वीजगुप्त के इस विराग या पलायन को रोमांटिक बोध माना है।

महाप्रभु रत्नाम्बर ने श्वेतांक और विशालदेव को पाप का पता लगाने के लिए वीजगुप्त और कुमारगिरि के पास रखा था। इतना ही नहीं, उन्होंने पाप और पुण्य को पहचानने की कसौटी की और श्वेतांक का ध्यान भी आकृष्ट करते हुए

कहा था— 'अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होन के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो ।' अपने अनुभव के काल में स्वनामक परिस्थितिवश अपनी स्वामिनी से प्रेम कर बैठा । यदि इस अपराध मान भी लिया जाए तो उसने जिसके प्रति अपराध किया किया या उससे अपना अपराध कह कर अपने अपराध का घों दिया था । इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से अपराध की स्थिति कर्म में ही मानी जा सकती है विचार में नहीं । मनुष्य शरीर के रहने हुए शरीर जैसा कमजोरिया से मुक्त नहीं हो सकता । मानसिक दृष्टि से पूर्ण मनुष्य की कल्पना असम्भव कोटि की बात है इसलिए सामाजिकता की दृष्टि से व्यवहार के क्षेत्र की पूर्णता का ध्यान अवश्य रखा जा सकता है । वह स्वतन्त्र विचार वाला प्राणी है । अपनी विचारशीलता के बल पर वह पशुसुख में प्रवृत्तियों का समाजहित के अनुकूल नियंत्रित कर सकता है । परिस्थितिचक्र में पड़कर भी वह चक्कर न खा कर कर्तव्याकर्तव्य का विचार करके परिस्थितियों पर विजय पा सकता है । कर्तव्याकर्तव्य या पापपुण्य के विचार के बिना मनुष्य अनगढ़ वासनाओं का पशु मात्र बना रहता है । कर्तव्याकर्तव्य के आत्ममनाघन के द्वारा वह अनगढ़ वासनाओं को सुगढ़ संस्कार देता हुआ मस्तिष्क के विकास में सहायक बनता है । आत्मोपम्य की सामाजिक दृष्टि के बिना यह संशोधन या संस्कार सम्भव नहीं है । वह अपनी मृज्जनशील चेतना के द्वारा विपरीत परिस्थितियों में अपनी संस्कारशीलता बनाए रखने में सक्षम होता है । इसलिए पापपुण्य का पता लगाने के लिए अपने शिष्यों का विजय यन्त्र से निष्काश कर समाज के सम्पर्क में रखने वाले महाप्रभु रत्नाम्बर का यह वचन सत्य नहीं है कि— 'समाज में पाप कुछ भी नहीं है । मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है ।' वे आगे यह भी कहते हैं कि— 'हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हम करना पड़ता है ।' महाप्रभु के इस कथन से उनके शिष्य वहाँ तक सहमत थे, यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु हमारा सहमत होना असम्भव है । यह ठीक है कि व्यक्ति के चरित्र के कारण सामाजिक परिस्थिति में सोजे जा सकते हैं, किन्तु उसमें भी अधिक यह सत्य है कि परिस्थिति ही सब कुछ नहीं होती, बहुत कुछ मनुष्य का स्वतन्त्र कर्तृत्व भी होता है । परिस्थिति के परिवर्तन में व्यक्ति का हाथ होता है । यदि मनुष्य परिस्थितियों का ही दास होता, तो मनुष्यतर मोगयानियों के समान वह भी मस्तिष्क का विकास करने में अक्षम ही बना रहता । इससे विपरीत उसने परिस्थिति की मृण्मयता पर अपनी चिन्मयता के सहारे विजय पाकर मस्तिष्क की विकसित किया है । इस न पहचान पाता महाप्रभु रत्नाम्बर की सीमा है । खुशी आँखा से कुमारगिरि की वासनावगता का देख माला कर भी उसे 'अहित' समझना विद्यालदेव का बुद्धयुक्त है । पाप पुण्य का सम्बन्ध अगर सामाजिकता से है, तो सामाजिकता की भावना से सम्पन्न कोई

भी व्यक्ति हमारे इस मत से सहमत होगा ही ।

प्रस्तुत उपन्यास में काम मन्वन्ध विषयक जिस दृष्टिकोण वैविध्य को लेखक ने उपस्थित किया है, उसे उपस्थित करते हुए उन्होंने चित्रलेखा को माध्यम बनाया है और इसीलिए उपन्यास का नामकरण भी उन्होंने 'चित्रलेखा' किया है । चित्रलेखा के चरित्र-चित्रण के प्रसंग में हम उसे स्पष्ट करेंगे ।

उपर्युक्त कथ्य को अभिव्यक्त करने के लिए लेखक ने कथानक आदि उपकरणों का बड़ी ही सुन्दरता से उपयोग किया है । 'चित्रलेखा' का कथानक लगभग समान आकार के वाईस परिच्छेदों में विभक्त किया गया है तथा प्रारम्भ और अन्त में 'उपक्रमणिका' और 'उपसंहार' के भाग हैं । 'उपक्रमणिका' में समस्या का उपस्थापन किया गया है तथा 'उपसंहार' में समस्या का समाधान दिया गया है । उपन्यास को उपस्थित करने की शैली नीतिकथा शैली है । बड़ी ही योजनाबद्ध पद्धति के साथ बीजगुप्त और कुमारगिरि से सम्बद्ध कथानकों को क्रमशः उपस्थित किया गया है । उपन्यास में नाटकीयता का समावेश भी हुआ है । चित्रलेखा का कुमारगिरि के आश्रम में पहुँचना इसी प्रकार का है । कुमारगिरि एकांत में प्रकट रूप से ज्यों ही यह कहता है—“...नर्तकी, तुमने मुझसे पराजय स्वीकार की—यह क्यों ?” ; त्यों ही चित्रलेखा का यह कहते हुए प्रवेश होता है कि—“इसलिए कि मैं तुमसे पराजित हुई !” इसी प्रकार उपन्यास का अन्त भी रोमांटिक एवं नाटकीय है । अन्त में बीजगुप्त चित्रलेखा को चूमते हुए कहता है—“हम दोनों कितने सुखी हैं ।”

कथानक में कहीं भी अनावश्यक विस्तार नहीं है । सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार का दार्शनिक विवाद भी बड़े संक्षेप के साथ उपस्थित किया है । केवल चार-हवें परिच्छेद में हिमालय यात्रा से सम्बन्धित प्रसंग में रक्तकुंड के रहस्य की घटना का समावेश निरर्थक-सा प्रतीत होता है । इस आश्चर्यजनक घटना के निरर्थक रूप में समाविष्ट किए जाने पर हमें आश्चर्य ही होता है ।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यंत सफल है । इस उपन्यास का सबसे अधिक प्रमुख चरित्र चित्रलेखा का है और इसीलिए उसी के नाम पर उपन्यास का नामकरण भी किया गया है । चित्रलेखा के माध्यम से प्रेमविषयक विविध दृष्टिकोणों को लेखक ने उपस्थित किया है । चित्रलेखा विधवा ब्राह्मणी थी । वह अठारह वर्ष की आयु में ही विधवा हो गई थी । उसने पति के ईश्वरीय प्रेम में आत्मबलिदान के सुख का अनुभव किया था । पति की मृत्यु के बाद उसने वैधव्य के संयमपूर्ण जीवन को अपनाया, किन्तु अब ओर से विरक्त बना कर जीवन के अनुराग को केन्द्रित करने वाली सत्ता के अभाव में संयम का नियम टिक न सका । सुन्दर नवयुवक कृष्णादित्य ने उसकी तपस्या भंग कर दी । चित्रलेखा के जीवन का अनुराग कृष्णादित्य में केन्द्रित हो गया । इस वार अनुराग का रूप

आत्मबलिदान का नहीं, अपितु पारस्परिकता का था, जिसमें आत्मविस्मरण के साथ-साथ पिपासा भी थी। कृष्णादित्य के जीवन में से चने जाने के बाद उस एक नर्तकी ने आश्रय दिया और वहाँ रहते हुए वह नर्तकी बन गई।

चित्रलेखा का सौंदर्य अप्रतिम था। जो कोई उसे एक बार देख लेता था, उसके मन में उसे पुनः पुनः देखने की अमिट साथ उत्पन्न हो जाती थी। यही साथ पाटलिपुत्र के सबसे सुन्दर तथा प्रभावशाली युवक सामंत बीजगुप्त में पैदा हुई। चित्रलेखा भी बीजगुप्त को देखकर स्तब्ध रह गई, वह साक्षात् कृष्णादित्य का प्रतिरूप था। चित्रलेखा ने फिर से अपने जीवन में किसी व्यक्ति के न आने देने का निश्चय किया, किन्तु वह अधिक दिना तक बीजगुप्त की कृत्रिम रूप से उपेक्षा न कर सकी। उसके जीवन में बीजगुप्त ने प्रवेश किया। इस बार उसके और बीजगुप्त के प्रेम सम्बन्ध में पतिप्रेम का आत्मबलिदान तो था ही नहीं, कृष्णादित्य से किए गए प्रेम का आत्मविस्मरण भी अल्प मात्रा में ही था। उसने इस तीसरे सबंध में प्रेम की मादकता का अनुभव किया। मदिरा की मादकता ने इस सम्बन्ध में अल्पकालिक आत्मविस्मरण को उत्पन्न किया। उसने अनुभव किया कि आत्मविस्मरण प्रकृति से असम्भव है। उसने यह भी अनुभव किया कि प्रेम जीवन का एकमात्र आधार नहीं है। कहने का आशय यह है कि नगर की 'पवित्र नर्तकी' बीजगुप्त की हो गई। बीजगुप्त की होकर भी वह अपवित्र नहीं हुई, बंद्या नहीं बनी।

बीजगुप्त के साथ रहते हुए चित्रलेखा ने अनुभव किया कि साधना आत्मा का हनन है। उसकी दृष्टि में जीवन एक अविकल पिपासा हो गया। वह वागमता की मादकता को जीवन का प्रधान अंग समझने लगी। मादकता के आधार जीवन के दुःखद अन्त का विचार आते ही वह जीवित मृत्यु के विचार से उद्भिग्ना हो उठती थी। वह मविध्य की इस उद्भिग्नाता को वर्तमान के मदिरापात्र में डुबो देने के लिए विवश थी। वह नहीं चाहती थी कि जीवन के उन्माद का मुख समाप्त हो जाए। उसकी दृष्टि में निजी जीवन की मादकता का ही पूरक रूप बीजगुप्त का उन्माद था।

चित्रलेखा ने कभी यह साचा भी न था कि बीजगुप्त के रहते हुए कोई अन्य व्यक्ति उसके जीवन में आ सकता है, किन्तु आने वाला व्यक्ति आने की तिथि न बताकर अकस्मान् जीवन में आ ही टपका। चित्रलेखा कुमारगिरि की कूटिया में अतिथि के रूप में पहुँची और अनजाने ही उसके सौंदर्य से प्रभावित हो उठी। दूसरी ओर कुमारगिरि ने चित्रलेखा के सौंदर्य में वासना की मस्ती का अहंकार तो देखा ही, किन्तु स्त्री को अधकार समझने वाले कुमारगिरि ने यह भी देखा कि चित्रलेखा सुन्दरी होने के साथ विदुषी भी है। वह उस नर्तकी के ज्ञान से महमन न होने हुए भी प्रभावित हुए बिना न रह सका।

चित्रलेखा के हृदय में कुमारगिरि के प्रति आकर्षण की छाया का क्षीण आभास बीजगुप्त ने पा लिया था। चित्रलेखा ने बीजगुप्त को धोखा देते हुए यह कहा—“प्रियतम, कुमारगिरि योगी हैं और मूर्ख हैं।” परन्तु चित्रलेखा स्वयं को धोखा न दे सकी। चन्द्रगुप्त के दरबार में कुमारगिरि की आत्मशक्ति के चमत्कार के कारण वह पूरी तरह से कुमारगिरि की ओर आकृष्ट हो गई। इस प्रसंग में चित्रलेखा की आत्मशक्ति का भी हमें परिचय मिलता है। चाणक्य के समान ही वह भी कुमारगिरि के चमत्कार से अप्रभावित बनी रही। इतना ही नहीं उसने अपनी प्रखर मेधा से चाणक्य जैसे तर्ककर्कश व्यक्ति की रक्षा की। इसी के साथ अपने विजयमुकुट की आत्मशक्ति का दुरुपयोग करने के अपराध में दण्डस्वरूप कुमारगिरि के सिर पर रख कर अपनी उदारता से भी उसे पराजित कर दिया। वह कुमारगिरि को पाने के लिए इतनी लालायित हो उठी कि उसने झूठ ही उसके सामने वासना को तिर्नाजलि देने के लिए दीक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त की। वासना के आवेग में वह अपनी जिदगी का सबसे बड़ा झूठ कह गई। कुमारगिरि ने उसके जीवन को बुरी तरह से प्रभावित कर दिया था।

कुमारगिरि चित्रलेखा को साधना के मार्ग में दीक्षित न कर सके। चित्रलेखा को दीक्षित नहीं किया जा सकता था, क्योंकि उसका व्यक्तित्व कुमारगिरि के व्यक्तित्व से किसी भी प्रकार नीचा न था। कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होने पर चित्रलेखा को अपने मन को धोखा देने के लिए आदर्श के कवच की आवश्यकता महसूस हुई। बीजगुप्त के रहते हुए कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होने में जो अनैतिकता का दंश चित्रलेखा के मन में कसक रहा था, उसे दूर करने के लिए मृत्युञ्जय के घर में उसे बहाना मिल गया। उसने अपने मन को बहलाया कि प्रेम का सच्चा स्वरूप त्याग में ही निव्वरता है और बीजगुप्त को विवाहित देखने के लिए वह बीजगुप्त से शारीरिक सम्बन्ध मात्र तोड़ रही है, प्रेम के आत्मिक सम्बन्ध को नहीं। दूसरी ओर वह कुमारगिरि को भी धोखा देते हुए कहती है—“आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है।”

चित्रलेखा ने वासना के आवेग में पशुता से प्रेरित होकर बीजगुप्त को छोड़ तो दिया, किन्तु कुमारगिरि की कुटी में पहुँचने के बाद उसने यह अनुभव किया कि वह कुमारगिरि से प्रेम नहीं कर सकती। वह आमोद-प्रमोदमय जीवन के अति-मुग्ध से उत्तीर्ण होकर कुटी के शांत वातावरण में सात्त्विकता का मुख पाने के लिए शायद विकल हो उठी थी, किन्तु वहाँ उसने यह अनुभव किया कि वह बीजगुप्त को मुग्ध नहीं सकती। बीजगुप्त के विवाहित होने के समाचार से वह अवसन्न हो उठी। अवसाद की जड़ता में वह कुमारगिरि की वासना का झिकार बतने के बाद भी वह बीजगुप्त के सम्बन्ध में जानने के लिए व्याकुल बनी रही। बीजगुप्त के

अविवाहित रहने का समाचार पाकर वह पदचात्ताप की अग्नि में झुलस उठी। पदचात्ताप में वह जितना ही रोती, उतना ही उसे सतोष मिलता था। बीजगुप्त के अकिञ्चन होकर नगर से निकलने पर वह भी अकिञ्चन बनकर निकल पड़ी। बीजगुप्त ने भी उसे अपनाते हुए यह कहा—“प्रेम के प्राण में कोई अपराध ही नहीं होता।” चित्रलेखा और बीजगुप्त के जीवन का ‘प्रेम और केवल प्रेम’ ही आधार और ध्येय बना।

चित्रलेखा के काम सम्बन्ध शुद्ध रूप से पशुस्तर के काम सम्बन्ध नहीं हैं। उसके सम्बन्धों में वह निष्ठा है, जिस प्रेम कहा जाता है। उसकी प्रेमविषयक धारणा में भले परिवर्तन होता हुआ दीखता है, किन्तु निष्ठा का सूत्र सर्वत्र समान है। निष्ठा के आधार के विनष्ट होने पर ही उसने नवीन आधार खोजा नहीं, अपितु पाया है। उसने प्रेम किया नहीं, अपितु उसका किसी से प्रेम हो गया है। मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। उसकी सामाजिकता के सम्बन्धों में काम सम्बन्ध का महत्त्व असाधारण है और काम सम्बन्ध का व्यक्तिकेन्द्रित रूप ही प्रेम कहाता है। चित्रलेखा की दृष्टि में केवल बीजगुप्त के प्रसंग में शारीरिक सम्बन्ध के पाशवी आकर्षण के कारण वह कुछ दिनों के लिए केन्द्रच्युत हुई है, किन्तु शीघ्र ही उसे अपनी इन पशुता पर पश्चात्ताप होता है। कुमारगिरि से सम्बन्धित केन्द्रच्युति के प्रसंग में चित्रलेखा का यह सोचना गलत है कि उसका और कुमारगिरि का युगयुगांतर का सम्बन्ध है। तीन-तीन काम सम्बन्धों और प्रेम सम्बन्धों में भेद गुजर जाने के बाद भी चित्रलेखा जैसी तर्ककर्षक स्त्री का अपने और कुमारगिरि के जन्म-जन्मान्तरा में साथ रहने की बात कहना अयोग्य प्रतीत होता है।

स्त्रीपुरुष के कामसम्बन्धों को निवृत्तिवादी विचारधारा ने सदा ही हेम माना है। उसने वासना को पाप का मूल मान कर हमेशा ही उसमें बचने का प्रयत्न किया है। पुरुष प्रधान समाज ने वासना के प्रबल आकर्षण को दूर करने के लिए उतनी प्रयत्नशीलता के साथ स्त्री की निंदा की है। कुमारगिरि इसी विचारधारा का प्रतिनिधि पात्र है। वह स्त्री को ही साक्षात् अधकार, माया, मोह और वासना का रूप मान कर ज्ञान के आलोकमय ससार में स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं देना चाहता। निवृत्तिवादी पुरुष के लिए यह दृष्टिकोण स्वभाविक है, किन्तु प्रवृत्तिवादी स्त्री के लिए इस प्रकार से साधना ठीक नहीं कहा जा सकता। पुरुष अगर स्त्री को अबल मानकर विवाह के माध्यम से उसे आश्रय देने का अहंकार कर सकता है, किन्तु स्त्री का इस प्रकार से सोचना गलत ही है। चित्रलेखा कुमारगिरि से कहती है—“मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुष, मेरा क्षेत्र है वासना और तुम्हारा क्षेत्र है साधना।” यह बयान स्त्री-पुरुष के मौलिक भेद की ओर इंगित करता है, जिसे पुरुष प्रधान समाज ने विकसित किया है। इसी प्रकार यह भी कहती है—“स्त्री शक्ति है। वह

सृष्टि है, यदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है, यदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है।” इस कथन में भी पुरुष और स्त्री के संचालक और संचाल्य के भेद पर बल है। इतना ही नहीं, एक स्थान पर तो चित्रलेखा ने यह स्पष्ट कहा है—“स्त्री शासित होने के लिए बनाई गई है... पुरुष का प्रेम आधिपत्य जमाना है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथ में सौंप देना है।” चित्रलेखा की यह दृष्टि आधुनिकता की विचारधारा से मेल नहीं खाती। काम-विषयक पापपुण्य की समस्या को जिस तर्कसंगतता के साथ उपस्थित किया गया है, उससे यह विसंगत है।

चित्रलेखा के बाद उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण चरित्र बीजगुप्त का है। बीजगुप्त भोगी है, किन्तु उसका भोग व्यक्तित्व का सम्मान करना जानता है। व्यक्तिनिरपेक्ष भोग की कामुकता उसमें कोशों दूर है। वह सौंदर्य का पूजक है, किन्तु उसकी यह पूजा भी व्यक्तिनिरपेक्ष रसिकता मात्र नहीं है। उसने चित्रलेखा को अपनाया है, किन्तु उसके अपनाने में कहीं पापभावना का दंश नहीं है। इसलिए उसे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि उसका और चित्रलेखा का सम्बन्ध पतिपत्नी का सा है। उसने इस बात को मादकताजन्य उन्माद में स्वीकार नहीं किया, अपितु पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ होशहवास की स्थिति में स्वीकार किया है। उसकी दृष्टि में उसका और चित्रलेखा का प्रेम सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध है, इसलिए उन्माद की क्षणिकता से वह मुक्त है। परिणामतः वह स्पष्ट रूप से कहता है—“मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नहीं हो सकती।”

बीजगुप्त की दृष्टि में “प्रेम मनुष्य का निर्धारित लक्ष्य है।” प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वह कहता है—“जीवन में आवश्यक है एक दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना—एक दूसरे से प्रगाढ़ गहानुभूति और एक दूसरे के अस्तित्व को एक कर देना ही प्रेम है, जीवन का सर्वसुन्दर लक्ष्य है।” वह अपनी ओर से उन लक्ष्य के प्रति पूर्णतः समर्पित है। अपनी प्रेयसी के कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट होने का आभाम पाकर वह दुःखी हो जाता है। बीजगुप्त की हितकामना की दृष्टि से चित्रलेखा के त्याग को जानकर उसे अपने चित्रलेखाविषयक अविश्वाम पर ग्लानि होती है। चित्रलेखा के छोड़कर चले जाने के बाद भी केवल धारीरिक सम्बन्ध के लिए यशोधरा से विवाह करने के लिए उद्यत नहीं होता। उसकी दृष्टि में विवाह और प्रेम का गहरा सम्बन्ध है।

चित्रलेखा से वियुक्त होने के बाद वह अपनी मानसिक पीड़ा को दूर करने के लिए काशीयात्रा की योजना करता है। काशीयात्रा के प्रसंग में हमें उसके चरित्र एवं मस्तिष्क की उच्चता का और भी अधिक प्रग्नर रूप में जान होता है। काशी-यात्रा में लौटने के बाद अपने जीवन के मूलेपन को दूर करने के लिए यशोधरा से

विवाह करने का विचार करने लगता है। किन्तु उसे अपनी निर्बलता पर दुःख होता है कि वह एक स्त्री से प्रेम करके दूसरी स्त्री से विवाह करने के लिए उद्यत हो रहा है। वह यह भी साचता है कि अपनी उद्विग्नता को दूर करने के लिए यशोधरा से विवाह कर देने के बाद क्या वह उसे प्रेम कर सकेगा? इसके अतिरिक्त यशोधरा श्वेताक से प्रेम करने लगी है, इस बात को जानकर भी केवल अपने मुख की आशा पर दूसरों के सुख में बाधक बनना उसके लिये कहीं तक उचित है। इन विचारों के बाद वह यशोधरा से विवाह करने का विचार अपने मन से निकाल ही नहीं देता अपितु यशोधरा और गुरुमाई श्वेताक के विवाह के लिए अपनी सारी सम्पत्ति का दान भी कर देता है। उसकी इस चारित्रिक उच्चता को देखकर मृत्युञ्जय उससे कहते हैं—“आप मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं।” भारतवर्ष का सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य भी उसके सामने मस्तक नम्रता है।

सर्वस्व का त्याग करके अकिञ्चन रूप में नगर से निवृत्त पड़ने पर भी चित्रलेखा को वह भुला नहीं पाता। इसलिए वह चित्रलेखा की वात को टाल नहीं पाता और वह उसका आनिध्य ग्रहण करने के लिए उसके घर पर स्व जाता है। वह कुमारगिरि की वामना का साधन बन चुकी चित्रलेखा को प्रेम के वारण सहज ही अपना लेता है, क्योंकि ‘प्रेम के प्राण में कोई अपराध नहीं होता।’ प्रेम बीजगुप्त के जीवन का केन्द्रीय तत्त्व है। बीजगुप्त के चरित्र की यह उदारता हमें श्वेताक के प्रसंग में भी दिखाई देती है। वह श्वेताक के चित्रलेखाविषयक अनुचित व्यवहार को इसी चारित्रिक उदारता के कारण क्षमा ही नहीं करता, अपितु सामान्य मनुष्य के लिए स्वाभाविक समझ कर भुला देता है। उनकी यह मरलता व्यवहार के लिए ऊपर से ओढ़ी हुई नहीं, अपितु उसके शील का अंग है।

प्रस्तुत उपन्यास का तीसरा महत्वपूर्ण चरित्र कुमारगिरि है। कुमारगिरि योगी है। उसकी दृष्टि में वासना पाप होने के कारण त्याज्य है। सयम नियम से इस पाप से बचा जा सकता है, ऐसा उसका विश्वास ही नहीं, अपितु वह वामनाआ पर विजय पा लेने का दावा भी करता है। इसी दावे के अहंकार के कारण वह विशालदेव से कहता है—“मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखा दूंगा और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे।” वासना पर विजय पाने का दावा करने वाला यह योगी स्त्री को दीक्षा देने में सकोच करने लगता है। चित्रलेखा के सम्पर्क में उसका हृदय ‘साकार’ की पुकार मचाने लगता है। उसकी सारी आत्मशक्ति धरी की धरी रह जाती है। आत्मशक्ति के सहारे सयम का साक्षात्कार कराने की क्षमता प्रदर्शित करने वाला यह योगी असत्य के सहारे चित्रलेखा के शरीर को अपनी वासना का शिकार बना लेता है। असत्य का भडाफोड होने पर चित्रलेखा उससे कहती है—“नीच और झूठे पशु! वासना के कीड़े! तुम प्रेम क्या जानो? तुम अपने

लिए जीवित हो—ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है ।”

चित्रलेखा के द्वारा परिस्थितियों ने उसके अभिमान को तोड़ दिया है, किन्तु उसमें इतनी उदारता ही कहाँ है कि वह अपनी पराजय को स्वीकार कर ले और साधना के अस्वामाधिक मार्ग का परित्याग करके अपने अतिरिक्त दूसरों के लिए जीना सीख ले ।

चित्रलेखा, वीजगुप्त और कुमारगिरि के अतिरिक्त श्वेतांक और विशालदेव को भुलाया नहीं जा सकता । ये ही वे दो पात्र हैं, जो संसार में पाप का स्वरूप जानने के लिए निकल पड़े हैं । श्वेतांक यथा नाम तथा गुण पात्र है । उसका हृदय संसार की कालिमा में मुक्त अवोध बालक की श्वेतता लिये हुए है । वीजगुप्त के सेवक और गुरुभाई के नाते रहते हुए उसने चित्रलेखा के सम्पर्क में प्रथमतः अज्ञात चाह के कंपन का अनुभव किया । चित्रलेखा के आकर्षण से आविष्ट होकर उसे यहाँ तक अनुभव हुआ कि मानों उसका चित्रलेखा से पारमार्थिक सम्बन्ध है । चित्रलेखा के रीति-रिवाज की मादकता का धिक्कार वह उसके हाथ की मदिरा को अस्वीकार न कर सका । इस प्रसंग में श्वेतांक के अवोध सरल चरित्र की आँकी हमें मिलती है । वह वीजगुप्त में स्वामिनी में प्रेम करने के अपराध को सरलता से स्वीकार कर लेता है । इस स्वीकृति के बावजूद चित्रलेखा का मादक प्रभाव उस पर छाया ही रहता है । इसी के प्रभाव में अपने स्वामी वीजगुप्त में वह झूठ ही कह देता है कि चित्रलेखा दरबार के बाद चाणक्य के यहाँ आमंत्रित थी । स्वामी को धोखा देना अनुचित था, भले ही स्वामिनी ने उसे इसके लिए प्रेरित किया है । स्वामी के माध्यम से ही स्वामिनी की सत्ता टिकी हुई थी । वह नैतिकता की अपेक्षा मादकता के प्रभाव में झूठ बोलने के लिए विवश हुआ था । इस पाप का दण्ड उसमें अवश्य था और वह और अधिक पाप करने में वचन चाहता था । श्वेतांक ने यह पाप उस दया में किया है, जबकि चित्रलेखा ने उसमें स्पष्टतः यह कह रखा था कि “तुम्हारे जीवन में मेरा आना असम्भव है ।”

चित्रलेखा के बाद श्वेतांक यशोधरा के सम्पर्क में आया । यशोधरा के प्रति वह इतना आकृष्ट हुआ कि उसने यशोधरा में अपना प्रेम निवेदित कर दिया । यशोधरा के द्वारा वीजगुप्त की प्रशंसा सुनकर वह ईर्ष्यायुक्त वीजगुप्त की कमजोरियों की निंदा करने लगता है । ईर्ष्या ने उसके विवेक को डक लिया था, जिस पर यशोधरा ने हँसते हुए उसे मतर्क करने हुए कहा—“मनुष्य को पहले अपनी कमजोरियों को दूर करने प्रयत्न करना चाहिए ।” यशोधरा ने श्वेतांक के वीजगुप्त-विरोध को महानुभूतिमिश्रित प्रेम से दूर करना चाहा । विरोध के बावजूद वीजगुप्त की उदारता पर श्वेतांक का विश्वास था । इसीलिए उसने यशोधरा के विवाह का प्रस्ताव वीजगुप्त के माध्यम से मृत्युञ्जय तक पहुँचाया । वह वीजगुप्त की उदारता

के कारण ही सामत बन कर यशोधरा का जीवन माथी बन सका ।

श्वेताक के समान विशालदेव भी पाप का पता लगाने के लिए कुमारगिरि के आश्रम में रखा गया है । वह वहा प्रारम्भ में ही कुमारगिरि के वासनाविरोधी साधना का विरोध करते हुए कहता है—'वामनाओ का हनन क्या जीवन के सिद्धान्तों के प्रतिकूल नहीं है ?' चित्रलेखा के कुमारगिरि के पास आने पर वह आश्चर्यचकित होता है क्योंकि "रहस्य को वह मन्त्री-भाँति समझता था ।" उसने चित्रलेखा का स्वागत करते हुए "कुमारगिरि पर अर्धपूर्ण दृष्टि डाली । विद्यादेव के चरित्र की इस भूमिका को देख लेने पर उपसंहार भाग में उसका कुमारगिरि को 'अजित' समझ कर उमकी प्रशंसा करता समझ से परे की बात है । विशालदेव का यह बुद्धूषण लेखक द्वारा आरोपित है चरित्र की संभावनाओं के माध्यम में विकसित नहीं हुआ है ।

पापपुण्य की समस्या का उत्तर अपने चरित्रों के माध्यम में अभिव्यक्त करने वाले इन पात्रों के अतिरिक्त एक अन्य पात्र महत्वपूर्ण है । यशोधरा सामत मृत्युञ्जय की कन्या है । वह अपने सौंदर्य में चित्रलेखा के सौंदर्याभिमान को नष्ट कर देती है । उसका भोलापन उमकी हरिणी-की भी आँखों से स्पष्टतः जाँकता रहता है । वह श्वेताक से प्रेम करने लगती है तथा अन्त में देवतास्वरूप बीजगुप्त के सहयोग में अपने प्रेमी में विवाहित हो जाती है ।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त खतावर, चन्द्रगुप्त, चाणक्य आदि कुछ अन्य गौण पात्र भी हैं । इन गौण पात्रों में कुमारगिरि के शिष्य मधुपाल का क्षण भर के लिए आना और फिर सदा के लिए लपटा हा जाना विशेष रूप से खटकता है । चाणक्य के तर्कवर्कश सशक्त व्यक्तित्व की झाँकी देने में लेखक मफल है ।

देश-काल की दृष्टि से 'चित्रलेखा' उपन्यास पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है । इसका उद्देश्य मौर्य-कालीन इतिहास पर प्रकाश डालना नहीं है, अपितु यह पापपुण्य की समस्या को विविष्ट कोण से उजागर करने वाला उपन्यास है । समस्याप्रधान उपन्यास होने के कारण देशकाल को इसमें गौण रूप में ही रखा गया मित्र है । इसका देश मुख्यतः पाटलिपुत्र नगर है और पाटलिपुत्र नगर में भी बीजगुप्त एवं कुमारगिरि के निवासस्थान वर्णित हुए हैं । अन्यकाल के लिए पाटलिपुत्र में वासी की यात्रा का भी प्रसंग चित्रित हुआ है । वही-वही अपवादस्वरूप लेखक का ध्यान प्रकृति की ओर गया है । अश्व-राशि में चित्रलेखा के कुमारगिरि के यहा दीक्षित होने के लिए पहुँचते पर "मौर्य में भरा मधुमास था, कम्पन से भरा मलय था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुसकरा रही थी ।" निर्जन प्रदेश में राशि के गहरे मन्नाटे के वातावरण में योगी और नर्तकी के मिलनकाल की उद्दीपक प्रकृति का वर्णन केवल इतना ही है । इसी

प्रकार काशी प्रस्थान के समय विषमोद्दीपन के रूप में इतना ही कहा गया है—
“चतुर्दशी का चाँद पूर्व दिशा के क्षितिज पर जल रहा था और बीजगुप्त के हृदय में एक ज्वाला जल रही थी।”

‘चित्रलेखा’ उपन्यास की कहानी केवल एक वर्ष की कहानी है। यदि कथा से सम्बन्धित दिनों की गिनती ही करनी हो, तो यह कहा जा सकता है कि उपक्रमणिका और उपसंहार के दिनों को छोड़कर यह केवल डक्कीस दिनों की कहानी है। ये डक्कीस दिन वर्ष के अन्तर्गत फैले हुए हैं। विशेषतः ये दिन मधुसाम और ग्रीष्म के दिन हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त की अपेक्षा सूर्यास्त से सूर्योदय के काल को ही अधिक अपनाया गया है। केवल तीन-चार परिच्छेदों में ही रात्रि का वर्णन नहीं है। रात्रि में भी अर्धरात्रि के समय का मोह लेखक को विशेष है। संभवतः इसी मोह के कारण महाप्रभु गन्तावर को ज्वेतांक के साथ बीजगुप्त के प्रासाद पर अर्धरात्रि में पहुँचाया है। इसी प्रकार बीजगुप्त के अकिञ्चन के रूप में प्रस्थान की घटना का काल भी अर्धरात्रि है।

शैली की दृष्टि में उपन्यास की कुछ विशेषताओं की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट हो जाता है। उपन्यास के कथानक की योजना में तुलनात्मकता पर विशेष बल स्वाभाविक ही है। बीजगुप्त और कुमारगिरि की तुलना उपन्यास में सबसे अधिक है। इनके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर यशोधरा और चित्रलेखा, यशोधरा और मृत्युञ्जय, चित्रलेखा और कुमारगिरि आदि की भी तुलना की गई है। यशोधरा और चित्रलेखा की तुलना करते हुए लेखक ने कहा है—“एक शांति थी, दूसरी उन्माद।” एक अन्य स्थल पर उनकी तुलना कुमारगिरि अपने मन में करने हुए सूचित है—“चित्रलेखा की मादकता भयानक थी—उसका नृत्य उसकी मजीबता की प्रतिमूर्ति। पर साथ ही यशोधरा की शांति अथाह सिंधु की भाँति थी, जिसमें पड़ कर मनुष्य अपने को मूल जानता है।”^{११} तुलना की यह प्रवृत्ति समतोल वाक्यों की योजना में भी दिखाई देती है। मृत्युञ्जय के घर पर रात्रि भोज के प्रसंग में चित्रलेखा द्वारा अनुराग के क्षेत्र में ही बने रहने की बात कहने के बाद की परिस्थिति पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने कहा है—“वात बनी और बिगड़ गई, मृत्युञ्जय ने उसका अनुभव किया। वात बिगड़ी और बन गई। बीजगुप्त ने उसका अनुभव किया।” समतोल वाक्यों की इस योजना में विरोधवैचित्र्य का आस्वाद भी महत्त्वपूर्ण है।

‘चित्रलेखा’ उपन्यास समस्याप्रधान होने के कारण स्थान-स्थान पर विचार-गर्भ सूक्तियाँ भी दिखाई देती हैं। “जीवन एक अधिकल पिपासा है”; “विराग मृत्यु का घातक है”^{१२} आदि अनेक सूक्तियाँ उपन्यास के आदि में अन्त तक भरी पड़ी हैं। अनेक स्थानों पर शांति, विराग आदि का स्पष्टीकरण करते हुए ‘दूसरा नाम है’ शब्दावली का प्रयोग करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, जैसे—“शांति

अवर्ण्यता का दूसरा नाम है", "जिसको साधारण रूप से विराग कहा जाता है, वह केवल अनुराग के केन्द्र को बढ़ाने का दूसरा नाम है"।^{११} इत्यादि ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक मौर्ययुग से सम्बन्धित है । कथानक के इने गिने पात्र ही ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं किन्तु घटनाएँ सभी कल्पित हैं । इसके बावजूद लेखक ने संस्कृतनिष्ठ भाषा के सहारे ऐतिहासिकता का आभास पैदा करने का प्रयत्न किया है । 'देवि', 'वत्स', 'स्वामिन्' आदि सम्बोधन इसी प्रकार के हैं । 'पाटलिपुत्र' 'विश्वपति' आदि व्यक्तिवाचक नाम ऐतिहासिकता के आग्रह के कारण ही दिए गए हैं । वही कही नामकरण में अशुद्धियाँ भी हैं । विश्वपति का निवासस्थान 'कोशल प्रदेश' है । वस्तुतः कोशल नाम अधिक ठीक है । इसी प्रकार वीजगुप्त ने हिन्दूकुश पर्वत देखने का उल्लेख किया है । 'हिन्दूकुश' नाम परवर्ती काल में प्रचलित हुआ है । संस्कृतनिष्ठता के आग्रह के कारण 'सुन्दरी' 'रथारूढा' आदि विशेषण भी छुट-बते हैं । इसी प्रकार 'सोमवार' के स्थान पर 'चन्द्रवार' का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है । मुहावरे के तदभव शब्द को परिवर्तित करके उसे तत्सम रूप देना भी अनुचित है । एक स्थान पर इस प्रकार का अनौचित्य दिखाई देता है, जैसे— "बहुत सम्भव है महासामत यशोधरा का पाणि देने में इनकार कर दें ।" संस्कृत-निष्ठ भाषा के बीच में 'गात' शब्द भले ही न छटके किन्तु 'वेर वेर' का प्रयोग अच्छा नहीं लगता । इसी प्रकार संस्कृतनिष्ठ भाषाशैली में 'गौर' 'मौगात' 'वास्ते' आदि उर्दू शब्द अमग्न प्रतीत होते हैं । उर्दू के प्रभाव से काशीयात्रा के प्रसंग में 'चतुर्दशी के चाँद' का वर्णन लेखक ने किया है ।

प्रकृति वर्णन के प्रसंग उपन्यास में अत्यल्प है, किन्तु जो थोड़े-से प्रसंग हैं वे अत्यंत सुन्दर रूप में वर्णित हैं, जैसे— 'सौरभ से भरा मनुमास था कम्पन से भरा मलय था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुमकरा रही थी ।'^{१२} भाषा मौढ्य को वृद्धिगत करने में अलंकारों का भी उपयोग किया गया है । अलंकारों का अनावश्यक आग्रह वही भी नहीं दिखाई देता । सम्राट चन्द्रगुप्त के दरबार में शृंगारगृह से चित्रलेखा के प्रवेश का वर्णन देविए— "धर्म का नीरस तथा शुष्क वायुमण्डल पराग से भरे मौढ्य की मम्ती से विवर्णित हो उठा, चाँपती हुई उपा के धुधलेपन को चीरते हुए मानो प्रातःकालीन सूर्य के अरुण प्रकाश ने प्रवेश किया ।"^{१३} सामान्य के प्रसंग के बाद अर्धरात्रि में कुमारगिरि और चित्रलेखा के एकांत मिलन के अवसर पर अकस्मात् विशालदेव के आगमन के बाद की स्थिति का वर्णन देखिए— "कुमारगिरि चौक उठा । वह इस प्रकार से चित्रलेखा के पास में हट गया, जिस प्रकार वह मनुष्य चौक कर हटता है जो सर्पिणी के पास तक उसे बिना देखे हुए पहुँच जाता है और उन्नी समय जब सर्पिणी उसे डराना चाहती है, कोई दूर पर खड़ा व्यक्ति उसे सचेत कर देता है ।"^{१४} उत्प्रेक्षा और उपमा के इन उदाहरणों के अतिरिक्त

रूपक का भी एक सुन्दर प्रयोग देखिए—यद्योधरा की “हँसी की मुरीली झंकार में यौवन से पराजित वचन ने शरण ली थी ।” मानवीकरण आदि के भी सुन्दर प्रयोग हमें दिखाई देते हैं । मानवीकरण का उदाहरण इस प्रकार है—“यौवन की उम्रों में सौंदर्य किलोले कर रहा था, आर्लिंगन के पाश में वामना हँस रही थी ।”^{११} पाश में हँसने में विरोधाभास का चमत्कार भी ध्यान देने योग्य है ।

भाषा और शैली की दृष्टि से ‘चित्रलेखा’ को सफल रचना कहा जा सकता है ।

टिप्पणियाँ

१. श्रीमद्भगवद्गीता
२. ऋग्वेद, १।१७९।५
३. चित्रलेखा (ग्यारहवाँ संस्करण), पृ० २१
४. चित्रलेखा, पृ० १७६
५. वही, पृ० १८५
६. वही, पृ० १५
७. वही, पृ० १९४
८. वही, पृ० ११६
९. वही, पृ० ५३-
१०. वही, पृ० १४७
११. वही, पृ० ११०
१२. वही, पृ० १८४
१३. वही, पृ० ८२
१४. वही, पृ० १४१
१५. वही, पृ० १५१
१६. वही, पृ० ५०
१७. वही, पृ० ४२
१८. वही, पृ० ५६
१९. वही, पृ० ९

गोदान : दो समांतर संदेशों का उपन्यास

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

“प्रेमचन्द के साहित्य की कुरेदन जनकरणा की भावना है।”

“गोदान में साहित्यगत कक्षा की धारा उमटकर सागर हो गई है, परिणामत आदर्शों के किनारे का दर्शन दुर्लभ-सा हो गया है।”

“प्रेमचन्द का गोदान समसामयिक शोषणग्रस्त जन-जीवन का महाकाव्य है।”

“शोषण की व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का संदेश ही गोदान का उद्देश्य है।”

मुश्ती प्रेमचन्द ने गोदान उपन्यास में व्यक्ति विकास (मोक्ष) एवं समाज-विकास (धर्म) के अनुकूल अर्थ पुरस्कार की व्यवस्था करने का जहाँ संदेश दिया है, वहाँ काम-पुरुषार्थ-विषयक चिन्तन को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

यह उपन्यास अर्थ एवं काम से सम्बन्धित दुहरे संदेश का उपन्यास है।

गोदान

मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में 'उपन्यास-मम्राट' के रूप में सर्व-विदित हैं। उनके साहित्यिक यशोमन्दिर का कल्याण 'गोदान' है। उनकी सम्पूर्ण साहित्य-सृष्टि 'गोदान' की भूमिका है। उनका 'गोदान' एवं 'गोदान' का पूर्ववर्ती सम्पूर्ण साहित्य अपने समय के साथ अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। स्वयं प्रेमचन्द ने यह लिखा है कि—“जब तक करेट अफेयर में लगाव न रहे, किमी मजमून पर लिखने की तहरीक नहीं होती और मजमून भी मुश्किल से सूझता है।”^१ इसी कारण प्रेमचन्द का सम्पूर्ण साहित्य अपने युग का कलात्मक इतिहास कहा जा सकता है। यह इतिहास इतिहासकार की तटस्थता से नहीं लिखा गया, अपितु संवेदनशील साहित्यकार की 'कुरेदन' और 'तड़पन' के साथ लिखा गया है। साहित्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यता है कि—“लेखक जो कुछ लिखता है, अपनी कुरेदन से लिखता है।”

प्रेमचन्द के साहित्य की कुरेदन जनकल्याण की भावना है। इसी भावना के कारण उनका 'वरदान' हो या 'गोदान', सर्वत्र बहुजनहिताय बहुजनसुखाय की दृष्टि परिध्याप्त है। इस दृष्टि के अनुसार उन्होंने जहाँ एक ओर यथार्थ के सहारे समाज की करुण दशा का चित्रण किया है, वहाँ दूसरी ओर दुःखविमुक्त आदर्श समाज की जाँकी भी अपने साहित्य में उपस्थित की है। यथार्थ और आदर्श के दो किनारों के बीच उनके साहित्य की बारा प्रवाहित होनी हुई दिखाई देती है। 'गोदान' में यह साहित्यगत कल्याण की बारा उगड़कर सागर हो गई है, परिणामतः आदर्श के किनारे का दर्जन हुन्म-ना हो गया है। वस्तुतः वह कहीं ग्यो नहीं गया, अपितु यथार्थ के तट से देखने वाली की दृष्टि का अंग बन गया है। उसके 'है' में ही 'होना चाहिए' की गूँज विद्यमान है। इसीलिए गोपालकृष्ण कोल ने यह ठीक ही कहा है कि—“गोदान अपने युग का प्रतिबिम्ब भी है और आने वाले युग की प्रसवव्यथा भी।”^२

प्रेमचन्द का 'गोदान' समसामयिक घोषणप्रस्त जनजीवन का महाकाव्य है। जनजीवन के घोषण की नींव टकाधर्म पर अधिष्ठित पंजीवादी महाजन-सम्यता है। इस सम्यता के विकास का मूल सूत्र वह वणिक्बुद्धि है, जो मानवीय करुणा और सहृदयता का लोप कर देती है। इसीलिए रायसाहब का यह कहना बिल्कुल सच है

कि—“संपत्ति और सहृदयता में बँर है।” संपत्ति के चक्कर में पढ़कर मनुष्य कोरा स्वार्थी बन जाता है। वह अपनी वर्णवृद्धि के बीजाल से दूसरा का मूर्ख बनाकर धनी बन जाता है। वह यत्न के प्रसारण धनी बनने के लिए दूसरे के जलते हुए घर में हाथ सेकने के मौक की तलाश में ही रहता है। ‘सकट की चीज लेता उसके लिए पाप की चीज नहीं रहती। एक बार धनी बन जाने पर वह निग्न्यानवे के फर में इस प्रकार फँस जाता है कि उसे हुमा-मुमा को पीस कर अपना घर भरने में किसी प्रकार का सबोच नहीं रह जाता। शापित और शापक के बीच का अन्याय-पूर्ण अन्तर बढ़ता ही जाता है। कचहरी-अदालत शोषण के इस दुष्ट चक्र को राक सक्ने में असमर्थ मिट्ट हात हैं, क्योंकि ‘कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है।’ सारी न्यायव्यवस्था शापण की मशीन को तेल मिला कर निर्विघ्न रूप में चलाने का साधन मात्र बन कर रह जाती है।

शोषण की अन्याय व्यवस्था व अन्तर्गत ‘कानूनी हक़ों’ की गतिविधियाँ का रोक सक्ने में अक्षम हाकर शापित मनुष्य पहल-पहल आत्मसम्मान खा बैठता है और बाद में मनुष्यता। इसी सत्य का प्रेमचन्द ने अपनी ‘कफन’ कहानी में वस्त्र ही सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस व्यवस्था के कारण आदमी का आदमी रह सकना कठिन है, देवत्व की प्राप्ति तो कल्पना से भी बाहर की बात है। धनकेन्द्रित व्यवस्था के अन्तर्गत ‘व्यवसाय व्यवसाय है’ का रक्तशापक सिद्धान्त पनपता है, जिसके अनुसार “इंसान को कौमल इतनी ही है कि वह एक रफ़ा कमाने का साधन है।” इस व्यवस्था के कारण इन्ने गिने धनी लोग बहुमूल्य लागा के श्रम पर मोटे होते चले जाते हैं और ‘उपजीवी’ या पराश्रयी (parasites) बन कर उनके जीवन-रस को मोखते चले जाते हैं। दूसरा जो चूस कर मोटे होने वाले यह भी भूल जाते हैं कि उनका माटापा ‘आत्मा का सर्वनाश’ करने वाला पशुता का रोग है। समाज का सच्चा स्वास्थ्य और ‘सुख ता जब है कि सभी मर्ते हा।” इस मत का यह आशय कदापि नहीं है कि समाज में छोटे-बड़े का भेद नहीं रहना चाहिए। प्रेमचन्द यह स्वीकार करत हैं कि—“मसार में छोटे-बड़े हमेशा रहग और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। किन्तु इस छोटे-बड़े के भेद का आधार शापण नहीं होगा। बुद्धि, चरित्र, रूप, प्रतिभा, बल आदि की असमानता अनिवार्य है, किन्तु धन की ऐसी विषमता नहीं होनी चाहिए, जिसके कारण शोषण हा सके। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि बुद्धि आदि की विषमता व्यक्ति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है, जब कि धन की विषमता वंश-परम्परा से बढ़ती ही चली जाती है और शापण के अनर्थ का आधार बनती है। धनकेन्द्रित व्यवस्था में मेहता जैसा धन का लालसा से रहित व्यक्ति भी भावी जीवन के योग्यता के प्रत्याभूत (Guaranteed) न होने के कारण ऊँचा वेतन लेने के लिए दिवंग है।”

दूसरे के संकट से लाभ उठाने का पाठ पढ़ाने वाली शोषण केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था का विपाक्त प्रभाव इस से सहज ही जाना जा सकता है कि शोषण के कोलहल में गुजर कर पिसने का अनुभव पाने वाले व्यक्ति भी मौका पाकर दूसरों को पीसने के लिए निस्संकोच उद्यत हो जाते थे। विपाक्त व्यवस्था के कारण “गांव वालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक था कि जिसके पास दस-बीस रुपए जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी।”¹¹ इसी प्रकार गोवर जिस प्रकार की महाजनी को ‘खून चूसने’ के समान समझता है, वही गोवर स्वयं ‘एक आन्ता रुपया सूद’ की महाजनी करता है।

होरी और गोवर जैसे किमान और मजदूर ही नहीं, अपितु रायसाहब और खन्ना जैसे जमींदार और उद्योगपति भी पूँजीवादी व्यवस्था के कारण दो-रुखी जिन्दगी जीने को विवश हैं। ‘व्यवस्था का गुलाम’ या ‘परिस्थितियों का शिकार’ होने के कारण, आत्मबल का क्षय करने वाली सम्पत्ति को पैरों की बेड़ी मानते हुए भी रायसाहब ‘अपनी जहरनों से हँसान’ होकर ‘भाँटे की नोक पर’ अपने आसामियों से उनकी ‘आहों का दावानल’ भड़काने वाली बसूली करते हैं। वे यह ईमानदारी के साथ चाहते हैं कि “शोषक वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाए।”¹² इतना ही नहीं, वे होरी से यहाँ तक कहते हैं कि—“हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में डँगली डालकर निकालना हमारा धर्म ही जाता है।”¹³ इस प्रकार के प्रसंगों में रायसाहब के सम्बन्ध में मोटी बोली बोलकर शिकार करने वाले शेर की बात कही जा सकती है, किन्तु वह बहुलांश में ही सच है, सर्वांश में नहीं। वे जमींदार वर्ग का पूर्णतः प्रतिनिधित्व नहीं करते। वे विचारों की यात्रा में अपने पूर्वजों और समसामयिक जमींदारों से आगे हैं। भोग-विलास की बेहवाई उनमें नहीं थी। “उनके मन के ऊँचे संस्कारों का ध्वंस न हुआ था। पर-मोट्टा, मक्कारी, निर्लज्जता और अत्याचार को वह ताल्लुकदारी की घोभा और रोव-दाव का नाम देकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट न कर सकते थे, और यही उनकी सबसे बड़ी हार थी।”¹⁴

रायसाहब के समान ही उद्योगपति खन्ना भी ‘उंची मनोवृत्तियों’ से शून्य नहीं थे। वे भी इसी कारण स्वयं स्वीकार करते हैं कि—“मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है।”¹⁵ उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं, अपितु जनजीवन का शोषण करने वाली व्यवस्था के प्रति पाठकों के मन में घृणा पैदा करने का प्रयत्न किया है। ‘घृणा का विज्ञान’ (‘द साइंस ऑफ हेट्टेड’) लिखने वाले थोल्डोरोव के समान प्रेमचन्द की यह धारणा है कि—“दुष्टप्रवृत्तियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रचण्ड घृणा हो, उतनी ही कल्याणकारी होगी।”

प्रेमचन्द ने शोषण की विषम व्यवस्था को बनाए रखने में मदद पहुँचाने

वाले विरादरी, मर्यादा, धर्म आदि सभी तत्वों पर बेरहमी से प्रहार किया है। विरादरी का आतंक भारतीय समाज की नस-नस में समाया हुआ था। इसी आतंक के अकुश के नीचे होरी विरादरी की भाड़ में सारा अनाज डंड के रूप में झाक रहा था। किन्तु डंड के बटाने माल मारना चाहने वाले पिशाच पक्षों की लालमा से परिचित बनिया ने कहा कि— हमें नहीं रहना है विरादरी में। विरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।” किन्तु बनिया की बात सुनी नहीं गई। मोगप्रधान सामन्ती समाजव्यवस्था में स्त्री की बात मानी ही कब गई है। सामन्ती समाज-व्यवस्था के प्रभाव के कारण ही जमीन-जायदाद आदि मर्यादा की अधिष्ठान बन गई थी। मजदूरों से भी बदतर स्थिति में पहुँचने के बाद भी छोटे-छोटे किसान जमीन का मोह छोड़ नहीं पाते। होरी नौकरी और मजदूरी की अपेक्षा खेती में अधिक मर्यादा का अनुभव करता है। वह ‘पूत की रात’ के हलकू के समान मर्यादा के इस बोझ को उतार कर अपने-आप को हलका नहीं कर पाया था। इसी मर्यादा की रक्षा के लिए उसने अपनी जिन्दगी की सबसे गहरी चोट सह ली, वह लड़की बेधने की ग्लानि के अयाहू गड्ढे में जा गिरा।

घनाधिष्ठित शोषण-व्यवस्था को बरतार बनाए रखने में धर्म का हाथ सबसे अधिक रहा है। एक ओर पाप का घन पचाने के लिए धनी लोग मज्जन-पूजन और दान-धर्म करने हैं, तो दूसरी ओर शोषितों के असन्तोष को उभरने न देने के लिए यह प्रचारित किया जाता है कि—“छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आने हैं।” इसी कारण गरीब अपने मुँह की रोटी को छिनते देखकर भी चुपचाप सह लेते हैं। इस सहिष्णुता को ये देवतापन समझने लगते हैं। वे यह समझ ही नहीं पाते कि शोषण के “पजो का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।” इसीलिए ऐसे लोगो को देखकर मेहता ने कहा—“काश ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यों दुकरायें न जाते।” उनका धर्मात्मापन ही सारी दुर्गति का कारण है।

धर्म के नाम पर ही समाज में जन्मगत जाति व्यवस्था के सहारे ब्राह्मण वर्ग रोटी खाता रहा है। ‘रामनाम की खेती’ करते हुए ‘तिलक मुद्रा का जाल’ फैला कर ‘मुफ्त का माल’ उड़ाना इनका एक मात्र काम है। धर्म के शोषण की जड़ें इतनी गहरी हैं कि जमींदारी के मिट जाने के बाद भी जजमानों की जमींदारी मिट सकना आसान नहीं है। धर्म की मुफ्तखोरी का ही एक रूप सत्यास है, जिसे मेहता ने ‘मीख माँगने का सम्बुद्ध रूप’ कहा है। धर्म के नाम पर मुफ्तखोरी करने वाले ब्राह्मण के महाजन बनने पर यह अतिरिक्त लाभ है कि उसकी माहूवारी को डुबाने का साहस कोई नहीं कर पाता, क्योंकि ब्राह्मण का पैसा कैसे पच सकता है? इसके अतिरिक्त पूजा-पाठ और चौक-चूस्ते को पकड़े रहने पर क्या मजाल है कि वह भ्रष्ट

आचरण के वावजूद भ्रष्ट हो सके ! रोटियाँ ढाल बन कर हर अवर्म से उसकी रक्षा करती हैं। मातादीन और सिलिया का प्रसंग धर्म के इस रूप पर करारा व्यंग है। दातादीन जैसा निर्दय साहूकार, जिसने होरी के जीवन को भरपूर चूसा था, होरी की मृत्यु के बाद पुरोहित के नाते उसका परलोक सुधारने के बहाने गोदान के पैसे पा जाता है। परलोक बनाने के नाम पर लोक को बिगाड़ने वाले धर्म के स्वरूप को देखकर ही मेहता नास्तिक बन गये हैं। उन्हें धर्म और ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य प्रतीत होता है कि वह 'मानवजीवन की एकता' का साधन बन सके।

उपर्युक्त विवेचन से 'गोदान' के वर्जनशील उद्देश्य का परिचय मिलता है। शोषणग्रस्त समसामयिक जनजीवन का ऐसा चित्रण दुर्लभ है। वे इस चित्रण के द्वारा मानवता की भावना को जगा कर शोषणरहित नमाजवादी संस्कृति के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। गाय बन कर शोषण को सहने के लिए विवश करने वाली आस्थाओं का यह गोदान है। 'गोदान' का यह उद्देश्य उपन्यास में आदि से अंत तक परोक्ष रूप में इस प्रकार सरल और अनायास ढंग से भरा है कि वह सहज ही पाठकों के मन में पैठ जाता है।

प्रेमचन्द ने जनजीवन के शोषणग्रस्त रूप का चित्रण करने के लिये उसके विविध अंगों को 'गोदान' में स्थान दिया है। जनजीवन का प्रवाह गाँव और शहर की दो धाराओं में बहता हुआ दीखता है। इन धाराओं में ग्रामजीवन की धारा अधिक महत्वपूर्ण है। 'गोदान' में इस धारा की प्रमुखता को देखकर गोपाल कृष्ण कौल ने 'गोदान' को "भारतीय ग्रामदेवता की कल्पित आत्म-पुकार" माना है।^{११} वस्तुतः सत्य यह है कि यह गाँव और शहर, दोनों के अंचलों में रहने वाले समाज-देवता की कहानी है। यह बात दूसरी है कि इन दोनों कहानियों का अन्तःसंबन्ध यथोचित रूप में स्थापित नहीं हो सका है। उनीलिये श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने यह कहा है कि "गोदान" उपन्यास के नागरिक और ग्रामीण पात्र एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहने वाले दो परिवारों के समान हैं, जिनका एक दूसरे के जीवनक्रम से बहुत कम सम्पर्क है।^{१२} गाँव और शहर की कहानियों के यथोचित संबन्ध के अभाव के कारण श्री जैनेन्द्रकुमार को भी यह शिकायत है कि—“शहर ने आकर पुस्तक के गाँव को चमकाया नहीं है, बल्कि कहीं कुछ विखरने और ढकने का प्रयास किया है।”^{१३} इस कथन से यह व्यनित-सा होता है कि शहरी कथा की सार्थकता गाँव की विपमताग्रस्त कथा को उभारने में है, किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। शहर और गाँव, दोनों का जनजीवन विपमताग्रस्त है, इस जनजीवन की विपमता को उभारने का भार जमींदार और मिलमालिक से सम्बन्धित कथाभागों पर है। वस्तुतः शहर और गाँव के कथानकों का ऊपर से तो क्या, भीतर से भी ठीक तरह से जुड़ा

हुआ न होने का मुख्य दोष है । यदि यह मान भी लिया जाय कि शिथिलशिल्प उपन्यासों के पक्षधर थे,^{११} तो भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शहरी कथा पारसी थियटर के नाटक के समान ऊटक नाटक अधिष है नाटक कम (डॉ० वन्चन सिंह) ।^{१२} इसी कथा में पहलवानों और परियों का अखाड़ा में 'सारी दिलचस्पी रखने वाले मिर्जा खूर्द की 'बूढ़ी कबड्डी की सनक दिखाई देती है । वस्तुतः इस प्रसंग में गरीबों की मेहनत पर पनपने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का वह पहलू उजागर किया जा सकता था, जिसमें पूँजीवाद की भाँट में अपनी जवानी का भस्म कर डालने वाले मजदूर की पटेहाल विवश बुढ़ापे की जिन्दगी उभर कर सामने आ जाती । इसी शहरी कथा में मिर्जा साहब बेइयाशी की गम्भीर समस्या को नाटक भडली बनाकर उतने ही उथले ढंग से सुलझाते हुए दिखाई देने हैं ।

शहरी कथा ग्रामीण कथा के निकट आकर भी ग्रामजीवन से दूर ही रही है । धनुषयज्ञ का नाटक देखने के स्थान पर शहरी मण्डली पठान के नाटक में ही अटक कर रह गई थी । शहरियों की 'जवाँमर्दी की परीक्षा' लेने वाले इस नाटक में मालती का 'भनचलेपन का आनन्द' भी आपाततः अस्वाभाविक प्रतीत होता है । इसी प्रकार शिकारकथा का प्रसंग भी रोजमर्रा के जीवन की स्वाभाविकताओं से वंचित है । मेहता का मालती को कन्वे पर बैठाना, मिर्जा द्वारा गरीब जंगली आदमियों के साथ पीत गाते दिन बिता देना ऐसी ही बातें हैं । शहर के प्रसंगों में लम्बे-लम्बे वादविवाद भी खटकते हैं । बीमस लीग में दिय गये मेहता के भाषण की चर्चा का अनावश्यक विस्तार दस पृष्ठों में किया गया है । शहरियों से सम्बन्धित उपन्यास का लगभग ४० प्रतिशत भाग जनजीवन को सही ढंग से चित्रित करने में अधिक सफल नहीं है । यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'कलम' का मजदूर काम की तलाश में शहर की चनाचौध में भटकने वाला मजदूरों की समस्या का उस क्षमता के साथ उपस्थित नहीं कर सका है, जिस क्षमता उमने ग्रामीण किसानों की समस्या को उपस्थित किया है । यही स्थिति मध्यमवर्ग के चित्रण के सम्बन्ध में है ।

'गादान' में प्रेमचन्द की दृष्टि मुकदत कृषकवर्ग की समस्या पर रही है और उस समस्या को उन्होंने सफल अभिव्यक्ति भी दी है । इसीलिए इस उपन्यास का कृषक जीवन का महाकाव्य भी कहा जाता है । धनमत्ता के शासन के अन्तगर्त जनता का यह प्रमुख अंग विभिन्न रूपों में यशशा का शिकार बना हुआ है । किसान का तो जैसे अपना 'नरम चारा' समझ रखा है । सरकारों नीकर हुकमों के तलवे चाटने और अधीनता का धून घूसने में प्रसिद्ध हैं । फाँदेदार तो जैसे उसका दामाद है । गडासिंह को तो यह घमड़ है कि 'उसका मारा पानी भी नहीं माँगना', फिर फिर भला उसके अत्याचार के विरुद्ध बेचारा किसान न्याय कहाँ से माँग सकता है ।

इसी प्रकार सरकार के सबसे छोटे नौकर पटवारी को भी यह अहंकार होता है कि वह जमींदार या महाजन का नौकर न होकर उस सरकार बहादुर का नौकर है कि 'जिसके राज में मूरज कभी नहीं डूबता' और जो जमींदार और महाजन दोनों का मालिक है। अगर किसान उसे नजराना और दस्तूरी न दे तो उसका गाँव में रहना मुश्किल। पटवारी केवल सरकारी नौकरी ही नहीं करता, अपितु नौकरी की बदौलत महाजनी भी करने लगता है। पटवारी ऐसे ही पटवारी हैं।

सरकारी नौकरों के अतिरिक्त शोषण जमींदार का शोषण भी अव्याहत चलता ही रहता है। उसके शोषण के अमर्यादित रूप को देखकर मेहता ने उसे 'ममाज का शोष' कहा है और ओकारनाथ ने 'कानूनी ठकैत।' वह किसान से लगान ही वसूल नहीं करता, उसे ममय-समय पर शगून और वेगार के लिए भी विवश कर देता है। चाहे किसान एक-एक काँड़ी को दाँतों से पकड़ें, मगर उसका लगान वेवाक होना मुश्किल हो जाता है। अगर वेवाक हो भी जाय, तो जमींदार का कारिदा लगान की रसीद नहीं देता और बीच-बीच में साल भर किसी न किसी बहाने से कुछ न कुछ वसूल करता ही रहता। यही कारण है कि वेतन के रूप में प्रतिमास दस रुपये पाने वाले नोबेराम की साल की ऊपर की आमदनी हजार रुपये है। कारिदे से उरते रहने में ही किसान की कुण्ठ है। जल में रहकर मगर से बैर कैसे किया जा सकता है।

हुकाम और जमींदार के अतिरिक्त महाजनों का शोषण भी किसान की दुर्दशा का बहुत बड़ा कारण है। हारी की दृष्टि से ही विचार किया जाय, तो उसका जमींदार तो एक ही है; किन्तु महाजन तो 'तीन-तीन ही नहीं, अनेक हैं। उस पर दुलारी सहृदार्दन, दातादीन और मंगरू के अनिरिक्त विसनर साह और झींगुरीसिंह का भी कर्ज है। कर्ज भी ऐसा वैसा नहीं, एक आना रुपए सूद का कर्ज है। कर्ज देते समय झींगुरीसिंह तो पक्का कागज लिखाते थे, नजराना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग और स्टाम की लिखावट अलग। पच्चीस रुपए का कागज लिखो, तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे, क्योंकि वे एक साल का व्याज भी पेशगी काट लेते थे। होली की तकल में झींगुरी का रूप भर गिरधर ने जब दस रुपये का दस्तावेज लिखा कर नजराना, तहरीर, कागज, दस्तूरी और सूद के रुपये काट कर किसान के हाथ पाँच ही रुपये पकड़ाए, तो रहे सहे पाँचों रुपयों को लौटाते हुए वह किसान कहता है कि—“सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रियाकारम के लिए।”^{१००} कैसा करारा व्यंग्य है ! इसी झींगुरीसिंह के रिनियाँ कितने ही लोग थे। उनमें से शोभा भी एक है, जो यह चाहता है कि किमी तरह से झींगुरी को हँसा हो जाय, जिसके कारण

हथी रोटी भी मयस्सर नहीं है। वह निरास होकर कहता है कि—“न जाने इन महाजनो से कमी गला छूटेगा कि नहीं।” इसी प्रकार झीगुरी ने गिरधर की ऊख का सारे का सारा पैसा ले लिया चर्वने के लिए भी कुछ न छोड़ा। केवल इकट्ठी बच गई थी, जिसे उसने मुँह में छिपा लिया था। उसने अपना गम गलत करने के लिए उस इकट्ठी की ताड़ी पी, लेकिन इकट्ठी की ताड़ी से नशा क्या होगा केवल नशे के स्वांग में वह झूठमूठ झूम सकता है।

होरी झीगुरी का कर्जदार तो था ही लेकिन वह ‘काले साँप’ दातादीन का भी कर्जदार था, जिसने केवल बोजाई के लिए उसे कर्ज देकर आधी फसल का स्वामित्व पा लिया था। इतने पर भी इस वेईमान बुड़ड़े का पेट नहीं भरा। उसने चीज और भजदूरी का कुछ ऐसा ज्योरा बताया कि होरी के हाथ एक-चीयाई से थनाज न लगा। मंगरू साह ता होरी को यह धमकी देता है कि—“यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे। मैं तुम्हारे मुँह से भी बसूल कर लूँगा।” वह धमकी ही नहीं देता, अपितु होरी की ऊख का नोलाम भी करवा देता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किमानो के लिये “कर्ज वह मेहमान है जो एक बार जाकर जाने का नाम नहीं लेता।”^{११} उनकी कमाई का बड़ा भाग महाजनो का कर्ज चुकाने में ही खर्च हो जाता है। इतना ही नहीं यही एक चीज है जिस से वसूलीयत में अपने क्रेडो को दे जाते हैं। ‘गोदान’ में कर्जविषयक समस्या के विस्तार को देखकर डॉक्टर रामविलास शर्मा ने कर्ज की समस्या को ही ‘गोदान’ की केन्द्रीय समस्या मान लिया है।^{१२}

इस प्रकार स्पष्ट है कि हाकिम, जमींदार, महाजन आदि अनेक मालिकों की सूची गुलामी करते हुए बेल की तरह जुते रहने में ही किसान का जीवन समाप्त हो जाता है। गालियाँ सुनना तो उसके लिए साधारण सी बात है। वे ता जैसे कृषक जीवन का प्रसाद ही हैं। जमींदार उसे मुसक बँधबा के पिटवाता है और महाजा लात-जूतो से बात करता है। किमान विपन्नता के जाल से छुटकारा पाने के लिए जितना ही फड़फड़ाता है, उतना ही वह जकटना चला जाता है। इस गुलामी के जीवन से उसे पेंशन तमी मिलती है, जब कि यमराज का बुलावा आ जाता है। घोषकों की जिन्दगी के रास्तों को तैयार करने में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। उसे अपनी जिन्दगी में दूध भी अजन लगाने तक नहीं मिलता। इमरिए साठे पर पाठे की बात तो दूर, साठे तक पहुँचने की नीवत ही नहीं आ पाती। दवा-दारू के अमान में उसके बच्चे जाँचो के आगे देखने-देखने ही मर जाते हैं। होरी ऐसा ही किसान है। गऊ की लालसा उसके जीवन की सबसे बड़ी साव है, किन्तु वह भी पूरी नहीं हो पाती। पूरी होने की बात तो दूर, यह लालसा ही उसके लिए अभिशाप बन गई।

शोषण के इस अन्याय को दूर करने में शिक्षा भी सहायक न हो सकी। शोषकों के वच्चे लिख-पढ़कर शोषण की मशीन को अधिक कारगर रूप में चलाने लगते हैं। अन्याय के विरुद्ध न्यायव्यवस्था भी लाचार है, क्योंकि महंगा न्याय पैसे वालों के साथ है। पंचायतों की तो बात ही बेकार है, क्योंकि पंच मुख रक्तशोषक पिशाच हैं। सम्पादकों से आशा लगाना भी व्यर्थ है, क्योंकि ओंकारनाथ जैसे संपादकों को रायसाहब खरीद लेते हैं। रही प्रजातंत्र की बात, किन्तु वहाँ भी हमें यह दिखाई देता है कि 'वोट नए युग का मायाजाल' है। नोटों के सहारे वोटों को खरीदने वाले व्यापारी और जमींदार ही प्रजातंत्र के मालिक बन जाते हैं और जनता को अपनी कार का पेट्रोल समझने लगते हैं। जब तक दौलत का राज्य बदस्तूर चलता रहेगा, तब तक सभी उपाय विपवृक्ष की पत्तियाँ तोड़ने के समान निरर्थक बनकर रह जायेंगे। जब तक शोषण के इस वृक्ष की जड़ों पर कुन्हाड़े न चलेंगे, तब तक कुछ न हो सकेगा। इसके लिए रक्तशोषक भेड़ियों के आगे भेड़ें बनने से काम नहीं चलेगा। देवतापन की जड़ता को झटक कर आदमी बनना पड़ेगा। शोषण की व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का संदेश ही गोदान का उद्देश्य है।

ग्रामीण कथा में भी हमें यह दिखाई देता है कि प्रेमचन्द ने भूमिहीन कृषि-मजदूरों पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं किया है। उनके होरी ने यह कहा है कि— "मजूर बन जाय, तो किसान हो जाता है। किसान विगड़ जाय, तो मजूर हो जाता है।" सामान्यतः गाँव के भूमिहीन कृषि-मजदूरों के सम्बन्ध में इतना ही सत्य नहीं है। गाँव का कृषिमजदूर प्रायः नीच जाति का होता है, जिसके सम्बन्ध में सामान्य धारणा यह है कि "नीच जान लतियाये अच्छा।" नीच जाति के इन लोगों को जब-तब बेगारी करनी पड़ती है। इनकी बहू-बेटियों की इज्जत बहुधा ही लूटी जाती रही है। दिग्विजयसिंह जैसे जमींदार ही नीच जाति की बहू-बेटियों पर डोरे नहीं डालते, अपितु गौरी महतो जैसे लोग भी चमारिनों से फँसे रहते हैं। पटवारी का लड़का रमेशरी तो उन पर शिष्ट की तरह टूट पड़ता है। मातादीन ने तो चमारिन को अपने घर बैठा लिया था। चमारों ने अपने समय की दृष्टि से बड़े साहस के साथ मातादीन के मुँह में हड्डी का टुकड़ा डालकर भ्रष्ट कर दिया था। इतना सब होने के बावजूद यह सत्य है कि नीच जाति के मजदूरों के आर्थिक शोषण की उपेक्षा हो गई है।

मुंशी प्रेमचन्द ने 'गोदान' उपन्यास में व्यक्तिविकास (मोक्ष) एवं समाज-विकास (धर्म) के अनुकूल अर्थ पुण्यायों की व्यवस्था करने का जहाँ मंदेश दिया है, वहाँ काम-पुण्याय-विषयक चिंतन को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उपन्यास को पढ़कर यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि यह उपन्यास अर्थ एवं काम से सम्बन्धित दुहरे नदियों का उपन्यास है। काम एवं प्रेमविषयक संपूर्ण चर्चा ग्रहणी कथानक का

भाग बनकर आई है। अस्तित्वरक्षा की चिंता से सर्वथा मुक्त धनी व्यक्ति मुक्तभोग के सिद्धांत को स्वभावतः ही मानने लगते हैं, क्योंकि आवश्यकता से अधिक धन व्यक्ति को हमेशा विलासिता की ओर मोड़ता है। विलासिता में बाधक वैवाहिक बन्धनों को तोड़ने की प्रवृत्ति ऐसे व्यक्ति में पाई जाती है, क्योंकि बन्धनों को तोड़कर ही छूटे सांड की तरह दूसरों के क्षेत्रों में भुँह मारने की सुविधा मिल सकती है। मुक्तभोग का समर्थन करने वाले ऐसे व्यक्तियों में से खन्ना भी एक हैं। वे तो यहाँ तक कहने का दुःसाहस करने हैं कि—“जो रमणी से प्रेम नहीं कर सकता, उसके देश प्रेम में मुझे विश्वास नहीं।” मुक्तभोग के सिद्धांत का समर्थन मिस्टर मेहता ने भी किया है, किन्तु उनके समर्थन की नींव विलासिता में नहीं है। वे विवाह को आत्मा के विकास में बाधक मानते हुए कहते हैं कि—“विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बन्द कर देता है।” वे व्यक्ति की दृष्टि में अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ समझते हुए भी समाज की दृष्टि में विवाहित जीवन को श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी दृष्टि में विवाह वह सामाजिक समझौता है, जिसके करने के पहले व्यक्ति स्वाधीन होता है, किन्तु समझौता हो जाने के बाद उसके हाथ कट जाने हैं। उनके अनुसार व्याहृत तो आत्मसमर्पण है। आत्मसमर्पण के अभाव में प्रेम ऐयाशी मात्र होता है।

मिस्टर मेहता स्त्रियों का क्षेत्र पुरुषों से बिल्कुल अलग मानते हैं। उनका कहना है कि स्त्री अपनी कुर्बानी से अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का अध बन जाती है, किन्तु पुरुष में यह सामर्थ्य नहीं है। वह अपने को मिटायेंगा, तो मृत्यु हो जाएगा। मेहता स्त्री को इतना ऊँचा उठा हुआ (या शून्य बना हुआ) देखता चाहते हैं कि पति के मारने पर भी उसमें प्रतिहिंसा की भावना न जागे और उसकी आँखों के सामने ही पति अगर किसी दूसरी स्त्री से प्यार करे, तो भी उसमें ईर्ष्या का लवलेह न आए। स्त्री की इस गरिमा को पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में स्त्री भूलती जा रही है, इस बात का मेहता को बड़ा दुःख है। पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव में विद्या और अधिकार की बात करने वाली स्त्री से उनका कहना है कि—“आपकी विद्या और आपका अधिकार नृष्टि और पालन में है।” “नृष्टि” और “पालन” शब्दों पर चर्चे हुए वडप्पन के आवरण को हटाकर उनकी असलियत को समझा जाए, तो हमें यह दिखाई देता है कि पुरुष के लिए उत्तराधिकारी पैदा करने और उसे पाल-पोस कर बड़ा करने की बात उनमें छिपी हुई है। आज के जमाने में पशुबल के आधार पर स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता, इसलिए इस छलबल का सहारा लेने के लिए पुरुष विवश है और वह स्त्री से कहने लगा है कि उसके लिए “त्याग ही सबसे बड़ा अधिकार है।” उसके इस त्याग का अधिकार क्षेत्र घर की चारदिवारी है। वह अपने पति के आश्रय में उस

अधिकार को भोगे । मालती जैसी नए युग की देवी भी मेहता की इस बात को कोरी फिलासफी समझती है कि मुगधित स्त्री मर्द का आश्रय न चाह कर मर्द के साथ कंवा मिलाकर चलना चाहती है । स्त्री का आश्रित बने रहने के लिए उसमें श्रद्धा की आवश्यकता है । इस श्रद्धा के कारण वह पुरुष से श्रेष्ठ है, क्योंकि वह श्रद्धा, त्याग आदि का दान करके 'देवता' बनती है, पुरुष तो 'देवता' मात्र है ।^{११} नारी तुम केवल श्रद्धा हो^{१२} कहकर उसके अधिकारों को छीन लेने का कैसा सफाई-दार हंग है ! नारी को घर की चारदिवारी तक सीमित रखने में लज्जा का भी बड़ा भारी उपयोग है । प्रसाद के समान प्रेमचन्द ने स्त्री के लिए लज्जा को महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा है कि वह "स्त्री का सबसे बड़ा आकर्षण है ।"^{१३}

मुंशी प्रेमचन्द ने मेहता के माध्यम से स्त्री की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि—"स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँवरे से ।" वे इस प्रकाश से केवल घर को प्रकाशित करना चाहते हैं । घर से बाहर निकाल कर स्त्री को सामाजिक दायित्व का बोध कराने वाली उच्च शिक्षा के वे समर्थक नहीं हैं । उन्होंने मुंशी अहमदखली खाँ की इस बात का 'पूरी तरह समर्थन' किया है कि स्त्री-शिक्षा इन सीमा तक ही हो, जिससे स्त्रियाँ "दो-चार हर्फें...अपने रिश्ते-कुन्ने वालों को अपनी जरूरत के बारे में लिख पढ़ सकें, घर का रोज का खर्च लिख लें, बच्चों को मामूली किताबें पढ़ा सकें..."^{१४} प्रेमचन्द ने अपनी इसी धारणा के कारण ही संभवतः अपनी बेटी को पढ़ाया-लिखाया नहीं था ।

मेहता ने व्यक्तिविक्रम की दृष्टि से अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ माना है । उनके अनुसार विवाह आत्मविकास में बाधक है । मालती ने भी तितली से देवी बनने के बाद विवाह को 'असीम के निकट' पहुँच सकने की दृष्टि से बाधक माना है । यद्यपि वह यह भी स्वीकार करती है कि पूर्णता के लिए पारिवारिक प्रेम का महत्त्व है, किन्तु उसे अपनी आत्मा की दृढ़ता पर विश्वास नहीं है । वह यह सोचती है कि गृहस्थी की बेड़ियाँ पैरों में डालकर मम्मवतः विकास के पथ पर चल नहीं सकेगी । इसलिए वह मेहता के साथ केवल मित्र बनकर रहने का ही निर्णय करती है ।^{१५} मालती का यह निर्णय मानव की सहज प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं है । वस्तुतः उसका यह निर्णय प्रेमचन्द के अन्तर्मन में प्रभावशाली हंग से छिपी निवृत्तिवादी विचारधारा से प्रभावित है ।

अविवाहित न रह सकने की स्थिति में अगर विवाह करना ही पड़े, तो भी प्रेमचन्द महात्मा गाँधी के समान ब्रह्मचर्य पर बल देते रहे हैं । उन्होंने इसी कारण कृत्रिम संततिनिरोध को भोगलिप्सा के लिए वृद्धिकारक माना है और संततिनिरोध के लिए ब्रह्मचर्य के 'मंगलमय उपाय' पर बल दिया है ।^{१६} वैवाहिक जीवन में भी उन्होंने स्त्री के कामपावित्र्य पर अत्यधिक बल दिया है । मिर्जा खुर्द तो असमत

(सतीत्व) को 'हिन्दुस्तानी सहजीव की आत्मा' ही मानते हैं ।^१ कामपाविश्यविषयक धारणा के कारण ही उन्होंने यह कहा है कि—“पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है । नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह बुलटा हो जाती है ।”^२ इस उक्ति का बुलटा शब्द स्पष्टतः कामपाविश्य की ओर संकेत कर रहा है । इसी प्रकार भारत में कामपाविश्य व्यक्ति के 'महात्मा' बनने में देर नहीं लगती, इस बात को हर कोई जानता ही है । कामपाविश्यविषयक इस धारणा के कारण ही उन्होंने विधवाविवाह का विरोध किया है । उन्होंने 'प्रेमा' उपन्यास का 'प्रतिज्ञा' में परिवर्तन करते समय इस मत को ही पुष्ट किया है । इसीलिए डॉक्टर रघुजीरामिह को लिखे पत्र में यह मत व्यक्त किया है कि—“मैंने विधवा का विवाह करके हिन्दू नारी को आदर्श में गिरा दिया था । उस वक्त जवानी की उम्र थी और सुधार की प्रवृत्ति जोरो पर थी ।”^३

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'गोदान' की अर्थविषयक दृष्टि सामाजिकता की चेतना से अनुप्राणित है, किन्तु कामविषयक दृष्टि में सामाजिकताविरोधी निवृत्तिवादी विचारधारा की भरपूर झलक है । व्यक्तिविकास की दृष्टि से विचार करने वाले निवृत्तिवादी विचारकों ने निष्कामता की सिद्धि को अत्यन्त महत्त्व दिया है । काम की स्वस्थ पूर्ति दूसरे सहभोक्ता के बिना असम्भव है और दूसरे के सहयोग की स्थिति सामाजिकता की स्थिति है तथा वह भावी सामाजिक दायित्व की भूमिका भी है ।

अर्थ एवं कामविषय इन उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार कर लेने के बाद यह स्पष्ट है कि दोनों की चिन्तनधाराओं का मूल उत्पन्न एक नहीं है और न ही दोनों धाराएँ गंगा और यमुना की तरह किन्नी एक स्थान पर बहुयोगी रूप में मिलकर सामाजिक दृष्टि से किन्नी सगम-तीर्थ का निर्माण करती हैं । प्रायः आलोचकों ने 'गोदान' पर यह आक्षेप किया है कि इस उपन्यास में ग्रामीण एवं शहरी क्याएँ परस्पर मिलकर नीरक्षीर की तरह एकरस नहीं हो सकी हैं । ये दोनों क्याएँ नीरक्षीर की तरह मले ही एकरस न हो सकी हों, किन्तु वे खिचड़ी के भूंग-धावल या उडद-धावल की तरह अवश्य इस रूप में मिल गई हैं कि सामाजिक स्वास्थ्य के लिए वे पथ्यकर या पोष्टिक हो गई हैं । इसके विपरीत शहरी क्यानक में समाविष्ट कामविषयक चर्चा उपन्यास की मूलधारा से वृथक् बहती हुई प्रतीत होती है तथा बहुत कुछ ऊपर से चरपा की हुई लगती है । उपन्यास के अर्थ एवं कामविषयक संदेश परस्पर न मिलने वाले समांतर संदेश हैं ।

टिप्पणियाँ

२. हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग, पृ० ६३
३. गोदान (प्रथम संस्करण), पृ० ७४
४. "घनी कौन होता है, वही जो अपने कर्मल में दूसरों को वेवकूफ बना सकता है।"—गोदान, पृ० ४९४
५. गोदान, पृ० ४१२
६. विविध प्रयोग (प्रथम भाग), पृ० २६४
७. गोदान पृ० ४९४
८. वही, पृ० ६०८
९. वही, पृ० ८९
१०. वही, पृ० ८८
११. वही, पृ० १६६
१२. वही, पृ० ८६
१३. वही, पृ० १७
१४. वही, पृ० ५४९
१५. वही, पृ० ४९२
१६. वही पृ० २१२
१७. वही, पृ० ५२२
१८. वही, पृ० २७३
१९. हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग, पृ० ५६
२०. आधुनिक साहित्य, पृ० १९९
२१. प्रेमचन्द : एक कृती व्यक्तित्व, पृ० १६६
२२. "यह आवश्यक नहीं कि वे सब घटनाएँ और विचार एक ही केन्द्र पर आकर मिलें।"—कुछ विचार, पृ० ४
२३. गोदान, महादत्त-राजेन्द्र गुरु, पृ० १३३
२४. गोदान, पृ० ३६५
२५. वही, पृ० १६९
२६. प्रेमचन्द और उनका युग, पृ० १०१
२७. गोदान, पृ० ९७
२८. वही, पृ० २७०
२९. वही, पृ० ३२५
३०. वही, पृ० २६४
३१. कामायनी, लज्जा वर्मा
३२. गोदान, पृ० ३००

- ३३ विविध प्रसंग (प्रथम भाग), पृ० ५६
 ३४ गोदान, पृ० ५७६
 ३५ विविध प्रसंग (तृतीय भाग), पृ० २५१
 ३६ गोदान, पृ० ५५४
 ३७ गोदान, पृ० २४४
 ३८ प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्पविद्यान—डॉ० कमलकिशोर गीयनका,
 पृ० ५४५
-

सुनीता : बाहर के प्रति घर की पुकार

डा० चन्द्रभानु सोनवणे

,

जैने द्रुहमार कान और प्रेम के समिह्यकार हैं ।

“पटी सामाजिकता है और प्रेयसी दिव्यता है ।”

‘घर में बाहर के प्रति पुकार है, यही पुकार ‘सुनीता’ का विषय है ।”

“आदमी अपने में अपने को पूरा नहीं पाता । हमारे की अपेक्षा उसे है ही ।”

‘घरबार बसाकर तो आदमी अपने को हम्ब करता है ।”

छोट्टेसे कथानक को व्यवस्थित ढंग से उपस्थित करने के कारण डा० इन्द्रनाथ मदन ने कहा है कि ‘जैने द्रु के पास पञ्चजन खोटे होते हैं, किन्तु उनकी ‘परोक्षता’ ही उन्हें महत्त्वपूर्ण बना देती है ।”

सुनीता

जिस वर्ष उपन्यास सम्राट् मुजी प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' प्रकाशित हुआ, उसी वर्ष जैनेन्द्रकुमार का 'सुनीता' उपन्यास भी प्रकाशित हुआ। 'गोदान' ने अपनी व्यापक यथार्थवादी सामाजिक चेतना के कारण रम्यता अर्जित की तथा 'सुनीता' ने गहन अचेतन के सम्भावित यथार्थ की व्यक्तिवादी चेतना के कारण। 'गोदान' की चेतना में अर्थ और काम दोनों के लिए भरपूर स्थान है, किन्तु 'सुनीता' की चेतना अर्थ के प्रति उदासीन है तथा काम के प्रति भग्न है। जैनेन्द्रकुमार काम और प्रेम के महित्वकार है। काम और प्रेम की दृष्टि में भी 'गोदान' और 'सुनीता' की चेतना में भेद है। 'गोदान' का काम सामाजिक चेतना में नियंत्रित होने के कारण विवाह में बाध्यावान् है, किन्तु 'सुनीता' का काम विवाह को 'निवाहने योग्य संस्था' मानते हुए भी प्रेम को अधिक महत्त्व देता है। 'सुनीता' ही नहीं, अपितु जैनेन्द्र के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य को केन्द्रीय मवेदना प्रेम ही है। जैनेन्द्र की दृष्टि में 'पत्नी सामाजिकता है' और 'प्रेयसी दिव्यता है।' वे यह मानते हैं कि "प्रेम गगनविहारी है, मुक्त होकर ही बह है।" उनके अनुसार प्रेम बांधकर भी खोलता है। इसके विपरीत विवाह की बाधकता में केवल निर्वहण की बात ही रह जाती है। प्रायः दुर्घटा के पहर में रखकर ही विवाह की सुरक्षा की जाती है। ऐसी स्थिति में घर और बाहर को समस्या खड़ी हो जाती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने 'घर और बाहर' उपन्यास में बाहर के आक्रमण में घर को रक्षा का नदेश दिया है। जैनेन्द्र को घर और बाहर का विरोध मान्य नहीं है। वे कहते हैं—“असल में 'घर' और 'बाहर' में परस्पर सम्मुखता ही में देखता हूँ। उनमें कोई सिद्धान्तगत पारस्परिक विरोध देखकर नहीं चल पाना।” इसलिए वे घर और बाहर के द्वैत को मिटा देना चाहते हैं। उनके अनुसार “भीतर का बाहर के साथ नाता अनिवार्य है।” उन्हींलिए उन्होंने 'बाहर' को निरं धात्रामक के रूप में 'घर' के भीतर प्रविष्ट नहीं किया है। उनकी दृष्टि में “घर में बाहर के प्रति पुकार है।” यही पुकार 'सुनीता' का विषय है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है

कि बाहर के कारण घर की निरानन्दता बढती है ।

समाजशास्त्र के अनुसार दो सम्बन्धित व्यक्तियों का युग्मक समाज की सबसे छोटी इकाई होती है । इस प्रकार की इकाइयों में युवक और युवती के युग्मक का महत्त्व सबसे अधिक है । यह इकाई मूलनशील होने के कारण सामाजिक विकास एवं नैरन्तर्य के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है । इस इकाई की स्थिरता सामाजिक स्वास्थ्य एवं शांति के लिए आवश्यक है । इस स्थिरता की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए विवाह समस्या को विवक्षित किया गया है । स्वस्थ विवाह सम्था के कारण 'भूत का डेरा' भी 'घर' के अपनेपन के कारण स्वर्ग के समान आनन्ददायक बन जाता है । किन्तु विवाह सम्था की स्थिरता के लिए अगर पति और पत्नी के युगल में से कोई एक व्यक्ति को घर की चार दिवारी की घुटन अनुभव करे, तो विवाह सम्था घर की निरानन्दता बढाती है । बाहर के महत्त्वपूर्ण के अभाव में श्रीकांत और सुनीता का दाम्पत्य-जीवन घर में बिरा रहने के कारण जड़ता से आच्छन्न हो गया था । इसी कारण एक और श्रीकांत यह सोचने लगा था कि उसे 'निरस्तित पत्नी' के अतिरिक्त कुछ और भी चाहिए । तथा दूसरी ओर वैविध्य के प्रति जिज्ञासु सुनीता विश्ववैविध्य के लिए आतुर हो उठती है । अपना मन पति के समनिपमादि के पालन करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध उद्ध्विग्न हो उठता है । वह सोचने लगती है कि वह अपने पति को अपने ग बांधकर क्या नहीं रख पाती ।

घर की पत्र पुण्टी पर नृत्य को बदल कर दमन नृत्य का बहार लाने के लिए श्रीकांत ने दशहरे की छुटियों में दिल्ली से दूर प्रयाग के कुम भेले में जाने का कार्यक्रम बनाया । प्रयाग के कुम-भेले में चौदह वर्ष बाद उसे दूर से हरिप्रसन्न दिखाई दिया, किन्तु भीड़ के कारण भेंट न हो सकी । यह बड़ी हरिप्रसन्न है, जो यह समझता है कि—“घर बार बसा कर आदमी अपने का हार बर लेता है ।” श्रीकांत और सुनीता के दाम्पत्य जीवन के लिए हरिप्रसन्न बाहर का प्रतीक है । इस बाहर के सम्पर्क में दाम्पत्य जीवन की सतृप्तता का स्वाद प्राप्त करने का निश्चय श्रीकांत करता है । बाहर की सुन्नी दुनिया के सम्पर्क में ही उसके एक हो रहने की महत्ता का अनुभव दिया जा सकता है । इस प्रसंग में कठिनाई यह है कि माया की मरीचिका समझने वाले और जाया को जिदनी जाना करने का कारण समझने वाले हरिप्रसन्न में घर का आकर्षण किस प्रकार पैदा किया जाए । हरिप्रसन्न को घर की ओर आकृष्ट करने के लिए श्रीकांत अपनी पत्नी का उपयोग करता है । वह हरिप्रसन्न को लिखे पत्र में यह कहता है कि—“आदमी अपने में जान का पूरा नहीं पाता । दूसरे की अपेक्षा उसे है ही ।” दृष्टान्त ही नहीं, अपने दम पत्र के साथ भाती का परिचय देने हुए, अपनी पत्नी की छाती से टीक पड़े के भी राजन की तस्वीर भेजने की योजना बनाता है । वह इस तस्वीर के मध्यम में पत्र

में यह लिखता है कि—“अपनी मामी की तस्वीर देखो, और कहो, तुम्हें स्त्री से छुट्टी चाहिए ?” श्रीकांत मामी की तस्वीर के आकर्षण की भूमिका बनाने के साथ हरिप्रसन्न से घर पर आने के लिए अनुरोध करता है और लिखता है कि—“मुझसे ज्यादा अपनी मामी का अनुरोध समझो ।” अपने पति की इस योजना में सुनीता सहर्ष शामिल हो जाती है ।

श्रीकांत और सुनीता की इस घर और बाहर को परस्पर पूरक बनाने की योजना के बाद एक दिन सहज ही हरिप्रसन्न दिल्ली में ही श्रीकांत से मिलता है । श्रीकांत हरिप्रसन्न को घर लिवा लाता है और हरिप्रसन्न के घर आने और घर में कुछ काल रहने के बाद घर का सारा मौसम ही बदल जाता है । उसके कुछ काल घर में रह जाने के कारण श्रीकांत और सुनीता, दोनों कुछ भर आते हैं । श्रीकांत ने यह अनुभव किया कि इधर कुछ वर्षों से इतने सहज रूप में सुनीता से वह कभी कोई बात नहीं कह पाया है, जितने सहज रूप में हरिप्रसन्न के घर में आने के बाद वह अनायास कहने लगा है । दूसरी ओर सुनीता ने भी यह अनुभव किया कि यमनियमादि को ही सब कुछ समझने वाला उसका पति सरस हो उठा है । पिछले पाँच-छह वर्षों से जिनने कभी सिनेमा का नाम भी नहीं लिया था, वह ‘राजरानी मीरा’ को देखने के लिए सोत्साह आग्रह कर रहा है । इतना ही नहीं, स्वयं अपने में ही वह मुन्द परिवर्तन का अनुभव करने लगी है । उसने वर्षों से भूली हुई नितार के तारों को फिर से छेड़ना शुरू कर दिया है । ऐसा लगता है कि जैसे वर्षों में जो भीतर रुका पड़ा था, वह हरिप्रसन्न के सम्पर्क में आते ही नितार के मुरों में बज उठा है ।

बाहर के आनन्दोद्दीपक सम्पर्क को श्रीकांत ने यहीं तक सीमित नहीं रहने दिया । वह हरिप्रसन्न और सुनीता के देवर-मामीजान के नाते में और भी अधिक प्रसाह रंग भर स्वयं रंगारंग होता चाहता है । इसीलिए अदायत के काम में लाहीर जाते समय वह हरिप्रसन्न से जहाँ वह कहता है कि—“मेरे पीछे अपनी मामी को जरा भी काम अपनी न समझना”; वहाँ वह सुनीता से हरिप्रसन्न को पूरी तरह प्रसन्न रखने के लिए कहता है । इतना ही नहीं, वह लाहीर से अदायत का काम मनान्न होने के बाद भी जानबूझ कर जल्दी नहीं लौटता । इसीलिए वह लाहीर से भेजे पत्र में सुनीता को लिखता है कि—“अदायत का काम खत्म हुआ समझो । फिर भी मैं रहने के लिए यहाँ चार-पाँच रोज रहूँगा ।” वह अपने पत्र में वह भी लिखता है कि—“इन कुछ दिनों के लिए मेरे ख्याल को अपने से बिल्कुल दूर कर देना ।” तुम इन दिनों के लिए अपने को उसकी (हरिप्रसन्न की) इच्छा के नीचे छोड़ देना । यह नमजना कि मैं नहीं हूँ, इस भाँति निपिद्ध कर्म भी कोई नहीं रहेगा ।”

श्रीकांत की ओर से उक्तान्न जाने के बाद सुनीता हरिप्रसन्न से कहती है

कि—“हरी, मेरे प्रेम की सौगन्ध, तुम अपने को मारोगे नहीं।” वह हरिप्रसन्न के कहने पर ‘रणदेवी’ ‘मायासानी’ बनकर अपनी माया के आकर्षण से दश के युवकों के उल्लास को जगाने के लिए उद्यत हो जाती है। रात की भीठी चाँदनी में गुठली सड़ी की बजार में हरिप्रसन्न मुनीता को समूची पाने के लिए ध्याकुल हो उठता है। वह अपनी जघा के सहारे लेटी हुई मुनीता से कहता है कि— मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।” इस पर मुनीता कहती है—“इतना कब करती हूँ। मगने मत कर्म करो। मुझे ले लो।” वह इतना कहकर ही नहीं रुक जाती अपितु अपने को पूरी तरह से निर्वसन कर लेती है। उसको नग्न देखकर हरिप्रसन्न के भीतर उमड़ता हुआ लावा लज्जा के कारण जहाँ का तहाँ जम जाता है। उपन्यास के इस प्रसंग के कारण जगदीश पाण्डे ने जैनेन्द्र का चौरहरण का कथाकार कह डाला है तथा कुछ अन्य आलोचकों ने इस ‘साड़ी जम्पर उतारवाद’ की कड़ी आलोचना की है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि मुनीता की नग्नता दमिन् वासना का विस्फोट न होकर नैतिक तर्क के रूप में उपस्थित की गई है। वह निर्वसन मात्र ही नहीं दर्शाता नग्न नहीं हुई। इसके पीछे मुनीता की हरिप्रसन्न के प्रति सधन सहानुभूति विद्यमान है। इसलिए इस प्रसंग में अश्लीलता की भावना नहीं है। स्वयं जैन द्रष्टुमार का कहना है कि—‘जहाँ छत्र है, वहाँ अश्लीलता है। जहाँ हमारा सम्बन्ध सधन सहानुभूति का है, वहाँ अश्लीलता रह ही नहीं जाती। वेदना प्रधान है जहाँ वहाँ अश्लीलता हो ही नहीं।”’ इन तर्कों के बावजूद इस प्रसंग के हलके-पन से इनकार नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यह वर्णन देखिए—“मुनीता अपने शरीर पर आहिस्ता आहिस्ता फिरते हुए इस पुरुष के हाथ का स्पर्श अनुभव करने लगी। कुछ देर तो वह यूँ ही पड़ी रही, फिर आँख खोलकर मानो बूझ कर उसने कहा—‘हरि दाबू?’”

जैनेन्द्र ने नग्नता के तर्क को शायद सबल बनाने के लिए हरिप्रसन्न में लज्जा का आविर्भाव दिखाया है तथा मुनीता बाद में हरिप्रसन्न के चरणों की रज लेनी हुई प्रदर्शित की गई है। यदि तर्क देकर मुनीता ने हरिप्रसन्न को सच्ची दृष्टि प्रदान की है, तो हरिप्रसन्न को मुनीता के चरणों की रज लेनी चाहिए थी। इस प्रसंग के बाद श्रीकांत ने मुनीता को अपने आश्रित में धार्य लेना चाहा, तो ‘नववधू जैसा भाव’ मुनीता में आ गया। “श्रीकांत की लाली की विमलता को देखकर श्रीकांत के भीतर फूटता हुआ मदह एकदम अपनी ही लज्जा में गलकर खो गया।” आश्रित में अब्दुल मुनीता ने व्याज श्रीकांत के भाव से कहा “हटो हटो।” उपन्यास नववधू की इस विमल श्रीकांत के साथ सम्बन्ध हुआ है। बल्कि के मरुत के कारण श्रीकांत और मुनीता का दाम्पत्यजीवन जो अकारण ही निरानन्द सा बन गया था, वह नव-विवाहियों के दाम्पत्य के समान उन्माद और आनन्द में विलीन हो उठा है।

प्रस्तुत उपन्यास के प्रारम्भिक भाग में लेखक ने श्रीकांत और मुनीता के

दाम्पत्यजीवन की निरानन्दता के सम्बन्ध में यह कहा है कि इस निरानन्दता का कोई कारण स्पष्टतः नहीं दिखाई पड़ता । निरानन्दता का कारण भले ही स्वयं श्रीकांत को न मालूम हो, किन्तु अचेतन मन के विशेषज्ञों से वह छिपा नहीं है । मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो किसी स्त्री के प्रति तब तक आकर्षण का अनुभव नहीं कर पाते, जब तक कि उसका किसी अन्य पुरुष से लगाव न हो । संभवतः परकीया प्रेम के रसाल्लास में यह बात ही हो । इसी को मनोविज्ञान ने तृतीय आहत पक्ष की आवश्यकता के रूप में प्रतिपादित किया है । इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्रीकांत को चौदह वर्ष बाद हरिप्रसन्न की याद आई है । वह हरिप्रसन्न को प्रतिमास तीस रूपए अपने घर पर रहने के लिए देने को उद्यत है, जिससे कि स्वकीया में ही परकीया का रसाल्लास अनुभव किया जा सके । सम्भवतः विवाह को 'निवाहने योग्य सस्था' मानने के कारण यह परकीया प्रेम के मार्ग पर चलने का सपना उसमें नहीं है । इसके अतिरिक्त नैतिकता की दृष्टि से स्वकीया के सतीत्व को खंडित देखने का साहज उसके चेतन मन में नहीं है । इसीलिए श्रीकांत की लाली की विमलता का विचार वह छोड़ नहीं सका है । कहने का वाक्य यह है कि स्वकीया को सतीत्व की दृष्टि से यह स्वरूप भी परकीया बनाकर मोगने का आनन्द श्रीकांत पाना चाहता है । मनोविज्ञान की दृष्टिकोणों में यह कहा जा सकता है कि श्रीकांत उन व्यक्तियों में से है, जो तृतीय आहत पक्ष के बिना कामविषयक आकर्षण अनुभव नहीं कर पाता ।

तृतीय आहत पक्ष की आवश्यकता सम्भवतः व्यक्ति के विवृत बह्विध की तुष्टि से सम्बन्धित है । जिस प्रकार कुछ छोटे बच्चे मिठाई खाने का पूरा आनन्द तब तक नहीं उठा पाते, जब तक कि वे अन्य बच्चों को मिठाई दिखा कर बिड़ा न लें । कुछ ऐसे भी बच्चे होते हैं, जो अपने हिस्से की मिठाई खाने में उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना कि दूसरों से छीनकर मिठाई खाने में । ऐसी ही कुछ बात कामविषयक तुष्टि की दृष्टि से भी कही जा सकती है । इस प्रकार की तुष्टि में तृतीय आहत पक्ष की आवश्यकता पड़ती है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने घर और बाहर की विरोधिता का निराकरण करके उन्हें परस्परोपकारक रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न किया है । इस उद्देश्य की पूर्ति का एक पक्ष बाहर के माध्यम से घर को उल्लासमय बनाना है, तो दूसरा पक्ष घर के माध्यम से बाहर को रमणीय बनाना है । बाहर को घर की मर्यादा की ओर आकृष्ट करना है । घर से विमुख जीवन नहीं जीवन नहीं कहा जा सकता । पुनः और स्त्री अपने आप में अधूरे हैं, वे दूसरे की नापिकता में ही पूर्णता प्राप्त कर पाती हैं । "घरदार बनाकर तो आरमी अपने को लुब्ध करता है"—यह हरिप्रसन्न का दृष्टिकोण श्रीकांत की दृष्टि में अनुचित है । हरिप्रसन्न श्रान्तिकारी है और प्रायः

प्रातिवारी इसी दृष्टिकोण के कायल होते हैं। इस प्रकार के दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति में गाँठ पड़ जाती है। हरिप्रसन्न के चित्र में इसी प्रकार की गाँठ है जिसे खोलकर उसे सहज बनाने के लिए श्रीकांत ने मुनीता को उपलक्ष्य बनाया है। वह मुनीता से यह स्पष्ट कहता है कि—'तुम्हारी ही राह में मैं उसे दुनिया में लाने की सोचता हूँ।' मुनीता भी हरिप्रसन्न के प्रति स्वरूप होकर कहती है कि—'बेचारे को कोई भी नहीं मिली।' इसलिए वह अपने पति का सत्यापन करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है। श्रीकांत और मुनीता अपने इस अनौप्य को प्राप्त करने के लिए 'हरिप्रसन्न के प्रति सब कुछ' करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। मुनीता 'सोचिए निर्वासनता के नैतिक तर्क' से भी हरिप्रसन्न को दुनिया में लाने का प्रयत्न करती है। जन्म में श्रीकांत अपनी पत्नी से यह कहता है कि "गाँठ उसके (हरिप्रसन्न) भीतर से खींच निकालने में उपलक्ष्य तुम बनो।" श्रीकांत की यह बात सचाई का व्यपकाप है। मुनीता के संपर्क में रहकर हरिप्रसन्न का काम उमड़कर बाहर निकल पड़ता है और वह समझी मुनीता को पाने की माँग पेश करता है। मुनीता ने भले ही यह कहा था कि मैं इसका क्या करती हूँ, किन्तु निवसन होने के बाद भी परकीयापन का बगल उसकी नभ देह को आनृत किए हुए था। उसने अपने को सृष्टि रूप से निर्वासन नहीं किया। सहज ढंग से निर्वसन होती तो बाँधी को 'फाँट' का उल्लेख किया ही न जाता। मुनीता की निर्वसन देह को देने की चेतना उसमें नहीं थी लज्जा ने उसकी चेतना को जमा दिया था। इस लज्जा के कारण ही वह मुनीता के लिए श्रेय हो उठा है, परिणामतः हम मुनीता को हरिप्रसन्न की चरण खले हुए देखते हैं। स्पष्ट है कि हरिप्रसन्न की गाँठ खुली नहीं, अपितु पहले से भी अधिक मजबूत बन गई है। यदि वह खुल गई होती, तो उसे हम किसी जीवनमिनी से ग्रथित नहीं पाते। हाँ, इतना अवश्य सिद्ध हुआ है कि श्रीकांत ने हरिप्रसन्न के निर्वासन से मुनीता को अपने और भी अधिक निरुत्तर अनुभव दिया। अपने दाम्पत्यजीवन के सके हुए व्यवहार को फिर से गतिशील बनाने के लिए हरिप्रसन्न को सानना मान कर लिया है। परोक्षकार करने के नाम पर अपने स्वार्थ को ही सिद्ध किया है। सभी प्रकार के सम्बन्धों में 'आशिक' समर्थन के अतिरिक्त 'आशिक स्वार्थ' वाला जरा भी होता है। श्रीकांत और मुनीता के दाम्पत्यसम्बन्ध के सार्थकता को सन्दुष्ट करने में हरिप्रसन्न निमित्त मान बना है।

घर और बाहर के सम्बन्ध के व्यवहार को अभिव्यक्त करने के लिए कथाकार आशिक का लेखन में उपमाय मान लिया है, उन पर बल नहीं दिया है। कथानक आदि उपकरण उपाय के लिए पूर्णतः समर्पित हैं। उपकरण विषयक शिक्षा को जहाँ के उपमानों में अधिक महत्त्व नहीं भी नहीं दिया गया है। जीवन का मत है कि—'ज्ञान यत्न प्रत्यक्ष' नहीं है। कारीगरी को किसी तरह छोटी चीज नहीं

समझा जा सकता । लेकिन उससे कितारे बनते हैं । नदी का पानी नहीं बनता ।”^{१४}

‘मुनीता’ का कथानक यद्यपि ब्यालीस परिच्छेदों में विभक्त है, किन्तु घटनाओं के आटोप का सर्वथा अभाव है । स्वयं लेखक ने ‘प्रस्तावना’ में यह स्पष्ट कर दिया है कि “कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है ।” इसीलिए उपन्यास का कथानक कुतूहलतन्त्र के प्रति उदासीन है । घटना के बाद घटना को क्षिप्र गति में बढ़ने वाला ‘फिर क्या हुआ ?’ का कुतूहल उपन्यास में अत्यन्त गौण है । डॉक्टर नगेन्द्र का यह कहना पूर्णतः सत्य है कि—“जनेन्द्र जी के उपन्यासों में कहानी केवल निमित्त मात्र होती है ।”^{१५} यह निमित्त मात्र कहानी भी मंडूकप्लुति से कुछ कहते हुए और बहुत कुछ अनकहा रखते हुए आगे बढ़ती है । वस्तुतः उनके उपन्यासों के कथानक रूपरेखात्मक होते हैं । उनमें दोहरे-तिहरे कथानक के लिए स्थान प्रायः नहीं होता । ‘मुनीता’ का कथानक अत्यन्त सरल एवं घटनाविहीन-सा है । इस कथानक में नाटकीय विडंबना (ड्रामेटिक आयरसी) का उदाहरण भी देखा जा सकता है । उपन्यास के प्रारम्भिक भाग में “मुझे कौन कामदेव बनना है”—कहने वाला हरिप्रसन्न उपन्यास के अन्त में कामदेव ही बन-सा जाता है और वह प्रेम के नाम पर ‘काम की लाली’ से सम्पन्न मुनीता से सम्बन्ध काम की नृप्ति पाना चाहता है । छोटे-से कथानक को व्यवस्थित ढंग से व्यवस्थित करने के कारण डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान ने कहा है कि जनेन्द्र के पास ‘पकवान थोड़े’ होते हैं, किन्तु उनकी ‘परसने की कुशलता’ ही उन्हें महत्वपूर्ण बना देती है ।^{१६}

जिस प्रकार ‘मुनीता’ में इनी-गिनी दो-एक घटनाएँ हैं, उसी प्रकार पात्रों की संख्या भी अत्यल्प है । यहाँ उल्लेखनीय पात्र केवल साढ़े तीन हैं—श्रीकांत, मुनीता, हरिप्रसन्न और आधा पात्र सत्या है । इनके अतिरिक्त मुनीता के भैंसे के लोग एवं चन्द्रसेन आदि केवल मुँह दिखाने भर को उपन्यास के मंच पर आते हैं । हम यहाँ केवल साढ़े तीन पात्रों के सम्बन्ध में ही संक्षिप्त रूप से चर्चा करेंगे ।

श्रीकांत हरिप्रसन्न का वचपन का मित्र है । यद्यपि दोनों के स्वभावों में बहुत बड़ा अन्तर है, किन्तु दोनों का सौहार्द अटूट है । हरिप्रसन्न का सर्वप्रमुख गुण सार्वजनिकता या परार्थतत्परता है । इसके विपरीत श्रीकांत में सार्वजनिकता का अभाव है । हरिप्रसन्न सामाजिक कार्य के लिए अविवाहित बना रहता है तथा श्रीकांत का विवाह मुनीता से हो जाता है । विवाह हुए कुछ वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु वह अभी तक निःसंतान है । संतान की उम्मेद चिंता नहीं है, किन्तु घर के वलावरण की निष्कारण जड़ता से वह चिंतित है । इस निष्कारण जड़ता का निराकरण करने के लिए वह हरिप्रसन्न को सावक बनाता है, किन्तु वचपन के मित्र को नाचन बनाते सत्य उमका मन किसी-न-किसी रूप में संकोच का अनुभव करता है, सम्भवतः इसीलिए हरिप्रसन्न के मन की गाँठ को खोलने का वहाना उसके मन ने ढूंढ़ लिया

है। वह स्वयं एक स्थान पर यह स्वीकार करता है कि—“मैं, परमायं का कायल नहीं। मुझे तो मेरा अपना हित ही इनम दीखता है।” अपने स्वार्थ के लिए घर को बाहर के सम्पर्क में समथ वह सब कुछ को उद्यत है, क्योंकि वह स्वभाव से ही “आधा मन देना नहीं जानता। वह सुनीता को इतनी छूट दे देता है कि उसके लिए कोई कर्म निषिद्ध नहीं रह पाता। इनके बावजूद सामाजिक नीतिमस्कारों से वह सर्वथा मुक्त नहीं हो पाया है। हरिप्रसन्न के साथ सुनीता को मोटर में बैठकर रात को बाहर जाते देखकर वह उद्विग्न हो उठता है और बाद में सुनीता की क्रीड़ा की लाली में चारित्रिक विमलता का प्रमाण पाकर वह आश्चर्य हो जाता है। इस प्रकार तृतीय आहत पक्ष की अवश्यकता अनुभव करने वाला उसका अंतर्जन जहाँ सन्तुष्ट होता है, वहाँ नीतिमस्कार में युक्त उसका चेतन मन भी अनाहत बना रहता है। विवाह गस्था की सतीत्व की धारणा का निर्वाह हो जाता है।

श्रीकांत के समान ही सुनीता भी घर की जड़ता के बोझ से मुक्त होना चाहती है, इसलिए वह अपने पति की योजना में सहभागी होने के लिए सह्य उद्यत हो जाती है। उसमें वचपन से ही आचारगी में एक प्रकार का आवरण रहा है, इसीलिए वह पति के प्रति प्रियार्जित रहने हुए भी हरिप्रसन्न के साथ रात में भी जंगल में जाने में सकोच नहीं करती। उसका मन वचपन से ही ‘वैचित्र्य के प्रति जिज्ञासु और सामर्थ्य के प्रति उन्मुख’ रहा है। गृहणी सुनीता में छिपा वालिका सुनीता का रूप उमर भर सामने आया। इस प्रसंग में वह पति के प्रति पूज्य समर्पण होने के कारण पति की इच्छा को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसी प्रतिबद्धता के कारण वह हरिप्रसन्न को दुनिया में लाने के लिए निमित्त बनने के लिए निःसकोच तैयार हो जाती है। वह हरिप्रसन्न को अपने मनोमुग्धकर सगद रूप के द्वारा आकृष्ट हो नहीं करती, अपितु हरिप्रसन्न द्वारा अपनी बाहु को चूमने और अपनी कनपटी के नीचे लिए जाने पर कुछ भी नहीं कहती। इतना ही नहीं, अपने प्रेम की सौगंध देकर हरिप्रसन्न से अपने आप को न भारने के लिये कहती है। ‘मरो मज, कर्म करो’^{१४} कह कर वह समुची लिये जाने के लिये निर्वसन तर्क हो जाती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से वस्तुतः यह दाम्पत्य सम्बन्ध के स्पर्शा से सम्बन्धित है या तृतीय आहत पक्ष की आवश्यकता की पूर्ति करने वाली घटना है। स्पष्टतः सुनीता और श्रीकांत ‘घर’ के परस्पर पूरक अर्थात् है।

प्रस्तुत उपन्यास में हरिप्रसन्न बाहर का प्रतीक है। वह ‘परार्थनतर’ होने के कारण विवाह की व्यक्तित्व के स्वच्छन्द विकास में बाधक समझता है। इसलिए सुनीता का यह कहना कि ‘बेघारे को कोई भी नहीं मिली’—संगत नहीं है। वस्तुतः उसने घर बसाने का प्रयत्न ही नहीं किया है। वह सुनीता से इसीलिए कहता है कि—“मेरे साथ ब्याह वह करे, जो मुझे छोड़कर किसी दिन भी चलने की हिम्मत ले,

क्योंकि कौन कौन जानता है कि मैं उसे किसी दिन छोड़ कर नहीं चला पड़ सकता ।” वह आज और कल के बीच तने-दबे गृहस्थजीवन में जानबूझ कर बचा रहा है । यद्यपि गृहस्थ जीवन से बचे रहने का उसका तर्क सामाजिक दृष्टि से प्रेरित है, किन्तु गृहस्थजीवन के अभाव में काम की सहज प्रवृत्ति की अनुवृत्ति के कारण कुंठा का आ जाना स्वाभाविक है । कृष्णार्जुन व्यक्ति हिंसा के मार्ग पर अगर मुड़ जाय, तो उसे स्वाभाविक ही समझना चाहिए । हरिप्रसन्न भी केवल अहिंसक मत्वाग्रही ही नहीं बना रहा, किन्तु हिंसक क्रान्ति के मार्ग पर भी वह मुड़ गया है । यह बात दूसरी है कि उपन्यास में उसका क्रान्तिकारी रूप बिल्कुल उभर नहीं सका है । ‘मायारानी’ के आकर्षण के कारण वह क्रान्ति के मार्ग को समझ बनाने में ही जुट गया है, अतः सदैव प्रायः क्रान्ति का उल्लाह पा पाह्य नहीं है । उसका मुनीता को ‘रगदश्री’ बनाने का आदर्श उसका रतिदेवी बनाने में ही पर्यवसित हो कर रह गया ।

हरिप्रसन्न के मन में कामकुंठा कहीं गहरे में विद्यमान थी, परिणामतः क्रान्तिकारिता का आवरण हटने में कोई कठिनाई नहीं हुई । देवरामाभीषन के स्वरूप पर विचार करने-करते मुनीता की विवाह पर पड़ी शपथपाहट को मुनते ही उसके मन में मलबगी मच जाती है । वह बोली की पुस्तक में लिखे ‘मुनीता’ को ‘श्रीमती मुनीता देवी’ कर देता है । इतना ही नहीं, वह मुनीता की तस्वीर को भी सुधारता है । मुनीता के नाम और तस्वीर में दिये गये ये परिवर्तन उनके परिवर्तमान मन के बहिरंग सूचक हैं । इसके साथ ही ‘मुझे कौन कामदेव बनना है’ कहने वाला हरिप्रसन्न बाद में बिना किसी के अनुरोध के अपनी दाढ़ी-मुँछ साफ करा देता है । वह उतना आगे बढ़ जाता है कि मुनीता की कलाई को पकड़ कर अपने पास बिठा लेता है । उनके भीतर कुछ काला-काला फन-सा घुमड़ने लगता है । उनी घुमड़ने के प्रभाव में वह रात के एकान्त में झँपकीगित नग्न पुष्प का चित्र गीचता है, जिसे दिवाने के लिए प्रातः जब वह गड़बड़ में मुनीता के पान पहुँचा, तो सजःस्तता मुनीता को देय कर स्तिमित नमित रह जाता है । इसके बाद मुनीता के बाहु को रात के एकान्त में चूम लेता है तथा उनके हाथ की कनपटी के नीचे लेकर छेद रहता है । वह मन ही मन मुनीता की जाँघ का तकिया पाने की कामना में डूब जाता है तथा अन्त में मानों उनी कामना की पूर्ति के लिए रसीले नदय की योजना बनाता है । मुनीता के प्रति उसका सम्पूर्ण व्यवहार उसे मसूची पाने की अभिलाषा से प्रेरित है । किन्तु इस सम्पूर्ण व्यवहार को लज्जा ने चरमसीमा पर पहुँचते ही एकाएक रोक दिया है । हरिप्रसन्न की कृष्ण कम होने के ग्यान पर बढ़ी ही होगी, यह निश्चित है ।

उत्सुक तीन पात्रों के अनिश्चित मत्वा का स्थान भी उपन्यास में है । उपन्यास में मत्वा का प्रवेग दूरून आदि के बहाने हरिप्रसन्न को ‘घर’ में रोक लेने के लिए

हुआ है। सुनीता ने इसीलिए हरिप्रसन्न से कहा है कि—'मैं समझती हूँ कि वह (मया) मृजन भी कर सकती है।'^{११} इस वाक्य ने जो सम्भावनाएँ सूचित की थी वे पूर्ण नहीं हो सकी हैं। सया हरिप्रसन्न को अपने अनुकूल नहीं कर सकी, इसके विपरीत हरिप्रसन्न और सुनीता के सम्बन्ध को देखकर वह हरिप्रसन्न की विशेषिणी ही बन जाती है, किन्तु जीजी को बचाने के प्रयत्न में इस सम्बन्ध की वास्तविकता नहीं बनती। सया के प्रसंग में उसके ब्राह्मिकारी स्वयं चन्द्रसेन से परिचित होने की भी जानकारी मिलती है, किन्तु यह सम्भावनापूर्ण जानकारी भी बचती ही रह जाती है।

'सुनीता' का देशकाल क्षैतिजिक नहीं लक्ष्यार्थक है। देशकालगत विस्तार की अपेक्षा मानसिक संसार की गहराई ही उपन्यास में है। इसीलिए जेनेद्र के उपन्यासों में प्राकृतिक वर्णनों का अभाव सा होता है। 'सुनीता' के सरल संदेश के प्रसंग में प्रतीति का वर्णन थोड़ा-सा दीप्त पड़ता है। वयार में गुलाबी सदी का अनुभव, चाँद की चाँदनी का भीठापन आदि ने रात के एकांत को सादर बना दिया है। इस प्रकार के प्रकृतिवर्णन के प्रसंग उपन्यास में अपवादात्मक रूप में ही पाठक का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं।

जेनेद्र के उपन्यासों की भाषा-तैली विमिश्रित होती है। उसकी पहली विशेषता निजीयता है। जेनेन्द्र ने हिन्दी को दार्शनिक चिन्तन के अनुकूल बनाने में विशेष योग दिया है। ऊपर से सरल-सी प्रतीत होने वाली भाषा में चक्रता सत्य रूप से समाविष्ट रहती है। इसीलिए प्रभाकर भाषवे ने लिखा है कि—“जेनेद्र ऐसी सुलझन हैं, जो पेटों से भी अधिक गूढ़ हो। वे इनसे सरल हैं कि उनकी सरलता भी बच लगे।”^{१२} चिन्तनेतर प्रसंगों में भी भाषागत सरल चक्रता दिखाई देती है, जैसे—“प्रसातना अशक्त हुई।”

जेनेन्द्र की भाषा का एक प्रमुख गुण समाहार शक्ति है। वे शब्दों के अर्थों में अपनी यात कह देते हैं। सरल छोटे वाक्यों में व्यञ्जना भरने में कुशल हैं। जेनेन्द्र का विश्वास है कि—“भाषा कह कर इतना नहीं कहती, जितना अनकहा छोड़कर जाती है।” उनकी मान्यता है कि—“भाषा गुंथी होती है, सभी वह वह पाती है।” यही कारण है कि जेनेन्द्र की भाषा में रित्तना भरपूर होती है। कम शब्दों में अधिक कहने की प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में सूक्तियाँ भरपूर पाई जाती हैं। “रक्तना सदा भीत है, जीवन नाम चलने का है”, “दूरी ही निकटता को सत्य बनाती है”—जैसे सूक्तिमात्र्य उनके उपन्यासों में जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं।

जेनेन्द्र की भाषा-शैली में अलंकारों का आग्रहपूर्वक प्रयोग नहीं हुआ है। प्रायः अलंकार अनावस्य ही आ गए हैं। ‘गर्व यही सर्व हाता’ जैसे शब्दालंकार के प्रयोग लगभग अपवाद रूप में ही हैं। अर्थालंकारों के प्रयोग में भी प्रायः अनावस्यता

दिखाई देती है । दृष्टांत का एक उदाहरण देखिए—“हरिप्रसन्न अपना मन धामे था, जैसे कि बड़हास घोंटे को कोई जोर से लगाम खींच कर धामे हो ।” एक सर्वथा नई उपमा का रूप देखिये—“वह अर्धविराम के चिह्न की भाँति वहाँ बैठा था ।”

रघुप्रेम जैनेन्द्र की भाषा प्रायः बोलचाल की भाषा है, किन्तु बीच-बीच में चावल के कंकर के समान कठिन शब्द जहाँ-तहाँ बिखरे दिखाई देते हैं । दोलचाल की भाषा के आग्रह के कारण गिरगित्त, गल, बयार, बिथा, आदि मधुर लक्ष्मण शब्दों का प्रयोग एक ओर और हुआ है, तो दूसरी ओर कृपानुजीवी, उत्कृष्ट, जगद-वाल आदि शब्द भी दीर्घ पड़ते हैं । उर्दू के सरल शब्दों के साथ ‘मौकूफ’ तरद्दुत आदि अव्यक्त शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं । इसी प्रकार अंग्रेजी के ‘मिण्टम’ आदि शब्द ही नहीं, अपितु एकाग्र स्थल पर रोमन लिपि में Who passed is little so much the less passed जैसे पूर्ण वाक्य भी प्रयुक्त हुआ है । भाषागत इन दोषों के कारण डॉक्टर नगेन्द्र ने यह ठीक ही कहा है—“अभिव्यक्ति के दो अंग हैं—उक्ति और भाषा । उक्ति कला है और भाषा शास्त्र है । जैनेन्द्र जी उक्ति के माहिर हैं । बल्लूता पर ऐसा अविकार कदाचित् ही किसी गद्य लेखक का हो—गायद निराला का है । परन्तु भाषावाला जा जैनेन्द्र जी का कच्चा है ।”^१

जैनेन्द्र की भाषा का कच्चापन स्थान-स्थान पर प्रकट हुआ है । ‘तुम देश-देश में भटका किये हों’; ‘वहस में जीता किये हों’; ‘बहुत कुछ है, जो होना माँगता है, आदि ढग के अटपटे वाक्य उनकी भाषा में पाए जाते हैं । ‘निष्पुत्रा’ में निरर्थक संस्कृत भाषा का लिंगविवान है, तो ‘अपने पराजय’ में लिंगविभयविषयक दोष है । ‘ईतिष्ठ होकर’ ‘आयत्त करो’ जैसे हिन्दी की प्रकृति के अननुकूल प्रयोग भी किए गए हैं । ‘पढ़ हूँ खूब मुझे अभी चाहेंगे’ का प्रयोग चित्तरीय है । ‘निर्वन्धा’ जैसे समान खटकते हैं । ‘आवें’ आदि प्रयोग भी न हों, तो अच्छा है । भाषागत इन दोषों के बावजूद जैनेन्द्र की अभिव्यक्तिसमता अद्वितीय है, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

टिप्पणियाँ

१. कल्याणी, पृ०
२. साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ११६
३. कल्याणी, पृ०
४. मुनीता, पृ० १७
५. वही, पृ० १६०
६. वही, पृ० ६०
७. वही, पृ० १०
८. वही, पृ० १४०

- ९ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास—डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ० २३
 - १०, सुनीता, पृ० १८९
 - ११ वही, पृ० १४
 - १२ वही, पृ० १९०
 - १३ वही, पृ० १३३
 - १४ साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ३२२
 - १५ आस्था के चरण, पृ० ६२१
 - १६ आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० २३
 - १७ सुनीता, पृ० १४
 - १८ वही, पृ० १८४
 - १९ वही, पृ० ६२
 - २० साहित्य का श्रेय और प्रेय (प्रस्तावना), पृ० १२
 - २१ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृ० १११
-

कल्याणी : एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

“द्वन्द्व के माने हैं दो के बीच का अनिर्वाह । यह दो के, अथवा अनेक के, बीच एकता का अभाव ही हमारी समस्या है ।”

—‘कल्याणी’

“आदमी के भीतर की व्यथा ही सच है । उसे संजोने रहना चाहिए ! वह व्यथा ही शक्ति है ।”

—‘कल्याणी’

“कल्याणी का यह जीवन-चरित्र सही है । उनके व्यक्तित्व को चारों ओर से लेकर विश्लेषण द्वारा पुनर्निर्माण करने की मेरी इच्छा नहीं है । यह तो वस कहानी है जिसमें संवेदन हुआ तो मैंने मर पाया । सहानुभूति से आगे मुझे क्या चाहिये ? पात्र यदि चाहिये तो उसी को टिकाने के लिए । चरित्र लिखने की मेरी ताव नहीं । वस कुछ याद की वानें कहता हूँ कि कहीं हमारा चित्त छू जाय और रस का स्रोत खुल आये ।”

—‘कल्याणी’

“सब मिलाकर मन यह मानता है कि यह मानवात्मा (कल्याणी) विकास-पथ पर है ।”

—‘कल्याणी’

५ कल्याणी

उपन्यास का इतिहास पाठक की दृष्टि से मानव-व्यक्तित्व के निकट से निकटतर पहुँचने का इतिहास है। इसी बात में उसका 'उपन्यासत्व' निहित है। हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल में देवकीनन्दन खत्री ने मनोरंजन के उद्देश्य को सामने रखकर कुतूहलवृत्ति को तृप्त करने वाले उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में अद्भुतरम्य रहस्यमय कल्पना-संसार का चमत्कार है। देवकीनन्दन खत्री के बाद मुंशी प्रेमचन्द ने उपन्यास के लिए मनोरंजन मात्र के उद्देश्य को अपर्याप्त मानकर उपयोगितावादी दृष्टि को अनिवार्य माना। उन्होंने साहित्य को दीनक के समान मार्गदर्शक मानकर सामाजिक जीवन पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। गांधीवादी आदर्शभावना पर बल देने के बावजूद उनके उपन्यासों की आचारमूँमि यथार्थवादी है। इसीलिए उनके उपन्यासों में मानवचरित्र के यथार्थ चित्र भरपूर रूप से भरे पड़े हैं। उपन्यास साहित्य में मानव की प्रतिष्ठा का श्रेय उन्हीं को है। चरित्रप्रधान होते हुए भी प्रेमचन्द के उपन्यास कथानक की सरसता में यत्किञ्चित् भी पीछे नहीं हैं। इसी कारण डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने उन्हें कवासीन्दर्य का विशेषज्ञ कहा है।¹

मुंशी प्रेमचन्द ने अपने सामाजिक उपन्यासों में मानव की प्रतिष्ठा तो अवश्य की, किन्तु मानवचरित्र के मूल स्रोतों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं की व्यापकता है किन्तु व्यक्तित्व की गहराइयों का गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं है। इसलिए उनके उपन्यास गांधीवाद के बहिर्मुखी व्यवहारपक्ष को जितना उपस्थित करने में सफल हैं, उतना उसके अन्तर्मुखी अध्यात्मपक्ष को प्रकाशित करने में नहीं। इस पक्ष को उजागर करने का श्रेय जैनेन्द्रकुमार को है। वे हिन्दी के प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं की दृष्टि से विचार करने पर जैनेन्द्र को गेस्टाल्टवादी कहा जा सकता है। यह सम्पूर्णतावादी विचारधारा भारतीय अद्वैतवाद के समान जीवन की अखंडता को सत्य मानकर खंडता या अपूर्णता को मिथ्या मानती है। जीवन की पूर्णता अनन्तमय है तथा अपूर्णता दुःखदायक। गांधीवाद के अनुसार पूर्णता की प्राप्ति का साधन

प्रेम या अहिंसा है। गांधीवाद की अहिंस विषयक धारणा जैनधर्म के समान आत्म-पीडन की समर्थक है। आत्मपीडन-सिद्धांत को ही जैनेंद्र ने ब्रह्मचर्य भी कहा है और इस ब्रह्मचर्य के विरोधी अहचर्य (आत्मरति) का खण्डन किया है। अहिंसा-नूतल आत्मपीडन का सर्वोत्तम साधन कामदमन ही हो सकता है क्योंकि कामवृत्ति ही जीवन की प्रबलतम प्रवृत्ति है। जैनेंद्र के अनुसार 'प्रमम कामना नहीं हो सकती, उसमें इतनी अपूर्णता ही नहीं हो सकती।' जैनेंद्र के इस विश्वास के विपरीत आधुनिक मनोविज्ञान प्रेम की घनिष्टता के लिए ईर्ष्या सम्बन्ध की महत्ता का प्रतिपादन करता है। वह दमनशील नैतिकता का विरोधी है। पुरुषप्रधान समाज में परम्परागत विवाहस्थिति की दमनशील नैतिकता का शिकार स्त्रियों को ही प्रायः बनना पड़ा है। इस पारम्परिक नैतिक दृष्टि के कारण ही मनु ने न स्त्री स्वातन्त्र्य महति का पतवा दे दिया है। स्वातन्त्र्य के छिन जाने के बावजूद स्त्रियाँ जवाब होती रही और जवानी के सानो में रग भरती रही। अपने रगीन सानो में भावाघिष्ट बनकर वे दुनिशा की दृष्टि से कुपण पर पाँव बढ़ाती रही हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर बिहारी ने कहा है कि—'किन्तु न अवगुण जग करत नैं बँ चढ़ती वार।' रगीन सपनों के आवेश में अवगुण करने वाली चढ़ती उमर को दवाने के लिए किये गये प्रयत्ना के कारण स्त्री के दमित व्यक्तित्व ने अनदृष्ट पहिली का रूप ग्रहण कर लिया। परिणामतः समाज में 'स्त्रियश्चरित्रं देवो न जानाति, कुतो मनुष्य' की उक्ति प्रचलित हो गई। प्रस्तुत उपन्यास में पहिली बने हुए कल्याणी के व्यक्तित्व को बूझने का प्रयत्न लेखक ने किया है। मेरे सामने 'कल्याणी' उपन्यास का चौथा संस्करण है, जिसके आवरण-पृष्ठ पर वक्षदर्शक (स्टेथस्कोप) का चित्र है। हम यह देखना है कि लेखक ने उपन्यासहृपी वक्षदर्शक द्वारा डॉक्टर कल्याणी असरानी की हृदय की घड़कना का सुन कर जो निदान उपस्थित किया है, वह कहाँ तक तर्कसंगत है? यद्यपि लेखक के दृष्टिकोण के अनुसार 'तर्क सच्चाई को नहीं लपेट पाता।' तथापि सत्य के निवृत्त तक पहुँचने के लिए हमारे पास तर्क के अनिरिक्त कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है। यह ठीक है कि तात्त्विक के 'प्रश्न में आग्रह' होता है और 'वह अस्वीकृति की पद्धति है,' किन्तु तर्क और प्रश्न की पद्धति का परित्याग करके केवल श्रद्धा का सहारा लेने पर तो वह चिंतन की गति ही अवरुद्ध हो जाती है, जो रचना के मर्म तक पहुँचा सकती है। जब तर्कानुमान के बिना धर्म का ज्ञान भी प्राप्त नहीं होता, तब उसके बिना व्यक्तित्व का विश्लेषण कैसे सम्भव है?

'कल्याणी' उपन्यास के कथानक आदि अंगों पर विचार करने से पूर्व यह ज्ञान लेना आवश्यक है कि यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। हम तथ्य को हृदयगम्य कर लेने पर ही उसके स्वरूप को भली भाँति समझा जा सकता है। यह 'सामाजिक

उपन्यास' नहीं है, जैसा कि उपन्यास के प्रारम्भ में शीर्षक के नीचे बंधनी में लिख दिया गया है। उपन्यास में वहिर्मुखी सामाजिक समस्या की अपेक्षा अन्तर्मुखी व्यक्ति-समस्या को उपस्थित किया गया है। पारमाधिक रूप से परिस्थिति और व्यक्ति, ये दो मित्र सताएँ न भी हों, तो भी व्यवहारतः उनमें भेद अवश्य है। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध सधन होता है। "व्यक्तिचरित्र के कारण तात्कालिक समाज स्थिति में खोजे जा सकते हैं।"¹² तथापि उपन्यास में देश-काल से सम्बन्धित सामाजिक परिस्थितियों का अत्यन्त गौण रूप में उल्लेख हुआ है। दो-तिहाई से अधिक उपन्यास पढ़ लेने के बाद कहीं यह ज्ञात हो पाता है कि कथानक का घटनास्थल दिल्ली शहर है, जिसकी खूबसूरती पत्थर की और गुम्बर की है और जहाँ राये बागों के हाथों में रुपया मेहनत से नहीं आता। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लेखक को देश-काल-परिस्थिति से सम्बद्ध सामाजिक समस्याओं से कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा उड़िया कविविधो डॉ० कुंतलकुमारी के देहान्त की घटना से तात्कालिक रूप में प्रेरित होकर लिखी गई है।¹³ मनोवैज्ञानिक उपन्यास होने के कारण लेखक ने इस उपन्यास को देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों के समान घटनानन्दन उपन्यास बनाने का प्रयत्न नहीं किया है। डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने यह ठीक ही कहा है कि जेनेन्द्र को पोथी बाँचने का ज्ञान कम है। 'कल्याणी' उपन्यास के लेखक वकील साहब ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उन्हें कहानी में रंग भरना नहीं आता।¹⁴ इस प्रसंग में वस्तुस्थिति यह है कि कथानक उपन्यास का स्थूल अंश होना है। कथानक के स्थूल दिलचस्प, पर अनावश्यक अंशों को लेखक ने सत-कंतापूर्वक दूर ही रखा है, क्योंकि कहानी गुनगुना जेनेन्द्र के उपन्यासों का उद्देश्य ही नहीं होता।¹⁵ इसके अतिरिक्त लेखक को यह भली-भाँति मान्य है कि घटनाओं के स्थूल कुतूहलजनक रहस्यों की अपेक्षा अवचेतन के सूक्ष्म रहस्य कहीं अधिक ध्वनिपूर्ण होते हैं। इसीलिए वे स्थूल घटनाओं का वर्णन-विवरण देने के स्थान पर सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण में अधिक रमे हैं। इसके अतिरिक्त क्रियारत रूप की अपेक्षा अनुचिन्तनरत रूप ही मानव व्यक्तित्व का सच्चा स्वरूप होता है। अतः मनोवैज्ञानिक उपन्यास के कथानक में बाहरी वस्तुनिष्ठ घटनाओं के स्थान पर आन्तरिक मानसिक अनुभूतियों और विचारों को महत्त्व दिया जाता है।

आज तक 'अनुज्जितार्थ सम्बन्ध' कथा प्रबन्ध की प्रशंसा की जाती रही है, किन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में बाहरी कथासीप्टव की प्रायः उपेक्षा कर दी जाती है। जेनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में "जगह-जगह कहानी में तार की कड़ियाँ ताड़ दी हैं।"¹⁶ कल्याणी के समान वे 'चार में तीन हिस्से बात अनकही' रखकर 'सिर्फ एक हिस्सा' कहते हैं।¹⁷ परिणामतः पाठक को कथाभाग की कड़ियाँ जोड़ने का काम

स्वयं बरता पड़ता है । वहने का तात्पर्य यह है कि उनके उपन्यासों का पाठक 'अधे धूतगण्ड' के समान निष्पन्न गृहीता ही नहीं होता, अपितु मग्न भी होता है । डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने इस स्थिति का विश्लेषण करने हुए स्पष्ट किया है कि इस प्रकार के उपन्यासों में पाठक की वाचकता का वाचक कम हो जाता है और वह स्वोपाजित रस का आस्वादन करके विशिष्ट आनन्द का भोक्ता बनता है ।^{११} कथा-की कड़ियाँ अनजुड़ी रखने के पीछे गेस्टाट के स-पूर्णतावादी सिद्धान्त का भी बहुत बड़ा हाथ है, क्योंकि टूटी कड़ियों की अपूर्णता के पीछे से पूर्णता की विद्युद्दीप्ति अपूर्णता के अचकार को तडित्तेग से दूर देती है ।

लेखक ने 'कल्याणी' उपन्यास में कथासूत्रों को न केवल अनजुड़ा रखा है अपितु उपन्यास में समाविष्ट की गई घटनाओं को घटित रूप में न दिखा कर कथित रूप में उपस्थित किया है । किसी भी घटना का महत्त्व घटित होने में उतना नहीं है, जितना कि उस घटना के प्रति व्यक्त हुई मानसिक प्रतिक्रिया में है । कल्याणी और रामसहव के सम्बन्ध, कल्याणी के घर में गायब हो जाने और पति के द्वारा पीटे जाने आदि की घटनाएँ जिन्दादिल प्राध्यापक श्रीधर ने वकीलसाहब को सुनाई हैं । जिन प्रकार नए-से नए काट के कपड़े उसके शरीर पर रहते हैं, उन्ही प्रकार नए-से-नए नमक की बातें उसकी जीभ पर रहती हैं । यद्यपि वकीलसाहब ने उसे वे मूल मन का अस्थिहीन व्यक्ति बनेलाया है,^{१२} तथापि उसमें छिप कर रहस्य दर्शन की वृत्ति आवश्यकता से अधिक है । न जाने लेखक ने उसे दर्शनशास्त्र का प्राध्यापक क्यों बनाया है ? कहीं श्रीधर के माध्यम से दार्शनिक जेनेन्द्र की यह रहस्यदर्शनवृत्ति (Voyeurism) ही तो व्यक्त नहीं हुई है ! वैम प्रत्येक साहित्यकार में रहस्यदर्शन की वृत्ति होती ही है ।

कथानक की श्रृंखलाओं को तोड़ने के बावजूद मार्मिक स्थलों के चयन में जेनेन्द्र कुशल हैं । उन्होंने उपन्यास का प्रारम्भ ही कल्याणी की मृत्यु के माददीप्त स्मरण के द्वारा किया है । इस प्रकार अन्त में आरम्भ की गई कल्याणी की कहानी पाठक का मन जगती जार बरबस नीच लेती है । पाठक उस अमानवी नारी की सदविस्मयी से भरत हो उठता है, जिसका पति अपनी पत्नी की मृत्यु के दो चार रोज बीतते-न बीतते पुनर्विवाह की चहल-पहल में मग्न हो जाता है । माददीप्त स्मरण के अग रूप में विग्न घटनाओं का मिश्रबलोजन घटनाओं की स्थूलता से कथा को मुक्त करके कथानक में आन्तरिक दृष्टि का समावेश करता है । पादा की गहराई में डुबकी लगाने वाला लेखक कथा के उपमहार तक पहुँचने से पहले चौदहवें और सोलहवें परिच्छेदों में चिन्ता के बहाने मानो माँस लेने के लिए कुछ क्षण सतह पर आ जाता है । निरादरता की पद्धति से कथा को उपस्थित करने का यह तन्त्र मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की खास विशेषता है ।

अन्य पुरुष में कही गई कहानी की अविश्वसनीयता से बचने के लिए कल्याणी को कहानी आत्मकथात्मक शैली में कही गई है। उपन्यास का 'प्रारम्भिक' भी कहानी की विश्वसनीयता को पुष्ट बनाने के लिए ही लिखा गया है। इस प्रकार कथा को आसन्नलेखकत्व से मुक्त करके आत्मनिष्ठ रूप में कथा उपस्थित करने की पद्धति मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की बहुप्रचलित पद्धति है।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक में कालविपर्यय-पद्धति का भी सहारा लिया गया है। कल्याणी के जीवन का पूर्ववृत्त कालविपर्यय की पद्धति से सम्पूर्ण उपन्यास में आठ-दस स्थानों पर विकीर्ण रूप से दिया गया है। कल्याणी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छाए हुए प्रीमियर के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण दो-तिहाई उपन्यास पढ़ लेने के बाद ही हो पाता है। कल्याणी के पति की विवाह से पूर्व कल्याणी को पाने के लिए की गई कारगुजारी की जानकारी तो लगभग उपन्यास के अन्त में ही होती है। पूर्ववृत्त की इन जानकारियों को पाने के बाद कथा में पूर्वकथित प्रसंगों में नया अर्थ भर जाता है। उपन्यास को बार-बार पढ़ने पर उसके गूढ़-से-गूढ़तर अर्थ उत्तरोत्तर अधिकाधिक स्पष्ट होते चले जाते हैं। इस प्रकार उपन्यास घटना-प्रधान उपन्यास के समान केवल एक द्वार पढ़ कर कुतूहलवृत्ति को शान्त करने का साधनमात्र न रहकर पुनः-पुनः पढ़ने के लिए प्रेरित करने लगता है। उपन्यास पढ़कर समाप्त कर दिए जाने के बाद भी पाठक का मन गतिशील या चिन्तनशील बना रहता है। यह सत्य ही उपन्यास की श्रेष्ठता का निर्विवाद प्रमाण कहा जा सकता है। इसीलिए मनो-वैज्ञानिक उपन्यासों के सम्बन्ध में यह ठीक ही कहा जाता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास केवल एक बार पढ़ने मात्र के लिए नहीं होते, अपितु वे पुनः-पुनः पढ़कर चिन्तन करने के लिए होते हैं।¹⁴

उपन्यास में क्रान्तिकारी ब्रजपाल से सम्बन्धित सात-आठ पृष्ठ हैं। वह यूगुरु के नाम से छिपकर सातके दिन कल्याणी के घर टिका था, जिसके कारण पुलिस ने कल्याणी के घर की तलाशी ली तथा उसको कुछ देर हिरासत में रख कर छोड़ भी दिया। यह प्रसंग उपन्यास की मूल कथाधारा में विशेष उपयोगी नहीं है। लेखक ने अपनी हिंसा एवं अहिंसा-विषयक धारणाओं का प्रतिपादन करने के लिए इस प्रसंग के वहाने स्थान निकाल लिया है, जिसका विश्लेषण आगे किया जाएगा।

क्रान्तिकारी ब्रजपाल के अनावश्यक प्रसंग की चर्चा के साथ ही एक अन्य आवश्यक प्रश्न की ओर ध्यान चला जाता है, जिसको उपन्यास में स्थान नहीं मिल सका है। कल्याणी अपने गर्भस्थ बच्चे के लिए जी रही है, पर अपनी विमा और प्रमा नाम की जीवित लड़कियों के सम्बन्ध में उतनी चिन्तित नहीं है। इनका उल्लेख छोटी और बड़ी के नाम से किया गया है। पता नहीं कि इनमें से कौन-सी छोटी है और कौन-सी बड़ी है? बड़ी सदा की रोगिणी है और वह अधिक दिन जीवित नहीं

रहने वाली है। प्रकृति से कविहृदय कल्याणी का उसकी उपेक्षा करना अमंगल है, जब कि वह पाल के प्रमग मे स्नेह के बल का आवेशपूर्वक प्रतिपादन करती है। इन लक्ष्मियों के सम्बन्ध मे यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनकी ओर उनके पिता का पूरा ध्यान है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो कल्याणी अपनी मृत्यु के बाद छोटी को अपने घर रख लेने के लिए वकील साहब से कहती ही नहीं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि इस उपन्यास मे इने गिने ही पात्र हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों मे कम पात्रों मे ही काम चल जाता है, क्योंकि पात्रों के अधिक हो जान पर चरित्र चित्रण मे गहराई नहीं जा पाती। 'कल्याणी' उपन्यास मे कल्याणी से लेकर डोरो (कल्याणी का नौकर) तक सब मिलाकर कुल पन्द्रह पात्र हैं। इन पात्रों मे कल्याणी डाक्टर असरानी और वकीलसाहब ही प्रमुख हैं। ये ही उपन्यास के आदि से अन्त तक दोख पड़ते हैं। इनमे से डॉक्टर असरानी का महत्त्व कल्याणी के चरित्र की गुत्थियों को समझने मे सहायक पात्र के रूप मे है। कल्याणी से असम्बन्धित पहलू का उनके चरित्र मे कहीं कोई उल्लेख नहीं है। उपन्यास के बाईस परिच्छेदों मे से ग्यारह परिच्छेदों मे उन्हें स्थान मिला है। वकीलसाहब का स्थान उपन्यास मे आद्यन्त होने हुए भी इस पात्र की योजना विश्वसनीयतापूर्वक आत्मकथाशैली मे कर्याणी की कहानी कहने के लिए है। यह पात्र कल्याणी के लिए अभिभावक के समान है और विस्वस्त होने के नाते मानसिक गुबार को व्यक्त करने के लिए थोड़े-बहुत आधार बनाकर इस पात्र को उपस्थित किया गया है। विस्लेषण द्वारा पुनर्निर्माण करके कल्याणी का जीवन-चरित्र उपस्थित करने की भी लेखक की इच्छा नहीं है। इसीलिए उसने कहा है कि—'चरित्र लिखने की मेरी ताव नहीं।' वेगल सवेदन और सहानुभूति को टिकाने के लिए उसे पात्र की आवश्यकता है। कल्याणी ऐसा ही पात्र है। इस पात्र की प्रमुखता के कारण ही उसके नाम पर उपन्यास का नामकरण किया गया है।

जिसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व मे तह पर-तहे होती हैं। कल्याणी के व्यक्तित्व मे भी अनेक तहे हैं। व्यक्तित्व की इन तहों को खोलकर उनका स्वरूप समझने के लिए प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं का महत्त्व बूझी की तरह हाना है। कल्याणी उच्च-मध्यमवर्ग मे जनमी, पली और बड़ी हुई है। आभिजात्य के शील और सस्कार उसने व्यक्तित्व के अभिन्न भाग हैं। उसका व्यक्तित्व परिष्कृत है। विलायत जाकर उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। वहाँ पर ही उसका एक युवक से परिचय हुआ, जो प्रगाढ़ दशा तक पहुँचा। कॉलेज की पढ़ाई के इन दिनों मे उसके मन मे सपने झूमने लगे। इसी काल के स्वप्नमय वातावरण मे उमरा प्रकृत कविहृदय कविताओं के माध्यम से व्यक्त होने लगा। जब वह कॉलेज मे पढ़ती थी, तभी उसने पहली

कविता-पुस्तक भी प्रकाशित हुई । फिर एक कम्पीटीशन में प्रथम भी आई थी । विवाह से पूर्व वह प्रान्तभर की स्तन थी और अच्छे से अच्छा वैवाहिक सम्बन्ध उनके लिए मूल्य था । कल्याणी के जीवन के इस पूर्ववृत्त का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह सहज ही जात हो जाता है कि उसके जीवन में जीवन और मरण की प्रवृत्तियों का स्वस्थ संतुलन था । फ्रायड ने अपने प्रवृत्तियों के ध्रुवीकरण के सिद्धांत में इन प्रवृत्तियों की महत्ता का प्रतिपादन किया है । ये प्रवृत्तियाँ जीवन की काम-मूलक मूल्यवृत्ति (लिविडो) की अंगभूत प्रवृत्तियों के रूप में विद्यमान होती हैं । यदि इन प्रवृत्तियों का स्वस्थ संतुलन जीवन में हो तो व्यक्तित्व के विकास को अवरोध करने वाली प्रस्थितियों से मुक्त रहता है । कल्याणी का पूर्वजीवन ग्रन्थियों से मुक्त स्वस्थ व्यक्ति का जीवन प्रतीत होता है ।

किसी ने कहा है कि मर्द का पहला पाण्डू जानवर स्त्री है । स्त्रीविषयक इस सामंतीय दृष्टिकोण के कारण स्त्री को भी वन विधेय के रूप में देखा जाने लगा । कन्या पराया वन वन गई, इसलिये कन्यादान के द्वारा उसे अपने अम्लीय गालिक (पति) का साँपने का विधान प्रचलित हुआ । इस कारण पत्नी होने से पूर्व स्त्री केवल कन्या होती थी; परन्तु कल्याणी निरी कन्या न थी, वह तो डॉक्टर थी । पहलू-लिखाई के कारण उसका निजत्व विकसित हो गया था । डॉक्टर असरानी ने उसके इस निजत्व को उगेध करके उसे अपनी पत्नी के रूप में पाने के लिए क्या नहीं किया ? केवल उसके निजत्व का विचार ही तो नहीं किया था । उन्होंने अपनी माँही पत्नी के विषय में झूठे लालचों का प्रचार किया, जिससे कि उसका कुलीन विवाह असम्भव हो जाये । इसी कारण कल्याणी बड़ी उम्र तक कुंवारी बनी रही । वह चाहती तो अपने प्रियकर वैरिक्टर (प्रीमियर) से विवाह कर सकती थी, किन्तु उसने अपने काँ लोचि रखा और अपने प्रेमी का निराश कर दिया । अपने प्रेमी से विवाह करने से इनकार करने के पीछे सम्भवतः कल्याणी की यह सद्भावना रही होगी कि अपने वदनाम व्यक्तित्व के सम्पर्क से प्रेमी को क्यों सामाजिक दृष्टि से हीन बनाया जाये । इस कारण “दिया हुआ भी नहीं दिया जा सका और लेने वाला अपना लेने का दावा मूल गया ।” डॉक्टर असरानी का उपाय कारगर निष्ठ हुआ और कल्याणी डॉक्टर के जाल पत्नी के रूप में जा गिरी । कल्याणी का पाने का डॉक्टर असरानी का मनोरथ पूरा हुआ, पर क्या सचमुच ही वह कल्याणी को हृदय से प्यार करता ? कल्याणी की देख उसे अवश्य मिनी, पर उसका रनेह क्या असरानी को मिल सका ? कृपापूर्वक स्वीकार करके कल्याणी के उद्धार करने का उनका अहंकार पति-पत्नी के बीच में द्वन्द्व का कारण बन गया ।

डॉक्टर असरानी कल्याणी को अपना मातहत बनाकर रखना चाहते थे, जैसा कि उन्होंने कल्याणी को लिखे गये अपने पत्र में उल्लेख किया है । पर वह कैसे

सम्भव था; क्योंकि एक तो कल्याणी अविकसित व्यक्तित्व की स्त्री मात्र नहीं थी तथा दूसरी बात यह है कि परम्परानुसार मातृत्व पत्नी बनकर रहने के लिए जिस आर्थिक निराधारता की परिस्थिति की आवश्यकता है कल्याणी जग परिस्थिति से मुक्त थी। वह शास्त्रानुमोदित 'भार्या' नहीं थी, बल्कि 'भर्ता' थी। इमने विपरीत डॉक्टर अमरानी को ही चाहे तो 'भर्ता' के स्थान पर 'भार्या' कहा जा सकता है। घर का सारा धन कल्याणी का ही है। यह धन या तो उसे अपने विवाह में पिता की ओर से मिला है या कल्याणी का कमाया हुआ है। उसे मनचाही आमदनी है। इसलिए 'इकॉनॉमिक डिपेंडेंस' का तो सवाल ही नहीं है जैसा कि घर में कुछ दिन गायब रहने के बाद पति द्वारा खबर लिए जाने पर एक सर्वज्ञानि नेता ने गलती से कह डाला है। स्त्रियों के सम्बन्ध में जैसा कि कहा जाता है— 'पीछा मारी न हो तो आगा सहारा नहीं देता'—यह कल्याणी के लिए पूरी तरह गैर-लागू है, क्योंकि न तो कल्याणी का पीछा हटका है और न ही उसे आगे के सहारे की ही आवश्यकता है।

वर्तमान अनुकूल तो अतीत पर रहता कठिन हो जाता है। कल्याणी का वर्तमान अनुकूल होने से उसका मन थकित सिन्नु-नौका के खग की तरह अतीत के जहाज की ओर चला ही जाता है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि कल्याणी के पास क्या नहीं है? सब कुछ होने के बावजूद वह इतनी शोषग्रस्त क्यों है? उसे कहीं भी मानवता क्यों नहीं मिल सकी? पति ही यदि उसके आक्रोश और तिरस्कार के मूठ में है तो वह पति का परिस्थान क्यों नहीं करती? ऐसा करने पर उसे अपने बन्धनों की देयमाल अधिक सुत्रांध रूप से करने के लिए आवश्यक मानसिक स्वास्थ्य मिल गया होता। न जाने वह कैसी पढ़ी लिखी है? पति के खिलाफ कानून की मदद क्यों नहीं लेती? ऐसी कौन-सी बाधा है जो उसे यह सब करने से रोक रही है? वह यदि चाहे तो उसे पुनर्विवाह करने से भी कौन रोक सकता है? जो काम धनेलेपन को खाने की औषधि कहा जाता है वह उसके लिए विष क्यों बन गया है? वह पति के प्रति दतनी उन्नत क्या है? उसके मन पर ऐसा कौन-सा दाग है जो उसे कुछल रहा है? ऐसे एक नहीं, बल्कि अनेक प्रश्न पाठक के मन को बेचैन कर देने हैं। इन सब प्रश्नों का उत्तर खोजते खोजते हमारी दृष्टि कल्याणी के मन में धर बनाकर बसी हुई अपराधभावना (Guilt feeling) पर जाकर रुक जाता है। डॉक्टर अमरानी से विवाह कर लेने के बाद कल्याणी के मन में अपने प्रेमी के प्रति समर्पित न होने की बात ने इस अपराधभावना का जन्म दिया है। अपने इन-बार पर वह पश्चात्ताप करने लगी है। एा और डॉक्टर अमरानी के असहृदय व्यवहार ने इसे बढ़ाया है, तो दूसरी ओर कल्याणी के प्रेम की तात्परि आनीका अविवर्तित प्रीमियर के आदर्श व्यवहार ने इसे परलंबित एवं पुष्पित किया है। यह

अपने इस अपराध के लिए खुद को माफ करने के लिए तैयार नहीं है। दंडित होकर ही उसके मन को सांत्वना मिल सकती है। इसीलिए वह अपने को पुनः-पुनः दुश्चरित्र आदि कहकर दंडित कर रही है। कहीं वह कहती है कि उसका स्त्री के रूप में जन्म लेना ही अपराध है। कहीं पर उसका कहना है कि स्त्री होकर अंग्रेजी पढ़-लिखकर मोटर चलाना क्या शास्त्रानुकूल है? इतना ही नहीं, पत्नी होकर पातिव्रत्यविरोधी डॉक्टरों करना तो बिल्कुल ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त पति को अपराधी मानने का अपराध तो सतीत्व के एकदम विरुद्ध है, क्योंकि “सती को यह सोचने का अधिकार नहीं है कि पति सक्षोभ हो सकता है।……पति देवता है। स्मरण रहे कि वह देवता अपने आप में नहीं, सतीत्व की महिमा के प्रभाव में ही वह देवता है।”^{१९} वह अपने को दुश्चरित्र समझे जाने का विरोध न करके स्वयं यह कहती है कि—“फावड़ा बनने के लिए भी सुई तो चाहिये ही।”^{२०} अन्त में तो वह दूसरों के अपराध को अपना ही अपराध मानकर प्रायश्चित्तस्वरूप दंडित होना चाहती है। वह कहती है कि—“मेरे ही कारण डॉक्टर को बन की चाह है और मेरे ही कारण अगर होंगे तो प्रीमियर कर्तव्यच्युत होंगे। ओह, मुझे क्या प्रायश्चित्त काफी होगा?”^{२१} यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इन सब बातों के पीछे जो अपराध-भावना काम कर रही है, उसे कल्याणी पूर्णतः पहचानती नहीं है। र.यसाहव, भटनागर आदि के साथ उसके अनैतिक सम्बन्धों की चर्चा में समाज का ही दोष अधिक है, क्योंकि डॉक्टरों के व्यवसाय में उसे हर किसी से मिलना पड़ता है। संदेहशील पति के लिए यह खुला व्यवहार नागवार हो उठता है। भटनागर को अच्छा आदमी कह देने पर तो उनके मन में पत्नी के सम्बन्ध में गाँठ बैठ जाती है। वे कल्याणी को पुश्तली सगझने लगते हैं। कहने का आशय यह है कि अपने को दंडित करने की अज्ञात प्रेरणा से ही वह सदा ही अपने पर दंतिदार छुरी चला जीवन को मृत्यु से कम विषम नहीं रहने देना चाहती। स्थूल सामाजिक दृष्टि से वह अगर सचमुच ही दुश्चरित्र होती, तो वह अपनी दुश्चरित्रता का प्रचार नहीं करती फिरती। इसीलिए वकील साहव की पत्नी ने कल्याणी की दुश्चरित्र होने की बातों पर विश्वास नहीं किया है।

कल्याणी ने अपने को दंडित करने के लिए जिस अपराधभावना को अपने मन में पोषित किया है, उसी के परिणामस्वरूप वह कहती है—“जितना मुझसे छिना जाता है उतनी मुझ पर कृपा की जाती है। उतना ऋण उतरता है।”^{२२} इसी अपराधभावना के परिणामस्वरूप वह सफलताभयाक्रांत (Afraid of success) भी है। इसीलिए वह निरी मामूली-सी बात पर अपनी कविता की कापी फाड़ देती है। वह इसी कारण आरम्भगूर भी है। आरम्भ किए हुए काम को सफलता की सीमा तक वह पहुँचाना नहीं चाहती, क्योंकि सफलता की स्थिति में अपराधभावना

से उत्पन्न दडित होने की कामना बाधित होती है । इसी सफलताभय से आक्रान्त होने के कारण वह कहती है कि—“मेरे पेट का बच्चा क्या मेरी सब विडवना झेल लेगा ? बच्चा न होगा ।”^{११} बच्चे का होना भी तो कल्याणी के मातृत्व की सफलता है । इस प्रकार कल्याणी के अवचेतन में अपराधभावना और सफलता के भय की जड़ें दूर तक पहुँची हुई हैं । अपराध की गुस्ता कम करने के लिए दडित होने की भावना भी उसमें प्रबल रूप में विद्यमान है । डॉक्टर अमरानी की पत्नी बनी रहकर दुर्व्यवहार सहन करने रहता भी इसी दडित होने के सन्तोष का साधन है । यही कारण है कि कल्याणी घर नहीं छोड़ती और दुतकारी जाने के बावजूद घर में बनी रहती है ।

पति-पत्नी के सम्बन्धों की दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि कल्याणी भारतीय पत्नी होने के नाते पति का प्रतिरोध नहीं कर सकती । इसलिए उसके जीवन की मरणप्रवृत्ति का पर आक्रमणावेग अव्यक्त होकर स्व आक्रमणावेग में परिवर्तित हो जाता है । परिणामतः कल्याणी के चरित्र में मृत्युतत्त्व का आकर्षण उपन्यास के प्रारम्भ से ही दिखाई देने लगता है । “वह जीवन का आरम्भ जैसे नये सिरे से करना चाहती है ।”^{१२} जीवन उसके लिए दुःख की कविता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । वह वकील साहब से कहती है कि—“मैं इस पेट के बच्चे के लिए जीती हूँ ।”^{१३} उसने अकाल मृत्यु के बाद आत्मा की गति के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया है, वह उसके अकालमृत्यु का वर्णन करने के चिन्तन से ही सम्बद्ध है । उसे अपने जीवन की दशा मीन ही प्रतीत होती है । इसीलिए वह वकीलसाहब से कहती है कि—“मुझ पर जहाँ मेरा बस नहीं है वहाँ क्या करूँ ? कुछ बनाइए कि एकदम जड़ हो जाऊँ । एक दम है मौत, लेकिन उसके तो आप कायल नहीं माडूम होते हैं ।”^{१४} उपन्यास के अन्त में प्रीमियर से अपने तपोवन के लिए नकार पाकर वह दुःख से कहती है कि—“एक थे । अब वह गांधी के हैं ।”^{१५} “उन मेरे गांधी के भक्त की मर्जी यही न है कि मैं अपनी राह पर अकेली रह जाऊँ ? अकेली ! अकेली ! ! !”^{१६} अन्त में कल्याणी ने पुत्र को जन्म दिया और उसके कुछ देर बाद उसके हृदय की गति अज्ञानक बन्द हो गई । अज्ञानक ? यह आकस्मिक मृत्यु कल्याणी द्वारा अपने को दण्डित किये जाने का चरम रूप है । इस प्रकार अपराध-भावना, सफलताभय और मृत्यु का आकर्षण कल्याणी के अवचेतन में प्रवाहित चेतना-धारा के रूप हैं ।

कल्याणी के व्यक्तित्व में निहित मरणप्रवृत्ति (Thanatos) पर विचार करने के बाद उसमें निहित जीवनप्रवृत्ति (Eros) पर विचार कर लेना भी उपयुक्त होगा । जीवन की विचारीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति अगर अपने मन में थोड़ी सी भी लचक न ला सके तो जीना दूसरा हो जाता है । कल्याणी अपने पति को

प्रसन्न करने के लिए भरसक प्रयत्न करती है; पर फिर भी मन का कुछ भाग वन ही जाता है, क्योंकि मन सदा स्थूल नैतिकता के राजमार्ग पर ही नहीं चला करता। इसके अतिरिक्त पति ने अपने व्यवहार से उसे अपने ही घर में विराना बना डाला है। वह अपने मन का बोझ उतारे भी, तो कहाँ उतारे। इस स्थिति में भी कल्याणी ने अपने उच्छ्वासों को कविता के माध्यम से निकालने का प्रयत्न किया। उसकी कविता में वर्णित बटोही और कोई नहीं, स्वयं कल्याणी ही है। यह बटोही न जाने कहाँ से बिछुड़कर इन सराय में आ टिका है, जिनमें उसका कुछ नहीं है। कल्याणी का यह प्रयत्न पति की असह्यता की छाया में पल्लवित न हो सका। इसके बाद उसने आरोग्य भवन के उपयोगी कर्म में अपने मन को गुलाबों में रखने का प्रयत्न किया, किन्तु पति के असहयोग के कारण गुलाबों अधिक काल तक न चल सका। उसने अपने घर में जगन्नाथ के मन्दिर की स्थापना भी की, किन्तु उसके एक बार खाने और चार बार स्नान करने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी यह धर्म-भावना किसी-न-किसी विवशता से रुग्णरूप में परिवर्तित हो गई है। जीवन की हर प्रवृत्ति मिकदार में हो, तभी उसे स्वस्थ कहा जा सकता है। वह अपने मन को मनाने के विरोध करके विवाहमन्था का वेहद समर्थन करती है, तो इस समर्थन से भी उसके मानसिक असंतुलन का समर्थन होता है। इसी असंतुलन की चपेट में आकर वह पहनावे आदि में लाञ्छनातीत आधुनिक होते हुए भी बिलायत की संस्कृति की वणिज्य उड़ाती है। इन सारे प्रयत्नों के बावजूद उसके मन का तनाव कम होने के स्थान पर बढ़ता ही है। परिणामतः वह हेल्यूसिनेशन के भ्रम में फँस जाती है। अस्वास्थ्यकर मानसिक तनाव का अन्दाज इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि हेल्यूसिनेशन (Hallucination) की स्थिति इल्यूजन (Illusion) और डिल्यूजन (Delusion) की स्थितियों के बाद आती है। इल्यूजन और डिल्यूजन के भ्रम में बाह्य वस्तु का आधार होता है, किन्तु हेल्यूसिनेशन में भ्रम पूर्णतः विषयी-निष्ठ होता है। कल्याणी के हेल्यूसिनेशन में गला घोटकर भारी जाने वाली गर्भवती युवती स्वयं कल्याणी ही है। नैतिक मन के दबाव के कारण दमघोंट वातावरण में रहनेवाला कल्याणी का अवचेतन मन सेंसर के प्रहरियों को घोखा देने के लिए परिवर्तित वेश में व्यक्त हुआ है। कल्याणी ने ईश्वर पर विश्वास करके सच्चाई की राह पर चलना चाहा, किन्तु ईश्वर की राह पर उसे अनीश्वरता (देवलाञ्छीकर की उपस्थिति अर्थात् दमघोंट वातावरण द्वारा पत्नी की हत्या करने वाले पति की उपस्थिति) मिलती है। इस अनीश्वरता की स्थिति में अगर चारों ओर से अविश्वास ही अविश्वास घेरे हो तो मृत्यु से बचकर जिया ही कैसे जा सकता है। अन्त में कल्याणी का यही तो प्रश्न है कि—“है कोई जिसे मेरी भलाई में भरौसा हो।” “कोई है.....जो मुझसे स्फूर्ति ले, जिसकी मैं स्वप्न हूँ।.....नहीं है तो जीवन

मेरा क्यों कृपा नहीं है ।" प्रीमियर द्वारा तपोवन अर्थात् कल्याणी के स्वप्न को सकार करने से इकार कर देने पर तो मसार में बहने मर के लिए भी कल्याणी का कोई नहीं रह जाता । वह निपट अकेली रह जाती है । मृत्यु के अतल जल में डूबने से बचाने वाला तिनके का महारा भी नहीं रहता और वह मरण प्रवृत्ति के आत्मपीडक हर का शिकार हो जाती है । वह अम्यस्य प्रकार के दापत्य की वेदी पर बलि हो जाती है । इस बलि के मूल ने जो तविषय के फिटम हैं उन्हें कल्याणी के अवचेतन में प्रविष्ट हुए बिना समझा नहीं जा सकता । इन्हें समझ लेने पर, कल्याणी के बहू एक ऊड़-खावड़ जीवन का परिचय पाने के बाद कल्याणी के चरित्र को कटे ठोटे रूप में खरा या खोटा वह सकना क्या सम्भव है ?

कल्याणी के अतिरिक्त उपन्यास के अन्य सब पात्र कल्याणी के व्यक्तित्व को विनोद करने के लिए उपलब्धमान हैं । डॉक्टर असरानी के लिए ईश्वर भी पैसे का है । उनके लिए कल्याणी भी एक इन्वेस्टमेंट है । इसीलिए कल्याणी के प्रेम की मित्रता उनके लिए भले ही ईर्ष्याणीय हो, लेकिन उनका प्रीमियरपन अम्यवनीय है । कल्याणी के स्नेह सबको को यह जूँ पर लगाना ही है । उपन्यास के तीसरे प्रमुख पात्र वकील साह्य हैं । लेखक ने आसन्नलेखकत्व से बचने के लिए उपन्यास जगत् में वकीलसाह्य के रूप में अवतार ग्रहण किया है । लेखक और वकील साह्य की चिन्तन प्रणाली एकदम अभिन्न है ।

कथोपकथन की दृष्टि से उपन्यास अत्यन्त सफल है । उपन्यास का ८५ प्रतिशत भाग कथोपकथन के रूप में है । इसलिए उपन्यास में नाटकीय वतमानता का समावेशना हुआ है । बालवाक के समान कथोपकथन के वाक्य छोटे छोटे हैं । लेखक स्थानीय होते हुए भी वकीलसाह्य में अपनी ही बहने का मज नहीं है । जब-जब उन्हें प्रदीर्घ रूप में अपनी बात बहने की इच्छा हुई है, तब-तब उन्होंने वर्ण-विवरण के प्रसंग में ही उसे कहा है । आवश्यक समझने पर वकीलसाह्य ने अपने चिंतन को अभिव्यक्त करने के लिए पृथक् रूप से परिच्छेद ही लिखा है । उपन्यास का चौदहवाँ परिच्छेद इसी प्रकार का है । बहने का आशय यह है कि लम्बे-लम्बे अस्वाभाविक कथोपकथन प्रदीर्घ हो गये हैं, वहाँ पर भी वे अस्वाभाविक नहीं बने हैं । इस प्रकार के प्रदीर्घ सवादों में भी वाक्य छोटे-छोटे हैं । जैसे तपोवन के प्रसंग में कल्याणी के दीर्घ सवाद के वाक्य इस प्रकार हैं "क्या आप मेरी तरह हैं ? आप स्त्री हैं ? आप डाक्टर हैं ? आप पर किस्मा का शाप है ? क्या रोक है आपको ? मैं तो मरीज हूँ । कट-कट कट-कट रपया बगानी हूँ । हर काम रपया सांगता है न ? यह दुनिया का सब है ।"

वही वही कथोपकथन के वाक्य अचूरे रमे गये हैं । वही पर चिंतन में तनाव के कारण ऐसा हुआ है, जैसे उपन्यास के अन्तिम अंश में अस्त कल्याणी वकीलसाह्य

से कहती है.....मैं क्या कहूँ ? नहीं, आप जाइए नहीं । मुझे कहने दीजिए । मेरा त्रास.....।”^{११} कहीं पर अवूरापन किसी विघ्न आदि के कारण है । एक स्थान पर कल्याणी वकीलसाहब से “मैं एक की भी विदवास के पात्र नहीं हूँ । मैं—”^{१२} कहते-कहते रुक जाती है, क्योंकि इसी समय डॉक्टर असरानी के जूतों की खट्-खट् सुनाई दी । कहीं वाक्य का अवूरापन बहुप्रचलित उक्ति को अपूर्ण रखने के कारण है । पाल से चर्चा करते समय वकील साहब कहते हैं—“बहुत सकुचो मत तुमसे इतना बड़ा नहीं हूँ कि—। और प्राप्ते तु पोछो वर्षे.....।” तुम जानते हो । और अब यह नियम भी पुराना हुआ कि वजुर्ग को वजुर्ग समझा जाय ।”^{१३} इस प्रकार की वाक्य-गत अपूर्णताओं के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की अपूर्णता भी कही-कही है । कहना चाहें तो इसे टेलीफोनिक अपूर्णता कह सकते हैं । इस अपूर्णता में कथोपकथन के एक पक्ष के प्रश्नों को अव्याहत ही रखा जाता है और एकतर्फी कथोपकथन को दिया जाता है । नाटकों में इस प्रकार के आकाशमापित प्रायः देखे जाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में कहीं-कहीं एकतर्फी कथोपकथन है । जैसे उपन्यास के प्रारम्भ में ही वकीलसाहब डॉक्टर असरानी से श्रीधर का परिचय कराते हुए कहते हैं—“आप श्री श्रीधर मेरे मित्र, यहाँ कालिज में लेकचरार हैं ।—जी, गवर्नमेंट कालिज में ।” यहाँ पर “किस कालिज में लेकचरार हैं ?”^{१४} यह प्रश्न अव्याहत है ।

कथोपकथन को व्यञ्जक बनाने के लिए बोलने के लहजे के अनुसार प्रश्न-चिह्नों और विस्मयादिबोधक चिह्नों का प्रयोग तो किया ही जाना चाहिये और इस उपन्यास में किया भी गया है, जैसे सर्वतोभावेन निराश कल्याणी कहती है—“.....उन मेरे गांधी के भक्त की मर्जी यही न है कि मैं अपनी राह पर अकेली रह जाऊँ ? अकेली ! अकेली !! अकेली !!!”^{१५} इन चिह्नों के अतिरिक्त भावबोधक, ‘उँह’, ‘ओह’ आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । कहीं-कहीं लहजे की मात्रादीर्घता को दिखाकर आश्चर्य आदि को व्यक्त किया गया है । डॉक्टर असरानी के पुनर्विवह का समाचार पाकर वकील साहब कह उठते हैं—“क्या-आ ?”^{१६} इसी प्रकार वकील साहब के द्वारा कल्याणी से यह पूछे जाने पर कि “यह साहित्यसभा का मानपत्र है न ?”—कल्याणी उत्तर में कहती है—“हाँ-आँ ।”^{१७} कहने का आशय यह है कि कथोपकथनों में बोलचाल की स्वरसंगिमा का पूर्णतः ध्यान रखा गया है ।

कल्याणी उपन्यास के कथोपकथनों पर उर्दू का प्रभाव दिखाई पड़ता है । इसका कारण यह है कि असरानीदम्पति सिव के हैं । सिव में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रचलन काफी अधिक है । इसके अतिरिक्त वकीलसाहब यू० पी० के हैं । बकायत के व्यवसाय में उर्दूबहुलता प्रचलित ही है । प्रीमियर की पार्टी में शरीक होने के लिए कहे जाने पर वकीलसाहब कहते हैं—“मैं अहसानमन्द हूँ लेकिन मेरी शरकत में शक होने की उन्हें बजह मिली है ?”^{१८} इसी प्रकार प्रीमियर को भेंट में

देने के लिए लाई वस्तुओं की चर्चा के प्रसंग में वकीलसाहब कहते हैं—“आपकी पसंद पर क्या मुझे नुक्ताचीनी की जुरअत है ?”^{१४१} यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कथोपकथन की भाषा की तुलना में वर्णन-विवरण की भाषा पर उर्दू का प्रभाव काफी कम है। कथोपकथन के नाँते बोलचाल के ‘गिरस्ती’ ‘विधा’ आदि शब्दों का लेखक ने सहज रूप में प्रयोग किया है। कहीं-कहीं बोलचाल के अनुकूल विशिष्ट शब्दों को सानुनासिक रूप में भी रखा है। वकीलसाहब ‘पूछते हैं’ किन्तु वकीलसाहब की अनपढ़ पत्नी ‘पूछती है।’

मनोवैज्ञानिक उपन्यास होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास में देशकाल का चित्रण उपेक्षित होने के लिए बाध्य है। दो-तिहाई उपन्यास समाप्त हो जाने के बाद यह ज्ञात होता है कि कथा का घटनास्थल दिल्ली है और कल्याणी का तपोवनस्थान दिल्ली से दस बारह मील दूर स्थित है। इसी प्रकार उपन्यास के प्रारम्भ में ही कथानक के काल के सम्बन्ध में कहा है—“हाल ही की तो बात है। ऐसा लगता है जैसे कल की हो।—न सही कल की। पर दो ढाई वरस से अधिक नहीं हुए।”^{१४२} वस्तुतः सम्पूर्ण उपन्यास ३६ दिनों की कहानी है। ये ३६ दिन सम्भवतः दो वर्षों से कम समय के लगते हैं। उपन्यास का तीसरा परिच्छेद ‘शुरु जाड़े के दिन’ का है, किन्तु चौथे परिच्छेद में रात के समय बिजली के पछे के चलने का उल्लेख है। उपन्यास के दसवें परिच्छेद में प्रथमतः कल्याणी के गर्भवती होने की सूचना मिलती है, अतः यहाँ से उपसंहार में कल्याणी की प्रसूति तक का समय नौ महीनों से अधिक नहीं कहा जा सकता है। कहने का आशय यह है कि देशकाल के चित्रण में लेखक को रुचि नहीं है।

भाषा और शैली की दृष्टि से विचार करने पर पाठक जैनेन्द्र की सामर्थ्य का कायल हो जाता है। कथोपकथन के प्रसंग में कथोपकथन की दृष्टि से विचार किया जा चुका है। जैनेन्द्र की भाषा अत्यन्त व्यञ्जक एवं मकेतपूर्ण है। अपूर्ण में भी सम्पूर्ण के पूर्वाभास के सिद्धान्त को मानने के कारण उन्होंने न केवल घटनाओं को अनकहे रूप में रखा है, अपितु भावों और विचारों का भी कुछ हिस्सा ही कहा है। वह कुछ हिस्सा भी बोधगम्य छोटे-छोटे वाक्यों में उपरिष्ठित किया गया है। ‘थोरे आखर’ और ‘अमित अर्थ’ से युक्त उनकी शैली नाव के तीर के समान गम्भीर धाव करने में समर्थ है। कहीं-कहीं कहते-कहते ही लेखक रुक जाता है और वाक्य अधूरे रह जाते हैं। इन अधूरे वाक्यों की मार तो पूर्ण वाक्यों की मार को भी मात कर देती है। प्रीमियर के दिल्ली से अकस्मात् वापस चले जाने के प्रसंग में लेखक कहता है कि—“सचमुच पेरी लालसा है कि सब सरल हो जावे, रहस्य कुछ न रहे, और मैं कह सकूँ—‘राजनीतिक परिस्थिति।’ लेकिन हाय, यही अगर वह बर छुट्टी पा सकता तो।”^{१४३} इसी प्रकार जब डॉक्टर असरानी वकीलसाहब के सामने

अपने मन की भड़ास निकाल कर चले जाते हैं, तब लेखक कहता है कि—“डॉक्टर मेरे पास से गये तब अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थचित्त थे। लेकिन मेरे चित्त का स्वास्थ्य—।”“ इस प्रकार रहस्यमय शैली में रहस्यों को उद्घाटित करके पाठकों के चित्त को अस्वस्थ बनाने की स्वस्थ सामर्थ्य जैनेन्द्र की बड़ी विशेषता है। व्यक्तित्व की तहों के समान लेखक की भाषा में तह पर तहें दिखाई पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अनिर्वचनीय वाक्यशैली भी पाई जाती है। वे लीला इस प्रकार के वाक्य लिख जाते हैं—“गांधी की तपस्या लीला है, लीला तपस्या है। सबके रास्ते पर वह सबके साथ है। वह पति हैं, पिता हैं, सब हैं।”“ उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर ही सम्भवतः डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने भाषामिव्यक्ति की दृष्टि में रखकर कहा है कि जैनेन्द्र का संस्करण सम्भव नहीं है।

जैनेन्द्र की भाषा उद्घरणों और सूक्तियों से समृद्ध होती है। प्रस्तुत उपन्यास में उद्धृत उद्घरणों में से कुछ इस प्रकार हैं—‘त्येन त्यक्तेन मुञ्जिष्याः’—‘गतामून-गन्तुंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।’ उनकी भाषा में सूक्तियाँ तो अनगिनत होती हैं, जिनमें से नमूने के तौर पर कुछ सूक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं,—“जिन्दगी नाम चलने का है”; “नर के अनादर में कहीं नारायण की पूजा है”; “‘प्रीति की रीत है आरती, प्रसाद है उगका दियोग’”; “‘सत्य अहंरूप नहीं है और जानना सत्य अहंरूप है’”; ‘माया की लीला में भी लीलाकार तो सत्य ही है न.....?’” इत्यादि। प्रायः ये सूक्तियाँ (सामान्य कथन) विशेष का समर्थन करती हैं या कभी-कभी इनके समर्थन में विशेष का वर्णन हुआ है। इसीलिए डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने उन्हें प्रकरणगत अर्थान्तरन्यास भी माना है।

जैनेन्द्र का शब्द भण्डार समृद्ध है। उनकी भाषा में बोलचाल की भाषा के शब्द भरे पड़े हैं। इसीलिए उर्दू के नफरत, मंज, गुलजार, गुमान आदि प्रचलित शब्दों का व्यवहार जहाँ-तहाँ हुआ है। ऐतिहासिक, जुरात, मुम्नहक आदि कुछ विलुप्त शब्दों का प्रयोग भी अवश्य हुआ है। इसी प्रकार अंग्रेजी के कालिज, कम्पटीशन, वरेस (ट्रेस), वाइफ आदि शब्दों का स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है, किन्तु एक्सकॉड जैसे शब्दों का प्रयोग खटकता है। कहीं-कहीं नविशेषण अंग्रेजी संज्ञाओं का भी प्रयोग किया गया है, जैसे इकॉनमिक डिपेंडेंस, कंप्लीट रेस्ट इत्यादि। पुस्तक में रोमन लिपि में कॉम्प्लेक्स (Complex) और रेड रिवोल्यूशनरी (Red revolutionary) का प्रयोग उचित नहीं कहा जा सकता। अंग्रेजी और उर्दू शब्दों के संस्कृत के भी कुछ अल्पप्रचलित या अप्रचलित शब्दों का प्रयोग स्तुत्य नहीं कहा जा सकता, जैसे मौख्य, ‘मुञ्जिषी’“ शब्द घुन गया है, जिसका अर्थ संभवतः डॉक्टर अनगनी नहीं बता सकेंगे। कहीं-कहीं लेखक ने ‘अनुल्लेखनीय गहजा’, तद्वियत के

पिट्स' जैसे प्रयोग भी किए हैं, जो अमिव्यक्ति की दृष्टि से उपयुक्त कहे जा सकते हैं। कुछ स्थलों पर 'पाससुदा' जैसे दो भाषाओं से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है। कथोपकथन के माध्यम से कल्याणक का विकास होने के कारण 'बयार, गिरस्नी' आदि शब्द भाषा में सहज ही आ गए हैं। एक स्थान पर 'समाचार' के अर्थ में बंगाली भाषा का 'सवाद' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि लेखक का शब्द भण्डार समृद्ध है और कुछ अपवादों को छोड़कर शब्दों का प्रयोग उपयुक्त रूप में किया गया है। इसके अनिरिक्त उनकी भाषा में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी सहज रूप में पाया जाता है। 'घिग्पी बंधना', 'तिल का ताड़ बनना' आदि अनेक मुहावरे उपन्यास में हैं। एकाध स्थान पर 'दूसरे का तिल ताड़, अपनी आँख का पहाड़ कुछ नहीं' जैसी कहावतें भी हैं।

'कल्याणी' उपन्यास में अलंकारों का प्रयोग जहाँ कहीं हुआ है, वहाँ सायासता नहीं है। 'व्यथा का विष' जैसे शब्दालंकार के प्रयोग अल्प हैं और अनायास रूप से आ गए हैं। अर्थालंकारों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—“एक सौम्य ब्रीडा हल्के बादलों से छन कर आँसू धूप की मानिन्द वहाँ खेलती दीखती है” (उपमा), “वह क्षण भर मुझे देखती की देखती रह गई। मानो बिंदी हरिणी हो। विष कर ही बाधित बन उठी हो, लेकिन हो प्रवृत्त हरिणी ही” (उत्प्रेक्षा), “आज की राजधानी नई दिल्ली क्या ऊपर और क्या भीतर पत्थर नहीं है? खूबसूरती उसकी पत्थर की और गुरुर की है। पानी और घास की ठठक वहीं बिछी है, तो उनके ऊपर तन कर मगरूर पत्थर गुर्गता दीखता है” (मानवीकरण), “डॉक्टर को विश्वास था कि मविष्य उनका उज्ज्वल है, यादल कही है तो सिर रहेगा और जीवन में फिर सुनहरी धूप ही रह जायगी” (रूपक), “प्रीति का भोग है त्याग” (विरोधाभास), इत्यादि।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रस्तुतीकरण आत्मकथात्मक शैली में किया गया है। कथात्मक गीतों के समान इसमें घटनाओं का समावेश अत्यल्प रूप में हुआ है। कल्याणी की पीड़ा को घनीभूत रूप में उपस्थित करना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है। इसलिए यदि इसे गीति-उपन्यास कहा गया हो, तो वह सार्थक है।

उद्देश्य की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास पर विचार करने से पूर्व लेखक के जीवन-विषयक दृष्टिकोण को सर्वप्रथम समझ लेना समीचीन होगा। जैनेन्द्र अद्वैतवादी या सम्पूर्णतानादी हैं। उनकी दृष्टि में बाहर और भीतर, व्यक्ति और परिस्थिति मिश्र मताएँ नहीं हैं। इनकी भिन्नता या द्वन्द्व ही जीवन की मुख्य समस्या है। इसीलिए उन्होंने कहा है—“जगत् नाम द्वन्द्व वा है। द्वन्द्व के माने हैं, दो के बीच का अनिर्वाह। यह दो के, अथवा अनेक के, बीच एकता का अभाव ही हमारी समस्या है।” यह द्वन्द्व की समस्या अहं के कारण उत्पन्न होती है। अहं का विसर्जन प्रेम के द्वारा ही

सम्भव है, ज्ञान के द्वारा नहीं। इसीलिए उन्होंने कहा है—“ज्ञान की जड़ में अहं है।” “सत्य अहंरूप नहीं है और जानना सब अहंरूप है।” इसलिए “तर्क सचाई को नहीं लपेट पाता है।” तर्क की पद्धति अस्वीकृति की पद्धति है, अतः यह पद्धति उपलब्धि में अनुपयोगी है। सत्य की उपलब्धि प्रेम द्वारा ही सम्भव है, क्योंकि “प्रेम अहं के विसर्जन का नाम है।” यह प्रेम या अहिंसा “निज की ओर ही दुर्द्वर्ष है, शेष सब ओर वह स्निग्ध है।” “विघोह में ही स्नेह का निवास है।” यही कारण है कि “भोग में……स्नेह की समाप्ति है।” इसलिए “प्रीति का भोग है त्याग।” गांधीवाद और जैनधर्म की अहिंसा या प्रेम का यह आत्मपीडक दृष्टिकोण जैनेन्द्र को पूर्णतः मान्य है। इसीलिए उन्होंने कहा है कि—“आदमी के भीतर की व्यथा ही सच है। उसे सँजोते रहना चाहिए। वह व्यथा ही शक्ति है। उसमें किसी का साक्षात् नहीं।”^{११} उनके लिए दर्द पीरूप है, रस है। इसी रस या संवेदन को टिकाने के लिए पात्र की आवश्यकता है। कल्याणी इसी प्रकार का पात्र है, विपाद के रस का स्रोत है। इसीलिए सब मिलाकर वह विकास के पथ पर है। आत्मवल के कारण अपवादों में भी अविचल है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से उपर्युक्त आत्मपीड़न (Masochism) का सिद्धान्त स्वस्थ सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता। आत्मदमन के कारण व्यक्तित्व में ग्रंथियाँ आ जाती हैं, जिसके कारण व्यक्ति का स्वभाव विभाव बन जाता है। इसी दमन से उत्पन्न ग्रन्थि के विवर्त में डूबकर कल्याणी भर गई। इसके अतिरिक्त उसका आत्मपीड़न मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परपीड़न से मुक्त नहीं कहा जा सकता। परपीड़न में प्रत्यक्षतः अक्षम होकर ही व्यक्ति स्व आक्रमणावेग के आत्मपीड़न द्वारा परोक्षतः परपीड़न किया करता है। अतः पीड़ा का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गलत है। पीड़ा मानसिक असंतुलन और असंतोष से उत्पन्न होती है। मानसिक असंतुलन अस्वास्थ्य का द्योतक है, विकास का नहीं। इसलिए लेखक द्वारा कल्याणी को विकासपथ पर अग्रसर^{१२} बताना सत्य का अपलाप है। कल्याणी दमन के कारण विपादोन्माद (मेलनकोलिया) से ग्रस्त है। विपादोन्माद के काल में व्यक्ति का नैतिक मन (Super Ego या सुप्राहं) अपने अहं के प्रति अत्यन्त कठोर हो जाता है और अपने में अनेक कमियों की कल्पना करके अपने को दोषी ठहरा कर दण्डित करना चाहता है। कल्याणी के चरित्र में ये बातें हैं, जिनका चरित्र-चित्रण के प्रसंग में स्पष्टीकरण किया जा चुका है। दमन के कारण उत्पन्न अत्यधिक तनाव के कारण वह हेल्थसिनेशन या मिथ्या प्रत्यक्षीकरण के पाश में फँस गई है। कल्याणी का विपादोन्माद पाठक के लिए कण्ठरत्न की स्थिति उत्पन्न कर सकता है, किन्तु कल्याणी के सम्बन्ध में उपन्यास के अन्त में लेखक का यह कहना कि—“व्यथा का विष वह गया है और विपाद का रस ही शेष रह गया है”^{१३}—ठीक प्रतीत नहीं लगता। यह

कैसा रस है, जो उसके जीवन को ही मौत के द्वारा सोख लेता है। कल्याणी की यह मृत्यु व्यक्ति और परिस्थिति के द्वन्द्व का चरम परिणाम है। इसीलिए उपन्यास के अन्त में कल्याणी का "अपराध में से आत्मा प्राप्त" होने की बात कहना समझ से परे की बात है।

अहिंस विषयक विशिष्ट आत्मपीडनपरक दृष्टिकोण के कारण लेखक में अहिंसा-ग्रन्थि आ गई है। परिणामतः वह क्रान्तिकारी पात्रों को अपने उपन्यासों में स्थान देकर उनमें अपने आपको पकड़वाने की भावना भर देता है। प्रस्तुत उपन्यास में पाल ऐसा ही पात्र है। उस पर सरकारी वारण्ट है और उसे पकड़वा देने के लिए कई हजार का इनाम घोषित किया गया है। पाल शहीदा के बेमहारा परिवारों की सहायना के लिए अपने को पकड़वाने की बात सोच रहा है। इस पर उसे बेपैसा आत्मसमर्पण करने के लिए लेखक ने सलाह दी है। इसी प्रसंग में वह क्रान्तिकारियों की 'वीरता' की तुलना में अहिंसापूजकों की 'धीरता' का महत्त्व भी प्रतिपादित करता है। वह यह भी कहता है कि कानून को सुधारने-तोड़ने के लिए मामले में अहिंसक प्रतिकार ही श्रेयस्कर है। कानून का छिप कर पीछे से सामना करने वाले शहीद उसकी दृष्टि में कहीं-न-कहीं पराजित है। अस्वस्थ आत्मपीडनमूलक सिद्धान्त के अनुकूल किया गया यह प्रतिपादन भ्रममात्र है। यदि इसे सत्य मान भी लिया जाए तो भी हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में इससे सम्बन्धित प्रसंग का उपयोग भी नहीं है। कल्याणी के चारित्रिक विकास में पाल के प्रसंग की निरर्थकता स्पष्ट है।

लेखक के चिन्तनादर्श से अमहमत होने हुए भी अन्त में हम यह कह सकते हैं कि लेखकीय सामर्थ्य के कारण ही कल्याणी की कहानी बेम हिस्ट्री होने से बच गई है। यह वृत्ति साहित्यिक सौन्दर्य में सम्पन्न है तथा पाठकों के मन में अनुगूँज पैदा करने में समर्थ है।

टिप्पणियाँ

- १ आधुनिक हिन्दी कथामाहित्य और मनोविज्ञान (द्वि० स०), पृ० १४२
- २ जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक, म० दार्शनिकों के मटनागर, पृ० ८५
- ३ कल्याणी, (ब० सस्करण), पृ० १३६
- ४ वही, पृ० ८२
- ५ वही, पृ० ८१
- ६ वही, पृ० ९५
- ७ वही, पृ० १२२
- ८ जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक, पृ० १३

९. कल्याणी, पृ० १०७
१०. "कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है ।" ('सुनीता' की भूमिका) ।
११. 'परख' की भूमिका ।
१२. कल्याणी, पृ० १२३
१३. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, (प्र० संस्करण) पृ० १२८
१४. कल्याणी, पृ० १०४
१५. साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन,, ले० डॉ० देवराज उपाध्याय, पृ० १३६
१६. कल्याणी, पृ० ९७
१७. वही, पृ० ११९
१८. वही, पृ० २२
१९. वही, पृ० ६६
२०. वही, पृ० १५
२१. वही, पृ० १४५
२२. वही, पृ० ७४
२३. वही, पृ० १४५
२४. वही, पृ० १२
२५. वही, पृ० ५६
२६. वही, पृ० १११
२७. वही, पृ० १४२
२८. वही, पृ० १४४
२९. वही, पृ० १३४
३०. वही, पृ० १३६
३१. वही, पृ० १२९
३२. वही, पृ० १२४
३३. वही, पृ० १४५
३४. वही, पृ० १३७
३५. वही, पृ० ८६
३६. वही, पृ० ३
३७. वही, पृ० १४४
३८. वही, पृ० २
३९. वही, पृ० ४१
४०. वही, पृ० ११४
४१. वही, पृ० १४२

- ४२ वही, पृ० ३
 ४३ वही, पृ० १२१
 ४४ वही, पृ० १३२
 ४५ वही, पृ० १४४
 ४६ वही, पृ० ६३
 ४७ वही पृ० ६७
 ४८ वही, पृ० ७४
 ४९ वही, पृ० १७
 ५० वही, पृ० ५७
 ५१ वही, पृ० ९५
 ५२ वही, पृ० ८४
 ५३ वही, पृ० ९६
 ५४ वही, पृ० १४४
 ५५ वही पृ० १४४
 ५६ वही, पृ० ८९
-

सागर, लहरें और मनुष्य : शक्ति और सीमाएँ

डॉ० चन्द्रमानु सोनवणे

“अचल विशेष के सामाजिक जीवन का भर्वांगस्पर्शी सजीव चित्रण करना ही आचलिक उपन्यास का ध्येय है।”

‘सागर, लहरें और मनुष्य’ की “जीवनदृष्टि समष्टिमूलक न होकर व्यक्ति-मूलक है जो नवस्वच्छन्दवाद से अनुप्राणित है।” —डॉ० इन्द्रनाथ मदान

“आदर्शवादी स्पर्शों के कारण उममे (‘सागर, लहरें और मनुष्य’ में) सत्यार्थ से पतायन की दृष्टि मिलती है, यह प्रवृत्ति आचलिकता की प्रवृत्ति की विरोधी भी पड़ती है।” —डॉ० सावित्री सिन्हा

“सांस्कृतिक प्रमाणीकरण की दृष्टि से उपन्यास उतना समृद्ध नहीं हो पाया।” —डॉ० प्रेमशंकर

सागर, लहरें और मनुष्य

यदि साहित्य जीवन की व्याख्या है, तो इस दृष्टि से उपन्यास साहित्य की सशक्ततम विधा है। इस विधा में वैयक्तिक या सामाजिक जीवन के यथार्थ-चित्रण का समावेश ज्यों-ज्यों अधिकाधिक होता गया, त्यों-त्यों इस विधा का व्यक्तित्व या 'उपन्यासत्व' निखरता गया। इस निखार के कारण वैयक्तिक जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यासों में गहराई आती चली गई तथा सामाजिक जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यासों में व्यापकता का समावेश होता चला गया। आंचलिक उपन्यास सामाजिक जीवन का चित्रण करने वाली उपन्यासिक धारा का एक अंग है। यह प्रजातंत्र और समाजवादी विचारधारा के द्वारा विकसित समष्टिमूलक जीवन दृष्टि की उपज है। हिन्दी साहित्य में समष्टिमूलक प्रगतिवादी विचारधारा के विकास के परिणामस्वरूप आंचलिक कथासाहित्य पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। आंचलिक कथा-साहित्य के सृजन में युग संवेदना से सम्पन्न लेखक का गहरा सामाजिक लगाव ही कारणीभूत होता है। इस लगाव के अभाव में सफल आंचलिक रचना की निर्मिति सम्भव नहीं है। देश की स्वाधीनता के बाद सामाजिक बोध से सम्पन्न साहित्यकारों का ध्यान अविकसित एवं नैसर्गिक जीवन शक्ति से सम्पन्न अंचलों की ओर गया। प्रायद्वीपकल्प विशाल भारत देश में इस प्रकार के अंचलों की कमी नहीं है। दुर्गम पर्वतीय एवं वन्य प्रदेशों में ही इस प्रकार के अंचल नहीं हैं, अपितु बम्बई जैसे महानगरों के उदरों में भी गजमुक्त कपित्थ की तरह ओषित अंचल भरे पड़े हैं। मछली-मार कोलियों का बरसोवा गाँव इसी प्रकार का एक अंचल है, जिसे श्री उदयशंकर भट्ट ने अपने 'सागर, लहरें और मनुष्य' नामक उपन्यास का विषय बनाया है। मछलीमार सागर पुर्वों के जीवन पर लिखा गया यह पहला हिन्दी उपन्यास है। यह उपन्यास सन् १९५५ ई० में लिखा गया है।

बाबू गुन्नावराय, डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी आदि आलोचकों ने 'सागर लहरें और मनुष्य' को आंचलिक उपन्यास माना है। स्वयं श्री उदयशंकर भट्ट ने प्रस्तुत उपन्यास को आंचलिक रूप देने की दृष्टि से मछलीमार समाज से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी देने का प्रयत्न ही नहीं किया है, अपितु विद्विष्ट भापा के प्रयोग का साग्रह प्रयत्न भी

किया है। एक आचलिक उपन्यास के नाते इन उपन्यास को परखने से पहले आचलिक उपन्यास की कमौटियों को मूलरूप में समझना आवश्यक है।

आचलिक उपन्यास में अचल विशेष के जीवन का सर्वांगस्पर्शी चित्रण किया जाता है। अचलविशेष के सर्वांगस्पर्शी चित्रण के लिए कथावाहक अनिवार्य है, परिणामत आचलिक उपन्यास में कथाविपराव-भा आ जाता है। कथावित्तराव के बावजूद उपन्यास के आंतरिक संगठन को बनाए रखना आचलिक उपन्यास के लिए महत्वपूर्ण है। समष्टि जीवन के चित्रण की प्रधानता के कारण इसमें वर्ग प्रतिनिधि पात्रों की बहुलता स्वाभाविक ही है। आचलिक उपन्यास में 'व्यक्ति' नहीं, अपितु अचल विशेष का समस्त जीवन ही नायक होता है। समष्टि जीवन के नायकत्व के कारण कुछ आलोचक इस प्रकार के उपन्यास को नायकशून्य उपन्यास भी मानते हैं। व्यष्टिमूलक सुधारवादी दृष्टि आचलिकता की आंतरिक लय के लिए विस्तारदायी बन जाती है। आचलिक उपन्यास की मापा मी आचलिकता के रंग से रंगी हुई तथा आचलिक जीवन के गन्ध संगीत से परिपूर्ण होती है। आचलिक जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालना ही उसका उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथार्थ चित्रण का आधार अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए इस प्रकार के उपन्यास की सफलता में आदर्शवाद अनुपादेय ही सिद्ध होता है। आचलिक उपन्यास से सम्बन्धित इन सक्षिप्त रूपरेखा के आधार पर यहाँ प्रस्तुत उपन्यास का विवेचन किया जा रहा है।

आचलिक उपन्यास के कथानक का अचल दो प्रकार का होता है—भूगोल-मूलक एवं जन-जातिमूलक। इन प्रकारों के क्रमशः उदाहरण 'मैला आंचल' और 'कब तक पुकारूँ' हैं। 'सागर, लहरें, और मनुष्य' भूगोल विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी 'मैला आंचल' की तरह प्रदेश विशेष के समस्त समाज की कहानी नहीं है, अपितु 'कब तक पुकारूँ' के समान जनजाति विशेष की कहानी है, जो जनजाति 'कब तक पुकारूँ' की करनट नामक जनजाति के समान घुमटू न होकर प्रदेश विशेष में स्थायी रूप से आवास है। आलोच्य उपन्यास की कोली नामक मछलीमार जनजाति महाराष्ट्र के कोकण विभाग में समुद्रतटवर्ती प्रदेश में बसी हुई है। इस उपन्यास में बरसोवा नामक गाँव में रहने वाले इसी जनजाति से सम्बद्ध सागर पुत्रों की कहानी है। बरसोवा गाँव बम्बई महानगर के पेट में समाया हुआ ऐसा गाँव है, जिसके निवासी नगर में रहते हुए भी नागरिक जीवन की सुविधाओं से वंचित है; किन्तु किनारे समुद्र के किनारे हैं। बरसोवा में केवल एक ही पक्की सड़क है, जिसके किनारे उन लोगों के बँगले हैं, जो बरसोवा के कोलीजीवन में पश्मन्न की तरह अनासक्त हैं। तीन-चौपाई उपन्यास की समाप्ति के बाद हमें यह ज्ञात होता है कि, यह सड़क के दोनों ओर बसा हुआ गाँव बम्बई का उपनगर है।

यशवंत कहता है कि यह गाँव "बम्बई का एक टुकड़ा है, जहाँ सड़कें चाँदी-सी चमकती हैं।"^{१३} वह यह भी कहता है कि—“सारा वरसोवा सड़क के किनारे के बँगलों को छोड़कर कितना गन्दा है।”^{१४} इस गाँव में गैर मछलीमार दूकानदार ही नहीं, अपितु ईसाई और मुसलमान कोली मछलीमार भी रहते हैं; किन्तु उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में हिन्दू कोलियों के जीवन को ही अपने कथानक का विषय बनाया है। यद्यपि उपन्यास में वरसोवा के कोली जीवन का ही प्रमुखतः चित्रण हुआ है, किन्तु प्रसंगतः माहीम, वरली आदि स्थानों की कोली वस्तियों के जीवन का भी उल्लेख किया गया है।

जनजातियों का जीवन नैसर्गिक पर्यावरण (Environment) से प्रभूत मात्रा में प्रभावित होता है। उनका जीवन नैसर्गिक पर्यावरण का सुसंवादी होता है। प्रस्तुत उपन्यास में जिस कोली जनजाति का चित्रण हुआ है, उसका समुद्र से अत्यधिक घनिष्ट सम्बन्ध होता है। कोलियों को महीने में कम-से-कम बीस दिन समुद्र में दूर-दूर तक जाना पड़ता है। कभी-कभी उन्हें आठ-बाठ दिन समुद्र में रहना पड़ता है। मछलीमारों के इस जीवन का क्रियारत दृश्य प्रस्तुत उपन्यास में कहीं भी नहीं है। समुद्र के तटीय जल में गाड़े गए लट्ठों के सहारे जालों को फैलाकर भी ये लोग मछलियाँ पकड़ते हैं, इस बात की जानकारी भी रत्ना द्वारा सारिका को मौखिक रूप से दी गई है। चन्द्र के उदयास्त और ह्लासवृद्धि के साथ संबद्ध ज्वारभाटों का महत्त्व मछलीमार व्यवसाय में अत्यधिक है, जिसकी पूर्णतः उपेक्षा कर दी गई है। मछलीमारों का समुद्री जीवन नियमित रूप से प्रवाहित होने वाली हवाओं से बड़ी दूर तक प्रभावित होता है, जिसका इस उपन्यास में कहीं उल्लेख तक नहीं हुआ है।

मछलीमारों को समुद्र में अकस्मात् आने वाले तूफानों से वर्ष में अनेक बार जूझना पड़ता है। बंशी ने अपने बचपन की तूफान-सम्बन्धी दुर्घटना का उल्लेख किया है। माणिक की आपबीती में भी तूफान का वर्णन है, जिसमें तूफान से पहले समुद्र की सतह से मूनी मछलियों के अदृश्य होने की सूचना है। अपने तूफान वर्णन में माणिक ने मछली की पीठ पर बैठ कर समुद्र की अतल गहराइयों में जाकर लोट आने की गप्प हाँकी है और वह भी जन्मजात मछलीमारों के सामने। यद्यपि इस उपन्यास का आरम्भ ही तूफान के सजीव वर्णन के साथ किया गया है; किन्तु यह वर्णन भी तट पर खड़े व्यक्ति की दृष्टि से किया गया है, तूफान में फँसकर उससे जूझने वाले व्यक्ति की दृष्टि से नहीं। इस तूफान के बाद 'समुद्र के किनारे लाशों से पटे पड़े थे',^{१५} किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि इनमें से एक भी लाश उपन्यास के पात्रों से सम्बन्धित नहीं है। औपन्यासिक सार्थकता की दृष्टि से यह सशक्त वर्णन भी निरर्थक हो गया है। इससे कहीं अधिक सार्थक वर्णन रत्ना के स्वप्नगत तूफान का है। उपन्यास के आरम्भ में वर्णित तूफान की सार्थकता इतनी ही है कि इसके

वाद आयोजित महाभारत की नथा ने रत्ना मे मत्तयगवा बनने की इच्छा जगा दी है ।

सागरपुत्री के लिए सागर का महत्त्व उसके आजीविकासाधन होने के अतिरिक्त सैरगाह और क्रीडागण के रूप मे भी है । रत्ना और यशवत का प्रेम सागर के तटीय उथले जल मे खेलते हुए ही गहराई तक पहुँचा है । लेखक ने स्मृतिरूप मे वधित पूर्वकथा के अंश मे इस बात का उल्लेख किया है । किन्तु युवा होने पर जब ये दोनों मड टापू की सैर के लिए जाते हैं तब इनका ध्यान समुद्र की ओर तनिक भी नहीं है । एक स्थान पर समुद्र मे निरुद्देश्य भटकते हुए यशवत की नाव से अपनी नाव सटावर जागला को गपशप करते हुए चित्रित किया गया है । इन दोनों की गप्पो मे लेखक इतना डूब गया है कि उसे यह बात भी याद नहीं रही कि जागला नाव पर बैठा हुआ है, इसीलिए वह जागला को गपशप के बाद फिर से नाव पर जा बिठाता है ।

सागरपुत्री के लिए समुद्र ही खेत होते हैं । इन खेतों के लिए वर्षा प्रतिकूल होती है । कृषक वधूलोवनो से पीयमान मीघों को देखकर मछलीमारी के मन बिन बरसात आगवाओं मे डूबने लगते हैं । बरसात के दिन उनके लिए दुःख होते हैं । वर्षा बहुल कोकण के बरसोवा मे प्रारम्भिक तूफानी वर्षा को छोड़कर केवल रत्ना के स्वप्न मे ही वर्षा के दर्शन हो पाते हैं । स्वप्नगत इस वर्षा को देखकर पाठक को दिलासा मिलता है कि इस आचलिक उपन्यास मे वर्षा ऋतु के तीन बार आने के धावजूद वर्षाविषयक यथार्थ को कम-से-कम स्वप्न मे तो स्थान मिला । सम्पूर्ण उपन्यास ऋतुपरिवर्तन के प्रति पूर्णतः उदासीन है । सम्भवतः वातानुकूलित कमरे मे बैठकर कल्पना के आधार पर आचलिक उपन्यास लिखने का यह स्वाभाविक परिणाम है ।

वर्षाबहुल कोकण अपनी वनस्पतिसमृद्धि के लिए प्रसिद्ध है । नारियल को तो कोकण का कल्पवृक्ष समझा जाता है । इस कल्पवृक्ष का उपन्यास मे आद्यन्त उल्लेख नहीं है । लेखक ने उपन्यास के प्रारम्भ मे वर्णित तूफान के प्रसंग मे "अहकारी पड़ो का कहीं पता न था" कहकर सभी प्रकार के पेड़ों को बरसोवा से लापता कर दिया है । आचलिक उपन्यास मे नैसर्गिक परिवेश का स्थान सजीव पात्र के समान महत्वपूर्ण होता है । नैसर्गिक परिवेश के यथार्थ चित्रण का यहाँ सर्वथा अभाव सा है ।

लेखक ने बरसोवा के निवासियों के रहन सहन आचार विचार आदि का स्थान स्थान पर उल्लेख किया है । बरसोवा मे एकाध मकान को छोड़कर प्रायः सब के सब मकान बच्चे हैं । छट्ठा जैसे दरिद्र लोगों के दोन हीन अँधेरे घरों का अन्तरंग वर्णन प्रभावशाली रूप मे हुआ है । इसमे अतिरिक्त समुद्रतटवर्ती मकानों से सम्बद्ध जीवन का वर्णन भी मूर्त रूप मे हुआ है जहाँ मुम्बाने के लिए सद्यः फैलाई गई

मछलियों में से एकाव मछली कमी-कमार फड़फड़ा उठती है ।

कोकण में स्थित होने के कारण वरसोवा-निवासियों के खाद्यपदार्थों में भात और मछली की प्रमुखता है । भात और मछली के विविध खाद्य प्रकारों का लेखक ने विभिन्न प्रसंगों पर उल्लेख किया है । मछलीमारों को कमी-कमी कई-कई दिनों तक समुद्र में रहना पड़ता है । ऐसे अवसरों पर वे कच्ची तामड़ी मछलियाँ खाकर काम चला लेते हैं । उपन्यास में एक स्थान पर यशवंत को तामड़ी मछलियाँ ककड़ी की तरह चबाकर हड्डियों के टुकड़े फुर करके थूकते हुए चित्रित किया गया है । दण्डि लोगों को पेट भरने के लिए कमी-कमी मछली भी नमीव नहीं होती । इसीलिए इट्ठा को अपने पेट की आग बुझाने के लिए मछलियों की चोरी करने को विवश होना पड़ा है । जागल्य की दृष्टि में तो रोज-रोज चिडड़ा और भजिया खाना भी अमीरी की निशानी है । इन खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त कोलियों में माट्टी (शराब का प्रकार) प्रचलन भी पर्यप्त है । पुरुषों के नमान कोली स्त्रियाँ भी बीड़ी पीती हैं । कोकण के पेय पदार्थों के प्रसंग में पेज (उबाले हुए भात का पानी) को नहीं भुलावा जा सकता, जो बीमारी के बाद स्वास्थ्यमुधारकाल में तथा बीमारी की अवस्था में महत्वपूर्ण पेय है । लेखक ने इट्ठा, दुर्गा आदि की बीमारियों में उसे भुगा दिया है ।

लेखक ने वरसोवा के निवासियों की वेशभूषा का भी स्थान-स्थान पर विवरण दिया है । पुरुष कमर में तिकोना रंगीन श्माल बाँधते हैं और वनियान पहिन्ते हैं । उनके पैरों में चप्पल नहीं होती । स्त्रियाँ घुटनों तक की लाँगदार साड़ी एवं छोटी कमी हुई चोली पहन्ती हैं । उन्हें आभूषणों का शौक होता है । लेखक ने आभूषणों का विवरण देते समय गले में पहने जाने वाले 'मंगलूत्र' (गंगाग्यान्यकार-विशेष) का अर्थ 'मोने की जजीर' मात्र लिखा है, जो ठीक नहीं है । उसी प्रकार कन्याइयों में चूड़ियाँ पहनने का रिवाज है । सम्पन्न स्त्रियों की कन्याइयों में मोने की भी चूड़ियाँ होती हैं । मराठी में चूड़ी को 'वांगड़ी' कहते हैं, जिसका बहुवचन रूप 'वांगड़ा' बनता है । लेखक ने 'वांगड़ा' शब्द को अपने अवगुण ज्ञान के कारण एकवचनी रूप समझकर उनके कोष्ठ में 'कड़ा' अर्थ दिया है । आभूषणों के अतिरिक्त कोली स्त्रियों को फूलों का शौक होता है । उनके कसे हुए जूटों पर फूलों का गजरा प्रायः होता ही है । वेशभूषा के इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि अधिक्षित बंधी और शिक्षित रत्ना की वेशभूषा के भेद का चित्रण लेखक ने नहीं दिखाया है ।

आर्थिक दृष्टि से कोली समाज दरिद्र होता है । नापेक्षतया चिदृश्य जैसे सम्पन्न, कोली जागल्य जैसे गरीबों का शोषण करते हैं । इन नापेक्षतया सम्पन्न कोलियों का शोषण मछलीवाजार के आदमी करते हैं । मछलीमार महत्कार नमिति के गठन के बाद शोषण के कम होने से कोली समाज में 'बुधहाली' के आने का उल्लेख मात्र लेखक ने किया है, बुधहाली के स्वरूप का चित्रण नहीं । वास्तव में

मछलीमारो की खुशहाली मछलियों को सड़ने से बचाने के लिए शीतगृहादि की व्यवस्था पर निर्भर है। यह खुशहाली नाव की उपलब्धता पर भी आश्रित है, क्योंकि मछलीमार व्यवसाय नाव द्वारा ही होता है। इसी कारण मछलीमारो में नाव बेचना अशुभ माना जाता है। माणिक के नाव बेच डालने पर दुर्गा, मांगा आदि ने इसीलिए बहुत बुरा माना है।

दिन में पुरुषों के मछलियाँ लाने के लिए समुद्र में दूर-दूर तक चले जाने पर घर और गाँव में स्त्रियों का राज्य होता है। बाजार में जाकर मछलियाँ बेचने का काम स्त्रियों के हाथों में ही होता है। आर्थिक व्यवहार के सूत्र हाथों में होने के कारण बोली स्त्रियों की स्थिति सापेक्षतया अच्छी होती है। कमाऊ होने के कारण विवाह में लड़की पर रपया मिलता है। माणिक ने रत्ना के लिए बशी को रपये दिए हैं। कमाऊ होने के कारण विवाह के बाद भी काली स्त्री घर की दाम्नी नहीं, अपितु मालकिन बनकर रहती है। उसका घर में राज्य चलता है। समय पड़ने पर वह पति की मरम्मत करने में भी नहीं हिचकिचाती। दुर्गा और रत्ना, दोनों ने माणिक को बेरहमी से पीटा है। विद्वल तो बशी से शिकायत पेश करने हुए कहता है कि—“दर रान मारेंगा तो कइसा मच्छी आएँगा।” बशी तो रत्ना से यहाँ तक पूछती है कि—“बयो रत्ना, कभी माणिक कू मारा नहीं।” आवश्यकता पड़ने पर बोली स्त्री परपुरुष की भी कुटुम्बत करने में सकोच नहीं करती। रत्ना ने विभिन्न अवसरों पर माणिक के पार्टनर लक्ष्मण, सेठ के साले छगामल आदि का पीटकर काली स्त्री के साहस का परिचय दिया है। पार्वती ने तो होली के भरे उत्सव में बाउला को थपट जड़ दिया है।

जनजातियों में जातिपचायतों का महत्त्व बहुत अधिक होता है। प्रस्तुत उपन्यास के यशरत और बलींकर के शगडे और रत्ना पर किए गए विपप्रयोग के प्रसंगों में जातिपचायत को सक्रिय रूप में दिखाया जा सकता था, परन्तु लेखक ने इन प्रसंगों का इस दृष्टि से उपयोग नहीं किया है। केवल उपन्यास के अन्त में डॉक्टर पादुरण द्वारा रत्ना के अपनाए जाने के प्रसंग में बशी ने कहा है कि—“जमात का परवा नई करेंगा।”

धार्मिक दृष्टि से कोलियों के थलकर और शिवकर नामक दो भेद हैं। जागला जैसा सामान्य व्यक्ति भी इस भेद को महत्त्वपूर्ण नहीं मानता। कालों की एक बीरा देवी और जेजुरी का खडोवा कोलियों के आराध्य देव हैं। खडोवा की ही ‘मल्हारी मातंड’ भी वहाँ हैं। इस उपन्यास में कई स्थानों पर ‘खडाला’ देवता की दुहाई दी गई है, सम्भवतः यह कोई स्थानीय देव है। इनके अतिरिक्त बरसोवा में महादेव का भी मन्दिर है। एक स्थान पर बशी ने ‘हनुमान बाबा’ की कृपा की आकांक्षा भी व्यक्त की है। मछलीमार जीवन में समुद्र का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

होता है। स्पेनिश मछलीमार समुद्र की इसी कारण 'ल मार' (सजनी) कहकर उस पर अपना प्रेम प्रकट करते हैं। महाराष्ट्र के कोली समुद्र को देवता मानकर नारियल पीणिमा (श्रावण पीणिमा) के अवसर पर उसकी पूजा करके नारियल की भेंट चढ़ाते हैं। इस उपन्यास में नारियल पीणिमा का प्रसंग तीन स्थानों पर चित्रित हुआ है। नारियल पीणिमा के अतिरिक्त कोलियों का महत्त्वपूर्ण पर्व 'शमगा (वसंतोत्सव)' है, जिसे वे बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। इस अवसर पर सामूहिक नृत्यों का आयोजन होता है, जिनमें जाल फेंककर मछली फँसाने आदि कोली जीवन से सम्बन्धित बातों का अभिनय होता है। वर्म-परिवर्तन की दृष्टि से जनजाति के लोगों के मन बड़े नाजुक (touchy) होने हैं। ईसाई द्वारा रूपा नामक लड़की के भगाये जाने की खबर से वरसोवा में 'संसेशन' फैल गई है।

जनजातियाँ स्थितिप्रिय होती हैं, इसलिए वे शिक्षा की उपेक्षा किया करती हैं। वरसोवा की एकमात्र पढ़ी-लिखी लड़की रत्ना है। मछलीमार सहकार समिति के प्रसंग में रामचन्द्र एवं एक-दो पढ़े-लिखे ईसाई कोलियों का उल्लेख भी हुआ है। पढ़ाई-लिखाई के कारण जिस प्रकार के बदलाव की प्रक्रिया का वरसोवा-जीवन प्रारम्भ मात्र हुआ है। नगर के सम्पर्क के कारण भी गाँव की पारम्परिक एकांगिता में दरारें पड़नी शुरु हुई हैं। पर कुल मिलाकर शिक्षा का स्वस्थ प्रभाव बहुत कम पड़ा है। शिक्षा ने रत्ना के मन में वैभव की भूँज जगा दी है और श्रम के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी है। उसे अपना घर 'उबकाई ला देतवाला' लगने लगा है और वरसोवा का 'एकदम पुराना गाँव' 'नरक' मान्य होने लगा है। अल्पशिक्षित माणिक भी मछलीमार व्यवसाय की घृणा की दृष्टि से देखने लगा है। इसके विपरीत श्रम से जुड़े रहकर यशवन्त ने स्वयं प्रेरणा से जो शिक्षा प्राप्त की है, उसके कारण उसके दृष्टिकोण में नमाजोपयोगी गुणात्मक अन्तर परिलक्षित होता है। इसी अन्तर के कारण वह वरसोवा के नवयुग का अग्रदूत बनाता है। लेखक ने यशवन्त को उन्हीं समाज कार्यों को करते हुए दिखाया है, जो उसकी शक्ति की सीमा में सम्भव हैं। परिस्थिति की विपरीतता के कारण यशवन्त द्वारा जगाई गई चेतना अन्तमय ही समाप्त भी हो गई है। इस प्रसंग में लेखक ने संयम को अपना कर यथार्थ चित्रण की रक्षा की है, यशवन्त द्वारा बड़े-बड़े मुबार कार्यों को सम्पन्न कराने के मोह से वह बच गया है।

लेखक ने 'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यास में कोलियों के सामाजिक जीवन को विभिन्न घटनाओं के माध्यम से प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। डॉ० प्रेमचंदर आदि आलोचकों ने इस उपन्यास के कथानक में सर्वप्रमुख दोष दो अंशों अर्थात् वरसोवा और बम्बई से सम्बन्ध होने का बतलाया है।¹⁹ इन आलोचकों ने मूलमूलक अंश को दृष्टि में रखकर ही यह दोष माना है। वस्तुतः उपन्यास के

अचल की इकाई भूगोलमूलक उत्तनी नहीं, जितनी कि जनजातिमूलक है। इसलिए बम्बई महानगर के पेट में वैसे बरसोवा के कोलियो का सम्बन्ध बम्बई के मछली बाजारों से होना स्वामाविक ही है। इसीलिए मछली बाजार की समस्याओं से सम्बन्धित कथानक अचलेतर में घटित नहीं माना जा सकता। माणिक होटल व्यवसाय प्रारम्भ करने पर ही कथानक आचलिकता से बाहर चला जाता है। चाल-जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण कथानक अनाचलिक है।

माणिक से सम्बन्ध टूट जाने पर रत्ना का वैभवविलास सम्बन्धी भ्रम टूट जाना चाहिए। धीरूवाला के प्रसंग की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि धीरूवाला माणिक का ही बड़ा सस्करण है। ये दोनों पात्र पूँजीवादी व्यक्तिचेतना के प्रतीक हैं। घाटपोपर की घटना के बाद रत्ना के बरसोवा लौटने में कोई अडचन नहीं थी। धीरूवाला के प्रसंग के बाद अनेक अडचनों में राह सुझाने वाली सारिका स्वयं अडचन का कारण बन गई है। उसने मध्यवर्गीय चेतना के अनुसार रत्ना से कहा है— “गिरना चाहे एक बार हो या हजार बार, दोनों में कोई फर्क नहीं है।” इन शब्दों ने रत्ना के लौटने में न जाने क्या स्कावट पैदा की है। कोली रत्ना के लिए मध्यम वर्ग की उपर्युक्त नैतिकता के लिए कोई महत्त्व नहीं है। व्यक्तिगत रूप से भी रत्ना प्रचल कामभावना से परिचालित मत्स्यगघा वनने की इच्छुक नारी है। कामतृप्ति की दृष्टि से निर्वल माणिक के सम्पर्क में रहते हुए उसका मन रह-रहकर यशवन्त की ओर जाता रहा है। विवाह के बाद शिमगा पर्व के अवसर मायके आने पर वह यशवन्त की उदासी को देखकर ‘मोह से भर गई’ थी। ऐसी स्थिति में यशवन्त से अन्त में पुनर्विवाह करना रत्ना के लिए अधिक स्वामाविक था। पाडुरंग (महाराष्ट्र के प्रमुख देवता का नाम भी पाडुरंग है) के समान डॉक्टर पाडुरंग द्वारा रत्ना को अपना कर उसके घूलिसात् जीवन को पुनः रत्न की तरह बहुमूल्य बनाया जाना तो आदर्शवाद मात्र है। रत्ना को यशवन्त से विवाहित दिखाकर यथार्थ की रक्षा के अतिरिक्त इस शिक्षित दम्पति द्वारा बरसोवा को पुनः सुधारचेतना से सम्पन्न दिखाया जा सकता था। लेखक ने उपन्यास के कथानक को व्यर्थ ही कोली जीवन से निरपेक्ष बम्बई की घटनाओं की भौंड में भटका दिया है। प्रेमभूय बम्बई की हवा से विवाहित रत्ना को लेखक ने जनजातिविषयक प्रेम से शून्य होने के कारण आदर्शवाद से विवाहित कर दिया है। बरसोवा और बम्बई की सामन्तवादी व्यवस्थाओं से पीड़ित कोली जनजाति की आचलिक समस्याओं की उपेक्षा कर दी है।

उपन्यास के कथानक का ‘माणिक प्रकरण’ कालविपर्ययकृति में उपस्थित किया गया है। यह कोली जनजाति के जीवन से सम्बद्ध होते हुए भी कोली जीवन के किसी नये पहलू पर प्रकाश नहीं डालता। इस प्रकरण में औरत के घर से भागने की असलील कारणभरीमाता, सास और दामाद का यौन सम्बन्ध आदि निरर्थक

विस्तार की बातें हैं। माणिक की सारी आपबीती को रंगनाथ के द्वारा संक्षेप में सूचित किया जा सकता था। अतः इस प्रकरण का कथाविगिराव मनोरंजक होते हुए भी निरर्थक है। इसी प्रकार 'यशवन्त' प्रकरण में यशवन्त की कथा की अपेक्षा बम्बई का भटकाव ही अधिक है। इस भटकाव में कथानक लट्कमटा गया है। लेखक ने कथानक में मयोगतत्त्व को भी स्थान दिया है। पाटुरंग के दवाग्नाने में रत्ना और बंजी की गेट इसी प्रकार की है। कथानक की दृष्टि से यह उपन्यास घटनाबहुल बन गया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि में विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि इस उपन्यास में आंचलिक उपन्यास के समान पानवाहुल्य है। आंचलिक उपन्यास में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र होते हैं। इनके विपरीत इस उपन्यास में प्रमुख पात्र प्रतिनिधि पात्र न रहकर कुछ विशिष्ट बन गये हैं। उपन्यास के कथानक का पानानुसार किया गया विभाजन इसी तथ्य का सूचक है। व्यक्तिप्राधान्य के कारण उपन्यास की आंचलिकता को हानि पहुँची है। उपन्यास के घटित और वर्णित कथानक में आये सनाम और अनाम पात्र लगभग सौ हैं। इनमें से इट्ठा, जानग्या, मांगा, आदि पात्रों के कारण उपन्यास का आंचलिक रूप बहुत कुछ अमर सका है।

प्रस्तुत उपन्यास का सर्वप्रधान मान रत्ना है। वह जनजाति के पारम्परिक संस्कारों में पली है और शिक्षण के प्रभाव से नागर वैभवधिलास की ओर आकृष्ट है। उसमें कोली जाति की स्त्रियों में पाया जाने वाला नाहग है। वह अपनी माँ के समान जीवट की स्त्री है। वैभव की लालसा को उगने अपनी माँ से ही उत्तराधिकार के रूप में पाया है। वैभवधिलास के समान दृष्टिकोण के कारण यशवन्त के लटकपन से विकसित प्रेम को भूलकर 'प्रेमब्रमे'¹⁴ के बिना माणिक से चिवाहू कर लेती है, परिणामतः अन्त में उसे पछताना पड़ता है। थोड़ी पढ़ी-लिखी रत्ना के मन में शिक्षण के कारण वैभव के गहल बनने लगते हैं। गाँव के घिसे-पिटे जीवन से उसे अगचि हो जाती है। वह धर्म से घृणा करने लगती है और चटक-भटक के प्रेमी माणिक के फदे में जा फँसती है। माणिक के फदे से छूट जाने पर अन्त में गमदुःखी पाटुरंग की पत्नी बनकर अपने को कृतकृत्य नमझने लगती है। डॉ० शान्ति भारद्वाज ने रत्ना को 'क्रान्तिरत्न भारतीय नारी की प्रतिनिधि'¹⁵ मानकर उसके विद्रोह में गहराई देयी है, जो आजवर्यजनक है। यदि रत्ना यशवन्त के प्रेम को दृष्टि में रख कर पुनः बरसोवा लौटकर यशवन्त के सामाजिक कार्य में सहभागी होती तो यह सच गिद्ध हो सकता था।

वैभवधिलास के समान ही रत्ना के चरित्र की दूगरी प्रधान विशेषता काम-लालना की प्रवृत्ति के कारण वह अमर जीवन का वरदान पाना चाहती है। काम-प्रधान उपन्यासों ने उसकी वासनाधारा में ज्वार ला दिया है। माणिक ने नृप्ति न

पाकर वह कभी अपने बन्द कमरे के एवान्त में नग्न होकर शीशे में अपनी छाती के उमार और नितम्बा की उठान देखती है और कभी-कभी उसके अनुपम मन में यश-वन्त और शङ्कर के चेहरे घूम जाते हैं। इतना ही नहीं, वह होटल के बाउन्टर पर जवान गाइड को देखकर ललचा उठती है। उसकी जवानी से खेलना चाहने वाले धीम्बाला के चक्करों में आने पर उसने धीम्बाला को केवल एक बार ही अपने शरीर से खेलने दिया होगा इस बात पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। इस दृष्टि में देखने पर रत्ना का यशवन्त की ओर लौट आना ही अधिक स्वामाविक हो सकता था। यशवन्त की मरी पूरी जवानी को देखकर अनुपम सोमा गमगमा उठी थी और पार्वती रीझ उठी थी। यशवन्त की जवानी ने वशी के मन पर भी मोहिनी डाली थी। यशवन्त के लिए रत्ना 'मन की आराधना' भी थी। 'वरसोवा के राजकुमार' यशवन्त ने रत्ना को न पाकर लोकमेवा से शादी कर ली थी और चाय तक का परित्याग कर दिया था। रत्ना के लिए यशवन्त काम और लरिकाई के प्रेम, दोनों ही दृष्टियों से उपयुक्त था। इसके बावजूद यशवन्त और रत्ना विवाहबद्ध न हो सके। सम्भवतः लेखक का शहरी सस्कार वाला मन ही इस मिलन में बाधक बन गया है, जिसने रत्ना को यशवन्त के पास लौटने नहीं दिया है।

उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र माणिक है, जिसके चरित्र का केन्द्र घना-सक्ति है। वह घनासक्ति के कारण "औरत बेचने" में भी सक्रोच नहीं करता। वचन में समाज द्वारा प्रताड़ित माणिक में सामाजिक दायित्व की भावना का विकास नहीं हो सका है। 'हम दुर्गा के साथ जीवेंगे और उभी के साथ मरेंगे' कहने वाला माणिक दुर्गा के मरने के बाद रत्ना को बरबाद करने के लिए बचा रहता है। वह 'घन्था में मदद होयेंगे' यह सोचकर ही रत्ना से विवाह करता है। उसमें मानवीय सहृदयता की इनकी कमी है कि दुर्गा के मरणमात्र होने पर दुःखग्रस्त होने के बहाने सास की जाँधों में मुँह छिपाकर पड़ा रहता है और अन्त में सास के साथ भी यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। हृदयहीनता और घनासक्ति माणिक के चरित्र की विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

उपन्यास का तीसरा महत्त्वपूर्ण पात्र यशवन्त है। रत्नाविषयक उसका प्रेम रत्ना के माणिक से विवाहित होने के बाद प्रतिहिंसा में बदल जाता है, किन्तु शीघ्र ही इस विकृति से मुक्ति पाकर वह लोकसेवा की ओर उन्मुख हो जाता है। रत्ना के प्रेम के कारण वह आज्ञा-म अविविहित रहता है और रत्ना के त्याग होने पर उसे खोजने के लिए व्याकुल हो उठता है। रत्ना के पांडुरंग द्वारा अपनाई जाने पर वह अपने को रत्ना का 'भाई' बना लेता है। यशवन्त के चरित्र की इस अन्तिम परिणति को छोड़ दिया जाये तो उमका सारा चरित्र अधिक स्वामाविक पद्धति से विन्यस्त हुआ है। उपन्यास के तीन प्रमुख पात्रों में वह ही अधिक मात्रा में आधिकारिता का

प्रतिनिधित्व करता है। उसे आंचलिक जीवन से घृणा नहीं है, तथापि लोकसेवा से शादी करने की बात ने उसके चरित्र को व्यक्तिविशिष्ट बना दिया है।

प्रस्तुत उपन्यास में जागला और वंशी कोलियों के जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले सर्वाधिक सशक्त पात्र हैं। जागला शोषित निम्न वर्ग का प्रतिनिधि है, जो वंशी के लिए बड़े 'काम' (दोनों अर्थों में) का आदमी है। इट्ठा के प्रति आकृष्ट होने पर उसमें अल्पकाल के लिए चेतना-सी जगी थी। इट्ठा से विवाह करने में सहायक बनने पर वंशी उसके लिए देवी बन गई और इस देवी के आगे उसकी जागृत श्रमिक चेतना फिर से दब गई। विवाह के बाद वंशी को जागला के सिवाय इट्ठा के रूप में एक और नीकर मिल गया।

'सागर, लहरें और मनुष्य' का सर्वाधिक सशक्त पात्र वंशी है। वह सम्पन्न कोलीवर्ग की प्रतिनिधि है। शासन की प्रवृत्ति उसके स्वभाव का अंग है। वह आदमियों की कमाई खाने वाली औरतों में से नहीं है। वह बड़ी जीवट की औरत है। उसके चरित्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू उसका वात्सल्य है। रत्ना के हठ के आगे वह झुक जाती है और मन भारकर उसका विवाह माणिक से कर देती है। परन्तु रत्ना और पांडुरंग के प्रसंग में यह दवंग औरत पंचायत के शासन की अवहेलना करने के लिए उद्यत होकर कहती है कि—“जमात का परवा नई करेगा।” काम-जीवन, व्यवहार जीवन आदि में वह कोली स्त्री की सच्ची प्रतिनिधि है, जिसका घर और बाहर दोनों जगह शासन चलता है। वह अपने बड़प्पन के प्रति अत्यन्त सजग है। उसके इट्ठा की सेवा करने में सहज मानवीय सहानुभूति की अपेक्षा यश पाने की कामना ही अधिक प्रबल है। इट्ठा की सेवा करने में सोमा को नीचा दिखाना भी उसका उद्देश्य है। यही बड़प्पन की भावना से प्रेरित तेजतर्र जीवट-वाली औरत रत्ना के त्रियोग में निरीह बनकर दुःख के आघात से अन्वी बन जाती है। बड़प्पन की भावना और वात्सल्यभावना उसके चरित्र के प्रमुख नियामक तत्त्व हैं।

इस उपन्यास में कांतिलाल, शंकर आदि अनेक अनांचलिक पात्र निरर्थक हैं। पांडुरंग का आदर्श चरित्र उपन्यास के आंचलिक गठन और आन्तरिक लय के प्रतिकूल है।

लेखक ने उपन्यास को आंचलिक रूप देने के लिए मराठी और गुजराती से मिश्रित विकृत हिन्दी का प्रयोग करके उसमें कोकणी भाषा की अनुनासिकता की प्रवृत्ति का समावेश कर दिया है। आंचलिक पात्र परस्पर इस विकृत हिन्दी में बातचीत करते हैं तथा अनांचलिक पात्रों के साथ शुद्ध हिन्दी में बोलते हैं। इस नियम का भी सर्वत्र पालन नहीं हुआ है। माणिक ने कोलियों के सामने अपनी आपबीती शुद्ध हिन्दी में सुनाई है और यशवन्त का समाज गुवार सम्बन्धी भाषण शुद्ध हिन्दी

में किया गया है। रत्ना आवेश में आकर कृत्रिम भाषा भूलकर सहज भाषा में भाषिक से कहती है—“एक बेचारी अबला की सेवा करना व्यभिचार है, बदमाशी है, तो मैं बदमाशी करूँगी।” वशी भी कही-कही शुद्ध हिन्दी में बातें करने लगती है, यद्यपि वह शिक्षित नहीं है। एक स्थान पर वह कहती है—“अब यशवत से ही मैं रत्ना की शादी करूँगी।” इसके अतिरिक्त कोलिया की लेखक-निमित्त कृत्रिम भाषा के बीच में कोकणी लोकगीतों की पत्तियाँ भी दी गई हैं। ‘बाहेर गावाला मचवा बाँधला—’ यह गीत भाषिक की आपबीती में आया है। इस समूहगीत का पूरा अर्थ मुझ जैसे मराठी भाषी व्यक्ति की भी समझ में नहीं आता।

लेखक ने कही-कहीं कोलिया की कृत्रिम भाषा में प्रयुक्त स्थानीय शब्दों के अर्थ वधनी में दिये हैं, जैसे—तोडी (नाव), डोल (जल), सुकाणू (पतवार), शीड (मसल) इत्यादि। कही-कही वधनी में दिए गए शब्दों के अर्थ अशुद्ध भी हैं, जैसे—मगलसूत्र (सोने की जड़ी) बागडहया (बड़ा) आदि। इन शब्दों के सम्बन्ध में कोलियों की वेशभूषा प्रमग में स्पष्टीकरण दिया गया है। इस प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त ऐसे अनेक कोकणी शब्द उपन्यास में भरे पड़े हैं जिनका अर्थ हिन्दी भाषी व्यक्ति समझ ही नहीं सकता। लेखक ने धोच, पू, मागिती, लेकर, माशी आदि अनेक शब्दों का जहाँ-तहाँ अर्थ दिये बिना ही प्रयोग किया है। इस प्रकार प्रयोग के कारण भाषा की बोधगम्यता की क्षति पहुँची है। बोधगम्यता के मूल्य पर हिन्दी भाषा की रचना में अहिन्दी शब्दों का प्रयोग किसी प्रकार भी समर्थनीय नहीं है। हिन्दीतर भाषा के उन्ही स्थानीय शब्दों का हिन्दी में प्रयोग क्षम्य है, जिनके लिए हिन्दी के अपने प्रतिशब्द न हों। उपन्यास की कृत्रिम भाषा में ‘नीद नही वापरा’ जैसे मद्दे प्रयोग भी हैं, जिनका प्रयोग असम्भव है। ‘मरजीचा मालक’ प्रयोग में तो मराठी की ‘चा’ सम्बन्धविभक्ति का प्रयोग अवाञ्छनीय है। कृत्रिम भाषा की बनाली के आधार पर आचलितता को खड़ा करने का लेखक का प्रयत्न असफल रहा है। डॉक्टर प्रेमशंकर ने इस कृत्रिम भाषा को न जाने किस आधार पर सहज कहा है? आश्चर्य यह है कि इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि—“वरमोरा की बोली इस रचना को विशिष्ट बनाती है।” इसी प्रकार डॉक्टर सुपमा घवन ने इस उपन्यास में ‘भाषा का सफ़र प्रयोग’ देखा है। कला की बोधगम्यता पर आघात करने वाली कृत्रिम भाषा कैसे ‘विशिष्ट’ और ‘सफ़ल’ कही जा सकती है?

प्रस्तुत उपन्यास में भाषा में मराठी शब्दों के सम्मिश्रण के अतिरिक्त गुजराती भाषा के शब्दों का मिश्रण भी किया गया है। बातिलाल की हिन्दी में ‘शुं करिख’ ‘पशी’ आदि गुजराती के प्रयोग सटकने हैं। रत्ना सर्वत्र अपनी माता को ‘बाय’ कहती है, पर एकाध स्थल पर उसने गुजराती के ‘बा’ शब्द का प्रयोग किया है। बहुत से गुजराती ‘ड’ अक्षर के स्थान पर ‘र’ अक्षर का उच्चारण करते हैं। इसी

त्रुटि के कारण धीरूवाला कहता है—“घोरा का काम गारी तो नहीं करेंगा ।”^{१५} इस प्रकार के उच्चारण दोष से युक्त प्रयोग स्वाभाविक कहे जा सकते हैं । इसी प्रकार सेठानी की भापा का बोलीगत लहजा भापा को अधिक सहज बना देता है । वह रत्ना से कहती है—“इसकी भी कोई इज्जत है, खसम छोड़के इज्जत लिए फिरै है ।”^{१६} गुंडे शंकर की भापा की शोखी भी स्पष्ट है । वह रत्ना से कहता है—“यह भरपूर जवानी यों ही खोने लिए नही है मेरी जान ।”^{१७} लेखक ने उपन्यास में अंग्रेजी के बहुप्रचलित मैनेजर, कारपोरेशन आदि शब्दों का भी जहाँ-तहाँ प्रयोग किया है । कहीं-कहीं ‘ग्रेट शॉक’ जैसे सविशेषण संज्ञा शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । एक-दो स्थानों पर अंग्रेजी के पूरे-के-पूरे वाक्य तक प्रयुक्त हुए हैं । इट्टा की सेवा में संलग्न रत्ना को देख कर दरवाजे की नर्स उससे कहती है कि—“यू केन बी ए वेरी गुड नर्स ।”^{१८} इसी प्रकार धीरूवाला की ईमानदारी पर सन्देह होने पर रत्ना उससे गुस्से में कहती है कि—“आई डाउट योर सिसियरिटी ।”^{१९} क्रोध के आवेश में व्यक्ति सहज भापा का प्रयोग करता है, किन्तु इसके विपरीत यहाँ रत्ना ने अंग्रेजी का प्रयोग किया है, रत्ना के लिए अंग्रेजी भावावेश की भापा नहीं हो सकती । विवेचन के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उपन्यास में अहिन्दी शब्दों के प्रयोग में विवेक और संयम से काम नहीं लिया है ।

उपन्यास में लेखक ने वर्णन-विवरण में समर्थ भापा का प्रयोग किया है । उपन्यास के प्रारम्भिक तूफान का वर्णन सशक्त शब्दों में हुआ है । इस तूफान के समय चारों ओर “इस्यात की तरह ठोस अंधेरा” छाया हुआ था । ‘निगाहों की सुई’ के लिए वह अमेद्य था । इस स्थिति के कारण “हृदय का प्रकाश बुझ रहा था ।” “अंधेरे ने वस्तु की इकाई को पी लिया था । केवल कुछ दूर पर विजली की वस्तियाँ अस्तित्व के लिए लड़ रही थीं ।” इस तूफान से अनजान घर में सोती हुई स्त्रियों की “अंगियों में छिपे भूधरों पर काम नाग” डोल रहा था । इसी प्रकार दुर्गा के शरीर का वर्णन करते हुए लेखक ने उसे ‘गदराये कटहल की तरह मुन्दर’ कहा है । उपन्यास में कोकण की निसर्गसमृद्धि की उपेक्षा हुई है । कोकण में कटहल का विशेष रूप से प्राधान्य होता है । प्रस्तुत रूप में कटहल का कहीं भी वर्णन नहीं है, किन्तु अप्रस्तुत में ही उसे देखकर अल्प-सा सन्तोष अद्यक्ष होता है । उपन्यास के अन्त में लेखक ने रत्ना को पांडुरंग के बालों से बुने जाते हुए स्वप्नों में उलझाकर उसे यथार्थ आंच-लिक जीवन से भले ही दूर कर दिया हो, परन्तु पाठकों को रत्ना के भावजगत् के निकट तक पहुँचा दिया है ।

प्रस्तुत उपन्यास की भापाशैली पर कोली जाति के जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । उदाहरणार्थ रत्ना के वियोग में वंशी मछली की तरह तड़पती है तो यशवन्त के लिये रत्ना ह्वेल है, जिसे जाल में फँसाना आसान नहीं है । यशवन्त

के प्रसंग का उदाहरण दिया गया है। रत्ना के मन में मत्स्यगधा बनने की कामना है। अन्त में समुद्र से लड़ने वाली कोली जाति की स्त्री निराश होकर अपनी नाव को स्वच्छन्द बहने देना चाहती है और बहते हुए जीवन के उतार-चढ़ाव देखना चाहती है। वह यह देखना चाहती है कि आसिर अन्त में उसकी नाव किस किनारे जा लगेगी। इस प्रकार उपन्यास की अलंकार-याजना पर कोली जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, जिसके कारण उपन्यास की अलंकार-याजना अधिक औचित्यपूर्ण बन गई है।

उपन्यास की भाषा में मुहावरे और कहावतों का भी यथायोग्य रूप में प्रयोग हुआ है। अनेक सुन्दर सूक्तियाँ भी उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं, जैसे—“जीवन का दूसरा नाम है सृष्टि,” “ज्ञान और अज्ञान दोनों की कड़ियों में सदेह झूलने लगता है,” “जो पाप स्वीकार कर लेता है वह पापी नहीं होता” इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन में उल्लिखित गुणदोषों के अनिरिक्त कुछ गंभीर बातों की ओर भी ध्यान चला जाता है। तूफान में बहकर आने वाला माणिक देहोशी के समाप्त होते ही पहला वाक्य यह कहता है कि—“भरा नाम माणिक है।” देहोशी से होना में आते ही अपना परिचय देने की बात अटपटी-सी लगती है। इसी प्रकार यशवत ने मछलीमार समिति के मुँशी से पढ़ना-लिखना सीखा, किन्तु इस उल्लेख के बीस-चाईस पृष्ठों के बाद मछलीमार सहकार समिति की स्थापना का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की तांत्रिक मूलों से बचना आवश्यक है।

अन्त में निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि इस उपन्यास में कालियों के मर्वागस्तर्शी जीवन के चित्रण में लेखक को सीमित रूप में ही सफलता मिली है। डॉ० प्रेमशंकर ने इस दृष्टि से ठीक ही लिखा है कि—“सांस्कृतिक प्रमाणीकरण की दृष्टि से उपन्यास उनना समृद्ध नहीं हो पाया।”^१ इन्हीं कारणों से श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री शिवदानसिंह चौहान आदि ने इस उपन्यास को सीमित अर्थों में आचलित उपन्यास माना है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान, डॉ० सुप्रभा घवन आदि ने इस उपन्यास की जीवनदृष्टि के समष्टिमूलक न होने के कारण इसे आचलिक उपन्यास मानने से इनकार किया है। वस्तुतः सत्य स्थिति यह है कि लेखक ने आचलिक उपन्यास के रूप में इसे लिखने का प्रयत्न किया है, किन्तु कोली जनजाति के साथ गहरे लगाव के अभाव के कारण वह असफल रहा है।

टिप्पणियाँ

- १ उप (निवृत्त) + न्यास (रखना) = उपन्यास अर्थात् पाठक को जीवन के निकट पहुँचाने का साधन।
- २ ‘सागर, लहरें और मनुष्य’ (न० सत्करण), पृ० २३५

३. 'सागर, लहरें और मनुष्य'—पृ० २३९
४. वही, पृ० ६
५. वही, पृ० २०९
६. वही, पृ० ३
७. वही, पृ० १०
८. वही, पृ० १०
९. वही, पृ० १२३
१०. वही, पृ० २०३
११. वही, पृ० ३०९
१२. विवेचनासंकलन (भाग ३)—पृ० २५
१३. सागर, लहरें और मनुष्य—पृ० २८५
१४. वही, पृ० २२४
१५. वही, पृ० ११२
१६. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन (प्र० संस्करण), पृ० २२१
१७. सागर, लहरें और मनुष्य, पृ० ७६
१८. वही, पृ० १९७
१९. वही, पृ० १९३
२०. वही, पृ० ३७
२१. वही, पृ० ८०
२२. विवेचनासंकलन (भाग ३), पृ० ३३
२३. आज का उपन्यास (प्र० संस्करण), पृ० ७१
२४. हिन्दी उपन्यास (प्र० संस्करण), पृ० १४९
२५. सागर, लहरें और मनुष्य, पृ० २६४
२६. वही, पृ० २५६
२७. वही, पृ० १९५
२८. वही, पृ० ५५
२९. वही, पृ० २८१
३०. वही, पृ० १८०
३१. विवेचनासंकलन (भाग ३), पृ० ३०

सूरज का सातवाँ घोड़ा : मध्यवर्गीय जीवन के सात रंग

ओम्प्रकाश होलीकर

जब पूरी व्यवस्था में वैईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विवृति को अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी भर्थादाओं को भी; क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह कर नहीं पाते। अतः नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति में समझौता करते जाते हैं।

—धर्मवीर भारती

इन सवा सौ पृष्ठों में भारती ने सवा हजार पन्नों की बात कही है—यह उसकी कला का सबसे बड़ा कमाल है। इतनी छोटी भूमि पर इतना बड़ा चित्र दे सकने का एकमात्र रहस्य है—उसकी यथार्थ की पकड़, जिस सामाजिक जीवन को उसने लिखा है उससे उसका निकटतम सम्बन्ध, परिचय और पैठ, यही कारण है कि वे चित्र इतने स्वाभाविक हैं, इतने सच्चे हैं कि झूठे, गली, पड़ोस सभी जगह मिल जायेंगे—अतः इसी अनुपात में प्रभावशाली भी हैं।

—राजेन्द्र पादव

सूरज का सातवाँ घोड़ा

कृति की संख्या की अल्पता के बावजूद साहित्य में विशिष्ट स्थान बनाये रखने वालों में धर्मवीर भारती अपना एक पृथक् व्यक्तित्व रखते हैं। कविता, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, पत्रकारिता, रिपोर्ताज इत्यादि सभी विधाओं का स्पर्श कर उनके स्वरूप को निखारना भारती की अपनी विशेषता है। हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' ऐसे बिन्दु पर स्थित है, जिसे किसी भी कोण से देखने पर वह अपने स्वरूप को विशिष्ट बनाये हुए है। विषय तथा शिल्प की सामयिकता और नवीनता ने उसका स्वरूप रोचक तथा मोहक बनाया है। इसका रचनाकाल सन् १९५२ ई० है। यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यास 'गुनाहों का देवता' से दोनों दृष्टियों से—विषय और शिल्प—भिन्न है अतः आलोचकों ने इसे शिल्पप्रधान उपन्यासों की कोटि में समाकलित किया है।

यह उपन्यास कथात्मक उपन्यास है—अनेक कहानियों में एक कहानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहानियों की संख्या छह है। सभी कहानियाँ प्रेमकथा-सी लगती हैं। किन्तु यह कथा-माला प्रेम की अलग-अलग मणि न होकर सामाजिक वर्ग-वैषम्यरूपी विषय-ऐक्य के भूज से गुंथी गई है। निम्न-मध्य-वर्ग की सामाजिक, नैतिक, वैचारिक विषमता का चित्रण उपन्यास का कथ्य है। इस विषमता के चित्रण के लिए ही भारती ने छह कहानियों के माध्यम से मध्यवर्गीय पात्रों के विभिन्न दृष्टिकोणों, परिस्थितियों और पहलुओं को नामने रखा है।

उपन्यास के 'पहली दोपहर' शीर्षक में वर्णित कहानी तन्ना और जमुना की प्रेम-कहानी है। दोनों ही मध्यवर्गीय पात्र हैं। कहानी विकसित होती रहती है और पात्रों के जीवन की उति होती रहती है; यही इन कहानियों के पात्रों की विशेषता है—जिसे उजागर करना भारती का मुख्य उद्देश्य रहा है। दहेज न दे पाने के कारण तथा जाति-उपजाति के विष से सींची हुई सामाजिक परम्परा के कारण जमुना का विवाह उसके प्रेमी तन्ना से न होकर वृद्ध जमींदार के साथ—वह भी तिहाज—होता है। निम्न-मध्य-वर्ग में स्त्री की सामाजिक स्थिति और यौथी मर्यादा एवं रुढ़ियों ने

अस्त शिकार जमुना विपगत तथा विवश होकर ही समाज के लिए भीषण समस्या बन जाती है। इस प्रकार इस कहानी में निम्न मध्य-वर्ग की थोड़ी रुढ़िप्रियता का मोह दर्शाया है, जिसके शिकार होकर पात्र विवश हो जाते हैं। यह विवशता ही उनमें विमर्शिता को उत्पन्न करती है और यह विमर्शिता निम्न-मध्यवर्ग के जीवन को विडम्बनापूर्ण बना रही है।

दूसरी कहानी पहली कहानी को आगे बढ़ाती है। यह भी जमुना के वैवाहिक जीवन से सम्बद्ध है। पहली कहानी जमुना की जीवन-यात्रा का पूर्वार्द्ध है तो दूसरी उसका उत्तरार्द्ध। उसके पूर्वार्द्ध में आर्थिक विपन्नता दिखाई है तो उत्तरार्द्ध में काम-भावना की अतृप्ति से उत्पन्न समस्या दिखाई है। धनी और सम्पन्न पति के मिलने पर भी उसकी कामभावना अतृप्त रह जाती है और यह अतृप्ति ही उसके नैतिक पतन का कारण बनती है। इस कहानी में जमुना के चारित्रिक पतन का कारण बताया है। आज के निम्न-मध्यवर्ग के युवा जगन् की अर्थ और काम-भावना की अतृप्ति की समस्या अत्यधिक भीषण है। उसके जीवन में अर्थ और काम दोनों का अभाव है और वस्तुतः ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। अतः मध्यम वर्गी को इन्हें प्राप्त करने के लिए किस प्रकार पतित होना पड़ता है, इसका ज्वलंत उदाहरण जमुना की चारित्रिक अवनति है।

तीसरी कहानी तन्ना और जमुना के सम्बन्धों से उत्पन्न मानसिक स्थिति से सम्बद्ध है। दोनों ही पात्र परम्पराओं, रूढ़ियों और विचारधाराओं से इस प्रकार ग्रस्त हैं कि इनके विरुद्ध लड़ना चाहकर भी वे विद्रोह नहीं कर पाते। समस्या की गम्भीरता, भीषणता उन्हें बार-बार विद्रोह करने के लिए उबसाती है, पर वे झूठी मर्यादाओं के विरुद्ध साकार रूप से विद्रोह नहीं कर पाते। तन्ना ईमानदार व सच्चरित्र पात्र है। इसलिए वह असत्य के साथ समझौता नहीं कर पाता। जमुना भी इसी प्रकार नैतिक विकृति और झूठी सामाजिक मर्यादा का शिकार है। वह न तो ईमानदार ही रह सकती है और न ही रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह कर सकती है। इसलिए भाणिक मुल्ला कहता है—'जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विकृति को अस्वीकार करें और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी, क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते। अतः नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति से समझौता करने जाने हैं।' इसके साथ ही वे तन्ना को इस प्रकार धिक्काते हैं—'लेकिन जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फं परिष्कृत कायरता होती है। सत्कारों का अन्धानुसरण।' इस प्रकार इस कहानी में कोल्हू के बेल के समान ही आँव मंदकर चक्कर काटने

वाले की तरह नरक की जिन्दगी को बिताते हुए उससे उबरने की कोशिश न करने पात्रों की समस्या का विश्लेषण किया है ।

चौथी कहानी रोमांटिक है । यह माणिक मुल्ला और उनकी पूर्वप्रेयसी तथा तन्ना की पत्नी लिली की प्रेम-कहानी है । कहानी में दोनों के प्रेम का रमानी वर्णन है । लिली भावुक पात्र है—वह पड़ी-लिखी है । अतः थोड़ी रुढ़ियों और झूठी मर्यादाओं के विरुद्ध वह विद्रोह के लिए तैयार भी होती है । किन्तु माणिक की भीरता और कायरता तथा झूठी मान-मर्यादा के भय ने उसकी विद्रोही वृत्ति को दबा दिया । इन प्रकार लेखक इसमें युवा-जगत् में पनपने वाली प्रेम की स्थिति का चित्रण करता है, किन्तु नैतिक साहम से अभाव के कारण वे उसे यथार्थ जीवन में उतार नहीं पाते और वह प्रेम इन मध्यवर्ग के युवक-युवतियों के लिए केवल कल्पना की वस्तु बनकर रह जाती है ।

पाँचवीं कहानी भी प्रेम-कहानी है । किन्तु यह प्रेम एक समस्या का माध्यम बनकर ही यहाँ चित्रित हुआ है । इसका नायक माणिक मुल्ला ही है और नायिका है अशिक्षित किन्तु सुन्दर—सत्ती । दोनों भी युवा हैं । कुछ ही दिनों के सम्पर्क में दोनों के हृदय में प्रेम की भावना जागृत होती है । बुजुर्गों को यह प्रेम बिल्कुल पसन्द नहीं और चमन ठाकुर तथा महेसर दलाल इस वर्ग के प्रतिनिधि बनकर खलनायक का रूप धारण करते हैं । सत्ती, लिली और जमुना दोनों से सर्वथा भिन्न है । जमुना के समान वह अशिक्षित है किन्तु अनैतिक नहीं । लिली के समान सुन्दर है किन्तु कोरी भावुक नहीं । उसका स्वभाव दोनों नायिकाओं से भिन्न है । उसमें विद्रोह की भावना के उग्र लक्षण देखते हैं । माणिक को वह अपना जीवन-साथी बनाने के लिए, प्रत्येक के साथ विद्रोह के लिए तैयार है किन्तु माणिक भीरु और कायर मध्यवर्ग का प्रतीक है; जो झूठी मर्यादाओं और कुलीनता के कँचुल को हानिप्रद समझकर भी उत्तार नहीं पाता और उसकी भीरता का शिकार बनती है—सत्ती । उसे विषय होकर महेसर दलाल के नाथ शेष जीवन व्यतीत करना पड़ता है । जिसका अन्त दारुण (जो कि सत्य नहीं है) दिखाकर समस्या को भयावह रूप प्रदान करता है । मध्यवर्गीय युवक की भीरता, कायरता, झूठी मर्यादाओं और रुढ़ियों से चिपके रहने की प्रवृत्ति और इस सब के फलस्वरूप अपनी प्रेमिका की दुर्दशा का उसे कारण बताकर उनकी विसंगति, विषमता और विडम्बना का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

‘क्रमागत’ शीर्षक के द्वारा यह स्पष्ट है कि पाँचवीं कहानी का उत्तरार्द्ध या विकास ही छोटी कहानी में विवेचित है । यह कहानी मध्यवर्ग के पात्रों की चारित्रिक या मानसिक स्थिति का उद्घाटन करती है । प्रेम की विफलता या अमफलता के कारण जहाँ नारी-वर्ग की शोचनीय तथा दयनीय स्थिति बनती है, वहीं ये युवक भी

स्वयं व्यक्तिवादी, असांमाजिक और आत्मघाती बनते हैं। माणिक इमो प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले युवक पात्र का प्रतीक है। इस प्रकार इस कहानी में उसकी बाह्य स्थिति की अपेक्षा आन्तरिक स्थिति का चित्रण किया है, जिसमें समाज-भीरु और झूठी मर्यादाओं से चिपके रहने वाला पात्र स्वयं को प्रताड़ित करता है और इस प्रकार वह सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्वों में अपने को बचाता फिरता है। किन्तु भारतीय का मत है कि ऐसे पात्रों की "न कोई दिशा है, न पथ, न रथ, न प्रयास और न प्रगति क्योंकि पतन को, नीचे गिरने को प्रगति तो नहीं कह सकते।"।

सातवीं दोपहर में कोई कहानी नहीं, सभी कथाओं का केन्द्रोत्करण तथा भविष्य के प्रति आस्थामय स्वर मुखरित हुए हैं। बाकी छ घोड़े यदि दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हो भी गये हैं तो भी हमें निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि अभी "सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान् है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उस पर रखनी चाहिए।" क्योंकि यही सातवाँ घोड़ा "हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है।"।

कथानक का आकार उपर्युक्त छ प्रेम-कथाओं से मिलकर बना है। ये सभी प्रेम-कथाएँ प्रासंगिक अध्ययन की सुविधा के लिए कही जा सकती हैं और सब परस्पर मिलकर एक नवीन समग्र कथा का निर्माण करती हैं, जिसे आधिकारिक कथा की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु विशेष ध्यातव्य यह है कि इन दोनों कथाओं का विषय एक होते हुए और पात्र भी एक ही होने हुए वे आधिकारिक कथा की गति में बाधा उपस्थित नहीं करते, क्योंकि ये छह प्रेम कहानियाँ मुख्य कथा में न आये हुए सूक्ष्म प्रतारों का उद्घाटन करती हैं। इन प्रासंगिक कथाओं में प्रेम की विभिन्न स्थितियों और पात्रों के विभिन्न स्तरों को चित्रित किया गया है।

कथानक में आरोह-अवरोह तथा सघर्ष की स्थिति तो विद्यमान है, किन्तु वह सूत्रबद्ध-सा नहीं दीख पड़ता। अतः पाठक के मन में एक प्रश्नवाचक चिह्न—जिसकी परिणति चमत्कार में होती है—रहता है। भारतीय की यह विवशता भी है क्योंकि घोड़े से कथानक में उसे सम्पूर्ण युग या मध्यवर्गीय पात्रों की अर्थ तथा काम-सम्बन्धी सभी स्थितियों और दृष्टिकोणों का चित्रण करना आवश्यक था। अतः वे स्वयं 'निवेदन' में स्वीकार करते हैं—“बहुत छोटे-से चौखटे में काफी लम्बा घटनाक्रम और काफी विस्तृत क्षेत्र का चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढग अपनाता पड़ा है।”। तथापि सघर्ष से उत्पन्न चमत्कृति और कौतूहल उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान है।

उपन्यास की सभी कहानियाँ परस्पर अनुस्यूत हैं। सभी एक दूसरे की पूरक तथा विकासिका हैं। प्रत्येक कहानी में घटना का पूर्व-संकेत किया गया है, बाद में उमका विस्तार किया गया है। लेखक की यह साकेतिकता पाठक को कथानक में

रमाने में और उसमें कौतूहल बनाये रखने में सफल रही है। आधुनिक जीवन की समस्या को प्राचीन कथा-शैली में समन्वित न कर लेखक ने उसे अत्यधिक मोहक रूप दिया है और साथ ही रोचकता को गम्भीरता से समन्वित किया है। प्रभावोत्पादकता तथा कौतूहल के लिए घटना में चमत्कार-सृष्टि भी की है, जिसे तीसरी और पाँचवीं कहानी में देखा जा सकता है। इसी प्रकार औपन्यासिक एकसूत्रता के लिए अप्रत्याशित चमत्कार के दर्शन चौथी कहानी में होते हैं। ये सब चमत्कार ही कथानक में रोचकता और कौतूहल का निर्माण करते हैं।

कथानक का विशिष्ट गुण है—हास्य और रुदन का मिश्रण। ऊपर से भारती का हास्य पाठकों को हँसाता है किन्तु उसका निष्कर्ष उन्हें रलाता है। प्रथम दो कहानियाँ हास्य और रुदन के संयोग से यथार्थ जीवन की कटुता को 'मधुवेष्टित कटु औषध' के समान रखते हैं जो पाठकों के मन पर एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ती हैं। वह प्रभाव अत्यन्त तीक्ष्ण, मर्महत तथा मन को कचोटने वाला है। शायद भारती को हास्य के माध्यम से समाज की वक्रता, विद्रूपता या विडम्बनरत्मक स्थिति का पर्दाफाश करना ही उद्देश्य रहा हो। यथार्थपरकता और प्रमविष्णुता इसके कथानक की अपनी ही विशेषताएँ हैं। इसके लिए उन्होंने विषयानुरूप वातावरण का विधान किया है। मध्यवर्गीय जीवन की उमस के चित्रण के लिए उसी प्रकार के शब्दों का अवलम्ब ग्रहण किया है — जो उसे यथार्थ, कटु तथा प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

एक ली छः पन्नों के इस छोटे से उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज के विविध पक्षों को भारती ने वखूबी उतारा है। "इन सवा सौ पृष्ठों में भारती ने सवा हजार पन्नों की बात कही है—यह उसकी कला का सबसे बड़ा कमाल है।.....इतनी छोटी भूमि पर इतना बड़ा चित्र दे सकने का एक-मात्र रहस्य है—उसकी यथार्थ की पकड़, जिस सामाजिक जीवन को उसने लिया है उससे उसका निकटतम सम्बन्ध, परिचय और पैठ; यही कारण है कि वे चित्र इतने स्वाभाविक हैं, इतने सच्चे हैं कि मुहल्ले, गली, पड़ोस सभी जगह मिल जायेंगे — अतः इसी अनुपात में प्रभावशाली भी है।"

पात्र : इस उपन्यास में कुल मिलाकर १२ पात्रों की योजना की गई है। ९ पुरुष पात्र और ३ स्त्री पात्र हैं। पुरुष पात्रों में भी माणिक, महेसर और तन्ना ही प्रमुख हैं। वस्तुतः उपन्यास के पात्र उद्देश्य के साधन रूप में प्रयुक्त हुए हैं। सभी पात्र निम्न-मध्य-वर्ग के और विविध प्रकार के हैं, जो प्रातिनिधिक रूप में चित्रित किए गये हैं।

माणिक : माणिक कश्मीरी हैं; मुल्ला उनकी जाति, उपनाम नहीं। लेखक ने उन्हें यहाँ कथाकार के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके जीवन के अनुभवों को

लेखक ने विषयानुरूप शैली में ढाला है। कहानी पर उनका पूर्ण अधिकार है। इसके साथ ही राजनीति और प्रेम उसके जीवन के अमित्र अंग हैं। मित्र-मण्डली में इन दो विषयों पर घटो बहस या चर्चा का होना उनकी इन दोनों की अन्तर्प्रेत का सबेत्तर कराती है। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है। उपन्यास के आदि से अन्त तक सभी कहानियों में वे मौजूद रहते हैं—कभी नायक के रूप में, कभी कथाकार के रूप में और कभी सूत्रधार के रूप में। इसी आधार पर उन्हें उपन्यास का नायक भी कहा जा सकता है। सभी कहानियाँ और पात्र माणिक द्वारा संचालित हैं। उसका चरित्र विस्मयनीय और गद्यात्मक है। माणिक परिस्थितियों के अनुसार कभी अपने को ढालते हैं तो कभी उससे स्वयं को अछूता भी रखते हैं।

माणिक मध्यमवर्गीय व्यक्ति हैं और वे निरा वैयक्तिक न होकर सामाजिक तथा वर्गगत प्रातिनिधिक पात्र हैं। अतः उनके जीवन में उठी हुई समस्याएँ उनकी वैयक्तिक ही न होकर सामाजिक भी हैं। उनके जीवन का केन्द्र बिन्दु है—प्रेम। क्योंकि प्रेम ही मानव जीवन की संचालिका वृत्ति है। माणिक के जीवन में तीन नारियाँ आती हैं किन्तु वह तीनों से असंपृक्त बन जाते हैं। जमुना से प्रेम कर उसे अन्त तक नहीं निभा पाते, लिली से उनका प्रेम रूमाणी है और सती से लोकलाज के कारण अपनी आंतरिक प्रेम भावना का प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं।

उनका यह रूप आज के युवकों का है जो समाज भीड़, डरपोक, कायर, नैतिक साहस से रहित और अपरिपक्व आदि विशेषताओं से ग्रस्त हैं जो अपने प्रेम की विफलता के कारण आत्मघाती, असांसारिक और उच्छृंखल हो जाते हैं—जो स्वयं को तो नष्ट करते ही हैं, साथ में अपनी प्रेमिकाओं की दुर्दशा का भी कारण बनते हैं।

माणिक जीवन तथा समाज के प्रति आस्थावान् भी हैं। उन्होंने जीवन को बहुत ही समीपता के साथ भोगा है और समाज को भी बहुत ही नजदीकी से देखा है। अपने अनुभवों के आधार पर ही वे किसी निष्कर्ष को रखते हैं। उन्हें पुरानी परम्पराओं, रूढ़ियों तथा वश-मर्यादा के प्रति घृणा है और इसका मूल कारण वे आर्थिक विषमता को मानते हैं। अब उनमें मार्क्स के प्रति आस्था दिखाई देती है जो कि वस्तुतः भारती की आस्था है। उसे आने वाली पीढ़ी—जो लिली, जमुना और सती के बच्चों की होगी—के प्रति दृढ़ विश्वास है। उसे मानव-जीवन व समाज के प्रति दृढ़ आस्था है। इसलिए जिन्दगी में दुखों की अधिकता के बावजूद भी वह उन्हें हँसते हुए झेलता है, क्योंकि उसका मत है “जो लोग भावुक होते हैं और सिर्फ रोने हैं वे रो-धोकर रह जाते हैं। और जो हँसना सीख लेते हैं, कभी-कभी वे अपनी जिन्दगी को बदल डालते हैं।”

इस प्रकार माणिक मुल्ला मध्यमवर्ग का प्रतिनिधि पात्र है जो समाज की झूठी मर्यादा, रीति रिवाज, जातिप्रथा तथा आर्थिक विषमता के प्रति क्रुद्ध है और

साथ ही भावी सुखी जीवन के प्रति आगान्वित है। इसके साथ ही वह समाज-भीरु, नैतिक साहसहीन प्रेमी, कथाकार, नूतन-दृष्टा प्रतिभावान् तथा विद्वलेपण की क्षमता आदि गुणों से समन्वित है।

तन्ना : उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है—तन्ना। तन्ना भी मध्यम-वर्गीय जीवन की कटुता का शिकार है। यद्यपि वह उपन्यास में केवल दो कहानियों में ही स्पष्ट रूप से चित्रित है फिर भी उसका व्यक्तित्व निश्चित रूप से नायक की अपेक्षा संगत दीख पड़ता है। आलोचकों ने उसे सहनायक या प्रकरी नायक के रूप में स्वीकारा है। वह कल्पना की अपेक्षा यथार्थ के घरातल पर जीता है। यह पात्र भी वर्ग-प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया गया है।

तन्ना सामान्य परिवार का युवक है। जहाँ परिवार में अर्थ का अभाव है, दुःख है, समस्याएँ हैं, रदन है। किन्तु उसके व्यक्तित्व में ईमानदारी है, सच्चरित्रता है, कर्तव्य-बद्धता है और नैतिकता है। जिसके कारण वह अपने सिद्धान्तों या आदर्शों पर स्थिर रहता है। सिद्धान्तों या आदर्शों की वह दृढ़ता और अडिगता ही उसके बाह्य व्यक्तित्व को तोड़ती है। तन्ना को टूटना स्वीकार है, झुकना नहीं। तन्ना सीधा-सादा, विनम्र और सच्चरित्र है। अपने परिवार का वह स्वयं पोषण करता है। घर के सभी व्यक्तियों का उत्तरदायित्व उसके नाजुक कंधों पर पड़ा हुआ है; फिर भी सिद्धान्तों और आदर्शों की प्रतिकूलता उसे असह्य है फिर वह चाहे अपने पिता की ही क्यों न हो। अपने पिता का रखैल रखना, सत्ती के प्रति आकर्षित होना इत्यादि घटनाएँ उसे उचित नहीं लगती। किन्तु साहस के अभाव में वह इन कुरीतियों का विरोध नहीं करता, जिसकी परिणति 'कोल्हू के बँल के समान' हो जाती है।

तन्ना सच्चरित्र पात्र है। उसकी यह सच्चरित्रता प्रेम, राजनीति, जीवन, जीवनमूल्य आदि सभी क्षेत्रों में समान रूप से परिलक्षित होती है। लिली से विवाह-वद्ध होने पर जमुना द्वारा शारीरिक सम्बन्ध की प्रार्थना करने पर उसकी प्रार्थना को ठुकराना तन्ना की सच्चरित्रता का ही सूचक है। इसी प्रकार वह अपने जीवन में आदर्शों के प्रति भी दृढ़ है। तात्कालिक तथा भौतिक सुखों के लिए वह अपने को उन सुखों के अनुकूल नहीं ढालता है। इसके साथ ही उसके चरित्र में पिता के प्रति श्रद्धाशीलता, दूसरी स्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध प्रस्थापित न करने में नैतिक शुचिता, यूनिन से पृथक् रहने में प्रामाणिकता और पुत्र, भाई, गृहस्थ तथा नौकर के रूप में कर्तव्यपरायणता के विधिष्ठ मानवोचित गुण दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु सामाजिक विकृतियों, कुरीतियों, झूठे सिद्धान्तों के प्रति साहस के अभाव के कारण विद्रोह न करने से उसके जीवन की शोकांतिका होती है। वस्तुतः उसके जीवन की शोकांतिका का प्रमुख कारण है—उसका देवत्व। उसके चरित्र पर प्रेमचन्द की ये पंक्तियाँ खरी उतरती हैं—“इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काय !

ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते ।”

महेसर दलाल महेसर दलाल जैसा कि नाम से ही ध्वनित होता है दलाल है—सोने चांदी का । तन्ना का वह पिता है । यह भी निम्न-मध्य-वर्ग से ही गृहीत है । इसकी सरचना खलनायक के रूप में कही जा सकती है ।

महेसर दलाल कर्तव्यशून्य और उत्तरदायित्वशून्य व्यक्ति है । वह गृहस्थ है किन्तु घर-गृहस्थी की उसे तनिक भी चिन्ता नहीं । अपने सम्पूर्ण घर का बोझ अपने आज्ञाकारी पुत्र पर छोड़कर निर्दिष्ट होता है । वह एक क्रूर, कठोर निर्दयी तथा निष्कर्षण पिता के रूप में चित्रित है । वह पुरानी पीढ़ी का भी प्रतीक है जिसे पुरानी परम्पराओं, झूठी मर्यादाओं तथा जाति प्रथा पर विश्वास है । जमुना को वह अपने से नीचे गोत्र का समझता है इसलिए तन की शादी उससे नहीं हो पाती । उसके चरित्र का सब से बड़ा दुगुण या कमजोरी उसकी कामातुरता है । शरीर के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर भी उसकी काम पिपासा अभी तक शमित नहीं हुई । पुत्रों के पालन पोषण के लिए युवा स्त्री को रखना उसकी कामातुरता का ज्वलत उदाहरण है । उससे कामपूति के बाद सती के प्रति आकर्षित होना उसकी धूर्तता तथा स्वेच्छता को द्रष्टि करता है । तन्ना की शादी में झूठ-मूठ ही एफ० ए० पास कहकर धनी विधवा की लड़की से शादी करने के पीछे उसकी जायदाद हड़पने की उसकी धूर्त भावना छिपी हुई है । इस प्रकार महेसर दलाल शगड़ालू, कर्तव्यविमुख, कामातुर, धूर्त, निर्दयी, कठोर, छली आदि कमजोरियों से युक्त पात्रों का प्रतिनिधित्व करता है ।

इनके अतिरिक्त अन्य पुरुष-पात्र कथा को गति देने के लिए तथा उद्देश्य के साधन रूप में निर्मित तथा चित्रित हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में तीन नारियों को स्थान मिला है । वे तीनों ही निम्न मध्य-वर्ग की हैं । किन्तु तीनों ही विभिन्न पहलुओं, स्तरों तथा पक्षों के आधार पर प्रस्तुत की गयी हैं । जमुना, लिली और सती ये तीन नारी-पात्र कथा-माला में गूँथे गए हैं । ये तीनों नारियाँ यद्यपि समाज के विविध पक्षों का उद्घाटन करती हैं तथापि जमुना उनमें प्रमुख है; क्योंकि “आज नव्वे प्रतिशत लड़कियाँ जमुना की परिस्थिति में हैं ।”

जमुना जमुना मध्यमवर्गीया युवती है । पिता बैंक में साधारण क्लर्क है । घर की आर्थिक परिस्थिति सुदृढ़ नहीं है । वह अभावों का घर है । इसलिए जमुना की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध भी उचित रूप में न हो सका । शिक्षा और मन-बहलाव के नाम पर उसे मिली ‘मीठी कहानियाँ’, ‘राज्जी कहानियाँ’, ‘रसमरी कहानियाँ’ तो बेचारी और कर ही क्या सकती थी ।” इसलिए अपने पड़ोसी युवक तन्ना से अनजाने प्रेम कर बैठी तो इसमें उस बेचारी का क्या दोष ? किन्तु दहेज के अभाव

के कारण वह तन्ना के साथ विवाहवद्ध न हो सकी। कुछ दिनों बाद घनिक किन्तु वृद्ध पुरुष के साथ उसका विवाह होता है, लेकिन वह वहाँ भी संतुष्ट न रह पायी। अर्थतृप्ति होने पर भी काम-तृप्ति न होने से अनैतिकता की ओर वही। उसकी चारित्रिक विशेषता और विकास को जानने के लिए उसके जीवन को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—१. विवाह से पूर्व का जीवन, २. वैवाहिक जीवन, ३. वैधव्य जीवन।

विवाह से पूर्व का जीवन : विवाह से पूर्व के उसके जीवन-चरित्र में प्रेम की घटना प्रमुख है। प्रेम साहचर्य का परिणाम है। जमुना और तन्ना दोनों-पड़ोसी थे। तन्ना घर से अत्यंत दुःखी रहता था। अपनी माँ की मृत्यु के बाद उस रनेह, दया, सहानुभूति को तन्ना ने जमुना में देखा। जमुना की यही सहानुभूति और साहचर्य कालान्तर में अनजाने रूप में प्रेम में परिणत हो गया। दोनों युवा-हृदयों ने एक-दूसरे के आंतरिक संगीत को सुना, किन्तु सामाजिक हद्दियों और अंधविश्वासों के कारण दोनों विवाहवद्ध न हो सके। इस प्रेम की असफलता के कारण निराशा और अनास्था के साथ ही उसके मन में वासनापूर्ति के अनैतिक साधनों के बीज अंकुरित होने लगे। जिसका आगे चलकर क्षणिक माध्यम बना किशोर युवक माणिक। जमुना अपनी वासना की पूर्ति किशोर युवक माणिक से करना चाहती थी, जिसमें उसे सफलता न मिली। माणिक उसकी प्रेम-पिपासा को तो शान्त कर सका किन्तु काम-पिपासा को नहीं। इस प्रकार उसके विवाहपूर्व जीवन में प्रेम की असफलता तथा वासना-प्रस्फुटन दिखाया है, जो आगे चलकर उसकी अनैतिकता का संकेत करता है। तन्ना की शादी के बाद जमुना का उससे प्रणय-याचना करना उसके नैतिक पतन का उदाहरण है। उसका यह प्रथम पक्ष समाज के झूठे विश्वासों, हद्दियों, परम्पराओं तथा आर्थिक विषमता से उत्पन्न मध्यमवर्गीय मानव-जीवन की विडम्बना को दर्शाता है। अर्थ मानव-जीवन की वह घुरी है जिस पर समाज का रथ अग्रसर होता है; उसके अभाव में सभी पहिए निरर्थक व बेकार बन जाते हैं।

वैवाहिक जीवन : उसके जीवन का दूसरा पक्ष है, गृहस्थी का। तन्ना से शादी न होने पर उसका विवाह अत्यन्त वृद्ध तथा बनी जमींदार के साथ होता है। जिसकी वह तीसरी शादी है। प्रारम्भिक जीवन के वनाभाव से उत्पन्न जमुना की निराशा यहाँ समाप्त होती-सी-दीखती है, किन्तु कुछ ही दिनों बाद काम-तृप्ति की निराशा उसके मन में घर करती है। उसका पति संनानोत्पत्ति में असमर्थ है। जमुना में मातृत्व की भावना जागृत होती है। मातृत्व ही नारी की पूर्णता है। जिसकी उपलब्धि अपने पति से न होने पर वह राम-घन नौकर से करना चाहती है। यहीं से वह अनैतिकता की ओर बढ़ती है। इस काम-पिपासा की पूर्ति के लिए वह धर्म का सहारा लेती है। धर्म के नाम पर वह अपनी काम-पिपासा को अपने नौकर से

उन्मुक्त भाव से दमन करवाती है। इस प्रकार यह घटना भी एक सामाजिक समस्या को स्थापित करती है कि अनमेल विवाह जैसी घटनाओं के शिकार होकर जमुना जैसी मध्यमवर्गीय नारियाँ चारित्रिक हानता की ओर अग्रसर होती हैं।

इस काल के जीवन में इसके अनिश्चित धन का लोभ, प्रदर्शन-वृत्ति, कजूसी, स्वा-धंता, गर्व, धर्मान्विता आदि दोष दिखाई देते हैं जो कि अत्यन्त स्वाभाविक हैं। धनहीन नारी की महत्ता धनोपलब्धि इन्हीं सोपानों की निर्मात्री है। जिसके फलस्वरूप पाठक में उसके विकृत, गन्दे और धनीने जीवन के प्रति अरुचि, विरक्ति तथा रोष जागृत न होकर सहानुभूति का भाव उमड़ता है।

वैधव्य जीवन —वैधव्य उसके जीवन का अन्तिम पक्ष है। नारी जन्मत भावनाशील अधिक होती है। धर्म, भावना का ही आलम्बन है और यशिता उस धर्म के प्रति अन्धविश्वास की जड़ है। जमुना भी यहाँ धर्म-परायणा स्त्री के रूप में दिखाई देती है। भारतीय नारी समान उसके मन में धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा तथा विश्वास है। धर्म की इस भावना से ही उसने पहले अपनी काम-वृत्ति को दबाना चाहा, किन्तु उममें असफल होकर वही धर्म जो उसके लिए साध्य था, अब साधन बन गया—नैतिक पतन का। कर्मकाण्ड और धर्म में आस्था रखकर उसने सन्तान की कामना की, किन्तु इसमें अपने मनोरथ को पूरा होते न देख मानसिक संस्कारवश अनैतिकता का सहारा लेने लगी। उसके जीवन का यह पक्ष धर्मान्विता तथा रुढ़ि-प्रियता के कारण नारी की दुर्दशा की ओर सकेत करता है।

इस काल के जीवन में वह पूर्णतः धर्मपरायणा स्त्री है। भारतीय नारी के समान कर्मकाण्ड, यज्ञयागादि, तीर्थाटन, धार्मिक अनुष्ठान, ज्योतिष आदि पर विश्वास रखने वाली युवती है। किन्तु अपनी काम-पिपासा की अनृप्ति यहाँ आकर उसके स्वराचार का कारण बनती है। अतः यहाँ बाहर से जितनी वह धार्मिक है उतनी ही आन्तरिक दृष्टि से पतित। इस प्रकार उसके जीवन के ये तीन विभाग मध्यम-वर्गीय समाज के नारी की इन तीन अवस्थाओं में होने वाली दुर्दशा, उसके कारणों तथा परिणामों पर प्रकाश डालते हैं। जमुना का चरित्र यथार्थ और सजीव है। इसलिए उसके चरित्र के विषय में लेखक का यह कथन पूर्णतः सत्य है— 'जमुना निम्न-मध्य-वर्ग की एक भयानक समस्या है।'^{११}

लिली —लिली उपन्यास का दूसरा स्त्री-पात्र है जो प्रकरी-नायक तम्रा की पत्नी है, जिसे सहनयिका कहा जा सकता है। उसके चरित्र का विकास पूर्णत्व को प्राप्त नहीं कर पाया है। वह जीवन की समस्तता और समग्रता की अपेक्षा उसके एकाग्रता का दर्शन कराता है।

लिली जिसका वास्तविक नाम लीला है, धनी और विधवा की इतनी बेटी है। विवाह से पूर्व वह माणिक से प्रेम करती है। वह चंचल, मानुष, चपल,

अल्हड़, शिक्षित किशोर युवती है। विवाह से पूर्व का जीवन उसका प्रेमी-जीवन है, जो मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के रमानी प्रेम को सम्मुख रखता है। वह माणिक से प्रेम करती है। उसमें नैतिक साहम भी है और समाज से विद्रोह की तैयारी भी। किन्तु लेखक ने उसके पूर्वार्द्ध के जीवन में किशोर युवक-युवतियों के रमानी प्रेम का चित्रण किया है और जिसकी परिणति शोकांत दिवाई है जो निम्न-मध्यवर्गीय प्रेमी-युगलों की शोकांतिका है। उसके जीवन का उत्तरार्द्ध है तन्ना के साथ विवाहित जीवन। दोनों शिक्षित हैं, किन्तु दोनों का मानसिक स्तर भिन्न-भिन्न है। यह विभिन्नता दोनों के जीवन के बीच दीवार बनकर खड़ी होती है। तन्ना की अपेक्षा लिली सुन्दर, धनी, शिक्षित है अतः उसमें गर्व का होना अनपेक्षित नहीं है। जीवन-मूल्यों या आदर्शों पर स्थिर रहने वाला तन्ना लिली की वृत्ति से मेल नहीं खाता। जिससे उनके जीवन में एक दरार पड़ जाती है और यह दरार अन्ततः उन्हें पूर्णतः विभक्त ही कर डालती है।

इस प्रकार लिली का पूर्वार्द्ध-जीवन रमानी प्रेम की निरर्थकता का और उत्तरार्द्ध का जीवन पति-पत्नी के मानसिक स्तरों की विभिन्नता से उत्पन्न शोकांतिका का यथार्थ व प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करने है। लीला समाज की भावना-प्रधान तथा रोमैण्टिक युवतियों की प्रतिनिधि है, जिसका अन्त जमुना की तरह शोकांत है।

सत्ती :—सत्ती जमुना और लिली—दोनों से पूर्णतः पृथक् है। जमुना अधि-शिक्षित है, अमुन्दर है, अनैतिक है। सत्ती अधिशिक्षित है किन्तु जमुना के समान अमुन्दर तथा अनैतिक नहीं। लिली शिक्षित है, सुन्दर है, भावुक है, किन्तु सत्ती सुन्दर है पर लिली के समान शिक्षित तथा भावुक नहीं। इस प्रकार तीनों नारियाँ तीन विभिन्न परिस्थितियों, पहलुओं तथा प्रवृत्तियों की उपज हैं।

सत्ती एक अनाथ, निराश्रित, सुन्दर, अधिशिक्षित बच्ची लड़की है। परिस्थितियों से मजबूर होकर उसे घृणित जीवन बिताना पड़ता है, फिर भी वह अपने शील या स्त्रीत्व को किसी भी शर्त पर बेचने के लिए तैयार नहीं। स्वयं परिश्रम कर अपनी जीविका का उपार्जन करती है। मित्रता उसका एक विशिष्ट गुण है। माणिक के साथ यह मित्रता ही आगे चलकर प्रेम में परिवर्तित होती है। किन्तु समाज-भीरु माणिक उसकी प्रेम-याचना को नकारता है। माणिक की यह अस्वीकृति उनके जीवन की शोकांतिका का मूल कारण है। इसके साथ ही उसके व्यक्तित्व में प्रतिहिंसा की भावना दिग्गष्ट होती है। मानवांश गुणों के साथ पाशविक दुर्व्यवस्थाओं का समन्वय सत्ती के व्यक्तित्व की निजी विशेषता है। रनेहू, दया, मित्रता, उपकार आदि मानवोचित गुणों के साथ प्रतिहिंसा, क्रूरता, प्रतियोध आदि पाशविक वृत्तियाँ उसके व्यक्तित्व में परिचलित होती हैं। वस्तुतः उसके जीवन का पूर्वार्द्ध अत्यन्त

स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक है, किन्तु अन्त में उसके द्वारा भीख मँगवाना इत्यादि घटनाएँ उसके व्यक्तित्व के यथार्थ रूप की उजागर नहीं कर पाती ।

इस प्रकार उपन्यास के सभी पात्र निम्न-मध्य-वर्ग के हैं, जो विभिन्न परिस्थितियों तथा स्तरों से गृहीत हैं । प्रत्येक पात्र जीवन के अलग-अलग पहलू, घटना तथा परिस्थिति से आवेष्टित है । यह आवेष्टन ही उन्हें यथार्थ रूप प्रदान करता है । वस्तुतः पात्र या चरित्र चित्रण भारती की कला के माध्यम बनकर ही यहाँ आए हैं । वे उद्देश्य के सहायक बनकर ही अस्तित्व में हुए हैं । फिर भी चरित्र चित्रण में भारती को पर्याप्त सफलता मिली है । उपेन्द्रनाथ अक्षक का मत है कि “जमुना, माणिक मुन्ला और तन्ना के चरित्र जहाँ अपने में पूर्ण हैं, वहाँ सती और लक्ष्मी के चरित्र अर्धपूर्ण भी हैं । निम्न-मध्यवर्ग के जीवन के स्त्री-पुरुष जब अपनी धुरी से हटते हैं तो एकदम गहरे गन्दे महागर्न में नहीं जा गिरते, एक-दो और छोटे-बड़े गदों से होकर वहाँ पहुँचते हैं ।”

कथोपकथन — इस लघु उपन्यास में वर्णन की अपेक्षा कथोपकथन का तत्त्व न्यून मात्रा में मौजूद है । कहानीमूलक उपन्यास और वह भी लोकव्याप्तक शैली में लिखा जाने के कारण इसमें सवादों का बहुत कम प्रयोग किया गया है । किन्तु जितने भी सम्वाद मौजूद हैं वे निस्सन्दिग्ध गुणान्वित हैं । उपन्यास के सम्वाद जहाँ एक तरफ चरित्रों की विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं, साथ ही वे उनका मानसिक विश्लेषण भी करते हैं । उपन्यास के सवाद पात्रानुकूल और उनकी मानसिक स्थिति के अनुरूप हैं । ये सक्षिप्त, स्वाभाविक, सरल, उपयुक्त, रोचक तथा आत्मुक्त का निर्माण करते हैं । कहीं-कहीं लेखक ने इन सम्वादों के माध्यम से समस्या का विवेचन और विश्लेषण भी किया है, तो कहीं जीवन-दर्शन तथा मूल्यों की प्रस्थापना भी की है । सवाद यद्यपि दीर्घ तथा लम्बे हैं किन्तु उन्हें छोटे छोटे वाक्यों में कहलाया गया है । इसके अलावा एक विशेषता और है कि ये सवाद हास्य और व्यंग्य से युक्त हैं जिसके कारण सवादों की दुर्बलताओं का परिहार कर पाठकों को कथा में रम-ग्रहण करने में वे सहायक बन पड़े हैं ।

देश, काल और वातावरण .— उपन्यास वर्ग-मध्यम तथा आर्थिक विषमता के उद्देश्य को लेकर चलता हुआ भी लोकव्याप्तक शैली में कथित होने के कारण वातावरण का चित्रण हुआ है किन्तु कम ही मात्रा में । भारती का पूरा ध्यान विषय और शैली पर ही केन्द्रित है । फिर भी भारती ने सात दोपहरों की चर्चाएँ अलग-अलग वातावरण में चित्रित की हैं । तीसरी कहानी का वर्णन करते हुए वे वातावरण की उमस का भी चित्रण करते हैं, जो कि उद्देश्य है । इसी प्रकार चौथी कहानी के समय भी कहानी के अनुकूल ही रहमानी वातावरण की निर्मिति की गई है । उपन्यास के वातावरण के अन्य उदाहरण भी पाठकों के मन में मूल कथ्य के अनुकूल

एक भावभूमि तैयार करने में सहायक बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप पाठक कथा के साथ समरस हो जाता है। वातावरण का चित्रण यद्यपि बहुलता के साथ नहीं हुआ है; किन्तु जितना हुआ है वह निरर्थक, अग्रार्थ और अकारण नहीं, अपितु कथ्य को यथार्थता प्रदान करता है। वातावरण की यह निमित्ति पाठक को जहाँ मूल कथ्य के साथ समरस कराती है, साथ ही उसकी परिणति का संकेत भी कराती है।

भाषा-शैली :—विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है। भाषा पर लेखक का पूर्ण अधिकार ही किसी कृति की लोक-प्रियता या सफलता का प्रमुख उपकरण होता है। भारती का भाषा पर असाधारण अधिकार है। इस उपन्यास की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है। उपन्यास की सभी कहानियाँ और पात्र ही जब सामान्य जीवन के हों, तो उसकी यथार्थता भाषा के सामान्य रूप में ही मान्य हो सकती है। उपोद्घात में उन्होंने स्वयं इसे स्वीकारा है—

—“उनकी (माणिक) शैली में बोलचाल के लहजे की प्रधानता है और मेरी आदम के मुताबिक उनकी भाषा रुमानी, चित्रात्मक, इन्द्रधनुष और फूलों से सजी हुई नहीं है।”^{१२} इस बोलचाल की भाषा में प्रवाह है, ओज, सरसता, यथार्थता, मूढमता, स्पष्टता, साकेतिकता, ध्वन्यात्मकता आदि गुण हैं। इसलिए उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, तत्सम, तद्भव और ग्रामीण भाषा के शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग किया है। कहीं-कहीं विषय के अनुकूल वे आलंकारिक और प्रतीकात्मक बनाते चले हैं। उनकी भाषा पात्रानुकूल, विषयानुकूल, भावानुकूल, परिवेश के अनुकूल आदि विशिष्टताओं से मण्डित है। वस्तुतः भाषा उनका ध्येय नहीं है, क्योंकि उनका मत है—“टेकनीक ! हाँ, टेकनीक पर ज्यादा जोर वही देता है जो कहीं-न-कहीं अपरिपक्व होता है।”^{१३} इसलिए अपने विचारों की स्पष्टता के लिए उन्होंने अपनी भाषा में विभिन्न भाषाओं से शब्द लिए हैं, साथ ही उन्हें मुहावरों तथा लोक-उक्तिओं से जड़ा है। निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि उपन्यास की भाषा सरल, सरस, यथार्थ, सुबोध, मूढम, प्रतीकात्मक, आलंकारिक, प्रवाहयुक्त, साकेतिक, दृश्य-वर्णन मिश्रित तथा प्रभावोत्पादक आदि गुणों से समन्वित है। शब्द-चयन और वाक्यों का गठन भारती का अपना कौशल है।

‘मूरज का सातवाँ घोड़ा’ विभिन्न शैलियों में लिखा गया लघु उपन्यास है। सभी शैलियाँ परस्पर कहानियों के समान अनुस्यूत हैं जिन्हें पृथक्-पृथक् कर नहीं देखा जा सकता। इनमें वर्णनात्मक, मन-विवरण, प्रतीकात्मक, नाटकीय, रुमानी, चित्रात्मक, आत्मकथात्मक आदि शैलियाँ प्रयुक्त की गई हैं। किन्तु यह उपन्यास मूलतः लोककथात्मक शैली में लिखा गया है, जिसे स्वयं लेखक ने तथा अनेक आलोचकों ने स्वीकारा है। “वस्तुतः लोककथात्मक शैली उस शैली-रूप को कहते हैं

जिसमें मौखिक रूप से प्रचलित अनेक कथाओं को अन्तःसम्बद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है ।”

भारतीय कथा-साहित्य पर दृष्टिरात करने से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में लिखे गये पञ्चतन्त्र, कथामरिमागर, हिमोद्देश जातककथाएँ आदि लोककथात्मक शैली में लिखे गये ग्रन्थ हैं । इनमें श्रोता और वक्ता के माध्यम से अनेक कहानियों में छोटे-छोटे निष्कर्ष निकालकर उन्हें एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है, जहाँ वे एक नवीन अर्थ प्रदान करते हैं । भारती ने इस उपन्यास में इसी लोककथात्मक कहानी को अपनाया है ।

लोककथात्मक शैली में अनेक कहानियाँ मिलकर एक कहानी को रूप देती हैं, किन्तु उन सब की मूल प्राणधारा एक ही रहती है । यहाँ भारती ने छह प्रेम-कहानियों को लिया है और प्रत्येक कहानी जहाँ पूर्णतः स्वतन्त्र है—क्योंकि प्रत्येक कहानी का अपना पृथक् शीर्षक है वहाँ साथ में ये छह कहानियाँ मिलकर एक युग का चित्र प्रस्तुत करती हैं । वस्तुतः ये सभी कहानियाँ पृथक्-पृथक् नहीं अपितु इन कहानियों के माध्यम से लेखक ने जीवन के विविध पक्षों के साथ को उद्घाटित किया है । लोककथात्मक शैली का दूसरा तत्त्व है आपस की बातचीत के द्वारा नया वक्ता और श्रोता के माध्यम से कथा का पूर्णता की ओर अग्रसर होना । यहाँ माणिक वक्ता है और शेष जो लेखक के मित्र हैं, सभी श्रोता हैं । श्रोता कभी तो अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और कभी जिज्ञासा प्रदर्शित करते हैं—यथा—जमुना के विवाह के विषय में । माणिक कथा चक्र का मुनाता है । लेखक, ओकार, सरद आदि पात्र मुनते हैं तथा अनुध्याय में अपनी-अपनी प्रतिक्रियाओं द्वारा कहानी के छिपे अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसे गति भी प्रदान करते हैं । लोककथात्मक शैली का तीसरा तत्त्व है—हास्य और रस का मिश्रण । प्रस्तुत उपन्यास में इन तत्त्वों का समन्वय है । समस्या की गहनता, गंभीरता और दुःख को रस शैली में प्रस्तुत किया जाता है कि श्रोता रस की अपेक्षा हास्य को अधिक माना में अनुमाना है । प्रस्तुत उपन्यास में समस्या का मृदम रूप जहाँ पाठक को रुग्ता है वहाँ उसका स्थूल रूप उभरे हुँता है । उदाहरण के लिए पहली कहानी के निष्कर्ष को लिया जा सकता है । इस शैली का चौथा तत्त्व है विचित्रता तथा चमत्कारिता का । अनपेक्षित और अप्रत्याशित घटनाओं को लेखक ने इस क्रम से सजोया है कि जिन से पाठक एकदम आश्चर्यचकित हो जाता है । वस्तुतः चमत्कार का तत्त्व लोककथा में जिज्ञासा और उत्सुकता के लिए प्रयुक्त होता है । सती की मृत्यु के बाद पुनः उसका जीवित होना, सामने खड़ी किसी भी वस्तु पर—काले बेंट का घाकू इ०—कहानी बनाना आदि घटनाएँ चमत्कार की सृष्टि के लिए निर्मित हैं । लोककथात्मक शैली में सूत्रबद्धता का अभाव-यः रहता है । सूत्रबद्धता से यहाँ तात्पर्य स्थूल रूप से घटनाएँ विच्छिन्न और

असम्बद्ध प्रतीत होती हैं परन्तु वे सूक्ष्म रूप से परस्पर सम्बन्धित होती हैं। यहाँ भी इसी प्रकार का काल-विपर्यय और घटना-विपर्यय दिखाई देता है। पहली कहानी में वर्णित तन्ना और जमुना के प्रेम की कहानी की परिणति तीसरी में है। इसी प्रकार दूसरी कहानी चौथी कहानी के बाद की है; यहाँ तक कि तीसरी और पाँचवीं की अनेक घटनाएँ उससे पहले घटित हुई हैं। किन्तु यह पूर्वापररहित क्रम—समय कथा को पढ़ने के बाद—किसी प्रकार का सन्देह या भ्रम उत्पन्न नहीं करता।

इसके अतिरिक्त डॉ० सत्यपाल चुव ने लोककथात्मक पद्धति की कुछ विशेषताओं का इसमें उल्लेख किया जो कि व्याप्त है। (१) माणिक के घर में, गर्मी के मौसम में चार-पाँच मित्रों की महफिल का जमना। (२) कहानियाँ विलकुल गुल्फ-पन—अनीपचारिक वातावरण—में सुनाई जाती हैं। (३) कथाकार और श्रोता में प्रश्नोत्तर की विद्यमानता। (४) निष्कर्षवादिता का होना। (५) कहानी के अन्त का अभिधात्मक होना। (६) कहानियों के शीर्षकों की व्याख्या से लोककथा के सन्देह का होना। (७) कहानी का लोक-भाषा में होना। (८) एक कहानी में दूसरी कहानी का निकलना। इन सब विशेषताओं ने 'मूरज का सातवाँ घोड़ा' के शिल्प को ऐसा मजाया और मँवारा है कि इसकी शैलिक नवीनता पाठक को आश्चर्य करने तथा रमाने में पूर्ण सफल रही है।

वस्तुतः भारती को पौराणिक प्रतीकों में बहुत स्नेह है—जो कि उनकी कविताओं में ज्यादा उभरकर सामने आये हैं। इसलिए पुरानी धर्म-कथा शैली को नये यथार्थ से जोड़कर उसे नवीन रूप दिया है। लोक-जीवन के यथार्थ तथा अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए मूरज के घोड़ों के पौराणिक प्रतीकों तथा धर्म-कथा-वाचन की शैली को अपनाया है, क्योंकि यह लोक-जीवन की सुपरिचित और प्रवाह-मयी शैली है। उसके शिल्प के विषय में 'अज्ञेय' ने भूमिका में कहा है—“नवसे पहली बात है उसका गठन। बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढंग की—बहुत पुराने जैसा आप बचपन में जानते हैं—अल्फ लैला वाला ढंग, पंचतन्त्र वाला ढंग, जिसमें रोज किम्बागोर्ड की मजलिस जुटती है फिर कहानी में से कहानी निकलती है।……और वह केवल प्रयोग-कानूक के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि वह जो कहना चाहते हैं उसके लिए यह उपयुक्त ढंग है।”^{१५}

भारती का प्रमुख उद्देश्य रहा है—अर्थ और काम की घुरी के उर्द-गिर्द घूमने वाले निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का विटम्बनात्मक चित्रण। अतः नर्मी पात्र, कहानियाँ और शिल्पगत विशेषताएँ उद्देश्य के सहायक रूप में ही चित्रित हुई हैं। यह कहानियों के माध्यम से भारती ने निम्न-मध्य-वर्ग के सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित किया है। वगैरे “वह चित्र सुन्दर प्रीतिकर या नुबद नहीं है क्योंकि उन समाज का जीवन वैसा नहीं है और भारती ने चित्र को यथाशक्य गच्चा उता-

रना चाहता है ।”^{१११} ऊपरी तौर पर ये सभी प्रेम कथा सी लगती हैं किन्तु वह उसना मूल स्वर नहीं है । माणिक के शब्दों में—“य कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं बरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न-मध्य वर्ग जी रहा है । उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक भयर्ष, नैतिक विशृङ्खलता, इसीलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है ।”^{११२} किन्तु भारती कबल मौत, अरेंरे, कीचड़ और गन्दगी का यथातथ्य चित्रण कर मौन नहीं हो जाते हैं । क्योंकि भारती का मूल स्वर ही आस्थात्मक रहा है—जिसे उनकी अन्य काव्यात्मक कृतियों में भी देखा जा सकता है । वे आस्था के उन्मायक हैं, उन्हें मुन्ही और समृद्ध भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था है । उनकी यह आस्था ही माणिक में ध्वनित होती है—“पर कोई-न-कोई ऐसी चीज है जिसने हमें हमगा चीरकर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है । चाहे उस आत्मा कह लो, चाहे कुछ और । और विश्वास, साहस सत्य के प्रति निष्ठा उस प्रकाशवादी आत्मा की उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े मूर्ख को आगे बढ़ा ले चलते हैं ।”^{११३} यद्यपि इन सात घोड़ों में से छह विकलांग हो गये हैं किन्तु “सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान् है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिए ।”^{११४}

इस उपन्यास के शीर्षक की कल्पना, सम्भव है शुष्कता में छपी हुई एंजेलो सिनेलियाजो की कविता से सूनी हो । क्योंकि कविता का मुख्य स्वर भी कीचड़ से उबरने का ही है, और इस उपन्यास का भी । इसका शीर्षक प्रतीकात्मक, आकर्षक, कोनूहलमय, लोकन्यात्मक, यौगलिक और जीवन दर्शन को स्पष्ट करने वाला है और सात दोषहरो की कथा हाने के कारण भी यह शीर्षक दिया गया हो जिस लेखक ने स्वयं स्वीकारा है—“माणिक कथा-चक्र में दिना की मर्यादा मान रखने का कारण भी शायद बहुत कुछ सूरज के सात घोड़ों पर आधारित था ।”^{११५} इस उपन्यास की निजी दूसरी विशेषता है ‘अनध्याय’ । अनध्याय की सृष्टि लेखक ने सोहरय की है । कहानियों के माध्यम से भारती जहाँ पाठकों का मनोरंजन करते हैं या क्या का अभिधात्मक स्तर प्रस्तुत करते हैं, वहीं अनध्याय के माध्यम से (भारती के) अभीष्ट और सांकेतिक तथा मूल स्वर को अभिव्यक्त करते हैं । “कहानियों में लेखक पाठकों का मनोरंजन करता है और अनध्याय से शिक्षण ।”^{११६} इसके अनिरिक्त में अनध्याय दो कहानियों के बीच के समय की दूरी को पाटने हैं या कम करते हैं । अतः पाठक ऊबना नहीं है । साथ ही साथ ये अनध्याय विशेषता क्या की पत्तों को उखाड़ते चलने हैं, उसनी आलोचना प्रत्यालोचना करने हैं, वहीं विवेच्य कहानी के लिए मानसिक पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं ।

‘उपोद्घात’ की रचना सार्थक तथा सामिप्राय की गई है। पहली बात तो यह है कि लोककथात्मक शैली के कारण और प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थों की परम्परा के अनुकूल पुस्तक के प्रारम्भ से पूर्व ‘लेखकीय निवेदन’ आवश्यक होता था। इस प्रकार लोककथात्मक शैली में यथार्थता लाने के लिए उपोद्घात की रचना की गई है। दूसरी बात यह है कि इस ‘उपोद्घात’ में उन्होंने अपनी सफाई तथा मंतव्य पेज किये हैं। कहानी-कला, मध्यमवर्ग के विषय, टेक्नीक, भाषा तथा स्वयं के प्रस्तुत-कर्त्ता इत्यादि की सूचना इसी उपोद्घात में की गई है। तीसरी बात है कि बिखरी हुई-सी लगने वाली कहानियों को सुसम्बद्ध करने के लिए उपोद्घात की अवधारणा की गई है। यह उपन्यास का ही एक अंग है जिसे उपन्यास से पूर्व कथा के संकेत दिए गए हैं जो पाठकों के मन में कौतूहल का निर्माण करते हैं।

इस कथा की परिधि केवल निम्न-मध्यवर्ग की अर्थ और काम सम्बन्धी व्याख्या को ही अपने तक सीमित नहीं रखती। अपितु उसके अतिरिक्त इसकी प्रतीक-कात्मकता भी उल्लेखनीय है। आकाश-कल्पना का, हाँठ-प्रेमी का, बरती-कठोरता का, काला चाकू-अत्याचार का, चील-कामातुर वृद्ध का, बीरवहूटी-युवा-युवती का, कटा हुआ हाथ-दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था का, भीख माँगने वाली गाड़ी-निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का प्रतीक है।

डॉ० सत्यपाल चुब ने ‘आलोचना-तत्त्व’ को इसकी अपनी ही विशेषता कहा है। “यह स्वयं अपनी व्याख्यात्मक आलोचना भी है—उपन्यास के विकास के साथ-साथ शीर्षक से लेकर शैली-शिल्प तथा उद्देश्य तक का स्पष्टीकरण इनमें हुआ है। इस व्याख्या में लेखक के दो प्रयोजन दिखाई देते हैं—अपने नूतन प्रयोग शिल्प को स्पष्ट करना तथा निष्कर्षों को गही रूप में उभारकर पाठकों के सामने रखना।”^{११} दूसरी बात यह है कि यदि आलोचना भारतीय स्वयं करते तो अनधिकार चेट्टा और अनुचित हस्तक्षेप के कारण उपन्यास में अस्वाभाविकता आ जाती।^{१२} जिसे बड़ी खूबी के साथ भारती ने बचाया है।

शैलिक नूतनता तथा कथ्य की सरसता एवं यथार्थता भी इस उपन्यास के ‘अंत’ के आक्षेप को बचा नहीं पायी। उपन्यास का अन्त आरोपित या ऊपर से गाया हुआ लगता है। छह कहानियों—छह घोटों तक कथा का विकास स्वाभाविक, स्वतन्त्र, यथार्थपरक लगता है, किन्तु सातवाँ घोड़ा जो कि आस्थावान्, तेजस्वी और शीर्षवान् है। परन्तु यह स्वर उसकी कथा या पात्रों के माध्यम से ध्वनित नहीं हो पाता। यही आकर उपन्यास अनफल-ना प्रतीत होता है। राजेन्द्र यादव के अनुसार—“लेकिन उपन्यास की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि सातवें घोटों की कल्पना पूरी कहानी से उभरकर नहीं आती। यह अचानक ऊपर से जोड़ी गई-सी लगती है। जिन समाज की, जिन लोगों की कहानी लेखक ने कही है उसमें कोई ऐसा संकेत—

इसारा नहीं है जो इस सातवें घोड़े—अर्थात् जनुना, सती और लम्बा के बच्चों के उज्ज्वल भविष्य का आभास होता हो।^{१११} वस्तुतः यह आस्था और आशावादी दृष्टिकोण कहानियों की परिणति नहीं है अपितु भारती की आस्था है—भाषिक मुल्ला के माध्यम से। अतः उपन्यास का अन्त स्वाभाविक और यथार्थपरक नहीं लगता।

विधा की समस्या शैक्षिक विचित्रता तथा नवीनता के कारण पाठक के मन में सन्देह उत्पन्न करता है कि इसे उपन्यास कहा जाये या कहानियों अथवा कथाओं का सङ्कलन? प्रस्तुत कृति बाहरी रूप से देखने पर कथाओं का सङ्कलन मात्र प्रतीत होती है किन्तु उपन्यास और कहानी के तात्त्विक और मूलभूत अन्तर से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति में उपन्यास के समान ही एक प्राण-धारा बह रही है। सम्पूर्ण कृति में यदि विभिन्न कथाएँ रखी भी गई हैं तो भी उन सभी कथाओं का मूल बन्ध एक ही है। दूसरी बात, ये सभी कथाएँ प्रासंगिक हैं, जो मूल कथा को बल प्रदान करती हैं। इन कहानियों में जीवन के एक पक्ष या एक क्षण का चित्रण नहीं, अपितु एक पीढ़ी और युग को चित्रित किया गया है। प्रेम के माध्यम से निम्न-मध्य-वर्ग की सामाजिक, मानसिक, आर्थिक, वर्ण-संघर्ष की समस्याओं को चित्रित करना लेखक का उद्देश्य रहा है। इसका कथा-पट विस्तृत है और यह कथा-पट की विस्तीर्णता और समस्याओं की बहुलता इस उपन्यास का आकार देती है। कथानक का गुपन छद्म कहानियों में किया गया है। ये छद्म कहानियाँ सूक्ष्म तत्त्वों से इस प्रकार समुक्त की गई हैं जो प्रत्येक कहानी को अलग अस्तित्व देती हैं और साथ ही उसे उपन्यास का आकार भी। इस प्रकार कथानक की दृष्टि से और साथ ही उन सभी कहानियों में उठाए गए विषय की एकता के कारण यह कृति उपन्यास ही कही जा सकती है।

भारती ने प्रारम्भ में ही इस कृति को उपन्यास कहा है—पहले पृष्ठ में ही। हाँ, इसके लिए उन्होंने विशेषण दिया है 'लघु'। साथ ही अज्ञेय की भूमिका के बाद निष्कर्षवादी कथाओं के रूप में कहा गया लघु उपन्यास यह कथन और इसी बात को उन्होंने 'उपोद्घात' में दुहराया है। अर्थात् उनका स्वयं का मत है कि दिव्य की नवीनता—जिसे लोककथात्मक शैली कहा जा सकता है—के कारण यह कृति कथा होने का सन्देह उत्पन्न करती है, वस्तुतः यह विज्ञा उपन्यास है। अपने इस मन्वाच्य को सातवीं दोपहर में लेखक द्वारा जोर कहानी सुनाने के लिए कहने के बाद भाषिक का यह कथन—“एक अविच्छिन्न क्रम में इनकी प्रेम-कहानियाँ बहुत काफी हैं। सब तो यह कि उन्होंने इनके लोगों के जीवन को लेकर एक पूरा उपन्यास ही सुना डाला है, सिर्फ उसका रूप कहानियों का रखा ताकि हर दोपहर का हम लोगों की दिलचस्पी बरकरार बनी रहे और हम लोग ऊबे न। वरना सब पूछो तो यह उपन्यास ही था।”^{११२} इस विधा के सम्बन्ध में उठने वाली सभी शकाओं का समाधान करने में पूर्ण समर्थ हैं। इस प्रकार भारती की दृष्टि से भी यह विधा कहानी-क्रम में बबने

के बाद भी उपन्यास ही है, न कि कथा-वीथी ।

विभिन्न आलोचकों ने भी इसे उपन्यास की ही संज्ञा दी है जिनमें अज्ञेय, अय्य, आचार्य चिनयमोहन शर्मा, डा० सत्यपाल चुध आदि प्रमुख हैं । अज्ञेय ने भूमिका में स्पष्ट कहा है—“सूरज का सातवाँ घोड़ा एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है । वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचन है जैसे उस समाज की अनन्त शक्तियाँ परस्पर सम्बद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर सम्भूत हैं, वैसे ही उसकी कहानियाँ भी ।”^{११} अर्थात् वाहरी रूप से अलग-अलग दिखाई देने वाली ये छह प्रेम-कहानियाँ विषय की एकता से सम्पृक्त हैं । डा० चुध इसे कहानी-मूलक उपन्यास स्वीकार करते हैं—“सूरज का सातवाँ घोड़ा एक ऐसी कहानीमूलक औपन्यासिक रचना है जिसका मूल कथानक एक है और अनेक कहानियाँ उसकी प्रासंगिक कथाएँ जो कालविपर्यय तथा अपने आप में पूर्णता का आभास देने के कारण अलग-अलग कहानियाँ प्रतीत होती हैं अन्यथा सभी एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं ।”^{१२}

कृति का अलग-अलग परिच्छेदों में विभक्त होना भी पाठक के मन में शंका का कारण है । किन्तु सातवाँ परिच्छेद स्वयं ही इस शंका का समाधान कर देता है । इससे पूर्व छह दोपहरों में कही गई छह कथाएँ यहाँ आकर एक बिन्दु पर स्थिर हो जाती हैं जहाँ वे नवीन अर्थ, नवीन व्याख्या, नवीन चित्र, नवीन समाज को प्रस्तुत करती हैं । यह कृति यदि कथाओं का संकलन होती, तो सभी कहानियों का एक बिन्दु पर स्थिर होना असंभव बात है । दूसरी बात यह कि अन्तिम परिच्छेद ही निष्कर्षवादी प्रेम-कहानियों की प्रतीकात्मक व्याख्या करता है जो स्वयं भारती का मूल उद्देश्य है । तीसरी बात यह है कि एक ही कथाकार के एक संकलन में विषय तथा शैली की स्तर-भिन्नता लक्षित होती है । किन्तु इस कृति में विषय की एकता—निम्न-मध्यवर्ग की समस्या—और शैली की एकता—(लोककथात्मकता) ने इस कृति को उपन्यास के कटघरे में खड़ा किया है ।

टिप्पणियाँ

सूरज का सातवाँ घोड़ा : बर्मवीर भारती : छठा संस्करण (१९७०)

१. सूरज का सातवाँ घोड़ा : पृ० ५१-५२

२. वही, पृ० ५९, ६०

३, ४, ५ वही, पृ० १०४

६. वही, निवेदन

७. वही, पृ० ३७

९. १० वही, पृ० ३४

११. वही, पृ० ४६

१२ वही, पृ० २२

१३, १४ वही, पृ० ८०

१५, १६, २६ वही, भूमिका

१७, १८, १९ वही, पृ० १०५

२० वही, पृ० १०४

२५ वही, पृ० १०३

७ हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग राजेन्द्र मादव का लेख

२१, २७ प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि डा० सत्यपाल शुक्ल, पृ० ७५०

२२, २३ वही, पृ० ८४७

२४ हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग पृ० २३०



लौटे हुए मुसाफिर :

नफरत की आग में झुलसता आम आदमी

सूर्यनारायण रणसुभे

“... सिर्फ नफरत की आग ने हम वस्ती को जलाया था ।”

—कमलेश्वर

“पता नहीं, यह आग कहाँ छिपी थी ? नफरत की इस आग की चिंगारियाँ बाहर से आई थी—दूतरे शहरों, कस्बों और सूबों से ।”

—कमलेश्वर

“गरीबी, अपमान, मूल और बेवसी में भी वे हारे नहीं थे, पर नफरत की आग और शकापूर्ण मन का धुआँ वे बर्दाश्त नहीं कर पाये ।”

—कमलेश्वर

“नफरत, शक और डर ! इन्हीं तीन बोगियों पर हम नदी पार कर रहे हैं । यही तीन शब्द बोये और वाटे जा रहे हैं ।”

—डा० राही मामूम ‘रवा’

“कमलेश्वर विभाजन को राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक समस्या न मानते हुए उसे मानव-मन की समस्या मानते हैं ।”

लौटे हुए मुसाफिर

भारत-पाक विभाजन की समस्या को लेकर भारत की सभी भाषाओं में साहित्य-सृजन हुआ है। विभाजन की घटना ही ऐसी थी कि किसी भी सम्बेदनशील व्यक्ति का मन दहल जाता। धर्म के नाम पर इस समय जो भी अत्याचार हुए उससे यह साबित हुआ कि मनुष्य जब अपनी मनुष्यता छोड़ देता है तो वह पशु से भी क्रूर हो जाता है। सन् १९४६ से १९५० तक यही एक प्रमुख समस्या इस देश के सम्मुख रही। इस समस्या को लेकर हिन्दी, पंजाबी, बंगाली तथा उर्दू में श्रेष्ठ स्तर की रचनाएँ लिखी गई हैं। वास्तव में विभाजन की सही एवं प्रामाणिक अनुमूर्ति इन्हीं चार भाषाओं के साहित्यकारों के पास थी और अब भी है। इन भाषाओं के साहित्यकारों ने विभाजन के इस दर्द को भोगा है, अपनी आँखों से मनुष्य का पशुवत् व्यवहार देखा है। यशपाल, रामानन्द सागर, राजेन्द्रसिंह वेदी, सधादत हसन मंटो, कृष्णचन्द्र, खाजा अहमद अक्वास, अमृता प्रीतम, भीष्म सहानी, कमलेश्वर, राही मानूम रजा, गुरुदत्त—इस विषय पर लिखने वाले हिन्दी-उर्दू और पंजाबी के प्रतिनधि लेखक हैं। अब प्रश्न यह है कि इस विषय को स्वीकार करने के बाद उपर्युक्त लेखक किस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं। क्योंकि 'विभाजन' तो एक युद्ध राजनीतिक घटना है। इस राजनीतिक घटना के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणाम इस देश के दोनों धर्मों के लोगों पर हुए हैं। ये लेखक उन परिणामों को ध्वद्वद्व करते हैं अथवा विभाजन के कारणों की खोज करते हैं? विभाजन की इस घटना से अनेक प्रकार के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रश्न निर्माण होते हैं। इन विविध प्रश्नों में से किसी एक को 'प्रमुख' मानकर ये लेखक चलेते हैं अथवा युद्ध मानववादी भूमिका से? विभाजन के समय मनुष्य का जो क्रूरतम तथा पशुवत् रूप बन जाता है, उसके लिए जिम्मेदार कौन है—धर्म? राजनीति? अथवा मनुष्य-स्वभाव? विभाजन की इस 'आग' के मूल में कौन सी चिनगारियाँ छिपी बैठी हैं? विभाजन के बाद मनुष्य की स्थिति कैसी हो जाती है? क्या वह पश्चात्तप अनुभव करता है? क्या 'विभाजन' उस देश में कार्यरत

साम्प्रदायिक तथा आधुनिक विचारधारा के भीतरी मघपों का परिणाम है ? विभाजन के पूर्व नफरत की जो आग समी के दिलों में भड़कती है वह बाद में बुझ जाती है अथवा नहीं ? इस प्रकार के अनेक प्रश्न विभाजन को लेकर उठाए जा सकते हैं । इन विविध प्रश्नों की चर्चा विविध सन्दर्भों में की जा सकती है । इस 'घटना' को मुख्यतः चार दृष्टिकोणों से देखा गया है —

१. हम वर्ग के उपन्यासकार 'विभाजन' को मुख्यतः राजनीति और वर्ग की समस्या मानते हैं । राजनीतिक अदूरदर्शिता तथा सत्ता के प्रति व्यक्तिगत आकर्षण के कारण विभाजन हुआ है—ऐसा यह वर्ग मानता है । उपन्यासी तथा कहानियों में तत्कालीन राजनीति का ही वह अधिक विश्लेषण करता है । 'कांग्रेस' पक्ष तथा कांग्रेस के उम्र समय के नेता इन लेखकों की आलोचना के मुख्य लक्ष्य हैं । इस वर्ग की सहानुभूति हिन्दुओं की ओर अधिक है । यह वर्ग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण भी स्वीकारता है । श्री गुरुदत्त ऐसे साहित्यकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

२. दूसरा वर्ग उन कथाकारों का है जो विभाजन की घटना को रोमांटिक बनाकर पेश करते हैं । पाठकों का दिल बहलाना वे अपना मुख्य उद्देश्य मानते हैं । इसी कारण 'सस्ती मानुक्ता' से इनका साहित्य भरा पड़ा है । क्रूरता, अत्याचार आदि के वर्णन पढ़कर उम्र सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रति नफरत पैदा होने के बजाय एक विचित्र-सा आकर्षण पाठकों के मन में पैदा हो जाता है । इनके चरित्र इस धरती के नहीं होते । ऐसे साहित्यकारों के लिए विभाजन मनुष्यमात्र की समस्या नहीं, मनोरंजन का सस्ता और साधारण माध्यम मात्र है ।

३. तीसरा वर्ग ऐसे साहित्यकारों का है जो विभाजन को भोग चुका है । उस प्रदेश की—विभाजन के पूर्व की, विभाजन के समय की तथा विभाजन के बाद की—स्थितियों से परिचित ही नहीं, उसमें बड़ा हुआ भी है । इसी कारण तटस्थता के साथ सम्पूर्ण स्थिति का चित्रण करने का प्रयत्न इन्होंने किया है । परन्तु इस तटस्थता में इनके मार्क्सवादी विचार बाधा बन जाते हैं, क्योंकि इस वर्ग के उपन्यासकार एक विशेष विचारधारा से प्रतिबद्ध हैं । और इसी कारण वे 'विषय के साथ' न्याय नहीं कर पाते । अलवृत्ता विभाजन के समय जो अत्याचार हुए, जो पशुवत् व्यवहार दोनों ओर से हुआ, उसका बड़ा ही तटस्थ चित्रण वे करते हैं । हिन्दुओं की आर्थिक सम्पन्नता तथा मुस्लिमों की दरिद्रता ही विभाजन के लिए कारणीभूत रही है, ऐसा वे मानते हैं । ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व यशपाल करते हैं ।

४. अन्त में चौथे वर्ग के वे उपन्यासकार हैं जो विभाजन को मानवमन की समस्या मानते हैं । इनका ध्यान 'जन सामान्यो' पर अधिक है । विभाजन के समय की क्रूर घटनाओं की अपेक्षा वे इस बात की खोज करना चाहते हैं कि नफरत की आग की चिनगारी आकरि शुरु कहीं से हुई है । विषय के प्रत्येक इतिहास में इस प्रकार के

विभाजन कमी धर्म को, कमी जाति को, कमी आर्थिक असमानता को और कमी राजनीति को लेकर हुए हैं और होते रहेंगे। यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक मनुष्य के मन में प्रतिगामिता और आधुनिकता को लेकर संघर्ष चलता रहेगा। विभाजन मनुष्य के उस क्रूर मन की समस्या है जो अनुकूल वातावरण पाकर उभर उठता है। क्रूरता, यह किसी समुदाय अथवा धर्म विरोध की प्रवृत्ति नहीं है; वह तो मानवमात्र की समस्या है। इस प्रकार विभाजन को 'मानवी मन' की समस्या मानकर नफारत की यह आग उसके मन में कब और कैसे उभर उठती है, इसका विवेचन इन उपन्यासकारों ने किया है। आकार की दृष्टि से ये उपन्यास बहुत ही छोटे हैं। परन्तु इनमें गहराई है, प्रामाणिकता है तथा मनुष्य-मन की अनवरत खोज। इस प्रकार के लेखकों में राही मायून रजा, कमलेश्वर, मोहन राकेश, अज्ञेय तथा सआदत हुसैन मंटो आदि आते हैं।

कमलेश्वर के इस उपन्यास का विवेचन करते समय उपर्युक्त वर्गीकरण को ध्यान में रखना जरूरी है। क्योंकि 'विषय की समानता' के बावजूद कमलेश्वर, गुग्गुत्त, कृष्णचन्दर अथवा यशपाल से एकदम भिन्न है। यहीं पर उनकी उस सूक्ष्म तथा यथार्थवादी दृष्टि का प्रमाण मिल जाता है, जहाँ पर वे सतह के मूल में कार्य-रत मनुष्य-मन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को देखना चाहते हैं। विभाजन की इस समस्या को एक छोटे से कस्बे तक सीमित रखकर विभाजन की यह चिन्तारी धीरे-धीरे कैसे फैलने लगी तथा अन्त में इसने 'आग' का रूप कैसे धारण कर लिया, विभाजन के समय साम्प्रदायिक तथा आधुनिक शक्तियाँ कैसे उभरकर आईं, उनमें संघर्ष कैसे उत्पन्न हुआ और अन्त में ये साम्प्रदायिक शक्तियाँ कैसे विजयी हुईं, इसका विवेचन कमलेश्वर इस उपन्यास में करते हैं।

कथावस्तु : एक छोटी-सी वस्ती के लोगों में विभाजन के पूर्व, विभाजन के समय तथा विभाजन के बाद जो सूक्ष्म परिवर्तन होते गए हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण इस लघु उपन्यास में किया गया है। उपन्यास का पहला ही वाक्य है—“.....सिर्फ नकरत की आग ने इस वस्ती को जलाया था।” स्पष्ट है कि कमलेश्वर स्वतन्त्रता के कई वर्षों बाद की वस्ती के चित्रण से उपन्यास का आरम्भ करते हैं। आज नसीबन इस उजड़ी हुई वस्ती को देखती है तो मन-ही-मन रोती है। “आज भी लगभग वंश ही है, जैसा आजादी से पहले था। सिर्फ इस वस्ती को उदासी ने जकड़ लिया है। ठहरी गामें होती हैं और गंगा हुआ वक्त है।” स्वतन्त्रता के बाद की इस सामोश वस्ती का वर्णन करते-करते लेखक हमें भूतकाल में ले जाता है। “तब बहुत खूबसूरत थी यह वस्ती।” “जब हिन्दुओं की वस्ती से ताजिग गुजरते थे, तो उन पर लोग गुलाब जल छिड़कते थे और हिन्दू औरतें अपने बच्चों को गोदी में उठाए ताजियों के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़कर फेंक दिए मक्काने दीनार थड़ा से

आँख के छूट में बाँध लेती थी। जब रामचंद्र का विमान उड़ता था, तो मुगल-मान औरतें दरवाजों के चिकने या बारों के पर्दे उलटकर मूर्तियों के शृंगार की तारीफ करती थीं और उनके बच्चे विमान के साथ दूर तक शोर मचाते हुए जाया करते थे—“बोलो राजा रामचंद्र की जै !” स्पष्ट है कि बस्ती में साम्प्रदायिकता ढँढने पर भी नहीं मिलती थी। लोग एक दूसरे के त्योहारों में आनन्द से भाग लेते थे। अपने अपने विद्वानों को लेकर लोग जी रहे थे। उनके विश्वास एक-दूसरे से या तो टकराते नहीं थे अथवा टकराने की सम्भावना निर्माण हो जाती तो वे आपसी समझौता कर लेते थे। राजनीति सब वे देखकर थे। एक-दूसरे के सुख दुःख में वे सम्मिलित थे। वे घर के अन्दर हिन्दू या मुसलमान थे। बाहर तो वे सब उस बस्ती के नागरिक मात्र थे। “लेकिन सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।” दिन बीतते गए। अंग्रेज आए। छोटे-मोटे कार्यालय खुलने लगे। नौकरियों के लिए पढ़े-लिखे लोगों का तबका यहाँ आया। परन्तु “यह तबका अपने-अपने घरों पर हिन्दू या मुसलमान था, लेकिन साहब के सामने सिर्फ नौकर था।” लेकिन भीतर-ही-भीतर अंग्रेजों के विरोध में आग सुलग रही थी। कुछ दबंग नौजवान कभी-कभी शहर में दिखाई पड़ने लगे। “हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे इन जन्मे में।” सन् बयालीस के आन्दोलन में भी हिन्दू-मुसलमान साथ में थे। और इसके कुछ ही महीनों बाद इस बस्ती के मुसलमानों में ‘जिना साहब’ की चर्चा शुरू हुई। और फिर सन् १९४५ का जमाना आया। “एक बूँद खून नहीं गिरा। किमी मुहल्ले पर घावा नहीं हुआ। किसी ने किसी को नहीं मारा। किसी ने किमी को गाली तक नहीं दी। मस्जिदों में लड़ाई की तैयारियाँ नहीं हुईं। लेकिन भीतर भीतर एक भूचाल आया था। दिली इमारतें ढह गई थीं। अपनेपन का जज्बा मर गया था। नफरत की आग ने इस बस्ती को निगल लिया था। और भरी-पूरी चिकवों की वह बस्ती सबसे पहले उजड़ गई थी। पता नहीं, यह आग कहाँ छिपी थी? नफरत की इस आग की चिंगारियाँ बाहर से आई थी—दूगरे शहरों, कस्बों और भूजों से।”

इस बस्ती के एक छोर पर मुसलमान चिकवों की बस्ती है। और वहाँ की का मुख्य केन्द्र भी यही चिकवों की बस्ती है। इस बस्ती में विधवा नसीबन है जो अपने बच्चों का पालन-पोषण कर रही है। छोटे-मोटे काम-धन्धे करते हुए। एक साई है जो दिनभर दूधर-उधर घूमता रहता है। और शाम के समय घूनी रमाता है। सतार—जो पहले किसी सर्वस सम्पत्ती में काम करता था, अब इस बस्ती में आकर जम गया है। ‘उसे नसीबन खाला की सहानुभूति है, साई का आश्रय है और सतार का प्यार।’ सतार जो इस बस्ती के जनान अस्पताल में काम करती है। अपने पति से भागकर वह अपने पिता के साथ रह रही है। बच्चन भी है, जिसकी पत्नी गुजर चुकी है। जिसने दो छोटे छोटे बच्चे हैं और नतीशन इन बच्चों पर माँ से अधिक

प्यार करती है। सायकिल-दुकान वाला रतन भी है; ठाकुर, गुप्ता, चाँवे, जाफर-मियाँ भी हैं। सभी लोग हिल-मिलकर बड़ी शान से जी रहे थे। राजनीतिक उथल-पुथल से बेखबर अपनी ही जिन्दगी के सुख-दुःखों के बोझ से हैरान। ऐसी इस खूब-सूरत वस्ती में एक दिन सलमा का पति मकसूद और अलीगढ़ का सियासी कारकून यासिन आ जाते हैं और यहीं से नफरत की चिनगारी फैलने लगती है। "और जब उस सियासी कारकून ने देखा कि इन चिकवों की वस्ती में कोई सनसनी नहीं है, तो उसके दिल को चोट-सी लगी थी। वह कारकून सोच ही नहीं पा रहा था कि ये चिकवे दुनिया की खबरों से इतने अलग-अलग कैसे रह रहे हैं। इन्हें यह भी नहीं मालूम कि मुल्क में क्या हो रहा है.....कि मुसलमानों को एक नया मुल्क मिलने वाला है, जिसके लिए जहाँ-जहाँ चल रही है।" "जब वह देखता कि मसजिद में मकतब लगता है और मन्दिर की चहार दीवारी में पाठशाला जमती है और सब कुछ बदस्तूर चला जा रहा है, तो वह सह नहीं पाता था.....।" मकसूद, यासीन, और साईं तीनों एकत्र हो गए। साईं के मन में कुछ व्यक्तियों के प्रति दिली नफरत थी ही। अब राजनीति और धर्म की आड़ में वह इस नफरत की आग को उड़ेल सकता था। इसी कारण मसजिदों में बैठकें होने लगीं। लोगों के मन में हिन्दुओं के प्रति, गांधीजी के प्रति, कांग्रेस के प्रति नफरत की आग फैलायी जाने लगी। "कान-गरेस तो हिन्दुओं की जमात है।" "हिन्दू हिन्दू है और मुसलमान मुसमान।" मुसलमानों में इस प्रकार की चिनगारी फैलने की प्रतिक्रिया हिन्दुओं में तुरन्त हो गई। वस्ती में संघ का प्रवेश हुआ। "औरंगजेब ने जो अत्याचार किए हैं, हिन्दू धर्म को जिस तरह भ्रष्ट किया है, उसी का बदला तो लेना है। हमारी परम्परा है राणा प्रताप की, शिवाजी की जिन्होंने म्लेच्छों से कभी समझौता ही नहीं किया।" दोनों ओर नफरत की यह चिनगारी फैलती गई है। "पता नहीं क्या हुआ था, वस्ती को? ऊँचे-ऊँचे इमली-नीम के पेड़ों पर लम्बी-लम्बी बल्लियाँ लगाकर लीग और हिन्दू महासभा के झंडे फहराए गए थे। घरों पर भी छोटे-छोटे ऊँ के और हरे झंडे नजर आने लगे थे।" "उसे चारों तरफ एक ऐसा सैलाव-सा नजर आ रहा था, जिसमें नफरत के कीड़े बिलबिला रहे थे—जाने-नहचाने लोगों के मुर्दा चेहरे उतराते हुए बहते जा रहे थे—वे चेहरे, जिन्हें देखकर अभी तक इन्सान जीता आया था—जिन में प्यार और अपनापन था। यह सब क्या हुआ है? लोगों ने एकाएक वे चेहरे उतारकर क्यों फेंक दिए हैं।" और सचमुच तब वस्ती में नफरत का एक भयंकर सैलाव आया था। धीरे-धीरे वस्ती के दोनों वर्गों में यह नफरत की आग फैलने लगी। यासीन और मकसूद आग फैलाने का यह काम काफी लगन से कर रहे थे, तो दूसरी ओर संघ भी अपना जोर लगा रहे थे। अफवाहें फैलने लगीं। हिन्दुओं को कल तक के दोस्त मुसलमान शत्रु लगने लगे। मुसलमान सभी ओर अविश्वास

को निगाहों से देखने लगे । साईं इस आग को और भड़काने की कोशिश कर रहा था । सामोश भी तो अकेली नसीबन ! और उधर बच्चन । सत्तार को भी इस नफरत से नफरत थी । धीरे धीरे स्थिति इतनी मयाबूह होन लगी कि "दोनों जातिधों में अपन हिंदू और मुसलमान होने का एहसास बढ़ता जा रहा था । हिंदू शायद अपने को एकाएक ज्यादा हिन्दू समझने लगे और मुसलमान अपने को ज्यादा मुसलमान ।" फिर बस्ती में एक दिन मौलाना साहब आए । उन्होंने कहा— 'हिन्दोस्तान में दो कोमे रहती हैं, और अब वे साथ-साथ नहीं रह सकती ।

१९ अगस्त का दिन एक रज भरे दिन की तरह मनार्यो मुसलमान हिन्दू सरकार के मातहत नहीं रहेगा" मौलाना के पूर्व इस बस्ती में सच के अधिकारी आए थे । हिन्दुओं की विद्याल समा उन्होंने ली और कहा— हिन्दू राष्ट्र ने आज अपना तीमरा नेत्र खोला है वह सब इसमें भस्म होगा जो विदेशी है ।

वीरता में शक्ति है तथा शक्ति में है प्रभुता का स्रोत । वीरभोग्या वसुधरा और वीर वही है जो हिन्दू है ।" परिणामतः दोनों ओर उत्तेजना फैलती गई । बस्ती के दिनदिन जीवन में परिवर्तन होने लगा । १६ अगस्त, १९४६ के दिन तो सातावरण और अधिक शुष्क हो गया । "हर आदमी दूसरे को शक की निगाह से देख रहा था । दीवारा, अमीनो, गलियों और सड़का तक का मन-ही-मन बंटवारा हो गया । शहर में हर्षे बन गयी थी—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ।" और सभी

पाकिस्तान बनने का ऐलान हुआ । "शहर के मुसलमान अंदर-ही-अंदर खुश हुए, पर ऊपर से कटे हुए थे साथ ही उनमें कहीं भय और भी गहरा उत्तर गया था ।"

परन्तु नसीबन जानती थी कि इसका कोई मतलब नहीं है इस बस्ती के लिए । उसके अनुसार "अरे पूछो कोई, क्या बदलेगा । अपना नसीब जो है, वही रहेगा ।" विभाजन के बाद तो यहाँ के और आस-पास के अमीर मुसलमान धीरे-धीरे पाकिस्तान की ओर जाने लगे । "दूसरे शहरों, कस्बों और सूबों में तरह-तरह की खीकनाक खबरें आ रही थी—हर सुबह एक नयी खबर आती—हर शाम एक और नया डर होता ।" पाकिस्तान बनने के बाद भारत के कोने-कोने से जितने भी पैसेवाले थे, वे जल्दी-से-जल्दी अपना इतजाम करके चले गए । गरीबों का कोई रहनुमा नहीं था ।" वे लोग यह बस्ती छोड़कर जा तो रहे थे "मोह तोड़कर वे लोग निकल तो गए थे, पर घरों को ऐसे छोड़ गए थे, जैसे वे कभी वापस आएंगे ।" चिकवों की इस सूरी बस्ती में केवल तीन ही घर ऐसे थे जो बची गए नहीं—साईं, इफ्तिकार तागेवाला और नसीबन । वेबस और मजबूर होकर सत्तार भी चली गई—मकसूद और यासीन के साथ । सत्तार के विरह को सत्तार यह नहीं सता और एक दिन वह भी आत्महत्या कर गया । सत्तार की इस खीकनाक आत्म-हत्या के बाद इफ्तिकार भी चला गया । बच गई है केवल नसीबन और साईं ।

साई—जिसने नफरत की आग को फैलाने में और वस्ती उजाड़ने में सहायता की थी । “गरीबी, अपमान, भूख और बेवनी में भी वे हारे नहीं थे, पर नफरत की आग और शंकापूर्ण भय का चुर्भा वे वर्द्धित नहीं कर पाए ।”^{१५}

“.....सिर्फ नफरत की आग ने इस वस्ती को जलाया था ।” और तब मे इतने बरस गुजर गये—यहाँ कोई नहीं आया—सिवा इफितकार के । और फिर इसी इफितकार से पता चला कि यहाँ से जो लोग पाकिस्तान के लिए चले गए थे, वे पाकिस्तान जा ही नहीं पाये । उनमें से जो अभीर थे; वे पहुँच गए । परन्तु जो गरीब थे, जो बड़ी आधा और अरमानों के साथ पाकिस्तान जाकर अपनी गरीबी को खत्म करना चाह रहे थे; वे वहाँ पहुँच ही नहीं सके—अर्थ के अभाव में ।

और आज सन् १९६१-६२ में इस वस्ती की ओर फिर कुछ नौजवान लौट रहे हैं । ये वे ही नौजवान हैं, जिनके माँ-पिता इस वस्ती के निवासी थे और जो पाकिस्तान और सम्पन्नता के सपने लेकर इस वस्ती को छोड़ बाहर चले गए थे; परन्तु पाकिस्तान तक पहुँच न सके थे । उनके ही लड़के आज इस वस्ती की ओर लौट रहे हैं—चीदह-पन्द्रह वर्षों बाद । इन लड़कों के बचपन के दिन इसी वस्ती में गुजरे थे । और नमीवन बहुत-बहुत खुश है कि मुसाफिर लौट रहे हैं । वह उन्हें उनके टूटे-फूटे घरों तक पहुँचाती है ।

समीक्षा :—उपर्युक्त कथावस्तु से स्पष्ट है कि कमलेश्वर विभाजन के बहाने एक वस्ती के नूश्म परिवर्तन की गाथा हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं । इस ‘परिवर्तन’ के कारणों की खोज एवं उसकी भयावहता को भी स्पष्ट करते हैं । इस लघु उपन्यास में यह वस्ती ही केन्द्र में है । इस वस्ती का करीब सौ वर्ष का इतिहास इसमें स्पष्ट किया गया है । आरम्भ के पृष्ठों में सन् १८५७ की वस्ती का संवेत दिया गया है । “यह वही वस्ती है जिसने १८५७ ई० में अंग्रेजों से लोहा लिया था । हर कोम और मजहब के लोगों ने कन्धे-से-कन्धे मिलाकर गोखियों की बौछार सीनों पर झेली थी ।”^{१६} १८५७ के बाद इस वस्ती में परिवर्तन शुरू हुए । अंग्रेज पूरी तरह देश में छा गए । वस्तियों में विविध कार्यालय खुलने लगे । सन् १९४२ के आन्दोलन में भी यहाँ के हिन्दू-मुस्लिम लड़कों ने बड़ा उद्यम मचाया था । “उन्हें नहीं मालूम था कि देश कब आजाद होगा, पर इतना उन्हें मालूम था कि कुछ करना चाहिए; और वे जो कुछ कर सकते थे, वह उन्होंने किया था ।”^{१७} परन्तु सन् १९४५ में ही इस वस्ती के नागरिकों के दिलों में एक बड़ा भयानक भूचाल आया । यही से इसकी कथावस्तु का आरम्भ होता है । सन् १९४५-४६ और ४७ इन तीन वर्षों के भीतर यहाँ के सर्व-सामान्य हिन्दू-मुस्लिमों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को इसमें यथेष्ट किया गया है । यही इसकी सही अर्थों में कथावस्तु है ।

इस कथावस्तु में घटनाएँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं—घटनाओं की प्रतिक्रिया ही

महत्त्वपूर्ण है। वस्ती और वस्ती में जाने वाले कुछ प्रातिनिधिक पात्रों की—नसीबन, सतार, सलमा, इफ्तिकार, साईं, रतन, बच्चन आदि की—मन स्थितियों को ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। शांत तथा एकत्व की भावना से जीनेवाली यह वस्ती नफरत की आग से कैसे जल गई—इसको विस्तार के साथ स्पष्ट स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर सलमा-सतार, नसीबन-बच्चन, साईं-यासीन की व्यक्तिगत जिन्दगी को भी स्पष्ट करने जाता है। इन सब की व्यक्तिगत जिन्दगी का तथा नफरत की आग फैलने की उस घटना का निकटता से सम्बन्ध है। विभजन पर लिखे गए अन्य उपन्यासों के केन्द्र में शिक्षित तथा मध्यवर्गीय व्यक्ति ही हैं। उदाहरण—यशपाल (झूठा सच), मजदूर शर्मा (इंसान), गुरुदत्त (दग की हत्या), रामानन्द सागर (और इन्मान मर गया) आदि। परन्तु कमलेश्वर के इस उपन्यास में समाज के सब से निचले तबके को केन्द्र में रखा गया है। यह निचला तबका ही सर्वाधिक मात्रा में लूटा गया है। इस निचले तबके का उपयोग ही राजनीतिज्ञों और धर्मग्रन्थों ने किया है। इसी निचले तबके के कारण नफरत की आग तेजी से फैलती गई है। इस कारण इस ही 'बयावस्तु' की यह सबसे बड़ी विशेषता मानी जा सकती है कि कमलेश्वर का ध्यान 'सर्वसाधारण' पर अधिक है। वास्तव में नफरत की आग मध्यमवर्ग एवं तथावर्धित नेताओं ने ही फैलाई थी।

इसकी बयावस्तु का सम्बन्ध वस्ती तथा व्यक्ति-मन के साथ होने के कारण परम्पराबद्ध पद्धति में इसका अनुशीलन न सम्भव है और न न्यायमगत।

बयावस्तु समस्यामूलक है। समस्या को लेकर एकदम नये ढंग से देखा रहा है। राजनीति, धर्म तथा सम्प्रदाय से एकदम अलग हटकर तटस्थता के साथ इस समस्या की ओर देखना न केवल जरूरी है, अतः उसकी आवश्यकता भी है। इसी-लिए वे उन सभी साम्प्रदायिक तत्वों की खुली निन्दा करते हैं, जिन्होंने नफरत की आग फैलाई थी।

बयावस्तु अत्यधिक यथार्थ है। यह बस्ती भारत के किसी भी प्रांत के किसी भी हिस्से में हो सकती है। सन् १९३० से १९४७ तक इस प्रकार की प्रतिक्रिया प्रत्येक रचना पर हुई है। इसीलिए शायद कमलेश्वर वस्ती का नाम भी नहीं देते। यह वस्ती इसी अर्थ में प्रातिनिधिक है। इस विषय पर लिखे गए अन्य उपन्यासों की बस्तियाँ सीमा-प्रदेश की ही हैं। सीमा-प्रदेश में तो काफी कुछ हुआ है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि 'सीमा' को छोड़कर सुदूर प्रदेशों की बस्तियों में विभाजन का कोई परिणाम ही नहीं हुआ। वास्तव में विभाजन की घटना ने इस देश के सभी तबकों को हिला दिया था। सभी ओर सदेह तथा नफरत का वातावरण पैदा हो गया था। इसी कारण 'विभाजन' से उत्पन्न मानसिक, आर्थिक तथा सामाजिक प्रतिक्रियाओं को कमलेश्वर देखना चाह रहे हैं। यहाँ प्रदेश महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण

है नफरत की आग-जौ मनुष्य-स्वभाव की मूल समस्या है । १६ अगस्त, १९४६ तक सारे देश में यह नफरत की आग फैल चुकी थी । अत्याचार, मार-काट, आगजनी और बलात्कार की घटनाएँ रोज हो रही थीं । सन् १९४६ से लेकर १९४८ तक सारे देश में यही होता रहा । सन् १९३० से १९४६ तक की वस्ती का ही सूक्ष्म चित्रण इसमें किया गया है । सन् १९४७ और १९४८ में अचानक 'नफरत' की जिम ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ था उसका चित्रण करने के बजाय वे इस ज्वाला-मुखी का निर्माण कैसे हुआ, इसकी खोज करना चाहते हैं । ११६ पृष्ठ के इस उपन्यास में ९४ पृष्ठ तक तो सन् १९४५ तक का चित्रण है और बाद के पृष्ठों में १९५० के बाद का चित्रण है । सन् १९४६ से ४८ तक की घटनाओं का वे संकेत मात्र देते हैं । अन्य साहित्यकारों ने १९४६-४८ तक की घटनाओं को ही अपने उपन्यास का मुख्य विषय बना दिया है और कमलेश्वर इन्हीं दो वर्षों को छोड़ देते हैं । इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन्हीं दो वर्षों में भयानक घटनाएँ हुई हैं—और लेखक कमलेश्वर इन्हीं दो वर्षों का मात्र संकेत देकर चले जाते हैं । क्योंकि उनकी दृष्टि बचकनी हुई आग की अपेक्षा उस चिनगारी पर है जिससे यह आग बचक उठी है । जिससे "सब चले गये, आदमी और आदम जात ।"^{१८} इस चिनगारी की खोज करने के लिए ही वे सन् १९३०-४५ तक के समय को महत्व देते हैं । वे राजनीति का विवेचन-विश्लेषण करते नहीं बैठते । उनकी दृष्टि में तो मनुष्य का मन आलम्बन है, राजनीति उद्दीपन और वस्ती का राख हो जाना कार्य ।

विभाजन की इस समस्या को कमलेश्वर अधिक्षित और सामान्य मुसलमानों की दृष्टि से देखना पसन्द करते हैं । आज देश में ऐसे ही लोगों का नाजायज फायदा उठाकर उनमें नफरत की आग फैलाने का प्रयत्न कुछ शिक्षित तथा अपने को आधुनिक कहलाने वाले मुसलमान और हिन्दू करते हैं । इसलिए दोष देना ही है तो यासीन जैसे लीगी युवक अथवा संघियों को ही । रतन, साईं, मकमूद का तो माध्यम के रूप में उपयोग किया जा रहा है ।

अन्य उपन्यासों तथा इस उपन्यास में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि कमलेश्वर के मुसाफिर वापिस लौटकर उसी स्थान पर चले आते हैं, जहाँ से वे निकले थे । नफरत की आग से झुलसकर कुछ हमेशा के लिए वापिस गाए, कुछ बीच रास्ते में ही रह गए और कुछ लौट आये । कब ? जब नफरत की आग समाप्त हो गई । अर्थात् अनुकूल वातावरण का निर्माण हो गया और वे लौट आए । उनकी यह नफरत 'शाश्वत' नहीं थी । तो फिर कमलेश्वर क्या यह बतलाना चाहते हैं कि नफरत मनुष्य का अस्थिर धर्म है तथा सहज स्नेह, प्यार उसका स्थिर धर्म ! मनो-विज्ञान की दृष्टि से जब हम इस उपन्यास पर विचार करते हैं, तब भी उत्तर मिलता है कि 'नफरत' मनुष्य का स्थिर धर्म नहीं है । वास्तव में 'नफरत' में प्रचंड

शक्ति है। डा० रजा के शब्दों में “नफरत। यह शब्द वैसा अजीब है। ‘नफरत’ यह शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन का फल है।” ‘नफरत’ यह शब्द तिरस्कार और घृणा के निकटवर्ती है। इसके सम्बन्ध में शास्त्र कहता है—‘किमी अरुचिकर अथवा प्रतिकूल वस्तु के साक्षात्कार अथवा उसकी कल्पना/मात्र से जनित निवृत्ति का संबोध ही जुगुप्सा है। अरुचिकर अथवा प्रतिकूल वस्तु के साक्षात्कार से, दर्शन से अथवा कभी उनके स्मरण में मन में उद्वेग उत्पन्न होता है, जो मनुष्य को इन वस्तुओं से दूर खिच जाने के लिए प्रेरित करता है, क्योंकि तभी वह उस असतोष, गर्हणा, एवं विकलता की भावना से मुक्ति पाता है जो उसके भीतर उनके दर्शन या स्मरण से उद्भूत हुई थी। यह विकर्षण की प्रवृत्ति भय एवं क्रोध में भी लक्षित होती है। लेकिन भय में वह पलायन अथवा अन्य प्रकार से दैन्य-प्रदर्शन के रूप में प्रकट होती है तथा क्रोध में वह मनुष्य को उस प्रतिकूल विषय के विनाश या भर्दन में प्रवृत्त करती है।”

कमलेश्वर के इस उपन्यास में यह प्रवृत्ति भय एवं क्रोध दोनों रूपों में प्रकट हुई है। इसी भय के कारण मुसलमान भारत छोड़कर पाकिस्तान जा रहे थे तथा हिन्दू पाकिस्तान छोड़कर भारत आ रहे थे। क्रोध के रूप में यह प्रवृत्ति मार-काट, बलात्कार तथा आगजरी के रूप में प्रकट हो रही थी। १६ अगस्त, १९४६ के दिन कलकत्ता में हुई घटनाएँ तथा बाद में विहार में हुई इसकी प्रतिक्रियाएँ इसके प्रमाण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिकूल वातावरण पाकर ही नफरत की चिंगारी निर्मित होती है और वातावरण के तनाव से वह और अधिक प्रज्वलित होने लगती है। ‘परिस्थितियाँ बदल जाने के बाद जो धातें पहले भयानक लगती थी, वे अब भयानक नहीं लगती। ऐसी बदली हुई परिस्थिति में अवचेतन के भय का चेतन की निर्भयता से सामंजस्य कर दिया जाए तो भय की ग्रथि का निरावरण अमभव नहीं कहा जा सकता।” एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि मनुष्य जिस मिट्टी में जन्म लेता है, जिस वातावरण में बड़ा होता है, उसे वह कभी भी भूल नहीं पाता। जिस नयी दस्ती में वह जाता है वहाँ कभी भी मुख से रह नहीं पाता। एवं अज्ञात सा आकर्षण अपने ‘मूल स्थान’ के प्रति बना ही रहता है। यही कारण है कि कमलेश्वर के मुसाफिर अन्त में लौटने लगते हैं। यही कारण है कि पाकिस्तान के सफर में बलराज साहनी को कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं जो लखनौ, दिल्ली इत्यादि की यादें निकालकर रोने लगते हैं। यही कारण है कि मण्टो का रोबा टेक्सिडो भारत वापिस आना नहीं चाहता। किमी भी समाज अथवा जाति को जड़ से उखाड़कर दूसरी ओर बसाना न मनोवैज्ञानिक है और न सहज है। देश विभाजन की इस घटना के मूल में राजनीति तो है ही। परन्तु प्रश्न यह है कि राजनीति के गन्दे तथा अमानवीय प्रस्तावों को जनता स्वीकार ही क्यों करती है? अफवाहों पर विश्वास रखकर

वह कल तक के सहज मानवीय सम्बन्धों को नकार कर खून की प्यासी क्यों हो जाती है ? इसका अन्तर है : नफरत की वह आग जो प्रच्छन्न रूप से प्रत्येक में बँधी है । परिस्थिति पाकर वह सुलगने लगती है और तभी वास्तव्यां जलने लगती हैं, इन्सानियत मरने लगती है । श्रद्धाएँ टूट जाती हैं । श्रेष्ठ मूल्यों की होली हो जाती है । नफरत की इस आग को न लगाने वाला रोक सकता है और न कोई धर्म पंडित । इस भयावह और क्रूर वातावरण में भी ऐसे लोग होते हैं जिनके भीतर नफरत की यह आग लगती ही नहीं । नसीबन और बच्चन इसी प्रकार के लोग हैं । कमलेश्वर की श्रद्धा इन्हीं लोगों पर है । ये ही लोग लॉटे हुये मुसाफिरों को उनके 'मूल से परिचित कराने में समर्थ हो जाते हैं । तात्पर्य, कमलेश्वर का यह उपन्यास समसामयिक विषय को लेकर लिखा जाने के बावजूद भी मनुष्य के कुछ सनातन मूल्यों से, समस्याओं से तथा मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों से सम्बन्ध रखता है । और यही कारण है कि यह उपन्यास आज भी नया है जितना पहले था, तीसरे तब तक नया रहेगा जब तक कि विस्थापितों की समस्या विश्व में रहेगी, जब तक स्थापितों को उखाड़कर साम्प्रदायिक और प्रतिगाभी शक्तियाँ उन्हें मुसाफिर बना देंगी, और जब तक ये मुसाफिर अपनी वस्ती को लौटते रहेंगे । फिर ये मुसाफिर कमी इजरायल को लौटते रहेंगे, कमी वियतनाम को, कमी बांग्ला देश को अथवा कमी भिबंडी को ।

पिछली बार इसी नफरत की चिनगारियों ने जब भयानक रूप धारण कर लिया था और भिबंडी, जलगाँव (महाराष्ट्र) में मार-काट तथा आगजनी की घटनायें हुई थीं, तब कमलेश्वर ने डा० राही मासूम रजा के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था—“इन्होंने मुझे बार-बार याद दिलाया कि भिबंडी और जलगाँव वास्तव में हमारे भीतर जल रहे हैं, फिर हम कैसे बच सकते हैं ?” ऐसे नफरत-भरे वातावरण में जिन दिलों में नफरत की आग नहीं लगती अथवा जो ऐसी आग फैलाने में सहयोग नहीं देते ; उलटे जो ऐसी आग फैलाने वाले को रोकने का प्रयत्न करते हैं—उन पर कमलेश्वर का विश्वास है । ऐसे ही लोगों के मौन कार्य को, उनकी मानवीयता को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न कमलेश्वर ने इस उपन्यास में किया है ।

कथावस्तु के रचना-विधान में नवीनता है । परम्पराबद्ध दृष्टि से कथावस्तु का थिलप विकसित नहीं हुआ है । 'वस्ती' केन्द्र में रहने के कारण वस्ती से सम्बन्धित महत्वपूर्ण परिवर्तनों का संकेत लेखक देता गया है । इसी कारण कथावस्तु विखरी-विखरी-सी लगती है । स्थूल रूप में कहें तो १८५७ से १९६१-६२ तक के काल को इसमें स्वीकार किया गया है । १९६ गृहों के इस लघु उपन्यास में भी वर्षों के परिवर्तन की कहाणी रखना वास्तव में एक साहस ही है । कमलेश्वर इस साहस को बखूबी निभा गये हैं । धर्म तथा साम्प्रदायिकता के कारण वस्ती में किन

प्रकार के परिवर्तन होते गये यही बतलाना इनका लक्ष्य रहा है। इसके लिए उन्होंने पूर्वदोष्टि (Flash Back) शैली का प्रयोग किया है। १८५७, १९३०, १९४२, १९४४ और फिर एकदम १९६०-६१ फिर १९४५-४६, १९४७, १९५० फिर १९६१-६२ इस कालक्रमानुसार वस्ती के 'परिवर्तन' को शब्दबद्ध किया है। सन् १९३० से १९६०-६१ तक इस वस्ती के 'परिवर्तन' को साई और नसीबन अपनी आँखों से देख रहे हैं। आज १९६०-६१ में नसीबन वस्ती के इस उजड़े हुए रूप को देखकर उसके भूतकाल को याद करने लगती है। और कयावस्तु आगे बढ़ने लगती है। ऐतिहासिक और पूर्वदोष्टि इन दोनों शैलियों का प्रयोग लेखक ने इसमें किया है। इसकी कयावस्तु का पाठकों के मन पर एक अमिट प्रभाव पड़ जाता है—यही इस शैली की सब से बड़ी सफलता है।

समस्याएँ—आरम्भ में ही कहा गया है कि इस उपन्यास में विभाजन की समस्या है। इस समस्या को देखने का लेखक का दृष्टिकोण किस प्रकार विशिष्ट एवं अलग-सा है, इसकी चर्चा भी हम वर चुके हैं। वास्तव में विभाजन का मूल आधार है "एक दूसरे के प्रति नफरत की भावना" पैदा हो जाना। नफरत की यह भावना मनुष्य-मन में पैदा क्यों हो जाती है? इस भावना को उद्दीपित करने का कार्य कौन करते हैं? उनके कौर से स्वार्थ इसमें छिपे होते हैं? 'नफरत' यह मनुष्य स्वभाव का स्थिर धर्म है अथवा अस्थिर धर्म? आदि प्रश्नों की अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा इस उपन्यास में की गई है चाहें तो हम कहेंगे कि इस उपन्यास की समस्या में नवीनता नहीं है अपितु लेखक ने जिस दृष्टिकोण से समस्या को देखा है वह अत्यधिक नवीन, मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य और मनुष्य के बीच जा मानवीय सम्बन्ध हैं; उन्हें केन्द्र में रखकर इस समस्या को देखा गया है। इस समस्या को देखते समय लेखक किसी बाहरी विचारों से प्रतिबद्ध नहीं है। इसी कारण वह इतनी गहराई तथा तटस्थता से सम्पूर्ण परिवर्तन को रेखांकित कर सका है। कमलेश्वर ने विभाजन की कृत्रिमता को ही साबित करने की कोशिश की है। विशेषतः उस पीढ़ी के लिए तो यह विभाजन कृत्रिम ही है जो पहले किसी और मिट्टी से जुड़ी हुई थी, और अब कहीं और बसने की मजबूरी में है। इस विभाजन के नाम पर सामान्य लोगों का कैसे घोषण हुआ है, इसका मोत भी उन्होंने दिया है।

'विभाजन' की समस्या के बाद इसमें आधिक समस्या प्रवर रूप से प्रकट हुई है। प्रगतिवादी लेखकों ने इसी आधिक स्थिति को केन्द्र में रखकर साहित्य लिखा है। परन्तु उनका ध्यान पूँजीपतियों और उनके जग्याद-अत्याचार पर ही अधिक हुआ करता है। यहाँ पर इसी प्रश्न को अलग कोण से देखा गया है। विभाजन का फायदा किस तबके के लोगों को हुआ? विभाजन के बाद पाकिस्तान की ओर कौन सा वर्ग जा सका? दीन-दलित-दरिद्री लोगों की इस विभाजन के बाद

क्या स्थिति हुई ? आदि प्रश्न कमलेश्वर यहाँ उठाते हैं । विभाजन किस आर्थिक व्यवस्था के कारण हुआ, इसकी अपेक्षा विभाजन के समय और तुरन्त बाद 'आम आदमी' की स्थिति कैसी हो गई, इसे वे अधिक महत्त्व देते हैं । 'इफितकार' तांगे वाले के माध्यम से लेखक ने इस प्रश्न की भयानकता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है । सियासी कारकून यासीन इस कस्बे के लोगों को इकट्ठा कर साम्प्रदायिक जहर पिलाने की कोशिश करता है तब इफितकार धीरे से कहता है— "असली लड़ाई तो गरीबी और अमीरी की है । मुल्क के तकसीम होने से हमें क्या मिल जाएगा ।" "पाकिस्तान"—इस नये राष्ट्र के प्रति सामान्य मुसलमानों में इतनी अधिक आशाएँ उत्पन्न करा दी गई थी कि सत्तार भी कमी-कमी सोचता है— "शायद पाकिस्तान बनने से एक नयी जिन्दगी की हृदय खुल जायें । पर रह-रहकर उसे यह भी भ्रम होता था कि यह सब कुछ होगा नहीं ? कैसे होगा ? करोड़ों मुसलमानों के बीच उसकी विसात ही क्या है ।" "इफितकार इस घटना की ओर अधिक व्यावहारिक दृष्टि से देखता है । उसे यकीन है कि नया राष्ट्र बनने के बाद भी सामान्य मनुष्य की स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन होने वाला नहीं है । इसीलिए वह कहता है— "..... और लगता मुझे यह है कि अगर पाकिस्तान बना भी तो अपने किसी काम नहीं आयेगा । पाकिस्तान में भी हमें तो इक्का ही हाँकना पड़ेगा ।" "एक ओर यासीन पाकिस्तान को सुजलाम् मुफलाम् घरती सावित करते हुए बतला रहा था कि वहाँ प्रत्येक मुसलमान को सब चीजें खूब मात्रा में मिलेंगी । गरीबी नाम की चीज ही नहीं होगी । "पाकिस्तान बना ही इसलिए है कि हर मुसलमान वहाँ आराम और चैन से रहे । पाकिस्तान की सरहद पर ही जमीनें और जायदादे बँट रही हैं—काम-धंधे शुरू करने के लिए जिनासाहब की सरकार नकद रुपये दे रही है । अंगूर आठ आने सेर विक रहा है" "एक ओर ये अफवाहें हैं, पाकिस्तान की तारीफ है और दूसरी ओर इफितकार का यह वाक्य कि—वहाँ भी हमें तो इक्का ही हाँकना पड़ेगा—है । अमीर मुसलमान अपनी-अपनी व्यवस्था कर ले रहे थे । परन्तु गरीब ? "सभी गरीब मुसलमानों की निगाहें अमीर लोगों पर लगी थी—जो वे करेंगे, वही ठीक होगा ।" "परन्तु क्या वे ऐसा कर नके ? "जितने भी पैसे वाले थे, वे जल्दी-से-जल्दी अपना इन्तजाम करके चले गए । गरीबों का कोई रहनुमा नहीं था ।" "यासीन ने चिकवों की वस्ती के गरीब मुसलमानों से यह वादा किया था कि वह उन्हें हवाई जहाज से पाकिस्तान पहुँचाएगा । चिकवों की वस्ती के ये मुसलमान अपनी सारी पूँजी बेचकर बड़े ही नये अरमान लेकर और "सारे मोह तोड़कर वे लोग निकल तो गए थे, पर घरों को ऐसे छोड़ गए थे जैसे वे कभी वापस आयेंगे ।" "क्या उनके अरमान पूरे हो नके ? क्या वे पाकिस्तान पहुँच सके ? "..... उनके साथ का कोई भी दिल्ली तक नहीं पहुँच

पाया सत्र इधर-उधर बिखर गए। सुबराती भोची आगरा में राजामंडी के चौराहे पर बैठता है “और चमन वही की चुगी में चपरासी लग गया है रमजानी का हाल बहुत बुरा बता रहे थे, वह बेचारा भूखो मर रहा है” “मई जो कुछ घेला-कौड़ी पाम थी, वह तो जाने में खर्च कर दी थी वह भी पूरी नहीं पड़ी, नहीं तो पाकिस्तान नहीं पहुँच जाते अब रोटियो के लाले पड़ गए हैं।” स्पष्ट है विभाजन के समय गरीब अधिक मारे गए, सताए गए और अपनी मूल वस्ती से उखाड़ भी दिए गए। अमीर मुसलमानों ने गरीब मुसलमानों की कोई खबर नहीं ली। हर बार तो यही हुआ है। विभाजन का निचले तबके पर ही वास्तव में भयानक परिणाम हुआ है। विभाजन के ‘कारण’ के रूप में वे इस आर्थिक व्यवस्था को नहीं देखते, अपितु विभाजन के समय जो दुर्गति इस तबके की हुई थी, उसकी ओर संकेत करते हैं।

‘दो धर्मों के तनाव की समस्या’ इस उपन्यास की नींव में है। क्योंकि इसी कारण तो ‘विभाजन’ हुआ। ‘धर्म’ के माध्यम में ही नफरत की ‘चिनगारी’ हर एक के दिलो-दिमाग में डाल दी गई। स्पष्ट है कि किसी भी देश में स्थित साम्प्रदायिक शक्तियाँ धर्म का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए किया करती हैं। जिना ने इसी धर्म का आश्रय लेकर लोगों के दिलों में नफरत की आग फैला दी। और जिना के अनुयायियों ने यह काम और उत्साह से किया। ठीक इसी प्रकार का कार्य हिन्दुओं में ‘हिन्दू महासभा’ और ‘राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ’ करते रहे हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संभवतः प्रत्येक युग में एक ओर धर्म के आधार पर मनुष्य को मनुष्य के निकट ले आने का प्रयत्न चलता रहता है, तो दूसरी ओर ‘धर्म’ के आधार पर नफरत की आग फैलाने का प्रयत्न होता रहता है। ‘धर्म’ यह घर के भीतर की चीज है अथवा वह आध्यात्मिक उन्नति का एक साधन मात्र है—इसे दुर्भाग्य से हम अब तक समझ नहीं पाये। लीग के सियासी कारकून की अपेक्षा ‘नसीबन’ सही अर्थों में ‘सच्ची मुसलमान’ है। कुरान न पढ़ते हुए भी वह कुरान का सच्चा अर्थ व्यवहार में उतारती है। मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्ध तो धर्म से परे हैं, और धर्म से भी बड़े। धर्म तो एक माध्यम है—इन सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिए। मनुष्य के भीतर की मानवीय शक्तियों—प्यार, भ्रमता, करुणा, स्नेह, ईमान—को विकसित करने की धर्म की कोशिश है। परन्तु दुर्भाग्य से इस धर्म का उपयोग ‘नफरत की आग’ फैलाने के लिए हो रहा है। जो असल है उसे बिस बनाया जा रहा है। स्पष्ट है कि कमलेश्वर साम्प्रदायिक शक्तियों को अत्यधिक दोषी ठहराते हैं। इन्हीं शक्तियों के कारण तो ‘नफरत’ की भावना उद्दीपित हो गई और ‘सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।”

चरित्र इस बस्ती में जीने वाले प्रत्येक पात्र का अपना महत्त्व है। नसीबन,

सत्तार, साईं हमारे मन पर अधिक छा जाते हैं। अपनी ममतायुगी दृष्टि के कारण, विद्याल मातृ-हृदय के कारण नसीबन; भावुक तथा प्रेमी के रूप में सत्तार तथा साम्प्रदायिक बहकावे में आकर बस्ती को खाक करने वाले साईं—पाठकों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। इन तीनों पात्रों को छोड़कर अन्य पात्र अनावश्यक हैं—ऐसा इसका कदापि अर्थ नहीं है।

नसीबन : नसीबन सम्पूर्ण उपन्यास पर छा गई है। आज सन् १९६०-६१ में बूढ़ी नसीबन उदास निगाहों से बस्ती की ओर देख रही है। स्वतन्त्रता के उन १४-१५ वर्षों बाद इस बस्ती में काफी नये परिवर्तन हुए हैं। नयी जिन्दगी यहाँ आ रही है। परन्तु नसीबन को इस नयी जिन्दगी के प्रति कोई उत्साह नहीं। क्योंकि यहाँ अपना कोई नहीं है। सब चले गए। नफरत की आग ने सब को झुलसा दिया। १९२५-३० के समय यह बस्ती बड़ी खूबसूरत थी। "लेकिन जब तक अपने कहे जाने वाले अपने पास न हों, नई जिन्दगी भी बहुत पुरानी और बोझिल लगती है। वही बोझ-सा था नसीबन के दिल पर।" इस नसीबन की स्मृतियों के माध्यम से बस्ती के पूरे भूतकाल को जीवन्त कर दिया गया है। 'नसीबन' इस बस्ती की सब से स्पष्टवादी तथा निर्भय स्त्री है। उसने जिन्दगी के उतार-चढ़ाव देते हैं। उसकी आँखें आदमी को झट से पहचानती हैं। इसी कारण सत्तार जब पहली बार इस बस्ती में आया और साईं ने परिचय करवाया तो—"नसीबन ने गहरी नज़रों से सत्तार की ओर देखा था, जैसे वह सब जानती हो कि यहाँ आकर वह कौन-सा काम शुरू कर सकता है।" "

किन्ती दूसरे की व्यक्तिगत जिन्दगी में दखल देना नसीबन को जरा भी पसन्द नहीं। साईं के ठीक उल्टा उसका यह स्वभाव है। वह तो सब को अपनी सहानुभूति और स्नेह देती रहती है। सलमा और सत्तार के सम्बन्ध को लेकर साईं जब उन्हें खूब डाँटता है, तब नसीबन को यह सब ठीक नहीं लगता। उसके अनुसार "इस सब से क्या फायदा हुआ साईं ?सारी दुनिया की जिम्मेदारी क्यों ओढ़ ली है तुमने, साईं ? जिसके जो मन में आता है, करने दो; तुम टाँग क्यों अड़ाते हो ?" " वह यह समझती है कि जिन्दगी अपने ढर्रे से चल रही है, चलती रहेगी। इस जिन्दगी की करबट को बदलने का अथवा उसमें नफरत की आग फैलाने का नापाक काम हमें नहीं करना चाहिए। सलमा और सत्तार दोनों बड़े हैं; अगर वे आपसी सम्बन्ध रखना चाहते हैं, तो उन्हें क्यों रोका जाए ? और फिर सलमा बड़ी ही बदनशील औरत है। सत्तार कोई बुरा आदमी नहीं है। परन्तु यह साईं..... स्त्रीलिए वह सोचती है "बूढ़ा साईं भी बहुत नाममज है। यह क्यों नहीं ममझता कि जिन्दगी आखिर जिन्दगी है, वह किमी की बगैर लकीरों पर चलने वाली मुर्दा चीज नहीं।" " नसीबन हर एक दुःख पर मरहम लगाना चाहती है। मरहम किस चीज का ?

"लेकिन दुनिया में बहुत से ऐसे ज़रम होते हैं जिनका मरहम बात कर लेना ही होता है।" धीरे-धीरे इस बस्ती में देश के राजनीतिक आन्दोलनों की खबरें आने लगीं। मकसूद और यासीन भी मामूली-मामूली ज़रम लेकर इस बस्ती में आ गए। और सधी भी अपने ढंग से इस ज़रम को फैलाने की कोशिश में हैं। बस्ती के बूढ़े, नौजवान और बच्चे अंग्रेजों के प्रति चिढ़ गए हैं। सत्तार इतना ही समझ गया है कि "यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन इतना मुझे पता है कि अंग्रेज हमारे दुश्मन हैं हिन्दोस्तान के दुश्मन हैं और इन्हें मार भगाना हमारा फर्ज है।" नसीबन इस बात से घबरा जाती है—सत्तार के प्रति सहज स्नेह के कारण। उस अशिक्षित स्त्री को लगता है कि अंग्रेज तो सर्वाधिक शक्तिशाली हैं, अकेला सत्तार उन्हें कैसे मार सकेगा? इसीलिए वह कहती है—"भुन, मेरे पास एक असली लोहे की गुप्ती है तू इधर आ तो, मैं तुझे दे दूँ किसी से बहियो मत, समझा।" स्पष्ट है कि नसीबन अंग्रेजों को मारने के लिए गुप्ती दे रही है। परन्तु इस गुप्ती देने के मूल में अंग्रेजों के प्रति चिढ़ नहीं सत्तार के प्रति सहज वालग्य से निमित्त चिन्ता ही है।

नसीबन और बच्चन को लेकर इस बस्ती में तरह-तरह की अफवाहें हैं। इन अफवाहों को फैलाने का कार्य साईं, मकसूद और यासीन ने ही किया है। बस्ती के एक हिन्दू परिवार 'बच्चन' के यहाँ नसीबन अकसर जाती है। बच्चन की पत्नी मर चुकी है और उसके दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। ये दोनों बच्चे नसीबन के बच्चों के दोस्त हैं, साथी हैं। विशाल हृदया नसीबन इन बच्चों की अभावावस्था देख नहीं पाती। इसीलिए वह इन्हें माँ का प्यार देती है। लोग इसी सहायता का मतलब निकालते हैं कि नसीबन और बच्चन दोनों में गलत सम्बन्ध है। बच्चन के लड़के रमुआ के पाँव की हड्डी टूट जाने के बाद तो नसीबन "रातभर वही रमुआ के बिस्तर के पास बैठी रही। बच्चन ने कहा कि वह कुछ देर सो ले, पर वह नहीं हटी, "मरद नहीं समझ सकने वाले बच्चों का सुख दुःख।" साईं, मकसूद और यासीन निरपराध बच्चन को एक चोरी के कांड में फँसा देते हैं और बच्चन जब घर से मारा-मारा फिरने लगता है, तब नसीबन ही उसके बच्चों की देखभाल करती है। "पता नहीं कैसे बाप है, जो अपने बच्चों तक का ख्याल नहीं रखता। इतनी रात उतर आई, घर में बच्चे अकेले पड़े होंगे—भूखे-प्यासे और यह पढ़ा घूम रहा है। अजीब आदमी है बड़बड़ाती हुई नसीबन बाहर निकल गई। सत्तार ने देखा, उसकी बगल में रोटियों की पोटली थी और गिलास में सालन।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि नसीबन का मातृहृदय सम्प्रदाय और धर्म को भी लांघ गया है। निस्वार्थ भाव से वह बच्चन के बच्चों की देखभाल करती है। इतना ही नहीं, उसे हर बार आने वाले खतरे से आगाह कर देती है। जब बच्चन के आने की समावना नहीं

दिखती, तो उन वच्चों को सीधे अपने घर ले आती है; यह कहते हुए—“जो होगा सो देखा जाएगा।” इसप्रकार हिन्दू के वच्चों को एक मुसलमान स्त्री द्वारा अपने घर रख लेना किमी को पसन्द नहीं। और जब इस हिन्दू को एक अपराध के मिल-मिले में पकड़ने की कोशिश की जा रही है; तब तो बात और भी भयानक है। इसी कारण माई उसे ममझाने का प्रयत्न करना है। कस्बे के अधिकतर लोग यही समझते हैं कि यह तो वच्चन और नसीवन के बीच की ‘आगनाई’ है। इन गलत, गन्दे और विकृत आरोपों से नसीवन को चिढ़ है। इसीलिए वह कहती है—“.....अब पचास के आस-पास आकर क्या यही सब बाकी रह गया है मेरे लिए.....इस उमर में हूँ और लोगों को धरम नहीं आती ऐसी बातें करते हुए,” वह यह साफ जानती है कि “वच्चन का चोरी में कोई हाथ नहीं है।”

नसीवन तो कह रही है कि उसके मन में वच्चन के प्रति ऐसी कोई भावना नहीं है, तो फिर क्या वच्चन उसे कुछ अन्य निगाहों से देखता है? “पर जब बस्ती में उसे लेकर फुमफुमाहट शुरू हुई थी, तो वच्चन ने पूरी आँखें खोलकर नसीवन को देखा था.....शायद कहीं पर.....शायद कुछ.....पर हमारे ही पल उसे अपने पर गुस्सा आया था और मन उचाट हो गया था.....नसीवन के बाएँ हाथ की बीच वाली अँगुली से टूटा हुआ नाखून उसे बार-बार कुछ बाद दिलाता था.....जब माँ मरी थी और उस पर कपड़ा डाल दिया गया था तो बायाँ हाथ मूल से बाहर रह गया था.....और उसकी बीचवाली अँगुली का नाखून कुछ इसी तरह टूटा हुआ था।” स्पष्ट है कि न नसीवन के मन में वच्चन के प्रति और न वच्चन के मन में नसीवन के प्रति इस प्रकार के भाव थे। और फिर वच्चन केवल अपने मन की तुष्टि के लिए, किसी के प्रति अनृत चाह की पूर्ति के लिए मन-ही-मन किमी स्त्री की काल्पनिक कहानी कहता है, तो नतार को इस काल्पनिक कहानी में नसीवन ही जाँकती हुई मिल जाती है। नतार को वच्चन पर चिढ़ आ जाती है। जो स्त्री शुद्ध मान-हृदय में उमकी ओर आकृष्ट हुई है; उसके मस्त्वन्ध में वच्चन यूँ कुछ कहे, उसे विलकुल मान्य नहीं था। इसी कारण जब वह नसीवन से सब कुछ माफ-माफ कह देता है तब—“उमने नसीवन की आँखों में जाँका था—वहाँ बादल-से घुमड़ रहे थे.....और एक उठना हुआ मँलाव नजर आ रहा था।” और वह उतना ही कह पायी—“गैर, वह अपनी जाने।” यही स्वभाव है नसीवन का। “गैर, वह अपनी जाने” में तो बही कहेंगी, जो मुझे और मेरे ईमान को ठीक लगता है। अधिक्षित नसीवन केवल वही करती रही जो उसे ठीक लगा। वच्चन, नतार, मलमा आदि के प्रति अपना कर्त्तव्य करते हुए उमने एक क्षणभर के लिए भी यह नहीं सोचा कि वे क्या सोचते होंगे अथवा लोग क्या कहेंगे। “गैर, वह अपनी जाने” इस मंक्षिप्त में उत्तर में कर्त्तव्य के प्रति उमकी तटस्थता की अभिव्यक्ति हुई है। परिस्थिति जब

और अधिक मयानक हो गई और पाकिस्तान बनने का जब ऐलान हो गया तब बच्चन ने आदमी भेजा था, अपने बच्चे ले आने के लिए । नसीबन ने सत्तार के साथ उसके दोनों बच्चे भेज दिए थे । तब उसकी मन स्थिति—“ दिनभर नसीबन बहुत उदास रही । रात को जब सत्तार दोनों बच्चों को लेकर चलने लगा, तो नसीबन ने एक पोटली उसके हाथ में थमाई थी ।—‘यह भी बच्चन को दे देना । उसके जेवर हैं ।’” केवल जेवर ही नसीबन ने नहीं दिए हैं, जेवर के साथ साथ कुछ चाँदी के रुपये भी हैं । ये रुपये उसके अपने हैं—क्योंकि ‘हैं तो अपन पर निपदा में घिरा है विचारा’ इधर चारी छिपे रहते हुए काम धाम भी नहीं कर पाया होगा, ऊपर से बच्चे जा रहे हैं, कुछ जरूरत भी तो पड़ेगी उसे वह दना, अपने समझकर ही खर्च कर ले । कोई बात मन में न लाए ।”

क्या वह इस नसीबन को ? जो बच्चन उसकी बदनामी कर रहा है, उसे वह रुपये दे रही है, जो उसने पेट काट-काटकर जमा किए थे । ‘नसीबन’ इसी कारण तो बहुत ही ऊँची उठ जाती है । इस सामान्य चरित्र के भीतर की यही ता असामान्यता है । उसकी इसी असामान्यता के कारण “सत्तार कुछ वह नहीं पाया था, कुछ भी कहते हुए जैसे वह अपनी नजरों में अब बहुत छोटा हुआ जा रहा था ।”

अन्य पात्रों की तुलना में नसीबन निर्मीक है तथा स्पष्टवादी । इन्हीं दो गुणों के कारण वह सार्ई को कई बार झिड़कती है । उसकी इस निर्मीकता का सब से बड़ा प्रमाण सधी लोगों के साथ उसके व्यवहार में मिलता है । बच्चन के हिन्दू बच्चे एक मुस्लिम स्त्री के घर में हैं यह सुनकर सधी लोगों का एक दल नसीबन के घर पर आता है । सधियों के प्रति मुस्लिमों के मन में ‘डर’ की भावना है ही । परन्तु नसीबन इनको निरुत्तर कर देती है । सधी लोग जब उस पर यह आरोप लगा देते हैं कि “हम पता चला है कि आप दो अनाथ हिन्दू बच्चों का धर्म परिवर्तन करने वाली है यह हो नहीं सकता ।” तब नसीबन इतना ही कह पाती है “क्या ‘धरम’ उसे और अधिक परेशान करने के बाद वह कह देती है—“बच्च किमी अनाथालय में नहीं जाएंगे । हम यह सझाट जानते नहीं रही उनके मुसलमान होने की बात, सो सालह आने गलन है ।” और इसके बावजूद भी सधी लोग बच्चों को माँगने ही हैं तो नसीबन कहती है—“अरे बच्चे हैं ये, कोई बाठ निबाड तो नहीं जो पडे रहेंगे वहाँ । खूब आये आप लोग बच्चे हवाले कर दो । बाह भई बाह । अरे करता हो करो जाकर ‘पुलिस नही, लर्टन को बुला लाओ । अरे हम बाहे को बनाएंगे किमी को मुमलमान हमारे क्या बाल-बच्चे नहीं हैं हाँ नहीं तो ” बडबडाती हुई वह भीतर चली गई और गुस्से में ही उसने किबाड लगा लिए ।” सधी-स्वयंसेवक अपना-ना मुँह लेकर खडे थे । स्पष्ट है कि नसीबन इन

वच्चों को किसी भी स्थिति में पराये के हाथों में देना नहीं चाहती ।

विभाजन के बाद धीरे-धीरे लोग पाकिस्तान की ओर निकल पड़े । परन्तु नसीबन इस वस्ती को छोड़कर जाना नहीं चाह रही थी । उसे इस वस्ती से अत्यधिक प्यार था; तथा यूँ अपनी मिट्टी को छोड़कर जाने की बात उसे बड़ी अजीब-सी लगती है । इफ्तिकार जब उससे पूछता है—“तुम जा रही हो……” “कहाँ जाऊँगी ?” “जहाँ और सब जा रहे हैं ।” नसीबन हँस दी । उसकी हँसी में कोई अर्थ नहीं था ।^{१५} वह यह समझती ही नहीं “आखिर घर-बार छोड़कर लोग गए हैं ।……कई-कई पुष्टों के नाल यहीं गड़े हैं……खुदा ।”^{१६} और इसी कारण वस्ती उजड़ जाने के बाद भी वह वहीं रहती है । आज इस घटना को हुए १४-१५ वर्ष बीत गए । परन्तु आज भी नसीबन को लगता है कि सब लोग कल तक तो यहीं पर थे । यह सब क्या हुआ है ? यह वस्ती यूँ उजड़ क्यों गई है ? आज जब कभी “नसीबन का मन डूबता, वह उधर ही ताकने लगती और उसे वे दिन याद आते जब वह वस्ती के वच्चों को खोजती हुई वहाँ जाया करती थी……”^{१७} नसीबन शायद किसी अनागत की प्रतीक्षा में है । उसीलिए वह उन रास्तों की ओर ही देखते रहती है, जो वस्ती की ओर आते हैं । एक दिन उसकी यह प्रतीक्षा समाप्त हो जाती है । क्योंकि वह अनुभव करती है कि सात-आठ नौजवान इसी वस्ती की ओर आ रहे हैं । “और मिनट भर में सारी पहचानें उमर आयी थीं……उन्हीं गए हुए और बिखर गए घरानों के वच्चे अब मजदूरी करने के लिए फिर लौटे थे…… और अपने पुराने घरों की जगह खोज रहे थे……चलते बक्त उनके अच्चा या घर-वालों ने बताया था—“उधर अपने घर हैं ।”^{१८} उनके आ जाने से “नसीबन खुशी से रो पड़ी थी ।……और उन्हें अपने साथ ले गई थी……उन निशानों के पास जो अब भी बाकी थे……”^{१९}

नसीबन के इस चरित्र के विकास-आत्मक अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष दिए जा सकते हैं—

नसीबन का मन ‘अपरिवर्तनशील’ है । अर्थात् अन्य पात्रों में जिस प्रकार नफरत की चिनगारी फैलती जाती है और उनमें जो भयानक परिवर्तन दिखाई देता है, उसका यहाँ पूर्णतः अभाव है । सहज मातृ-हृदय को लेकर वह जीति रही । इस मातृ-हृदय पर बाहरी बातों का, अफवाहें निन्दा अथवा बदनामी का कोई असर नहीं हुआ । ‘वच्चे’ यह नसीबन की बहुत बड़ी कमजोरी है और उसकी विशेषता थी । “उसकी आँखों में असोम ममता थी उन वच्चों के लिए……और शायद अपने लिए गहरा सपना ।”^{२०} संक्षेप, गुस्सा, अन्तार, वच्चन तथा इफ्तिकार के लिए भी उसके मन में इसी प्रकार की ममता है । प्रत्येक के दुःख में वह सहज रूप से धुल-मिल जाती है । उनके दुःखों के निराकरण के लिए वह प्रयत्नशील हो जाती है । दुःखों

के इसी अनौचित्य के कारण वह सबको स्वीकार करके चलती है ।

प्रवाह के साथ वह बहती नहीं, अपितु 'स्थिर' रहकर दूसरों को सहारा पहुँचाती है । वास्तव में इस जलती हुई बस्ती में वह 'ओएसिस' की तरह है । अपनी मिट्टी से उसे बेहद प्यार है । इसी कारण वह यह नहीं समझ पाती कि लोग अपनी बस्ती को छोटकर हमेशा के लिए दूर कैसे जा सकते हैं । 'नफरत' की इस चिनगारी से उसे चिढ़ है । इस चिनगारी को फैलाने वालों को वह कभी स्वीकार नहीं कर पाती । साईं को वह अन्त तक समझाते रहती है कि वह जो बूछ कर रहा है, वह गलत है और इसके बुरे परिणाम होने वाले हैं । इसी कारण "अब साईं भी दुःखी था और किसी हद तक अपनी गलती मन ही मन स्वीकार कर चुका था ।" साईं के इस पश्चात्ताप दाय वाक्य के नसीबन के चरित्र की ही विजय है । अशिक्षित होने हुए भी वह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अन्तर मानती है ।

नसीबन अत्यधिक स्वाभिमानिनी है । किसी के अपमान अथवा गलत व्यवहार को वह सहन नहीं कर पाती । स्वाभिमान के कारण वह साईं को डाँटती है, सघी रतन को मुँहतोड़ जवाब देती है । बच्चन के गहने, रम्यो के साथ लौटा देती है । वह स्वाभिमानिनी ही नहीं, जिद्दी भी है । इसी कारण वह सब का विरोध सहने हुए भी बच्चन के बच्चों को सहारा देती है, सत्तार को रहने के लिए अपनी जगह देती है तथा सलमा के साथ सहानुभूति जताती है ।

बच्चन के स्वभाव को समझ जाने के बाद तो उसे उसका तिरस्कार करना चाहिए था, पर वह नहीं कर सकी । तिरस्कार और नफरत ये उसके स्वभाव में हैं ही नहीं । उसका तो लक्ष्य है—वर्त्तव्य करते जाना । लोग क्या कहते हैं या कहेंगे, पर विचार करने वह कभी नहीं बैठती । यह नसीबन की प्रासदी है कि उसकी मन स्थिति को समझने वाला कोई नहीं था—सिवा सत्तार के । उसके पास अपने लिए केवल गहरा सपना है । उसके बारे में इतना ही कहना होगा "She is just a silent flame of love" प्यार और स्नेह की सात ज्योति की तरह उसका व्यक्तित्व है । स्नेह की वह ममतामयी मूर्ति है ।

नसीबन जिस मार्ग पर से जा रही थी वही मार्ग श्रेष्ठ, व्यावहारिक और विधायक था—यह अन्त में सिद्ध हो जाता है । साईं भी इसे स्वीकार करता है । वास्तव में नसीबन का चरित्र लेखक के विद्वानों का प्रतीक है । वह मानवतावादी मानवता का श्रेष्ठ मानवी मूल्यों का, करुणा, उदारता, सहृदयता, स्नेहशीलता, स्पष्टता, निर्भयता, अशक्तिरहितता का प्रतीक है ।

धर्म और सम्प्रदाय से भी ऊपर उठकर केवल मनुष्य मात्र को लेकर सोचने वाली यह अशिक्षित गँवार स्त्री हजारों पढ़े लिखे परन्तु संकुचित और साम्प्रदायिक

लोगों को पराजित कर देती है, अपने इन्हीं मानवीय गुणों के कारण !

साईं :— एक ओर नसीबन प्रवाह-पतित न होते हुए अपने व्यक्तित्व तथा मानवीय भावों की गरिमा अन्त तक बनाए रखती है तो दूसरी ओर साईं प्रवाह के साथ बह जाता है । 'नफरत' की चिनगारी उसके भीतर प्रज्वलित हो उठती है और इसीलिए वह इस चिनगारी को और अधिक लोगों में फैलाने लगता है । साईं फकीर है । ऐसे फकीर भारत के किसी भी वस्ती में पाए जाते हैं । नफरत को वह चिनगारी साईं के भीतर प्रचलित होने के पूर्व साईं आम भारतीयों की तरह सबके साथ मिल-जुलकर रहा करता था । "जुम्मन साईं की कोठरी के सामने धूनी रमी रहती थी ।इधके और तांगे वाले, स्टेशन के कुली और छोटे दूकानदार वहाँ शाम को इकट्ठे होते और गप्पें लड़ाते ।" "जुम्मन साईं की चिकवों की इस वस्ती में काफी इज्जत थी । "साईं ही इस वस्ती के सभी झगड़ों का निपटारा किया करता था ।" "साईं जैसे बाहर से दिखता है, वैसे भीतर से नहीं । "बूँ साईं दुनिया की बातों से बहुत दूर होने का नाटक करता था, पर भीतर-ही-भीतर वह उसी में रमा हुआ था । उसकी मुरमा लगी आँखें बाज की तरह तेज थीं । वह हरफ निगाह रखता था ।" "इसी कारण वह सलमा और सत्तार के व्यक्तिगत जीवन में अक्रान्त है । साईं खुद को इन वस्ती के मुसलमानों का प्रमुख मानता है । इसी कारण वह प्रत्येक के व्यक्तिगत जीवन की पूछताछ करते रहता है । यह साईं के व्यक्तित्व की कमजोरी ही है । इसी कारण नसीबन द्वारा बार-बार डाँटने पर भी वह दूसरों की जिन्दगी में टांग अड़ाते रहता है । वह लोगों को यह बतलाता है कि सारी दुनिया की जिम्मेदारी उसने ओढ़ ली ।

अलीगढ़ का नियासी कारकून यासीन और सलमा का पति मकसूद के कारण साईं 'माम्प्रदायिकता' के जहर को फैलाने लगता है । उन लोगों के आने से पहले "रोजाना यह सब देखते हुए साईं निकल जाता था ।सब जैसे के तैम रहते आ रहे थे और अपने कटोरे में पैसे खटका हुआ और तूँबी लिए हुए जब वह लौटता, तो जैसे शहर-भर का दर्द बटोर लाता ।" "तब जुम्मन साईं की बैठक में मुसलमान तांगे वाले और हिन्दू कुली समान रूप से आकर बैठते थे । "इधके वाले ज्यादातर मुसलमान थे और कुली हिन्दू, पर उनमें कहीं भी फर्क नहीं था । सब पर जमाने की भार थी और सब के सामने एक-सा रिज रहे थे और सब के मन में समान थे । उन्हें धर्म-वर्चशियों से मतलब नहीं था, पर इससे मतलब जरूर था कि धर्म उन जैसे बदनसीबों के लिए क्या कहता है ?" "परन्तु यासीन और मकसूद के आने के बाद हिन्दू और मुसलमानों के मन्ते बदल दिए जाते हैं । यासीन उन्हें बतलाता है कि हिन्दू, हिन्दू हैं और मुसलमान, मुसलमान । परिणामतः साईं भी इसी दृष्टि से सोचने लगता है और अब उसकी बैठक मस्जिदों में, और वह भी केवल

मुस्लिमों की ही होने लगती हैं और साई कहने लगता है, 'कानगरेस तो हिन्दुओं की जमात है।' अथवा—'हिन्दू नेता यह चाहते हैं कि वे मुसलमानों को साथ लेकर अभी तो अंग्रेजों से हुकूमत छीन लें, वस । बाद में वे मुसलमानों को अंगूठा दिखा देंगे, यही उनकी चाल है।' साई के इन वक्तव्यों से स्पष्ट है कि वह प्रवाह-पतित हो रहा है। 'धर्म' के असली स्वरूप को जानते हुए भी वह अनजान बन रहा है। यामीन और मकसूद के कारण वह साम्प्रदायिक आग भड़काने के लिए प्रयत्नशील है। वक्चन के वक्चे उसे 'हिन्दू' लगते हैं, केवल वक्चे नहीं। अथवा वक्चन-नसीबन में वह गलत सम्बन्ध देखने लगता है। हर हिन्दू उसे अब मुस्लिम कौम के शत्रु लगने लगने हैं। इसी कारण वह लोगों को समझाने बैठता है—'हम मिरां अपनी कौम पर भरोसा कर सकते हैं। हिन्दू और अंग्रेज दोनों दगा देंगे हमें।' सत्तार जब साई, मकसूद और यामीन की नीतियों का विरोध करता है, तो साई उस पर न केवल चिढ़ जाता है अपितु 'साई ने उसी रात सत्तार को मस्जिद की कोठरी से निकलवा दिया था।' आखिर सत्तार भी तो एक मुसलमान ही है। परन्तु साई को ऐसे व्यक्तियों से चिढ़-सी हो गई है जो इस प्रकार साम्प्रदायिकता को उभराने नहीं दे रहे हैं, जो विभाजन के विरोध में हैं। पूरी वस्ती में साई के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जानने वाला एक ही व्यक्ति भीजूद है—इफ्तिकार तागे वाला। इसी कारण इफ्तिकार साई की प्रत्येक नीति का विरोध करता है। सत्तार की विचारधारा को भी वही नहीं दिशा देता है। इफ्तिकार एक स्थान पर साई के सम्बन्ध में कहना है—'यह साई बड़ा घुटा हुआ आदमी है, सनार। शहर भर में घूम घूमकर यह करता क्या है? जितने दूरे फेंकवाले लोग हैं, सबसे दोस्ती है इसकी। इससे अल्लाह का क्या वास्ता?' स्पष्ट है कि उसकी 'कथनी' और 'करनी' में अन्तर है। इसको किसी पड़्यन्त्र में फँसाना भी मुश्किल है। क्योंकि "पुलिसवालों से बड़ी घुटती है उसकी।" पुलिसवालों के साथ इसी घनिष्टता के कारण साई निरपराध वक्चन को चोरी के मामले में फँसा देता है। उसके वक्चों को निराधार बनाना है और वक्चन की सारी जानकारी सत्तार की है, इस सन्देह में सत्तार को भी पुलिस की ओर से पिटाया है। साई नसीबन के विशाल मान-हृदय को समझ नहीं सका है।

पाकिस्तान के प्रति इतना आग्रह रखनेवाला, लोगों के दिलों दिमाग पर 'पाकिस्तान' इस नये राष्ट्र का नशा चढ़ानेवाला साई खुद पाकिस्तान नहीं जाता। इस वस्ती के प्रति उसके मन में जो मोह है उस कारण वह नहीं गया अथवा कुछ अन्य कारण से, नहीं मालूम। लगता ऐसा है कि वस्ती के मोह के कारण ही वह जा नहीं सका है। इस उजड़ी हुई वस्ती को देखकर साई अकसर निराश हो जाता है और "अब साई भी दुखी था और किसी हद तक अपनी गलती मन-ही मन स्वी-

कार कर चुका था ।”^{७७} लेखक के इस अन्तिम वाक्य के कारण साईं के चरित्र पर दूसरे ढंग से विचार करना पड़ता है । पश्चात्ताप के इस वाक्य से ही स्पष्ट है कि साईं मूलतः घुरे स्वभाव का नहीं है । मनुष्य-मन की कमजोरियाँ उसमें हैं औरों के विचार-प्रवाह में वह जल्दी वह जाता है । उसके पास किसी निश्चित सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक दृष्टि का पूर्णतः अभाव है । दृष्टि के इसी अव्यवस्था के कारण वह यासीन और मकसूद के विचारों से बहक जाता है । दूर-दृष्टि का अभाव रहने के कारण ही वह इस नफरत की आग को फैलाते जाता है । धर्म और सम्प्रदाय से नरे हटकर सहजता से जीने वाले लोगों के जीवन में ऐसे लोग व्यर्थ का तूफान निर्माण कर देते हैं ।

‘किसी के व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश करना’—यह साईं की चरित्रगत कमजोरी है । स्वाभिमान भी इसमें नहीं है । इसी कारण सत्तार, सलमा और नसीबन द्वारा अपमानित होने के बाद भी वह उनके साथ बातें करता है । इस व्यवहार के मूल में ‘उदारता’ नहीं ‘धूर्तता’ है । अपने अपमान का बदला वह बहुत ही घुरे और विकृत पद्धति से लेना चाहता है । मानसिक दृढ़ता का भी उसमें अभाव है । पश्चात्ताप उसे तब होता है, जब वस्ती पूर्णतः खाक हो जाती है । असल में वोखा ऐसे ही लोगों से अधिक है; जो धर्म का चोला पहनकर धर्म के विरोध में कार्य करने लगते हैं ।

सत्तार :— सत्तार किसी दूसरे कस्बे से इस कस्बे में आया था । इसके पहले वह किसी सर्कस कम्पनी में घोड़ों की जीन कसा करता था ।^{७८} शहर में साईं से उसकी मुलाकात हुई थी । वहीं से साईं उसे उस वस्ती में ले आया था । शहर से इस बस्ती की ओर आते समय ही सत्तार के कानों में ‘पाकिस्तान’ की गनक पड़ चुकी थी । इसीलिए वह साईं से कह रहा था—“लगता है अब अपना पाकिस्तान बन जायेगा..... शायद एक बेहतर जिन्दगी मिले मुसलमानों को..... यहाँ तो बड़ी गरीबी है; न करने को काम, न रहने को जगह ।”^{७९} पाकिस्तान के प्रति सत्तार के मन में आरम्भ में इस प्रकार का आकर्षण था । परन्तु इस वस्ती में आने के बाद धीरे-धीरे उसका यह आकर्षण समाप्त हो जाता है । इफ्तिकार तांगेवाला और नसीबन के कारण भविष्य में बनने वाले इस ‘पाकिस्तान’ के प्रति उसकी हमदर्दी खत्म हो जाती है और यासीन-मकसूद के कारण तो वह इस नये राष्ट्र का विरोध करने लगता है ।

“इस वस्ती की मस्जिद की बाहर वाली एक कोठरी में सत्तार को रहने की जगह मिल गई थी ।”^{८०} नसीबन से उसका परिचय यहीं पर हुआ और सलमा से भी परिचय हो गया । सलमा का परिचय धीरे-धीरे प्यार में बदल गया । प्यार—जिसमें

शारीरिक प्यास ही अधिक है। शहर में आए हुए इस युवक का वस्ती की किसी विवाहित स्त्री से इश्क पुरु हो गया है—यह सुनकर साईं भडक उठता है। इसी कारण उसकी “कोठरी पर पेशी भी हुई।”^{५५} इस पेशी के बाद सत्तार यह अनुभव करता है कि सलमा और उसे लोग उनकी इच्छा के अनुसार जीने नहीं देना चाहते और फिर इसके कुछ ही हफ्तों बाद—‘पर इधर पिछले कुछ हफ्तों से नमीबन देख रही थी कि सत्तार बहुत उदास रहने लगा था।’^{५६} इस उदासी का कारण सत्तार के पति मकसूद का लोट जाना है।

मकसूद के वापिस आ जाने के बाद से ही सत्तार की जिन्दगी में जा उदासी छा जाती है, वह उसकी मृत्यु तक धनी रहती है। सत्तार अब अपने को बेहद अकेला अनुभव करने लगता है। उस यह मानूँ है कि सलमा को मकसूद पसन्द नहीं हैं। मकसूद के यहाँ से तो वह भाग आई है। फिर वह सलाव देकर उससे शादी क्यों नहीं करती? सलमा की अपनी कुछ मजबूरियाँ हैं। ‘और एक दिन सलमा भागी भागी आई थी और सिर्फ इतना ही कहकर चली गई थी कि “बल रान मुझे पीपल वाले घर में मिलना”’^{५७} शायद वह कुछ ठोस निर्णय लेना चाहती है। शायद वह अपने पति में सलाव लेना चाहती है। इसी सिलसिले में वह सत्तार से बात करना चाहती है और सत्तार उस रात “सोना हो रह गया था यह क्या हुआ? वह समझ ही नहीं पाया। यह कैसे हुआ और क्यों हुआ।”^{५८} “और उस रात के बाद सलमा बदल गई थी। साथ ही दूसरे दिन सत्तार को अस्पताल की नौकरी से भी जवाब मिल गया था।”^{५९} सत्तार अब अपने को अत्यधिक अकेला और निराश अनुभव करने लगता है। नेनाबो के भाषण सुनकर वह अफ्रेजो को मारने की तैयारियाँ शुरू कर देता है। यह सुनकर सलमा उसे मिलने का प्रयत्न करती है। परन्तु मनार बम इतना ही जवाब देता है ‘अब मिलकर क्या करूँगा उससे कहना जब मर जाऊँ तो मेरी कब्र पर मिलने चली आये, वही मुलाक़ात होगी।’^{६०}

साम्प्रदायिकता की आग इस वस्ती में फैलने लगी। यामीन और मकसूद इस आग को फैलाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। सत्तार को ये साम्प्रदायिक बातें टीक लगती थी। इसी कारण तो वह सोचता है कि “नसीबन को उसकी गुप्ती ही वापस कर आये, क्योंकि अब वह हिन्दुओं के साथ मिलकर अफ्रेजो को मारने में मदद क्यों दे।”^{६१} और फिर यह भी सोचता है कि इस प्रकार हिन्दुओं से नफरत करने वह सलमा के पति और उसके दोस्त की बातों को इज्जत कर रहा है, उन्हीं के इशारे पर चल रहा है। इसीलिए फिर वह तय करता है कि—“वह ऐसा कोई भी काम हरगिज नहीं करेगा जिसमें मकसूद का हाथ हो।”^{६२} सत्तार की द्वन्द्वात्मक स्थिति अन्त तक रहती है। साम्प्रदायिकता की ओर वह नहीं बढ़ सका, इसने पीछे गयी

मनोवैज्ञानिक कारण है। यासीन और मकसूद के स्थान पर कोई और होता तो सत्तार भी उस आग को और फैलाता। विभाजन और नफरत की ओर देखने की उसकी अपनी कोई दृष्टि नहीं है। 'जो मकसूद और यासीन करेंगे वह मैं नहीं कहूँगा।'—इतना ही वह तय कर लेता है। उसकी भावनात्मक जिन्दगी में मकसूद के आने से दरारें पड़ चुकी थीं; इसीलिए उसे मकसूद से नफरत है और इसी कारण मकसूद के हर कार्य से। और एक दिन नसीबन द्वारा उसे मकसूद की कमजोरियों का भी पता चलता है। मकसूद की स्व्रेणता से उसे और भी चिढ़ आ जाती है। वह सोचता है कि सलमा को लेकर वह कहीं भाग जाएगा। 'कहाँ?' 'पाकिस्तान'। परन्तु इस पाकिस्तान के प्रति उसकी यह विरक्ति और भी बढ़ जाती है। जब उसे नसीबन याद दिलाती है कि मकसूद भी इसी पाकिस्तान के लिए तैयारी करवा रहा है और सलमा खुद अपनी भयावह स्थिति का रोते हुए जब वर्णन करती है तब "उन आँगुओं से नहाई सलमा उसे बहुत पाक लगी थी—बहुत सहनशील लगी थी।" परन्तु दूसरे ही क्षण सन्देहों की छायाएँ उसकी चेतना पर मँडराने लगी थीं। मकसूद का वच्चा कैसे हो सकता है—और उसे लगा था कि सलमा अपने किसी बहुत बड़े रहस्य को छिपाए हुए है। तब वह उसे बहुत ही हीन, गिरी हुई और नापाक लगी थी और उमने अपने सब सहारे टूटते हुए महसूस किए थे।" और "उसके सामने घुन्व छाई हुई थी। कोई भी चीज साफ नजर नहीं आ रही थी। हर तरफ एक शोर था—ऐसा शोर, जिसमें कोई भी आवाज पहचानी नहीं जा रही थी।"

साम्प्रदायिकता की इस आग के फैलने से जो सूक्ष्म परिवर्तन इस वस्ती में हो रहे थे; वह सत्तार के लिए असह्य था। वह किसी भी प्रकार का निर्णय नहीं ले पा रहा था। वह सलमा की मजबूरी को समझ पा रहा था, परन्तु उसे मुक्त कराने में अनमर्ब था। साई की ओर देखने की उसकी दृष्टि बदल गई थी। उसे विदवास था तो केवल नसीबन पर। नसीबन के मानवीय गुणों के आगे वह अपने को बहुत ही छोटा अनुभव करता था। यासीन और मकसूद के प्रति उसके मन में जो गुस्सा है; उसे वह एक दिन क्रिया-रूप में उतारता है। "पर मार-पीट की उसी झोंक में उसने मकसूद की नाक तोड़ दी थी।" और साई ने उसी रात सत्तार को मस्जिद की कोठरी से निकलवा दिया था। और उसी वक्त नसीबन उसे अपने घर ले आयी थी।

नसीबन के यहाँ आने के बाद सत्तार की जिन्दगी का तीसरा और आखिरी हिस्सा गुरु हो जाता है। वच्चन और उसके वच्चों के प्रति नसीबन का सहज स्नेह देखकर वह इस स्त्री के सम्मुख मन-ही-मन नतमस्तक हो जाता है। सलमा पर होने वाले मकसूद के अत्याचारों को सुनकर और देखकर वह उसके घृण का प्याना हो जाता है। साई सत्तार को पुलिस से चक्कर में फँसाने की पूरी कोशिश करता है।

नसीबन के प्रति बचनन के साथी माणिक और खमिन के मद भक्ता को मुनकर सत्तार और भी निराश हो जाता है। और लौटते हुए सत्तार को फिर अपना आना बेकार सा लगने लगा था। नसीबन का लकर जो जो और जिस जिस तरह की बानें उराने सुनी थी उनसे उसकी परेशानी और बढ़ गई थी। ^{११} और इस सारी निंदा के बाद भी नसीबन का अपने कर्त्तव्य के प्रति तटस्थता का भाव देखकर सत्तार मौन और गम्भीर हो गया था। सत्तार कुछ कह नहीं पाया था, कुछ भी कहने हुए जैसे वह अपनी नजरों में अब बहुत छोटा हुआ जा रहा था। ^{१२}

और एक दिन पाकिस्तान बन गया। इस वस्ती के लोग धीरे धीरे पाकिस्तान की ओर जाने लगे। एक दिन सलमा भी मकसूद के साथ निकल गई। जाने के पहले वह सत्तार से मिलकर गई। वह उस भी पाकिस्तान ले जाना चाह रही थी। परन्तु 'मैंने तो यहाँ तक कहा था हमारे साथ ही चला पर वह माना ही नहीं। वहने लगा—वहाँ जाकर क्या मिल जायगा और नाराज हावर चला गया। ^{१३} और वही मस्जिद के अहात की एक कोठरी में उसने आत्म हत्या कर ली।

इस प्रकार सत्तार इस वस्ती में ही खरम हो गया। पाकिस्तान गया नहीं। हार्निक पाकिस्तान के सपने लेकर ही वह इस वस्ती में आया था। नसीबन की तरह सत्तार को भी लेखक की पूर्ण सहानुभूति मिल गई है। सत्तार उन आम भारतीयों का प्रतिनिधित्व करता है—जिनके पास घटनाओं के अर्थ लगाने की शक्ति नहीं होती, जो बड़े ही भावुक और सरल मन के होते हैं। सत्तार इसलिए बका रहा क्योंकि उसे 'आग लगाने वाला से नफरत थी, आग से नहीं। इसी कारण नसीबन में और सत्तार में बहुत बड़ा अन्तर है। दोनों पाकिस्तान और विभाजन का विरोध करते हैं। साम्प्रदायिक आग से दोनों दूर रहते हैं। परन्तु कारण अलग अलग हैं। सलमा और उसके बीच मकसूद और आमीन दोवार बनकर खड़े हो गए इस कारण वह उनसे नफरत करने लगता है और इसी कारण नसीबन की तरह साचने लगता है।

सलमा का पा जने की सत्तार की इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी है। वह सत्तार की मजबूरी को पहले समझ नहीं सका। उल्टे उसके चरित्र पर गलत आरोप लगाता है। पूरी जिदगी में सत्तार को सहज, स्वाभाविक प्यार नहीं मिल सका है। इसी प्यार के लिए वह तड़पता रह गया। वह भावुक था, इसी कारण तो उसने आत्म हत्या कर ली। उसके मन में समाज राजनीति, धर्म आदि को लेकर अनगिनत प्रश्न निर्माण हो जाते हैं। इन सारे प्रश्नों का योग्य उत्तर उसे नहीं मिल सका है। वास्तव में सत्तार जैसे लोग ही इस देश में बहुत बड़ी सहाय्य में हैं। योग्य भागदान नस्कार और शिक्षा के अभाव में तथाकथित पढ़े लिखे लोग इन्हें बहकाकर अपने स्वार्थ के लिए सीढ़ियाँ की तरह उपयोग

कर लेते हैं । धर्म का गलत अर्थ इनके दिलो-दिमाग में भर कर आर्थिक प्रश्नों से उनका ध्यान खींच लेते हैं और साम्प्रदायिकता का जहर फैलाकर अपना फायदा कर लेते हैं ।

टिप्पणियाँ

१, ३, ४, २६ : लौटे हुए मुसाफिर, पृ० १

२. वही, पृ० ५

५, ६, ७. वही, पृ० २

८, ६६. वही, पृ० ४

९, १०. वही, पृ० १६

११, १२, ७१ वही, पृ० २७

१३. वही, पृ० ३६

१४. वही, पृ० १९

१५. वही, पृ० ३८

१६. वही, पृ० ६८

१७. वही, पृ० ७२

१८. वही, पृ० ५६

१९, २०. वही, पृ० ९७

२१. वही, पृ० ९८

२२. वही, पृ० १०२

२३. वही, पृ० १०४

२४, ३५, ३६ वही, पृ० १०५

२५. वही, पृ० १०७

२७. वही, पृ० ३

२७, ६५, ७७ वही, पृ० १११

३०. वही, पृ० २९

३१. वही, पृ० ३०

३२. वही, पृ० ३२

३३. वही, पृ० १०३

३४. वही, पृ० १०४

३७. वही, पृ० १०९

३८. वही, पृ० ११०

३९. वही, पृ० ७

| | |
|------------|--------------------------|
| ४० | लौटे हुए मुमाफिर, पृ० १० |
| ४१ | वही, पृ० १४ |
| ४२, ४३, ८५ | वही, पृ० १५ |
| ४४, ८६ | वही, पृ० २५ |
| ४५ | वही, पृ० २६ |
| ४६ | वही, पृ० ५२ |
| ४७ | वही, पृ० ६०, ६१ |
| ४८ | वही पृ० ६५ |
| ४९ | वही पृ० ७४ |
| ५० | वही, पृ० ८० |
| ५१, ५२ | वही, पृ० ८८ |
| ५३, ५४, ५५ | वही, पृ० ९९ |
| ५६, ५७ | वही, पृ० ९२ |
| ५८ | वही, पृ० ९३ |
| ५९ | वही, पृ० १०६ |
| ६० | वही, पृ० १०७ |
| ६१ | वही, पृ० ११३ |
| ६२, ६३ | वही, पृ० ११६ |
| ६४ | वही, पृ० १०१ |
| ६७, ६८, ७९ | वही, पृ० ९ |
| ६९ | वही, पृ० १७ |
| ७० | वही, पृ० १८ |
| ७२ | वही, पृ० २८ |
| ७३ | वही पृ० ४७ |
| ७४ | वही, पृ० ४८ |
| ७५, ७६ | वही, पृ० ५८ |
| ७८ | वही, पृ० ८ |
| ८० | वही, पृ० २० |
| ८१, ८२ | वही, पृ० २१ |
| ८३ | वही, पृ० १० |
| ८४ | वही, पृ० १२ |
| ८७, ८८ | वही, पृ० २१ |
| ८९ | वही, पृ० ४५ |

१६४ । हिन्दी उपन्यास : विविध आयास

९०, ९१. लीटे हुए मुसाफिर, पृ० ४६

९२. वही, पृ० ४८

९३. वही, पृ० ८५

९४. वही, पृ० ९९

९५. वही, पृ० १०७

२९. साहित्यकोश, भाग १, पृ० ३०७

(सं० : धीरेन्द्र वर्मा)

शह और मात : तरल प्रेम की सहज अभिव्यक्ति

सूर्यनारायण रणसुभे

राजेन्द्र यादव की उपन्यास कला का उद्देश्य प्रगतिवादी चिन्तनधारा के आधार पर मध्यवर्गीय समाज के पारिवारिक जीवन का विश्लेषण तथा चित्रण करना है।

—डा० सुपमा घवन

इसकी (शह और मात) भी कथावस्तु यादव के अन्य उपन्यासों की भाँति व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है तथा सामाजिक सम्बन्धों का अन्तर्भाव केवल परिवेश के रूप में किया गया है।

—डा० महेन्द्र चतुर्वेदी

‘शह और मात’ व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है।

—डा० महावीर लोढा

‘शह और मात’ की कथा एक सस्ती और रोमानी कथा है।

—डा० लक्ष्मीसागर वाष्णैय

इसमें (शह और मात) युग के सन्दर्भ में सत्क्रान्तिकालीन अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हुआ है।

—डा० शान्ति भारद्वाज

औरत की हालत सभी जगह एक-सी है। चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी—वह हमेशा पुरुष का तेवर देखकर चलती है। उसकी इज्जत उसके चाहने न चाहने पर है। उसकी प्रणिष्टा उसकी शरीर शुद्धता की परम्परागत मान्यता पर है।”

—लेनिन

शह और मात

‘शह और मात’ के पूर्व यादव के दो और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं— ‘उखड़े हुए लोग’ तथा ‘प्रेत बोलते हैं’ (सारा आकाश)। इन दोनों उपन्यासों की कथावस्तु के सम्बन्ध में विविध मत व्यक्त किए गए हैं। डा० शान्ति भारद्वाज के अनुसार “इन दोनों उपन्यासों में यादव प्रगतिवादी चिन्तनधारा को अपनाते हुए मध्य वर्ग के जीवन का चित्रण करते हैं।”^१ अथवा “राजेन्द्र यादव की उपन्यास-कला का उद्देश्य प्रगतिवादी चिन्तनधारा के आधार पर मध्यवर्गीय समाज के पारिवारिक जीवन का विश्लेषण तथा चित्रण करना है।”^२ आलोचकों का यह वर्ग मानता है कि राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना है, समाज की विसंगतियों का चित्रण है। उनके तीनों उपन्यासों को पढ़ने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना उस रूप में नहीं है जिस रूप में वह यशपाल, नागार्जुन तथा इस काल के अन्य साहित्यकारों में अभिव्यक्त हुई है। प्रगतिवादी विचारधारा को यादव वैयक्तिक स्तर पर झेलते हैं तथा उनके पात्र भी अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में ही सनातनी तथा प्रगति-विरोधी तत्वों के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। इसलिए यादव की मूल पकड़ व्यक्ति और उसके परिवेश के परस्पर-विरोधी संघर्ष पर ही है। यादव मूलतः व्यक्तिमन का सूक्ष्म चित्रण करने वाले सज्जन कथाकार हैं। उनके उपन्यासों की कथावस्तु के सन्दर्भ में डा० महेन्द्र चतुर्वेदी का यह कथन अत्यंत ही सार्थक लगता है कि— “इनकी (शह और मात) भी कथावस्तु यादव के अन्य उपन्यासों की भाँति व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है तथा सामाजिक सम्बन्धों का अन्तर्भाव केवल परिवेश के रूप में किया गया है।”^३ अर्थात् प्रस्तुत उपन्यास पूर्णतः व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है। सामाजिक सम्बन्ध तथा सम्पूर्ण परिवेश यहाँ पृष्ठभूमि के रूप में ही आया है। संभवतः इसी कारण डा० महावीरमल जोड़ा इसका विवेचन “व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास”^४ के अन्तर्गत करते हैं। इसकी कथावस्तु को लेकर आलोचकों में विभिन्न प्रकार के मत हैं। डा० लक्ष्मीसागर वाण्येय इसे “एक सस्ती रोमानी कथा” कहते हैं। और डा० भारद्वाज यह मानते हैं कि

“इस युग के सन्दर्भ में सन्नान्तिवालीन अन्तरद्वन्द्व का चित्रण हुआ है।”

मतमानान्तरी के इस जगल में इसकी क्यावस्तु पर एक निश्चित निष्कर्ष देने में पूर्व संधेप में इसकी 'क्यावस्तु' को समझ लेने की कोशिश करें और फिर सभी इन सारे मतों पर विस्तार से विवेचन सम्भव होगा।

'शह और मात' सुजाता नामक एक युवा लेखिका की मन स्थिति को लेकर लिखा गया उपन्यास है। सम्पूर्ण उपन्यास में सुजाता की डायरी के पृष्ठ ही अधिक मात्रा में दिए गए हैं। डायरी के इन पृष्ठों से स्पष्ट हो जाता है कि शह और मात' उदय और सुजाता की प्रेम-कहानी है। एक प्रसिद्ध लेखक के सम्पर्क में सुजाता नामक एक प्रगुद्ध और अपने अहं के प्रति अत्यधिक सजग ऐसी युवती आती है। जाने-अनजाने में इस सुजाता के मन में उदय के प्रति प्रेम की सूक्ष्म तरंगें निर्माण हो जाती हैं। उसके व्यक्तित्व में सूक्ष्म परिवर्तन होने लगता है। फिर भी वह किसी से स्पष्ट करना नहीं चाहती कि उसका किसी उदय से प्यार है।

कॉलेज की ओर से होने वाले नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में सुजाता ध्रुवस्वामिनी की भूमिका अभिनीत कर रही है। उसकी बड़ी इच्छा है कि इस नाट्य प्रयोग के समय उदय उपस्थित रहे। परन्तु उदय वहाँ नहीं आता। उल्टे नाटक की समाप्ति के बाद उसके अभिनय पर बेहद खुश होकर उसे प्रशंसा देने चली आती है—अपर्णा नामक कोई एक प्रिन्सेस। और इस प्रकार सुजाता का परिचय प्रिन्सेस अपर्णा से हो जाता है। यह परिचय निवृत्त सम्पर्क में तथा मुख दुःख के परस्पर आदान प्रदान तक व्यापक हो जाता है। प्रिन्सेस अपर्णा की सम्पूर्ण जिन्दगी का, उसके सुख दुःखों का सुजाता बड़े विस्तार से वर्णन करती है—उदय के यहाँ। अब तो उनकी दैनन्दिन जिन्दगी का एक क्रम ही बन जाना है कि जो कुछ प्रिन्सेस के सम्बन्ध में वह नया जान सगी है, उसे तुरन्त उदय को बतला देना। “और मुझे लगा कि मेरे दिल की इतनी देर की बेचैनी, व्याकुलता, उद्वेगन और उद्वेग उदय को सारा विस्सा बताने पर एकदम शान्त हो गया। जैसे यह बोझ था जो उन्हें सौंभा था।” धीरे-धीरे सुजाता उदय और प्रिन्सेस को अपनी उपलब्धि मानने लगती है। परन्तु अचानक एक दिन उसे पता चलता है कि उदय तो उसके साथ गम्भीरता या नाटक ही कर रहा था। वास्तव में उदय सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग कर रहा था—अपर्णा के अध्ययन के लिए। प्रिन्सेस अपर्णा से वह न केवल परिचित ही अपितु उनी ने प्रिन्सेस तथा सुजाता के परस्पर परिचय का पड़्यन्त्र बनाया था। सुजाता का निरीक्षण उदय कर रहा था—सभी कोणों से और सुजाता के माध्यम से वह प्रिन्सेस अपर्णा का भी अध्ययन कर रहा था। और सुजाता समझ रही थी कि वह उदय का निरीक्षण कर रही है—सभी कोणों से। लेखक उदय को प्रिन्सेस अपर्णा का अध्ययन सभी कोणों से करना संभव नहीं था। उसे किसी माध्यम की आवश्यक-

कता थी । और उसने सुजाता को माध्यम बनाया है । लेखिका सुजाता समझ रही थी कि वह उदय का अध्ययन एक लेखकीय दृष्टि से कर रही है; परन्तु बाद में उसे पता चलता है कि उदय के जिस व्यक्तित्व के अंश का और व्यवहार का वह निरीक्षण कर रही थी, वह वास्तव में उसका अभिनय था । इस प्रकार 'शह और मात' दो लेखकों के परस्पर-विरोधी अध्ययन के प्रयत्न की कहानी है । निरीक्षण और अध्ययन की इस स्पर्धा में उदय मात कर चुका है—सुजाता को । और सुजाता ? वह उदय को शह देना चाह रही थी, परन्तु खुद मात खा चुकी है ।

एक लेखक-लेखिका के जीवन की घटनाओं को लेकर उपन्यास लिखने का यादव जी का प्रयत्न स्तुत्य ही है । क्योंकि कलाकरों की जिन्दगी से सर्वसाधारण पाठक अपरिचित ही होता है । इस उपन्यास के दोनों पात्र—उदय और सुजाता—कलाकार की जिन्दगी जीने की कोशिश करते हैं और हर बार इसमें हार जाते हैं । क्योंकि उनके भीतर बैठा हुआ "सनातन मनुष्य" उनके कलाकार व्यक्तित्व को मात कर देता है । माध्यम के रूप में सुजाता का उपयोग करने का बहुत बड़ा खेद उदय को है—इसलिए उदय मात खा चुका है तथा उदय का अध्ययन करने निकली सुजाता उसी पर प्यार करने लगती है—यह सुजाता की हार है । चूँकि इस उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध लेखन-कर्म से जुड़ा हुआ है, इस कारण इस में लेखन के सम्बन्ध में अनेक विचार आए हुए हैं; उनकी भी परीक्षा करनी पड़ेगी । इस प्रकार इसकी कथावस्तु में—(१) लेखक-लेखिका की एक-दूसरे को समझ लेने की कोशिश, (२) स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के प्रति प्यार और उस समय की उनकी मनःस्थिति, (३) लेखन के सम्बन्ध में विभिन्न विचार, (४) अत्यन्त सम्पन्नता में परन्तु वन्धनों के बीच जीनेवाली स्त्री की मनःस्थिति—इन चार विभिन्न स्थितियों का उद्घाटन किया गया है ।

समीक्षा :—प्रेम-कहानी अथवा अधिक-से-अधिक रोमांसमयी प्रेम-कहानी के रूप में आलोचकों ने इसकी कथावस्तु को स्वीकार किया है । वैसे तो हिन्दी में नट्टे प्रतिपादित उपन्यास प्रेम के सम्बन्ध को ही लेकर लिखे जाते हैं । फिर क्या 'शह और मात' भी इसी कोटि का उपन्यास है ? क्या इसे भी हम सस्ती और रोमानी प्रेम-कहानी के रूप में स्वीकार कर सकेंगे ? तटस्थता तथा गम्भीरता के साथ इस उपन्यास का अगर हम अध्ययन करेंगे, तो ये निष्कर्ष झूठे साबित हो जाएँगे । क्योंकि इसमें प्रेम की मानसिक अवस्था का बड़ा ही जीवन्त चित्रण किया गया है । युवा-वस्था तो स्वप्नों और प्रेम के मूड्स की अवस्था है । यह प्रेम मात्र मानसिक ही होता है । भारत के सन्दर्भ में तो इस प्रेम के क्षेत्र में कोई चमत्कारिक घटना लाखों में से किसी एक के जीवन में घटती है । युवक-युवतियाँ प्रेम के स्वप्नों में डूबी रहती हैं और बाद में परम्परावद्ध पद्धति से किसी और के साथ विवाहबद्ध हो जाती हैं ।

खुलकर प्रेम प्रकटीकरण यहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रेम को न अभिव्यक्ति होनी है और न वह क्रियात्मक में उतरता है। इस उपन्यास में सुजाता इस नियति को स्वीकार करती है और कहती है—अप्रेमी लड़कियों की तरह हमारा प्रेम न तो विन्यासियों और कहकहे वाले उन्नत अतिथियों में निकलता है, न हमारा क्रोध हिस्टीरिया के दोरी जैसी धोखे में। चाहो तो वह सकते हैं, हममें जीवन की कमी है, इसीलिए न तो खुले और सम्पूर्ण मन से प्यार कर सकती हैं, न क्रोध।” इस स्थिति में हिन्दुस्तानी लड़की चुपचाप भीतर-ही-भीतर घुटती रहती है। अथवा “हम हिन्दुस्तानी लड़कियों को चुपचाप रोने का रोग है जैसे अगरबत्ती चुपचाप जलती है।” सम्पूर्ण उपन्यास में सुजाता इस प्यार को लेकर शुष्क है, परेशान है। मानसिक स्तर पर वह उदय के साथ पूर्णतः जुड़ चुकी है। परन्तु उसका विवाह किसी और के साथ होने वाला है। परम्परावद्ध प्रेम-कहानियों में और इस उपन्यास की कथावस्तु में यही पर अन्तर है क्योंकि इस उपन्यास में प्रेम के विरुद्ध मानसिक स्वरूप की ही चर्चा की गई है। यह प्रेम ‘व्यक्तित्व को विभिन्न प्रकार परिवर्तित करता है—इसे लेशक देखना चाह रहा है। परम्परावद्ध प्रेम कथाओं में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण शुरू हो जाता है, यह आकर्षण ‘प्यार’ में परिवर्तित हो जाता है, फिर नायक-नायिका के मिलन में बाधाएं आती हैं, उन सारी बाधाओं को पार करके अन्त में उनका विवाह हो जाता है। अगर परस्पर विवाह नहीं हो सका तो फिर किसी दूसरे के साथ विवाह हो जाता है। परन्तु वहाँ पर भी वे एक-दूसरे के लिए तड़पते रहते हैं और अन्त में एक-दूसरे का नाम लेते हुए या तो मर जाते हैं या फिर मिल जाते हैं। ‘प्रेम’ का यह रूमानी स्वरूप है। वास्तव में भारतीय समाज में ऐसा नहीं होता। यहाँ ‘प्रेम’ एक विशेष आयु की मानसिक अवस्था मात्र है। एक-दूसरे के प्रति मानसिक खिचाव है, जबरदस्त मूल है। परन्तु संस्कार, परिवेश, परिस्थिति तथा अन्य कारणों से यह प्रेम भीतर-ही-भीतर रह जाता है। इसकी अभिव्यक्ति न होने से घुटन पैदा हो जाती है। यह घुटन, ये स्वप्न, ये मन स्थितियाँ जाने-अनजाने में उस व्यक्ति के व्यक्तित्व में सूक्ष्म परिवर्तन कर देते हैं। उस व्यक्ति के सारे संस्कार, सारी आशाएँ, मारा भविष्य इस मन स्थिति से झँझने लगता है। इस मानसिक स्थिति को कल्पनाजीवी कहकर हम चाहें जितना दुतकारें तो भी इस स्थिति को प्रामाणिकता को तथा उसके सूक्ष्म कार्य को हम नकार नहीं सकते। दुर्भाग्य से हिन्दी के अब तक के उपन्यासकारों ने प्रेम को अत्यन्त ही नकली, भावुक और अभ्रुजीवी रूप में ही बतलाया है। श्री राजेन्द्र यादव प्रेम की इसी स्थिति को अधिक गहराई और गम्भीरता से देखना चाह रहे हैं। वे इस प्रेम को सफल-असफल बनाने के चक्कर में नहीं आते। उलटे इस मानसिक स्थिति के भीतर उतर कर व्यक्ति के अहं को, उसके भीतरी सूक्ष्म परिवर्तनों को देखना, परखना चाह रहे हैं। सम्भवतः इसी कारण नामवर सिंह जैसे

आलोचक ने कहा है कि "बारह साल से लेकर सत्तर साल तक का हर लेखक हमारे यहाँ प्रेम की थीम जरूर घसीटता है; लेकिन एक भी तो ऐसा उपन्यास नहीं है जो आप को आकंठ डुबा दे। लगे कि आप सचमुच प्रेम की गहराइयों में उतर आए हैं.....प्रेम का अर्थ या तो उनमें घोर शारीरिक उत्तेजना में किए गए आर्लिगन-चुम्बन में मिलता है या फुसफुसे लोगों की गिलगिलाती छिछली आदर्शवादी भावुकता में.....प्रेम सूक्ष्म और अनजाने रूप में सारी मानसिक वनावट के स्तर बदलता है.....वह एकान्त और मधुर आत्मीय क्षण देता है।" एकान्त मधुर और आत्मीय क्षणों को पकड़ने का प्रयत्न लेखक ने इस उपन्यास में किया है। मध्यवर्गीय युवती का किसी युवक के सम्पर्क में आने पर उसकी मानसिक उथल-पुथल का बड़ा ही सजीव चित्रण इसमें किया गया है। इस युवती के मन की कुण्ठाएँ, हीन-अंधियाँ, दमित वासनाएँ, भय, अहं आदि का अत्यन्त ही सहज, सूक्ष्म तथा गम्भीर चित्रण इस उपन्यास में हुआ है—और यही उसकी कथावस्तु है।

कथावस्तु की यथार्थता पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगाए जा सकते; क्योंकि इस प्रकार मात हो जाने की स्थिति किसी लेखक-लेखिका के जीवन में ही नहीं, आम आदमी में भी संभव है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की किसी विशेषता के सम्मुख हम नतमस्तक हो जाते हैं; उसी उस विशेषता के कारण हम उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी करने लगते हैं। और अचानक हमें किसी दिन पता चलता है कि वह उसकी विशेषता नहीं, चतुराई थी या अभिनय था तो हमें एक जबरदस्त मानसिक आघात हो जाता है। ठीक यही स्थिति मुजाता की है। उदय की डायरी का आखिरी पन्ना पढ़कर उसका स्वप्न-भंग हो जाता है। उदय वास्तव में मुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग कर रहा था और पगली मुजाता उदय और अपर्णा को अपनी उपलब्धि मान रही थी। वास्तव में माध्यम की अपनी कोई उपलब्धि नहीं होती। मुजाता के क्षुब्ध होने का एक मात्र कारण यह है कि उनके अनजाने ही उसका उपयोग सेतु के रूप में किया गया है। उसका मारा अहं टूट जाता है। आधुनिक युग में व्यक्ति को इस प्रकार की भीतरी टूटन आम स्थिति हो गई। राजनीति, धर्म, व्यापार आदि प्रत्येक क्षेत्र में 'सेतु' के रूप में प्रतिभाशाली व्यक्तियों का उपयोग कर लिया जा रहा है। भावुक, ईमानदार और मेहनती युवक-युवतियों का इस प्रकार 'सेतु' की तरह उपयोग—२०वीं शती की अपनी विशेषता है। 'साहित्य' में भी यही चल रहा है—यह इस उपन्यास ने सिद्ध कर दिया है। इसलिए मुजाता का इस प्रकार ठगा जाना अपने आप में आधुनिक युग की यथार्थता को ही स्पष्ट करता है। यह यथार्थ भयावह, क्रूर और निष्ठुर है। परन्तु इसको नकारा भी नहीं जा सकता।

इस उपन्यास को यथार्थवादी टच देने की इच्छा से ही यादव ने इसकी नूतनिका लिखी है और वह भी उपन्यास की डायरी शैली में ही। १० जुलाई,

१९५८ ई० की डायरी के पृष्ठ पर वे लिखते हैं कि 'कथाकार मुजाता की मृत्यु का समाचार मुझे एक विचित्र-मे सन्तुष्ट उल्लास से भर गया है। अब मैं निःशब्द होकर उसकी डायरी के इन कुछ पन्नों को पाठको के सामने रख सकूंगा।'"^{१९} मुजाता आज गुजर गई हैं। मृत्यु के समय उनकी क्या आयु थी, नहीं मालूम। परन्तु लेखक को डायरी भौंपते समय मुजाता ने यह जो कहा है—“देख मैया, उसने जाने क्या-क्या बचपने की उलटी-सीधी बातें लिखी हैं।”^{२०} उससे ऐसा लगता है कि मृत्यु-समय मुजाता प्रौढ़ आयु की स्त्री रही होगी। क्योंकि वह उदय के साथ के सम्पर्क के उन दिनों को “बचपने की उलटी-सीधी बातें” कह रही हैं। मुजाता की मृत्यु सन् १९५८ में हुई है। उदय के सम्पर्क के समय मुजाता की आयु २१-२२ अगर समझें (क्योंकि वह एम ए की छात्रा है) तो उसकी मृत्यु ४०-४५ वर्ष में हुई है। इसका अर्थ हुआ कि १९३२-३३ ई० में वह उदय के सम्पर्क में आयी थी। परन्तु उपन्यास में बम्बई का जो वर्णन हुआ है वह सन् १९३२-३३ का नहीं १९५५-५८ ई० का है। “और जब यह सुना कि सरदार पटेल ने तेजी से रियासतों का विलीनीकरण शुरू कर दिया है तो यही जम गए।”^{२१} अर्पणा के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि रियासतों के विलीनीकरण के बाद वह बम्बई में रह रही है और आज इस बात को १० से अधिक वर्ष हो गये। स्पष्ट है कि मुजाता की यह प्रेम-कहानी, सन् १९५८ के बीच ही घटित हो रही है। फिर इन विगत वक्तव्यों का कौन-सा स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। स्पष्ट है कि लेखक आवश्यकता न होने हुये भी मुजाता को ‘यथार्थ चरित्र’ घोषित करने गया है और उसमें उस बेहद असफलता मिली है। कथाकार मुजाता की मौत का जिक्र न करते हुए भी इस उपन्यास को लिखा जा सकता था। तब तो यह उपन्यास अधिक जीवन्त बन जाता। परन्तु यादव वक्तव्य देने के अपने मोह को रोक नहीं सके हैं। वास्तव में मुजाता अपनी डायरी के पन्नों में जीवन्त रूप से उमरकर आयी हैं।

इस उपन्यास में ‘अर्पणा’ नामक किसी प्रिन्सेस का जो विस्तार से विवेचन हुआ है, उसकी यथार्थता को लेकर भी अनेक प्रश्न उठाये जा सकते हैं। क्योंकि अर्पणा का सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त ही करुण, हृदयद्रावक और यातनामय है तो दूसरी ओर उससे सम्बन्धित उसके पति तथा भाई का जीवन मङ्गलीला और रोमान्स से परिपूर्ण है। उदय इस जीवन को ही करीब से जानना चाहता है। “सत्कार और वर्ग की दीवारों की दरार टटोलने की बेचैनी” से उदय गुजर रहा है। रियासतों के प्रमुखों का जीवन आज भले ही अयथार्थ लगता हो तो भी उसे एक ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। मुजाता और उदय का यह सह और मात का खेल इसी जीवन को केन्द्र में रखकर चला रहा है। इसीलिए उपन्यास की कथावस्तु में उसकी अनिवार्यता को हम नकार नहीं सकते।

सम्पूर्ण उपन्यास में कुल तीन व्यक्तियों की डायरी के पन्ने हैं । लेखक राजेन्द्र यादव की डायरी के कुछ विखरे हुए पन्ने भूमिका के रूप में (पृ० १ से ७ तक), सुजाता की डायरी के पन्ने (पृ० १७ से २१९ तक), उदय की डायरी के पन्ने (पृ० २२० से २२७ तक) तथा सुजाता की डायरी : एक नोट (२२९ पृ०)—इस प्रकार कुल २२९ पृष्ठों का यह उपन्यास है । काल की दृष्टि से सोमवार ३ जून से मंगलवार २३ जुलाई तक की कालावधि को (कालावधि की मनःस्थिति को) इसमें रखा गया है । इन कुल इक्कावन दिनों में डायरी केवल पैंतीस दिन ही लिखी गई है । अब इन ५१ दिनों के भीतर घटित घटनाओं की सूची बनाएँगे तो निराशा ही हाथ लगेगी । एक पुरुष के सम्पर्क में आने के बाद एक युवा स्त्री की इक्कावन दिनों की मनःस्थिति इतनी ही इसकी कथावस्तु है । उदय से मिलने जाने के पूर्व की मनःस्थिति, मिलकर आने के बाद की मनःस्थिति, अपर्णा से परिचय हो जाने के बाद की मनःस्थिति—यही डायरी के पन्नों में विखरा पड़ा है । घटनाओं के अभाव के कारण गतिशीलता का यहाँ पूर्णतः अभाव है । स्वयं लेखक भी कथावस्तु की इस मर्यादा से परिचित है । इसीलिए उसने लिखा है—“.....जैसे सिगार जलता है.....मंद-मंथर मुलगता रहता है शायद कुछ इसी तरह की इस कहानी की गति हो गई है ।”

कथावस्तु की इसी गतिहीनता के कारण उसने यहाँ तक लिखा है—“आवेश और उत्तेजना से पागल मनोभावों और घटनाओं की आकस्मिकता से भरी हुई कहानियाँ पढ़ने वाला साधारण कथारसग्राही पाठक पता नहीं इसे पढ़ भी पायेगा या नहीं ।” घटनाओं के सम्बन्ध में उसने लिखा है—“प्रथम पुरुष डायरी में लिखी गई कहानी में घटना सीधे रूप में न आकर स्मृतियों और मूड्स में प्रतिफलित होकर आई है ।” इन्हीं विशेषताओं के कारण परम्परावद्ध दृष्टि से इसकी कथावस्तु का मूल्यांकन संभव नहीं है । कथावस्तु के विकास का परम्परावद्ध अर्थ हम घटनाओं की क्रमवद्धता से लेते रहे हैं । प्रेमचन्द तक के उपन्यासों में कथावस्तु के विकास का क्रम इस प्रकार होता था—

घटनाएँ—उनसे उभरने वाली मानसिक अवस्था—फिर घटनाएँ—फिर मनःस्थिति ।

वहाँ घटनाओं से मनःस्थिति बनती-बिगड़ती थी । परन्तु जहाँ जीवन अधिक अन्तर्मुख बन गया हो, वहाँ मनःस्थिति पहले होती है बाद में घटनाएँ । लेखक अब उपन्यास के माध्यम से केवल घटनाओं को क्रमवद्ध नहीं रखता । वह इन घटनाओं के वहाने मानसिक अवस्था का तथा उस व्यक्तित्व का विस्तार से चित्रण करता है । इसीलिए इस “मानसिक अवस्था” का अब अत्यधिक महत्त्व है । घटनाएँ वही हैं दैनंदिन जीवन की—पामूली, धुआँ । अब इस जटिल जीवन में अद्भुत और संयोग से

परिपूर्ण ऐसी घटनाएँ समभव नहीं है। अब है तो मात्र मन स्थिति। अलग-अलग मन स्थितियों में जिन्दगी भर जीने की यह मजबूरी अब आम होती जा रही है। वास्तव में यह २०वीं शती विविध मन स्थितियों में जीने वाले लोगों की शती है। कम-से-कम भारतीय मध्यवर्ग की तो यही नियति है। इसी अर्थ में 'शह और मात' की कथावस्तु अधिक यथार्थ है, अधिक स्वाभाविक है।

यादव ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में लिखा है—“हो सकता है इस दृष्टि से मैंने अपने को पात्रों के रूप में वांटकर मुखर चिन्तन या लाउड थिंकिंग ही किया हो और लिखने के दौरान पात्रों के साथ-साथ या उनकी मार्फत अपनी उलझनों और समस्याएँ मुलझाने की कोशिश भी की हो।” एक ओर यादव भूमिका में डायरी के पृष्ठ लिखकर पाठकों को यह बनलाना चाह रहे हैं कि सुजाता की डायरी पूर्णतः यथार्थ है, तो दूसरी ओर यह भी स्पष्ट कर रहे हैं कि इनके माध्यम से उन्होंने ‘लाउड थिंकिंग’ किया है। फिर एक बड़ी परेशानी हो जाती है क्योंकि यादव इन पात्रों के माथ इनने उलझ गए हैं कि कहीं ये इन्हें अपना प्रतिरूप बतलाने की कोशिश करते हैं, और कहीं अपने से एकदम अलग। प्रश्न मुखर चिन्तन के होने अथवा न होने का नहीं, (क्योंकि प्रत्येक कृति कम-अधिक मात्रा में लेखक के मुखर चिन्तन के कारण ही जन्म लेती है।) यह चिन्तन कलात्मकता की मर्यादा तक पहुँच पाया है अथवा नहीं इसका है। इस दृष्टि से यादव की सफलता मिली है। इन पात्रों के माध्यम से अपने को विविध रूपों में वांटकर किए गये मुखर चिन्तन से वे मनुष्य हैं अथवा नहीं, यह उनका व्यक्तिगत प्रश्न है। परन्तु इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि वे इसकी यथार्थता की प्रेम की ओर देखने के तटस्थ सही और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अलबत्ता काफी सफलता के साथ निभा सके हैं।

इस कथावस्तु का उद्देश्य “शीशों की दीवार के इधर-उधर चलती (होती) जिन्दगियों के बीच एक गवाक्ष है। एक झरोका है—जहाँ से पूरा युग गुजर रहा है—मस्कार और वर्गों की दीवारों को टटोलने की बेचैनी गुजर रही है—” यह जो उधर की दुनिया है, जिसके एतराफ़ शीशों की दीवारें-ही-दीवारें हैं—देखना इतना सरल नहीं है। इसी कारण सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग किया गया है। वास्तव में साहित्य की किसी भी विधा में लिखते समय लेखक के पास इसी प्रकार की बेचैनी होती है। क्योंकि प्रत्येक नई कृति का अर्थ ही है एक नई दुनिया को टटोलने की बेचैनी! शीशों की दीवार के इधर-उधर की जिन्दगी से तात्पर्य ग्रिमेन अपर्णा की जिन्दगी का अध्ययन करना यही रहा है। उदय की डायरी के पन्नों से भी यही उद्देश्य उभरकर सामने आया है। “मेरी यह दुर्दम्य महत्वाकांक्षा रही है कि मैं उसे उसके सम्पूर्ण परिवेश में जानूँ, उसे अन्तर्गम तक जानूँ।” परन्तु सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ने के बाद यह बात साफ़ हो जाती है कि अपर्णा से भी अधिक सुजाता

के अन्तर्भन तक ही लेखक जा पाया है । 'प्रिन्सेस अपर्णा' यह उसकी उत्सुकता और अध्ययन का लक्ष्य था और सुजाता माध्यम । परन्तु यहाँ माध्यम ही साध्य बन गया है । क्योंकि सुजाता के ही अन्तर्भन तक लेखक पहुँच पाया है । सुजाता के ही संस्कार और वर्ग की दीवारों को वह टटोल सका है । उदय के व्यक्तित्व की सीमा है । अपर्णा के दुःखों का तथा उसकी असहाय अवस्था का चित्रण इसमें हुआ जरूर है, परन्तु उसके अन्तर्भन तक पहुँच नहीं पाया है, यह पूर्णतः सही है । संभवतः यह उस कारण हुआ है कि सुजाता अपनी डायरी लिख रही है, अपर्णा नहीं ।

इस उपन्यास में "देश-काल और वातावरण" का चित्रण पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है । इसमें भी संगति नहीं है, इसे पिछले पृष्ठों में स्पष्ट किया गया है । सुजाता की डायरी में अपर्णा की जिन्दगी के जो चित्र आये हैं, उनसे स्पष्ट है कि इसमें १९५५-५८ की इम्बई का ही वर्णन है । डायरी-लेखन में प्रकृति और वातावरण के चित्रण का महत्त्व नहीं होता । फिर भी चूँकि सुजाता एक लेखिका है; इसमें प्रकृति के विविध रूपों का तथा परिवेश का बड़ा ही सशक्त चित्रण हुआ है । मंगलवार १८ जून, बुधवार २६ जून, रविवार १४ जुलाई, सोमवार १५ जुलाई, शुक्रवार १९ जुलाई—डायरी के इन पृष्ठों में प्रकृति तथा इम्बई का बड़ा ही जीवन्त चित्रण किया गया है ।

कथावस्तु में उत्सुकता और कौतुहल का समावेश नहीं है । यह सम्भव भी नहीं था । जहाँ कथावस्तु का सीधा सम्बन्ध एक विशेष मनःस्थिति के साथ ही होता है, वहाँ घटनाएँ नहीं होती । घटनाओं के अभाव में गतिशीलता नहीं होती । और जहाँ गतिशीलता नहीं, वहाँ कथानक अधिक सपाट और सरल होता है । इस कारण उत्सुकता और कौतुहल परम्पराबद्ध अर्थ में सम्भव नहीं है । अलवृत्ता सुजाता की मनःस्थिति को लेकर पाठकों के मन में यह उत्सुकता जाग जानी चाहिए । प्रिन्सेस अपर्णा और उदय की वृत्ति अपर्णा का बीच-बीच में संकेत देकर लेखक ने पाठकों की उत्सुकता रहस्य-कथाओं की तरह बनाये रखने की पूरी कोशिश की है; परन्तु इसमें उसे पूरी तरह से सफलता मिली है ऐसा कह नहीं सकते । क्योंकि सजग पाठक दो-तीन संकेतों के बाद ही यह समझ जाता है कि ये दोनों अलग-अलग नहीं, एक ही हैं । हाँ, 'प्रिन्सेस अपर्णा' के अद्भुत और रहस्यमय जीवन के प्रति उत्सुकता बनी रहती है । प्रिन्सेस और वृत्ति अपर्णा को अलग-अलग नावित करते जाना और अन्त में उन्हें एक घोषित करने का प्रयत्न 'फिल्मी' अधिक है; वास्तविक नहीं । क्योंकि इतनी बुद्धिमान सुजाता विविध संकेतों को कैसे समझ नहीं पायी—यह आश्चर्य ही है ।

चरित्र : (सुजाता) उपन्यास के केन्द्र में एक ही पात्र है, 'सुजाता' । सुजाता की मृत्यु के बाद लेखक उसकी डायरी के पृष्ठों को—"अनावश्यक प्रसंगों या अप्राम-

गिक बातों को निर्ममता से सम्पादन कर" ^{११५} छाप रहा है। "इस डायरी में वचन को उलटी-सीधी बातें लिखी गई हैं।" ^{११६}—ऐसा कहने वाली मुजाता या तो मृत्यु-समय बूढ़ी थी अथवा प्रौढ़। कम-से-कम इतना तो मान लिया जा सकता है कि इस डायरी को लिखकर निश्चित रूप से ८-१० वर्ष हुए होंगे। क्योंकि व्यक्ति अपनी युवावस्था को 'वचन की उलटी सीधी बातें' प्रौढ़ावस्था में ही कहता है। आज भूतकाल को जिस मानसिक अवस्था को वह वचन की उलटी-सीधी बातें कह रही हैं, कभी इसी अवस्था को वह सम्पूर्ण आत्मीयता के साथ जी चुकी थी।

तब मुजाता एम० ए० में पढ़ रही थी। लेखिका होने का शोक हुआ था। इधर-उधर रचनाएँ छप रही थी। वह अपने पर बहुत अधिक खुश थी। कुछ-कुछ 'अहंवादी' भी बन रही थी। इस युवती मुजाता के जीवन में भी कुछ दुःखद प्रसंग घटित हो चुके थे। 'तेज का विछोह' एक ऐसी ही घटना थी। कभी वह 'तेज' पर सर्वाधिक प्यार करती थी। कैश्यावस्था का वह प्रेम था। मंदिर की कक्षा से लेकर शायद बी० ए० होने तक 'तेज' और 'मुजाता' एक दूसरे से सम्बन्धित थे। तब तेज उसके सपनों का राजा था। भविष्य का निर्माता था। परन्तु आज तेज की केवल यादें ही शेष हैं। क्याकि तेज पढाई के लिए लुटा गया और वही पर किसी ब्रिटिश मेम से उसने विवाह कर लिया है। वसा हो गया होगा जाने? कभी हागी उसकी ब्रिटिश मेम?" तेज के इस अचानक परिवर्तन से मुजाता क्षुब्ध हो गई थी, दुःखी हो गई थी और घण्टो बैठकर रो भी चुकी थी। परन्तु धीरे-धीरे वह उसे भूलने की कोशिश भी कर रही थी। और कुछ हद तक उसे इसमें सफलता भी मिली थी। 'पिछले दिनों में तो मैं उसे करीब करीब भूल ही चुकी थी। हफ्तों उसके नाम तक का ध्यान नहीं आता। आज तो यह कुछ नयी ही बात है।" ^{११७} क्योंकि आज 'तेज की बहुत याद आ रही है।" ^{११८} प्रसिद्ध कथाकार उदय के व्यक्तित्व में और तेज में शायद समानता है अथवा उनके प्रति शायद उसी प्रकार का आकर्षण। मुजाता इसी कारण उदय की ओर आकृष्ट है। और समीप से उसका परिचय उदय से हो जाता है—मुस्तकाल में। प्रथम भेंट से ही मुजाता के मन में उदय के प्रति जिज्ञासा है। क्योंकि उसने सुना है कि "लडकियों के सामने इतकी बोलती बन्द हो जाती है और सारा मुँह लाल पड़ जाता है।" ^{११९} उदय किसी लडकी के साथ फोन पर बात चीत कर रहा था और तभी मुजाता का उससे परिचय किया गया था। उस प्रसंग से ही मुजाता के मन में उत्सुकता है कि "कौन थी दूसरी ओर?" ^{१२०}

मुजाता के पिता डाक्टर हैं। मध्यमवर्गीय स्वरूपों में पढ़ने वाली यह युवती खुले मन की है। किसी भी प्रकार के रहस्य को वह मन में छिपाकर रख नहीं सकती। बानूनी है। पहली ही भेंट में उसने उदय को घर आने का निमन्त्रण दे रक्खा है। उसकी ऐसी अपेक्षा थी कि उदय उसकी कहानियों की प्रशंसा करेगा अथवा कम-

से-कम यह तो कहेगा कि आप की कहानियाँ मैंने पढ़ी हैं। मगर “कोई कहता था” कहकर मेरी कहानियों के बारे में कहना मुझे भी चुना।’ मुजाता नई पीढ़ी की चर्चित कहानीकार है। एक प्रसिद्ध लेखक द्वारा की गई उपेक्षा से उसका अहं और स्वाभिमान जाग उठा है—प्रथम भेट में ही। और कहीं से वह उदय के व्यक्तित्व का अध्ययन करने का, उसकी कमजोरी को पकड़ने का निश्चय करती है। और फिर उदय वनता भी बहुत था। “किसी का वनना मुझे बहुत बुरा लगता है।” उसे अपनी ‘निगाह’ पर अभिमान है। इसी कारण वह उदय को अपने घर आने का निमंत्रण देती है। और उसका विश्वास है कि उदय उसे मिलने जरूर आएँगी ही। क्योंकि “नारी का निमंत्रण हो, और पुरुष वह भी कलाकार अस्वीकार कर दे?” मुजाता की डायरी के प्रथम पृष्ठ से ही कलाकार मुजाता और नारी मुजाता का आपसी द्वन्द्व दिखाई देने लगता है। कलाकार मुजाता स्वतन्त्र विचारों की, प्रतिभा-सम्पन्न और अपने अहं के प्रति अत्यधिक जागरूक है तो नारी मुजाता पापभीरु, मध्यवर्गीय नस्कारों से पीड़ित, संकोचशील और अपने नारी-व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग है। इसी कारण कलाकार ‘मुजाता’ उदय को घर आने का निमंत्रण दे देती है तो नारी मुजाता सोचती है—“मैंने एकदम बुलाकर बुरा तो नहीं किया? कहीं यों न सोचने लगे कि मुझे एकदम सस्ता समझ लिया है।……मुझे फोन नम्बर नहीं देना चाहिए था।……कहीं उन फूलजो की तरह पीछे लग गए तो……”^{१५}

यह नारी मुजाता ही है जो उदय के घर आने की कल्पना से सिहर उठी है। मन-ही-मन तरह-तरह की योजनाएँ बना रही है। कब आएँगे, कहाँ बिठाऊँगी, कमरा साफ-मुथरा चाहिए, फूल किस प्रकार रखने चाहिए, कमरा किस प्रकार सजाना चाहिए आदि-आदि। आम मध्यवर्गीय स्त्री के सोचने की पद्धति यहाँ अत्यन्त सहजता के साथ व्यक्त हुई है। मंगल ४ जून तथा बुध ५ जून की डायरी में यही मनःस्थिति व्यक्त हुई है। परन्तु समय देकर भी उदय जब उसके यहाँ नहीं आता, तब वह काफी चिढ़ जाती है। इस चिढ़ में एक नारी की सहज मनःस्थिति व्यक्त हुई है। उसके अहं को यह दूसरा धक्का बैठा है। और उसके न आने का कारण भी उनकी वही बहन है। स्त्री-मुलम सन्देह भी उसके मन में है। “पर फिर मन तलवी और झंझ-झाहट से भर गया है। मुझे साफ लगता है यह बहन-बहन की बात बिल्कुल झूठ है। वे या तो अपने आप को बहुत तीसमारखाँ लगते हैं कि नौसिखियों से क्या मिले, या फिर सचमुच बहुत ही झेंपू हैं—लड़कियों के सामने प्राण निकलते हैं।……बड़ा दम्भ है।”^{१६} उदय की इस बहन के प्रति जिज्ञासा के कारण तथा उसके इस प्रकार के ‘दम्भी’ व्यक्तित्व के कारण ही बृहस्पति ६ जून की डायरी में मुजाता लिखती है……इस व्यवहार के पीछे चाहे लड़कियों से झेंपना हो या अपने को बहुत तीसमारखाँ लगाना; इस आदमी की असन्नियत से एक बार टक्कर जरूर लेनी है।”^{१७} इस प्रकार

उदय की "असलियत को जानने का निर्णय लेने के बाद ही इसकी कथावस्तु का तथा मुजाता के 'शह और मात' का खेल आरम्भ हो जाता है। शतरज के इस खेल में एक ओर उदय बैठा है, दूसरी ओर मुजाता। दोनों एक दूसरे की 'असलियत' को जानने की कोशिश में लगे हैं। उदय की ओर से यह कहना अधिक योग्य है कि शतरज की इस चाल में वह मुजाता के माध्यम से 'प्रिन्सेस अपर्णा की असलियत' जानने के लिए बैठा है। मुजाता अपनी 'लेखकीय निगाहों' से उदय के अच्यपन के लिए प्रयत्नशील है और उदय मुजाता के माध्यम से मुजाता तथा प्रिन्सेस अपर्णा को जानने के लिए। लेखिका मुजाता ने मन-ही मन निर्णय लिया है कि यह आदमी अपने को बहुत बड़ा समझता है। मुझ जैसी 'नोसिखुए' को मिलना नहीं चाहता, तो मैं भी उसे अधिक महत्त्व नहीं दूंगी। परन्तु नारी मुजाता इस निर्णय को स्वीकार नहीं करती। इसीलिए रविवार ९ जून को वह उस अपने घर ले आती है। उदय को प्रभावित करने के अनेक प्रकारों पर वह निरन्तर सोचती रहती है। आखिरी एक नारी ही है जो पुरुषों को प्रभावित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती है। इसलिए "इससे इनको यह भी पता लग जाएगा कि मैं सबभुच इटैलिजेंट और समझदार हूँ, यो ही बेचारी लड़की नहीं हूँ।" मुजाता को यह मालूम है कि "कॉलेज के कुछ लोगों के बीच उदय का नाम अच्छे सन्दर्भ में नहीं लिया जाता है।" और बहुत अपर्णा का नाम लेने से "उनका चेहरा झनझनाकर लाल हो उठा। अरे, यह तो दम्भी-बम्भी कुछ नहीं, झूठ है।" फिर भी वह उनके निकट जाना चाहती है केवल 'असलियत' जानने के लिए। यह सही है कि लेखिका मुजाता के आग्रह से ही वह उदय के निकट जा रही थी। परन्तु भीतर बैठी 'नारी मुजाता' उदय की ओर अन्य दृष्टिकोण से देख रही थी। लेखिका मुजाता को यह मान्य नहीं है, फिर भी वह नारी मुजाता के सम्मुख मजबूर है। नारी मुजाता यह भी सोच रही है कि उदय उसकी ओर कहानीकार मुजाता की निगाहों से देख रहे हैं अथवा नारी मुजाता की। "विशेष रूप से उन निगाहों से वे कहानीकार मुजाता को नहीं, भुवती मुजाता को देख रहे हैं।" उदय घर पर आने के बाद मुजाता की जो भाग-दौड़ की स्थिति हुई वह उसके नारी-मन को ही स्पष्ट करती है। यही पर वह सोचती है—"और मेरे मन में उस क्षण बड़ी विवट कसमसाहट हुई कि चाहे एक बार घालीनता और नैतिकता की सारी हूँ तोड़ देनी पड़े लेकिन इस व्यक्ति को जैंगलियों पर नचा डालूँ?" स्पष्ट है कि यहाँ 'नारी मुजाता' की मन स्थिति तथा स्त्री के सनानन अह (पुरुष को जैंगलियों पर नचाना और उस विजय को महान् 'समझना') की अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण उसके मन में प्रश्न उठता है कि "ये विवाहित हैं या अविवाहित?" उदय के जीवन के सम्बन्ध में चार-पाँच ही प्रश्न मुजाता के सम्मुख हैं—अपर्णा नाम की स्त्री कौन है? क्या वह सबभुच ही इनकी

वहन है ? ये विवाहित है अथवा अविवाहित ? इनके लेखकीय व्यक्तित्व की कम-जोरियाँ कौन-सी हैं ? इनके उपन्यास के स्त्री-पात्र यथार्थ हैं अथवा काल्पनिक ? अगर यथार्थ हैं तो इनके सम्बन्ध स्त्रियों के साथ किस प्रकार के हैं ? इन्हीं प्रश्नों की खोज में लेखिका सुजाता भटक रही है । तो दूसरी ओर नारी सुजाता के प्रश्न हैं—ये 'तेज' की तरह ही दिखते हैं । इन्हें देखकर मुझे तेज की ही याद क्यों हो जाती है ? क्या ये मेरे जीवन साथी बन सकते हैं ? क्या ये प्रेम करने योग्य हैं ? वास्तव में सुजाता के भीतर की नारी तथा उसके भीतर का लेखक इन्हीं प्रश्नों की खोज करते रहा है । डायरी के सभी पन्नों में इन्हीं प्रश्नों की अनवरत खोज की गई है । अन्त में जब उसे पता चलता है कि यह सम्पूर्ण खोज ही निरर्थक थी; तब वह भीतर से टूट जाती है ।

एक-दूसरे की असलियत को जानने का यह खेल शुरू हो जाता है—रविवार ९ जून से । सुजाता अपने को 'मर्दानी लड़की' समझती है । और फिर सोचती है—“तभी दिमाग में टकराया, क्या अजब लोगों की टक्कर है : एक मर्दानी लड़की है तो दूसरा जनाना पुरुष । एक को कम उम्र में ही यश ने विगाड़ दिया है तो दूसरे को प्यार ने ।……क्या सचमुच यह टक्कर है ? हर एक से यों टकराते फिरने की बात मन की नैतिकता के संस्कार नहीं स्वीकारते । लेकिन, आखिर अपने को कुछ लगने वाले से टकराकर उसकी असलियत देख लेने में हर्ज ही क्या है ?”^{१३} इस उद्धरण में भी नारी और लेखिका का संघर्ष स्पष्ट है । संस्कारों में फँसी हुई नारी को इस प्रकार की टक्कर मान्य नहीं है । परन्तु लेखिका सुजाता की यह मजबूरी है—किसी से टकराने की । यूँ किसी से अगर वह नहीं टकराएगी तो व्यक्तित्व-अध्ययन कैसे होगा ? और वगैर व्यक्तित्व-अध्ययन के साहित्यकार बनना भी तो दुष्कर है ।

लेखिका सुजाता उदय की मोहों से बहुत परेशान है । क्योंकि ये मोहों उसे तेज की याद दिलाते हैं । और तेज की याद आ जाने से उसके भीतर की नारी छटपटाने लगती है, किसी के प्यार के लिए । “……एक बार जब उनके चेहरे को फिर से देखा तो निगाहें फिर मोहों पर अटक गई । इन मोहों को मने बहुत पास से देखा है……याद आया, ये तो तेज की मोहों से कितनी मिलती है ।”^{१४} संभवतः इसी कारण वह उदय की ओर आकृष्ट है । तेज तो अब उसके जीवन से चला गया है । उसने विश्वासघात किया है । परन्तु इस उदय की जिन्दगी के सम्बन्ध में वह अधिक नहीं जानती । जब तक इनकी जिन्दगी साफ न दीखे, तब तक कुछ सोचना भी तो मुश्किल है । इनकी जिन्दगी का सब से बड़ा रहस्य 'अपर्णा' है । “यह इनकी कौनसी वहन है, जो अक्सर इनके दिमाग पर छाई रहती है और उसे वे ऐसे तन्मय नाव से फोन किया करते हैं ।”^{१५} नारी की सहज-मुलम ईर्ष्या और सन्देह की वृत्ति यहाँ व्यक्त हुई है और इसी कारण वह पूछती है—“बाप की वहन क्या यहीं रहती

है ?" और "इस बार वे टूटकर चौंके ।" उदय के इस निराश उदगार से कि "यहाँ हमारे साथ कौन रहेगा, अकेले पड़े रहते हैं" सुजाता समझ जाती है कि "इन्हे किसी की सहानुभूति चाहिए । यह इनके गढ़ का सब से बमजोर कोना है ।" पागल सुजाता समझने लगी है कि उदय को उसकी सहानुभूति की आवश्यकता है । और सहानुभूति देकर वह उसे "समय रूप से समझ लेने का" प्रयत्न करती है । परन्तु इस प्रकार किसी को सहानुभूति देने वाला व्यक्ति खुद 'कोम' नहीं रह सकता । सुजाता के सन्दर्भ में भी यही हुआ है । एक ओर लेखिका सुजाता का उदय को सहानुभूति देने का निर्णय है, तो दूसरी ओर "मगर साँझ होते-होते यह विश्वास हो गया कि जो मैं कर रही हूँ, वह वर्जनीय है, अनुचित है और शायद किसी के प्रति विश्वासघात है" नारी सुजाता की यह मन स्थिति है । सोमवार दस जून की डायरी में यह सघर्ष अधिक सहज और स्पष्ट रूप में व्यक्त हुआ है । नारी सुजाता अपने मध्यवर्गीय मस्त्वार तथा तेज के प्रति अपने पुराने प्यार को लेकर चिंतित है । वह उस प्यार के प्रति प्रामाणिक रहना चाहती है । परन्तु लेखिका सुजाता सोचती है कि तेज ने अगर उसके साथ विश्वासघात किया है तो वह क्यों प्रामाणिक बनी रहें । और फिर "व्यक्ति उदय पर तो मैंने कृपा ही की है—यह मैं भीतर ही भीतर महसूस कर रही थी ।" यहाँ सुजाता उदय के व्यक्तित्व को विभाजित करके देख रही है—व्यक्ति उदय और लेखक उदय । लेखक उदय से वह टक्कर लने बैठी है । उसके इस व्यक्तित्व के प्रति उसके मन में बहुत अच्छे भाव नहीं हैं । परन्तु व्यक्ति उदय के प्रति उसके मन में 'दया' है । अपने नारी-मन को समझाने की ये अलग अलग कोशिशें हैं । इधर वह उदय को अपना पुराना परिचित ही मान रही है । उसके अनुसार— "अपरिचित परिस्थितियों में दो परिचितों का मिलना" है । नारी सुजाता अपने प्रत्येक व्यवहार के प्रति सजा है, चिंतित है । वह किसी भी प्रकार का ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहती जिससे "वही मेरी बातचीत, उन्मुक्त फिक्क्रेवाजी से उन्हे ऐसा तो नहीं लगा कि मैं कुछ यो-ही-सी लडकी हूँ ।" लेखिका सुजाता उन्मुक्त व्यवहार करना चाहती है और नारी सुजाता उसे उसके बन्धनों का एहसास करा देती है । लेखिका सुजाता के मन में एक ही इच्छा है "यह जानने की इच्छा भी बड़ी प्रबल है कि ये 'मफल' और थ्रैण्ड कहे जाने वाले लेखक व्यक्तिगत जीवन में कैसे होते हैं ? शायद जल्दी-से-जल्दी उनसे घनिष्टता बढ़ा लेने की आवश्यकता के पीछे भी यही भाव हो ।" इस उद्घरण से स्पष्ट है कि लेखिका और नारी सुजाता का अद्भुत ममत्वय यहाँ हुआ है । इन दोनों में अन्तर करना कठिन हो जाता है । लेखिका सुजाता उदय से अधिक सम्पर्क बढ़ाना चाह रही है । उसके व्यक्तिगत जीवन को जानने के लिए; ठीक उसी समय नारी सुजाता इसका उपयोग करना चाह रही है—अपने प्रणय के लिए ।

दो-एक बार की भेंट के बाद सुजाता के मन में उदय के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है। उसे लेकर अनेक प्रकार के स्वप्नों में वह खो जाती है। इन स्वप्नों में भावुकता है, भविष्य के प्रति आशा है और अपने अहं पर विश्वास। उदय की मुलाकात कुछ दिनों के लिए जब नहीं होती, तब नारी सुजाता भयभीत हो जाती है। "आखिर हो क्या गया? कहीं किसी वस, कार की चपेट में तो नहीं आ गए?" "सुजाता उदय के प्रति कितनी भावुक हो उठी है, इसका यह प्रमाण है। "प्रेमिका की मनःस्थिति" यहाँ से उभरने लगती है। यह प्रेमिका अपने से प्रथम पूछती है—"मैं चाहती हूँ कि वे आयें। क्यों चाहती हूँ।" सोमवार तीन जून को उसकी भेंट उदय से हुई थी। और शुरु १४ जून को वह उसकी 'प्रेमिका' बन गई है। यह सब अनजाने में हुआ है। लेखिका सुजाता इस सम्बन्ध को नकार रही है। परन्तु प्रेमिका 'सुजाता' उदय के सम्मुख समर्पित होने को तैयार बैठी है। इसी कारण उदय के न मिलने से वह छटपटा रही है। वह कहाँ रहता है? उसके सुग-दुःग क्या हैं?—यह जानने को वह उत्सुक है। इस प्रकार यहाँ से सुजाता पर तीन कोणों से विचार करना होगा। लेखिका सुजाता, नारी सुजाता और प्रेयसी सुजाता। प्रेयसी सुजाता इसी कारण सोचती है "विवाह के बाद मुझे क्या कहकर पुकारा जाएगा? हिन्...।" उदय उसे लगातार मिल नहीं रहा है। भीतरी अहं को चोट पहुँच गई है। कहीं उपेक्षा की एक कसकती हुई कचोट थी, जो आँखों में आँसू ले आई। "भावुक प्रेयसी की यह मनःस्थिति है जो मिलने न आने से आँसू बहा रही है। तो तीसरी ओर लेखिका सुजाता को यह सन्देह है कि शायद एक लड़की होने की वजह से ही उसकी ऐसी स्थिति हो गई है। "अवसर यह कसक भी मैंने अपने भीतर अनुभव की है कि मुझे जो प्रशंसा और चर्चा मिल रही है उनके पीछे मेरी प्रतिभा या कृतित्व नहीं, नारी होना ज्यादा है।" उसे दुःख है कि कोई भी उसकी प्रतिभा का तटस्थ होकर मूल्यांकन क्यों नहीं करता? उसका नारी होना क्या एक शाप है। उसे भय है कि "कोई भी मेरी प्रतिभा और योग्यता को जाँच नहीं पाएगा?.....हर क्षण याता रहता है?" हर बार वह अनुभव करती है कि "देख यह तारीफ तेरी नहीं, तेरे लड़की होने की है।" लेखिका, नारी और प्रेयसी का यह त्रिकोणात्मक संघर्ष ही सुजाता के चरित्र को विकसित करना गया है। लेखिका के रूप में वह बड़ी बनना चाहती है; म्यापितों के निकट आना चाहती है; उदय जैसे प्रसिद्ध लेखक की असलियत को जानना चाहती है। पिता, माँ अथवा सहेली रेखा के बन्धनों को नारी सुजाता स्वीकार करके जीना चाहती है। दी हुई स्वतंत्रता का वह दुरुपयोग करना नहीं चाहती। और प्रेयसी के रूप में वह उदय के और निकट जाना चाहती है। उसे स्वीकार करना चाहती है। रविवार १६ जून को जब वह उदय के साथ पहली बार किसी होटल में चली जाती है तो वहाँ उनकी

त्रिकोणात्मक मन स्थिति व्यक्त हुई है। किसी पराये पुरुष के साथ इस तरह होटल के 'प्रायव्वेट रुम' में बैठने के कारण उसका नारी-मन चिन्तित है, भयभीत है। उदय के यह कहने के बाद कि उसकी कहानी का प्लॉट उसका नहीं मोपासा का है—उसका लेखकीय व्यक्तित्व बिखर जाता है, अपमानित हो जाता है और इस झूठ को नकारने का प्रयत्न करता है। तो तीसरी ओर उसका 'प्रेयमीमन' उदय के व्यक्तिगत जीवन को लेकर अनेक प्रश्न पूछने लगता है। (पृ० ५७-६१) यही वह अनुभव करती है कि उदय उसके नारी-व्यक्तित्व को चुनौती दे रहा है। उदय के विभिन्न मुद्दों को 'पीसकर चुर-चुर कर डालने की इच्छा' भी निमाण हो जाती है। अपर्णा की बात छेड़ने के बाद वह बहुत लाल पीला हो जाता है इसका एहसास भी उसे यहीं पर हो जाता है। और उसकी नारी सोचती है—“मुझे लगा हो-न हो जरूर कुछ दाल में काला है।” १६ जून को इस मुलाकात के बाद सुजाता उदय से इतनी प्रभावित, आकर्षित और समर्पित हो गई है कि “ओफ, उस दिन की सारी छुट्टी कैसे उदय को ही लेकर बीत गई थी।” रेखा के सम्मुख वह घटो उसके सम्बन्ध में ही बातें करती है। मंगलवार १८ जून की डायरी के पृष्ठों में यही सब कुछ है। लेखन, यथार्थ, कल्पना, रोमांस आदि अनेक विषयों पर यह चर्चा है। इन चर्चाओं के कारण नारी सुजाता भयभीत है कि इस प्रकार खुलकर किसी पुरुष के साथ भूँ चर्चा करना क्या ठीक है? लेखिका सुजाता प्रसन्न है क्योंकि सभी कोणों से वह उदय का अध्ययन कर रही है और प्रेयसी सुजाता रोमांचित है क्योंकि वह उनके और निकट जा पा रही है। लेखिका सुजाता को इस बात का गुमान है कि वह यह समझ गई है कि “यह तो बिल्कुल भाषारण आदमी है। निर्वल आदमी है।” प्रेयसी सुजाता अनुभव करती है—“और जाने किस लहर में उस क्षण मेरे मन में आया कि इस निर्वल व्यक्ति को बाँहों में भरकर प्यार से इसका माथा चूम लूँ और कहूँ तुम बहुत भटके हो, बहुत थके हो। आओ, तुम्हारी भटकन और यकान को एक समय दिशा दूँ। उस समय मैं सब भूल गई कि मैं कहानी-लेखिका हूँ, और उदय मेरी विषय सामग्री।” और इसी समय उसके भीतर की नारी कह उठती है—“लेकिन लेकिन इन महाशय को यह भ्रम कैसे हो गया कि मैं चाहती हूँ? नहीं, यह भ्रम किसी भी तरह पनपने नहीं देना।” भीतरी नारी उसे बार-बार आनेवाले खतों की ओर सूचित करती है। इसी प्रेम के चक्कर के कारण मदा नामक उसकी सहेली की जिन्दगी बर्बाद हो गई है। “मदा के प्रसंग ने मुझे भीतर तक सिहरा दिया है। मान लो, यह हालत किसी दिन मेरी हो जाय तो? नहीं, नहीं। आत्म-हत्या करके मर जाऊँगी। लेकिन नहीं, उदय को इतनी लिपट नहीं देनी है।” एक ओर उसका नारी-मन उसे रोक रहा है तो दूसरी ओर उसके मन में उदय के प्रति दया-भाव भी जग रहा है। “पहले यह आदमी मुझे भी बड़ा उद्बुद्ध और किसी

हृद तक बंदतभीज लगा था, लेकिन अब कुछ-कुछ दया आने लगी है ।” उदय की ओर उसका यह आकर्षण रेखा को मान्य नहीं । अपर्णा और रश्मि ये दोनों उदय से सम्बन्धित हैं ही । इसलिए रेखा को लगता है कि कहीं धोखा है । इसलिए वह कहती है “पहले उसके पास दो थीं, अब तीसरी तू और हो जाएगी ।” सम्भवतः इसीलिए सुजाता अपने नारी और प्रेयसी मन को दवाना चाहती है । उदय की ओर इस प्रकार भावुक दृष्टि से देखना उसके लेखकीय व्यक्तित्व को मान्य नहीं है । “और पहले उदय को पुरुष और अपने को नारी मानकर जो संकोच मन में भरा था, वह जैसे एकदम गायब हो गया । मैं अव्येता हूँ, वह मेरे अध्ययन का विषय ।” नहीं विलकुल तटस्थ और भावनाहीन होकर मुझे अपने विषयों का अध्ययन करना है ।” क्या सचमुच सुजाता तटस्थ रह सकती है ? इसी बीच एक और आकस्मिक घटना उसके जीवन में हो जाती है । सोमवार २४ जून को उसका परिचय ‘प्रिन्सेस अपर्णा’ से हो जाता है । परिणाम यह होता है कि अब तक उसके दिमाग पर उदय का भूत छाया हुआ था; परन्तु अब प्रिन्सेस अपर्णा छा जाती है । मजे की बात यह है कि लेखिका सुजाता अब अपनी पत्नी दृष्टि से अपर्णा का अध्ययन करने लगती है और प्रेयसी सुजाता उदय की ओर झुक जाती है । और इन दोनों को समझाने का प्रयत्न नारी सुजाता करने लगती है । प्रिन्सेस अपर्णा की जिन्दगी का विस्तार से विवेचन करने के लिए वह उदय के यहाँ जाती है । इस समय उसके मन में दो भाव हैं—१. प्रिन्सेस अपर्णा की जिन्दगी का यह विवेचन करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से उदय को यह सिद्ध करके बतलाना कि लेखकीय दृष्टि उसके पास भी है । २. प्रिन्सेस अपर्णा की कहानी के बहाने उदय से अपने परिचय को और दृढ़ करने की ‘प्रेयसी सुजाता’ की छटपटाहट ।

सोमवार २४ जून को सुजाता उदय के कमरे पर पहली बार जाती है । इस दिन की डायरी के पृष्ठों में फिर त्रिकोणात्मक संघर्ष उभर आया है । यहीं पर अंतरंग के खेल को बतलाया गया है । ‘शह और मात’ की यह स्थिति प्रतीकात्मक ढंग से यहाँ बतलायी गई है । उदय के कमरे में प्रवेश करने के थोड़ा ही देर बाद नारी सुजाता अनुभव करती है “अरे कमरे में हम दोनों ही अकेले हैं ।” “बाहरवालों ने देखा तो क्या सीचेंगे ?” परन्तु लेखिका सुजाता प्रसन्न है—“लेकिन भीतर एक अजब-सी प्रसन्नता भी थी ।” “क्या हुआ अकेले बैठने में ? कोई खा तो जाएँगे ही नहीं ।” और प्रेयसी सुजाता—“अवचेतन मन में उनकी मोहों चुभती रही और तेज का ध्यान आता रहा ।” और “सच है, जब-जब उदय के साथ बातें करने बैठती हूँ, समय का ध्यान ही नहीं रहता ।” नारी सुजाता को भय है—“जाने क्यों मुझे हर क्षण लगता था जैसे वे अभी झपटकर मुझे अपनी बाँहों में बाँध लेंगे और चुम्बनों से मेरा मुँह ढँक देंगे । तब क्या कहेंगी ? किधर भागूँगी ।”

और जब ऐसा नहीं होता तो प्रेयसी सुजाता के मतानुसार—'छि, यह व्यक्ति तो बड़ा कमजोर और डरपोक है। इसमें तो इतना भी साहस नहीं आया कि आगे बढ़कर मेरे कंधे पर हाथ रख देता।'" उदय के सम्पर्क में आने के बाद इधर कुछ दिनों से सुजाता के मन की अतृप्त कामेच्छा अलग अलग पद्धतियों से व्यक्त हो रही है। 'मानसिक रति' की यह अभिव्यक्ति २६ जून की डायरी के पृष्ठों में हुई है। उस दिन की डायरी में वह लिखती है—“इच्छा हो रही थी कि कुछ 'वर्जनीय', कुछ 'निषिद्ध' देखूं। कंसा लगता होगा बलात्कार के समय ? क्या एक बार इस अनुभव से नहीं गुजरा जा सकता ?” सुजाता के मन में उठने वाले इन विभिन्न तरंगों के कारण ही उसका चरित्र अत्यधिक स्वामाविक तथा जीवन्त बन पड़ा है। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि वह 'मनुष्य' मात्र के गुद्द घरातल पर आकर खड़ी है। अपनी अतृप्त कामेच्छा के प्रति चिंतित, 'काम' के प्रति एक रहस्यमय, अव्याख्येय तथा अजीब सा आकर्षण और इस काम की पूर्ति के लिए 'मानसिक रति' में प्रवेश। यह सब कुछ स्वामाविक ही तो है। परन्तु मनुष्य इस स्तर पर अधिक देर तक टिक नहीं सकता। क्योंकि उसके मस्कार, समाज की नीत-अनीति को सफलपाने उसे ऐसे विश्व में रममाण करने की इजाजत नहीं देते। यह अतृप्त कामेच्छा समवत इसी कारण 'स्वप्न' द्वारा ही व्यक्त होती है। इधर सुजाता के मन में भी इस प्रकार के अनेक विचार आ रहे हैं, परन्तु उसके भीतर बंटी हुई संस्कारशील नारी उसे कहती है—'छि मेरे मन में भी कौसी मही-मही बातें आने लगी हैं इन दिनों। पहले तो वे सब नहीं आती थी।' उदय के सम्पर्क के पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी। कारण स्पष्ट है कि उसके मन में उदय के प्रति शारीरिक आकर्षण निर्माण हो गया है। उसका चेतन मन इस 'आकर्षण' को स्वीकार करने तैयार नहीं है। परन्तु 'अचेतन मन' में यह सब कुछ चल रहा है। इसी अचेतन मन की इच्छा के कारण ही वह साचती है—'बाहों की जकड़ में पिसता-बसमसाता शरीर निरावृत्त करत और उसकी गतिविधि को बरजते दो हाथों को लिपटी लिपटी आलस्य भरी छीना-झपटी नि शब्द, लम्बी-लम्बी हाँपती-सी साँसें और चार चिपके होठ।”

बृहस्पति २७ जून की डायरी के पृष्ठों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुजाता उदय को अपने मावी पति के रूप में देख रही है। अर्थात् यह फिर 'अचेतन' स्तर पर ही चल रहा है। अर्थात् यह फिर 'अचेतन' स्तर पर ही चल रहा है। त्रिकोणात्मक संधर्ष यहाँ पर भी उमर आया है। "प्रेयसी सुजाता" उदय का लेकर भविष्य के सपनों में खो रही है। "अभी जागते जागते बड़ा अजब-सा सपना देखा था मैरीन ड्राइव पर एक बहुत बड़ा-सा पलैंट है एक चीखता सा सूनापन है एक दरवाजा खोलकर कतपट्टियों पर हजामत का साबून लगाए, हाथ में रेजर लिए कोई निकलता है” यह कोई और नहीं उदय ही है। एक ओर यह स्थिति है

तो दूसरी ओर चेतन मन पर अपर्णा और उदय ही छा गए हैं। “अपर्णा और उदय, पता नहीं ये दो नाम मेरे दिमाग में इन दिनों हमेशा साथ क्यों टकरा रहे हैं।”^{११} अपर्णा को लेकर उसके ‘प्रेयसी मन’ में ईर्ष्या है। उसके लेखकीय मन को लगता है यह अपर्णा उनको बहुत-बहुत कोई नहीं है। कोई दूसरा ही चक्कर है। “मुझे कुछ गड़बड़ लगता है।”^{१२} और उदय को लेकर अब उसके पास केवल प्रशंसा के ही शब्द हैं—“उदय में सचमुच कलाकार के टच हैं।”^{१३} संभवतः इसी कारण उदय के शरीर को लेकर वह अधिक सोच रही।—“जब वे सिगरेट पी रहे थे—इन पतली-पतली सलबटों-सी धारियों वाले होठों से होंठ छुलाकर देखूँ ? कैसा स्वाद होगा ?”^{१४} इन विभिन्न मनःस्थितियों के बावजूद मुजाता यह अच्छी तरह से जानती है कि इन इच्छाओं को क्रिया-रूप में लाना कम-से-कम इस देश में तो असंभव है। एक मध्यवर्गीय युवती के लिए तो अ-संभव !! इच्छाओं की मुविधाओं के बावजूद उन्हें दवाना पड़ता है। ‘तेज’ को वह चाह रही थी, उस पर समर्पित भी थी। परन्तु हुआ क्या ? तेज ने विश्वासघात किया। आज वह उदय से बंधी हुई है। उदय के शरीर के प्रति उसके मन में आकर्षण है। फिर भी वह कुछ नहीं कर सकती, सिवा रोने के। अजीब स्थिति है यह ! ‘पुरुष’ के सम्पर्क में आने के बाद उस पर सर्वाधिक ‘प्यार’ करने के बाद भी स्त्री उन्मुक्त होकर उससे मिल नहीं सकती। इसलिए भारतीय युवती प्रेम के इस क्षेत्र में सिवा आँसू बहाने के और कुछ कर ही नहीं सकती। इस स्थिति को मुजाता जैसी लेखिका समझ पायी है; इसी कारण वह लिखती है—“हम हिन्दुस्तानी लड़कियों को चुपचाप रोने का रोग है……। जैसे अगरबत्ती चुप-चुप जलती है……। अंग्रेजी लड़कियों की तरह हमारा प्रेम न तो किलकारियों और कहकहों वाले उन्मुक्त आलिंगनों में निकलता है, न हमारा क्रोध हिस्टीरिया के दौरों जैसी चीखों में। चाहो तो कह लो कि हम लोगों में जीवन की कमी है। इसीलिए न तो खुले और सम्पूर्ण मन से प्यार कर सकती हैं, न क्रोध।”^{१५} भारतीय युवती की मनःस्थिति का इससे स्पष्ट चित्र और कौन सा हो सकता है ? सिवा रोने के और कुछ न कर सकने की विवशता से मुजाता परिचित है। इस २७ जून की डायरी में उसके मन की यही द्विधात्मक स्थिति व्यक्त हुई है। मन उसके नियंत्रण में नहीं है। इसी कारण वह लिखती है—“पता नहीं, क्या-क्या करने को मन करता है……हर पुरुष से, हर छोटे-बड़े लड़के से खिलवाड़ करने की इच्छा होती है।”^{१६} इसी कारण उसका चेतन मन झट से उसे प्रश्न पूछता है कि “कहीं उदय के साथ खिलवाड़ करने में यही मनावृत्ति तो नहीं है ? तो मैं उदय के साथ भी ‘खिलवाड़’ कर रही हूँ ?”^{१७} संस्कारशील मध्यवर्गीय मन इस प्रकार के खिलवाड़ की स्वीकृति तो देता नहीं है। और मन में अनेक अच्छे-बुरे विचार उठ रहे हैं। इसीलिये मुजाता अपने अचेतन मन को समझाती है—“नहीं……तो फिर मुझे आज

अपने और उदय के सम्बन्धों को साफ कर लेना होगा, ताकि किसी प्रकार के भ्रम की कोई गुजायश रह ही न जाय । हाँ, उदय से मेरा सम्बन्ध मात्र मित्रता का है । हमारे और उनके बीच में काँमन आधार है—लिखना ।”^{५५} और उसका लेखकीय व्यक्तित्व उनके अचेतन मन को समझाना है—“मित्र के रूप में वे मेरे अध्ययन के ऑब्जेक्ट हैं, कहानी के विषय हैं । विषय की तटस्थता और निलिप्तता में ही मुझे खतरनाक से खतरनाक क्षणों में उनका अध्ययन करना है ।”^{५६} प्रश्न है कि क्या वास्तव में सुजाता तटस्थ रह सकी है ? आगे की घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि यह सब सुजाता को संभव नहीं हो सका । परन्तु आविर तक वह इस कोशिश में थी ज़रूर । अब तो उसके लेखकीय व्यक्तित्व की जिम्मेदारी और बढ़ गई है । क्योंकि एक ओर उदय का तटस्थता से अध्ययन करके लिखना है, तो दूसरी ओर अपना है । “दूसरी ओर अपना का अध्ययन करना है, लिखना है , निरीक्षण करना है, जीना कुछ नहीं है । वहीं भी अपने लिए कुछ नहीं करना । अपने को नहीं उलझाना वहीं नहीं मरमाना । ”^{५७} उपर्युक्त उद्धरणों में सुजाता की छटपटाहट और स्पष्ट हुई है । एक युवा लेखिका की स्थिति सचमुच बड़ी “वेबस और अमहाय” होती है । एक मवेदनशील स्त्री किसी पुरुष का तटस्थ होकर निरीक्षण और अध्ययन क्या कर सकती है ? यह प्रश्न है । सुजाता मात्र निरीक्षण करना चाहती है, जीना नहीं चाहती, उलझना नहीं चाहती । ‘विषय’ के प्रति, और भी ‘जीवन्त’ तथा सूक्ष्म संवेदनाओं से परिपूर्ण विषय के प्रति तटस्थता क्या संभव है ? और आयु के एक विशेष माह पर सखी हुई स्त्री में यह तटस्थता क्या संभव है ? पुरुष में अलवस्ता यह संभव है । और उदय में अपने विषय के प्रति यह तटस्थता कुछ सीमा तक थी, परन्तु सुजाता में नहीं । इसी कारण वह ‘मात’ खा चुकी है, निरीक्षण के इस खेल में ।

‘लेखकीय तटस्थता’ के इसी विषय पर सुजाता २८ जून को उदय के साथ खुलकर चर्चा करती है । उदय उसे समझाने की कोशिश करता है कि एक लेखक को “निहायत दूर हो जाना चाहिए” ।^{५८} इस तटस्थता की विवेचना के बाद सुजाता अपना आत्म-निरीक्षण करती है तो उसे लगता है कि वह अपने ही प्रति तटस्थ नहीं हो पा रही है तो औरों से तटस्थ रहकर सोचना दूर की हो जान । “अब इसी दायरी को ही लो, मैं क्या वाकई वहीं सब लिख पा रही हूँ जो मन की आँखों के सामने देख रही हूँ । पता नहीं कितनी बातें छोड़ती जा रही हूँ । सब लिख दूँगी तो ‘पढ़कर हाय, कोई क्या कहेगा ।’”^{५९}

स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को लेकर सुजाता सोचती है कि इन दोनों में ‘शुद्ध मित्रता’ की संभावना है, ‘एव आश्चर्य घनिष्ठता बिना शारीरिक सम्बन्ध आये संभव है ।’^{६०} प्रिन्सेम अपना इस बात को नहीं मानती । उनके अनुसार बिना

शारीरिक सम्बन्ध आए, यह घनिष्ठता संभव ही नहीं है। उदय के विचार भी प्रिन्सेस अपर्णा की तरह हैं। और उदय के इन विचारों के कारण ही "जाने क्यों, नये सिर से शरीर रोमांचित हो आया और मैंने झटके से अपना हाथ खींच लिया।" और इधर कुछ दिनों से वह उदय के और निकट जा रही है। जाने-अनजाने में यह सब कुछ हो रहा है। अब उदय उसकी उँगलियों से खेलता है, पीठ से हाथ लाकर दाहिनी बांह पकड़ लेता है, और वह कभी "हल्के से एक प्यार भरा घूँसा उनकी पीठ पर मारे बिना नहीं रह जाती।" इस छोटे-मोटे स्पर्श के कारण सुजाता रोमांचित हो रही है। और इसी कारण उसे ये सारे वंघन गलत और निरर्थक लगते हैं। "हाय, कैसी होती होंगी वे लड़कियाँ जो निर्विघ्न भाव से प्यार कर सकती और प्यार पा सकती हैं।" "आई लव यू"..... मैं कहूँ..... शायद गर्दन कट जाय तब भी ये शब्द मेरे मुँह से न निकलें।" "प्रेयसी सुजाता" अपने संस्कार और मर्यादा को (कोशिश करने के बाद भी) भूल नहीं सकती। शायद भारतीय स्त्री की यही विडम्बना है अथवा शक्ति।

१ जुलाई की डायरी के पृष्ठों से स्पष्ट है कि इधर 'तेज' की याद उसे बहुत आ रही है। तेज के साथ के उस सम्बन्ध में 'शरीर' उतना रोमांचित नहीं होता था, जितना कि उदय के साथ के सम्बन्ध में। इसीलिए शायद वह सोच रही है—"क्या शरीर जितना सचमुच इतना आसान है?" शायद इसी कारण बुधवार ३ जुलाई की डायरी में वह लिखती है—"क्यों न मन के माध्यम से हम लोग एक दूसरे को पियें..... पायें..... निरावरण और....." उदय के साथ के ये सम्बन्ध जाने-अनजाने कुछ दूसरे रास्तों पर निकले जा रहे हैं। यहाँ न उदय विषय है, न सुजाता लेखिका। सहानुभूति और दया देते-देते वह उसे भीतर से चाहने लगी है। सचमुच "यारी हो गई।" एक ओर यह स्थिति है तो दूसरी ओर भीतर से लेखिका सुजाता चिल्लाती है—"मगर नहीं यह सब..... यह सब भावुकता है और मुझे इतना नहीं बहना चाहिए।" प्रियसी सुजाता को ये सारे वंघन मान्य नहीं हैं। वह सारे संस्कारों को तोड़ डालना चाह रही है, इसलिए धुब्ध होकर कहती है—"यह क्या है? यह अंकुश क्या है जो हर दम हर भावना की गर्दन पर रक्खा रहता है?" दिनांक ५ जुलाई की डायरी का पन्ना भी यही स्पष्ट करता है कि उदय के शरीर के प्रति सुजाता के मन में आकर्षण बढ़ता जा रहा है। उसके भीतर की मध्य-वर्गीय नारों इस बात को नकारने की पूरी कोशिश कर रही है, परन्तु अचेतन मन की ये अतृप्त इच्छाएँ चेतन स्तर पर अलग-अलग प्रकार से व्यक्त हुई ही हैं। लेखिका सुजाता अपनी इन भीतरी इच्छाओं को तटस्थता से देखने का पूरा प्रयत्न कर रही है। "मुझे लगता है जैसे मैं दो हो गई हूँ। एक उदय के कन्वे से कन्धा मिठाकर चेहरे पर सागर की फुहारों की आर्द्रशीलता अनुभव करती हूँ तो दूसरी खड़ी-खड़ी

घूरती है "हूँ, तो आप जनाव यो बैठी हैं ? वेशर्म ।" यही पर उसका मध्यवर्गीय सस्कारवादी मन कह उठता है—“कोई देख ले तो ? मान लो पापा ही इस गाड़ी से घर जा रहे हो तो ?” स्पष्ट है कि मुजाता की चेतना के कई स्तर हैं और वे कई खंडों में बिखर जाते हैं ।

उदय के इस प्रश्न को कि क्या वह, इससे पहले किसी पुरुष के सम्पर्क में आयी थी—मुजाता पूर्णतः नकार देती है । स्पष्ट है कि वह झूठ बोल रही है । [उदय से पूर्व वह तेज के सम्पर्क में आयी थी ।] सम्भवतः किसी पुरुष के सम्पर्क में आने के बाद उसके पूर्व के पुरुष के सम्बन्धों को इस पुरुष के सम्मुख स्वीकारना शायद किसी भी स्त्री को सम्भव नहीं है, इसीलिए वह झूठ बोलती है । परन्तु मन को वह सन्तुष्ट नहीं कर सकती । इस कारण मन को समझाने का असफल प्रयत्न वह करती है । “ठीक ही तो कहा था—उसमें झूठ कहाँ बोली में ? जो कुछ आज हर क्षण मेरे साथ हो रहा है, ऐसा पहले कभी कहाँ हुआ ? मैं तो एक दम नई और कोरी स्लेट की तरह उदय से मिली हूँ ।” तेज के समय मन चेतना के इनने विभिन्न खंड खुले नहीं थे । आज अलग अलग स्तर पर जाकर वह इस सम्बन्ध अथवा सम्पर्क का विश्लेषण कर सकती है, कर रही है । तेज के साथ के उस सम्पर्क को वह किशोरवस्था की शरारत समझ रही है । मुद को अनेक पद्धतियों से समझाने के बाद भी यह बात बहुत साफ है कि मुजाता उदय की ओर आकृष्ट हो चुकी है । इस आकर्षण में ‘शरीर’ है, मानसिक स्थितियाँ हैं, अवलोकन को समाप्त करने की इच्छा है और सबसे बढ़कर इस विरंग थायु की विप्रशता है । लेकिन मुजाता बार-बार अपने मन को समझाने का प्रयत्न करती है कि “हमारे और उनके बीच का सेतु वे नहीं, उनकी रचनाएँ हैं ।” प्रयत्न के बाद भी वह इस सम्बन्ध को याद नहीं रख पाती । परिणामतः इधर वह अधिक आलसी और छोई-छोई-सी रहती है । प्रिन्सेस अपनी ओर उदय के बाद तो उसके जीवन को नई दिशा ही मिल गई है । “इन दोनों के परिचय के बाद मैंने कुछ भी तो नहीं लिखा ।” वह इस बात का अनुभव कर रही है कि “हमारे बीच का अर्थात् परिचय का जो माध्यम था उससे हट कर मैं अब व्यक्तियों पर केन्द्रित हो गई हूँ । पता नहीं क्यों, मैं इस बात को याद ही नहीं करता चाहती कि व्यक्ति उदय न तो मेरे परिचय का लक्ष्य था, न आधार ।” मुजाता के इस वक्तव्य में ही उसकी ‘हार’ स्पष्ट है । उदय यहाँ पर उसे शह दे चुका है । उदय के लाख दोषों के बावजूद भी “उदय ने ही मुझे अपनी ओर खींचा ।” उसे शायद ऐसा विश्वास है कि उदय भी उसे चाह रहा है । परन्तु फिर उसे ऐसा लगता है कि शायद उदय उसके साथ नाटक कर रहा हो । “नहीं, ऐसा घोसा उदय नहीं दोगे ।” नारी मन को ये विभिन्न स्थितियाँ बड़ी सहज होकर यहाँ व्यक्त हुई हैं । एक मन कह रहा है कि उदय पर इस प्रकार

उन्मुक्त प्रेम ठीक नहीं है। शायद यह धोखा है। “इन लेखकों-वेखकों से दोस्ती करना भी बड़ा खतरनाक है।”^{१०९} और दूसरा मन कहता है कि कोई धोखा नहीं है। इस प्रकार का संघर्ष आखिर तक है।

उदय जहाँ रहता है वहाँ अब वह अक्सर जा रही है। उदय को अपने पति-रूप में भी वह देख रही है। जैसे-उदय जिस चाल में रहता है वहाँ जाने के बाद अचानक उसके मन में यह “आशंका कौध जाती है, कहीं मुझे भी इन्ही चालों में से एक में नहीं रहना होगा ? शिवाजी पार्क में रहना सपना है और इन कमरों में सड़ना मेरी आशंका।”^{११०} उदय के प्रति उसके मन में समर्पण के भाव बढ़ते जा रहे हैं। “जाने क्यों हर समय लगता रहता है कि मैं जो कुछ भी नया पा रही हूँ, वह मेरा नहीं है। उसे उदय को सौंपना है, उदय को देना ही है।”^{१११} स्थिति इतनी अधिक विचित्र बन गई है कि “अब तो ऐसा लगता है जैसे मैंने अपना जीवन जीना छोड़ ही दिया है।”^{११२} अकेलेपन के एहसास से वह मुक्ति चाहती है। एक विशेष दायु में स्त्री और पुरुष को यह अकेलापन बड़ा भयावह लगता है। इससे निजात पाने के लिए उसका सारा शरीर और मन छटपटाने लगा है। व्यक्तित्व और शरीर-नमर्पण को यह इच्छा स्वामाविक ही है। इस स्थिति का बड़ा ही सशक्त चित्रण यहाँ हुआ है। उदय के निकट आने के बाद तो सुजाता में यह छटपटाहट की स्थिति बहुत बढ़ जाती है। इसी कारण वह लिखती है—“सागर, नुनो मागर, मैं बहुत थक गई हूँ” बहुत टूट गई हूँ। मुझे विराम दो... इन विधि-निषेध के किनारों ने मुझे पीस डाला है, मेरी हर तरंग को, लहर-लहर को कुचला है, इन्होंने। मेरी रंग-रंग में दावानल के स्फुलिंग दिए हैं... अब मुझे मुक्ति दो... मुझे अपना मैं नहीं चाहिए... ‘आई एम’ ओनली त्वेन आई एम विद् ‘हिम’।”^{११३} इस पूरे उद्धरण में प्रेयसी सुजाता की अमिव्यक्ति हुई है। शरीर और मन को यह छटपटाहट इतनी तीव्र है कि विधि-निषेध के किनारे भी गलत लगने लगते हैं। मध्यवर्गीय संस्कारों के कारण वह अपने को घुटी-घुटी सी अनुभव कर रही है। अब प्रश्न केवल इतना है कि क्या उदय भी यही महसूस कर रहा है ? अगर उदय में ऐसी छटपटाहट नहीं है तो फिर सुजाता की इस मनःस्थिति की सार्थकता क्या है ? आज जो कुछ सुजाता अनुभव कर रही है; वैसा उसने पहले अनुभव नहीं किया था। इसके मूल में शायद ‘वायार्गोजिकल’^{११४} कारण ही अधिक हैं।

अक्सर सुजाता यह सोच रही है कि उसकी प्रीति एक ओर की तो नहीं है। “एक अंग को प्रीति हमारी, वे जैसे के तैने” की स्थिति तो नहीं है। “उनके दिमाग में भी तो अक्सर कुछ-न-कुछ आता ही होगा.....? डायरी लिखते हैं ?—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। एकाध घण्टा तो सोचते होंगे।”^{११५}

दिनांक २० जुलाई से सुजाता अपनी की समस्या से उलझ गई है। प्रिन्सेस

अपर्णा और उदय को वहन अपर्णा दोनों एक हैं क्या ? यह उसका प्रश्न है । वास्तव में इसके पूर्व भी उसके मन में यह प्रश्न कई बार उठा है । इसके मूल में ईर्ष्या है, अपना 'आदमी' क्या वास्तव में 'दूसरों' से जुड़ा है, यह जानने की उन्मुक्तता है । प्रेम के नाम पर धोखा तो नहीं दिया जा रहा है ? आखिर यह अपर्णा है कौन जो हम दोनों के बीच खड़ी है । यह अपर्णा कहीं दीवार तो नहीं बनेगी ? नारी-सुलभ जिज्ञासा के ये विभिन्न प्रश्न हैं । और इन प्रश्नों की खोज सुजाता आरम्भ में ही कर रही है । उसको कई बार इस बात की शका भी आई है कि हो न हो वे दोनों एक हैं । उसका माबुक मन उन दोनों को एक रूप में स्वीकार करने तैयार नहीं है । रविवार २१ जुलाई को यह रहस्य संयोग से ही खुल जाता है । सुजाता उस दिन यूँ ही उदय के कमरे पर गई थी । और उदय के नीकर के हाथ उमने 'प्रिन्सेस अपर्णा' के नाम लिफाफा देखा । सारे नीति नियम टांगकर उसने वह पत्र पढ़ लिया । और पत्र पढ़ने के बाद उसके सामने एक दूसरी दुनिया खड़ी हो गई । और अब तक के सारे स्वप्न बिखर गए । किसी स्त्री का मानसिक मसार यूँ अचानक ढह जाना यह उसके लिए सबसे दर्दनाक घटना ही सकती है । इस पत्र में यह स्पष्ट हो जाता है कि उदय सुजाता का माध्यम के रूप में प्रयोग कर रहा था । जिसे वह अपना लक्ष्य समझ रही थी, वही उसे 'माध्यम' समझ रहा था । केवल समझ ही नहीं रहा था अपितु उसने उसका उपयोग कर लिया है । उदय का वह तटस्थता से अध्ययन करना चाह रही थी और उसे गुमान भी था कि वह उदय का अध्ययन कर सकती है । परन्तु इस पत्र ने उसकी अध्ययन-गून्धता को सप्रमाण साबित किया है । "उदय ने आखिर मेरे साथ यह मजाक क्या किया ? क्या भवकृष्ण बनाया है मुझे भी ।" ¹

सचमुच उदय ने उसके साथ विचित्र खेल खेला है । दर्दनाक और जानलेवा खेल है यह । यजीब बात यह है कि सुजाता इस खेल के लिए तैयार नहीं थी । उसे यह भी मालूम नहीं था कि खेल खेला जा रहा है । दो प्रतिस्पर्द्धियों में से एक को इस खेल का ज्ञान हो नहीं और दूसरा सारे प्रसंगों, संवादों और घटनाओं को खेल के रूप में ही ले रहा है । "नहीं, मैंने तो उनके साथ कोई खेल नहीं खेला कोई चाल नहीं चली कि 'राहु' खाकर अब मात खाऊँ ।" और उदय कह रहा है कि अपनी मात को वह स्वीकार करें । इसीलिए "हार की क्या बात है, यह तो सरासर घोवा है । इटम् नॉट ए फेअर गेम ।" ² सचमुच यह कोई 'फेअर गेम' नहीं है । उदय भी इस बात को स्वीकार करता है "सुजाता ने स्वप्न भग की उस वितृष्णा में ठीक, हो कहा था कि 'इट्स नॉट ए फेअर गेम ।' सच ही यह ईमानदारी का खेल नहीं है ।" ³ इस खेल के प्रति दोनों पक्षों के अपने-अपने तर्क हैं । उदय के अनुसार 'लेकिन एक बार खेल गुरु हो चुका था—मैं क्या करता ।" ⁴ उदय ने

सुजाता को युवती-रूप में कभी देखा ही नहीं। वह तो उसे लेखिका-रूप में ही देखता रहा। और इस लेखिका के साथ ही उसने यह जानलेवा खेल शुरू किया था। और सुजाता लेखिका-रूप में उदय के सम्पर्क में आई थी, परन्तु उसका यह लेखिका रूप कब तिरोहित हो गया और वह कब 'प्रेयसी सुजाता' बन गई, इसका उसे एहसास ही नहीं रहा। इतना सच है कि मात खाने के बाद सुजाता सर्वाधिक दुःखी हुई है। दुःख पराजित होने का नहीं है; अपितु सीढ़ी के रूप में उपयोग किए जाने का है। इसीलिए २३ जुलाई की डायरी में सुजाता नोट लिखती है—“तुम चाहे जिसके दूत बनो, चाहे जिसके प्रति वफादार रहो मगर मुझे यों सीढ़ी और सेतु मत बनाओ। मुझसे यह नहीं सहा जाएगा। मैं तो तुम से डोर का एक सिरा बनकर मिली थी... कमन्द का सिलसिला नहीं।”

सुजाता के व्यक्तित्व का विशेषतः उसके मानसिक व्यक्तित्व के उतार-चढ़ाव का यह क्रमशः विवेचन है। इस समग्र विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष दिए जा सकते हैं—

(१) इस सम्पूर्ण उपन्यास में सुजाता के तीन रूप उभरकर आये हैं—मध्यवर्गीय संस्कारों से पीड़ित नारी सुजाता, तेज के द्वारा टगी जाने के कारण आहत प्रेयसी सुजाता [जो अब उदय की ओर आकृष्ट हो रही है; और उदय के सम्पर्क के बाद उसका यह 'प्रेयसी रूप' अधिक सशक्तता के साथ व्यक्त हो रहा है] और व्यक्तित्व के जिस अंश पर उसे सर्वाधिक अभिमान है (कुछ सीमा तक गर्व भी) वह लेखिका सुजाता। नारी, प्रेयसी और लेखिका का यह संघर्ष डायरी के अनेक पन्नों में बिखरा पड़ा है। प्रेयसी सभी वंशनों को तोड़कर शारीरिक मिलन के लिए उत्तुंग है, नारी इस पर अंकुश लगवाने का काम कर रही है और लेखिका इन दोनों का सूक्ष्म निरीक्षण कर रही है। जब वह डायरी लिखने बैठती है तब उसका लेखकीय रूप तिरोहित हो जाता है और नारी तथा प्रेयसी का रूप ही उभरकर आता है। अलवत्ता उदय के निकट आने के बाद उसका लेखकीय रूप अधिक सजग हो उठा है। जहाँ कहीं प्रेयसी रूप व्यक्त होने की कोशिश करता है, वहाँ पर उसकी संस्कारशील नारी उसे रोक देती है। यह संस्कारशील नारी ही उसका स्वभाविक रूप है। इसका यौ अंकुश रहने के कारण ही सुजाता विगड़ने से पहले ही सुघर गई है। व्यक्तित्व का उसका यह अंश ही उसकी शक्ति है और उसकी सीमा भी। हालाँकि प्रेयसी सुजाता इस स्थिति को मान्य करना नहीं चाहती। उसे जबरदस्त दुःख है कि यूरोपीय युवतियों की तरह भारतीय युवतियों का प्रेम उन्मुक्त होकर प्रकट क्यों नहीं होता? उसकी इच्छा भी है कि वह इन सब वंशनों को त्याग दे। परन्तु उसके भीतर की नारी उसे यह करने से रोक देती है। और यहीं पर यह सिद्ध हो जाता है कि अपने मध्यवर्गीय संस्कारों से सुजाता कितनी दृढ़ता से बन्धी हुई है। इस मध्यवर्गीय युवती

का वास्तव में बड़ा ही जीवन्त चित्रण इसके माध्यम से हुआ है ।

(२) गुजाता के मन में पुरुष शरीर के प्रति आसक्ति है, तिचाव है । इस उम्र की किसी भी नारी में इस प्रकार का तिचाव स्वाभाविक है । इसी कारण वह किसी की बांहों में अपने को समर्पित करना चाहती है । एक ओर ये प्राकृतिक इच्छाएँ हैं, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय सस्कार । इच्छा और सस्कारों में संघर्ष शुरू हो जाता है । समाज, शिक्षा, नीति-अनीति की कल्पनाएँ आदि के कारण यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती, इसी कारण कुंठा, धुटन, मानसिक रति आदि का उदय हो जाता है । उसकी इन साठ दिनों की जिन्दगी में केवल यही है । मय की ग्रन्थि से भी वह पीड़ित है । ये मय ग्रन्थियाँ भी मध्यवर्गीय सस्कारों के कारण ही उत्पन्न हुई हैं । उसमें साहस की कमी है । वास्तव में इसी 'कमी' ने उसे उबारा है । मानसिक रूप से वह उदय के साथ पूर्णता जुड़ गई है । यह मानसिक मिलन अपूर्ण है, जब तक शारीरिक मिलन नहीं है । और इस प्रकार का मिलन तो संभव ही नहीं है । वह न इस मानसिक जोड़ को तोड़ सकती है और न उन्मुक्त रूप से मिल सकती है । इस स्थिति में कुंठाया और भिन्न भिन्न ग्रन्थियों का निर्माण होना स्वाभाविक था, और यह हुआ भी है ।

कुछ सोमा तक इस उपन्यास में 'लिस्विया' के संकेत मिलते हैं । उदय के सम्पर्क में आने के बाद गुजाता के मन में शारीरिक इच्छाएँ इतनी तीव्र हो जाती हैं कि वह अपनी सहेली रेखा के शरीर के साथ शरास्त करती है । (१९ जून की डायरी के पृष्ठ) । यह उसकी दमित कामनाओं की अभिव्यक्ति है । वह सोचती है— "कैसे लगता होगा बलात्कार के समय ? क्या एक बार इस अनुभव से नहीं गुजरा जा सकता । फिर वह सोचती है कि छि मेरे मन में ये कैसे मही-मही बातें आने लगी हैं ।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि उसकी शारीरिक इच्छाएँ कितनी उत्पन्न कर आ रही थी ।

~ (३) इस पूरे विवेचन से स्पष्ट है कि गुजाता मध्यवर्गीय भारतीय युवती के मानस का प्रतिनिधित्व करती है । क्योंकि इस देश में प्यार मानसिक स्तर पर ही व्यक्त होता रहा है । मानसिक स्तर के इस प्यार पर अनेक बन्धन होने के कारण ही यह कुंठा तथा अन्य यौन-ग्रन्थियों में परिवर्तित हो जाता है । किसी की ओर आकृष्ट होना, मन-ही-मन उसे पूजना, उसे लेकर अनेक स्वप्न देखना तथा अन्त में किसी कारण उसमें विवाह न होने पर लगातार आँसू बहाना और किसी अन्य से विवाह कर लेना यह भारतीय युवक-युवतियों की प्रवृत्ति ही है । इस दृष्टि से गुजाता का चित्रण अत्यधिक आकर्षक एवं जीवन्त बन गया है ।

(४) उदय गुजाता के साथ एक 'खेल' खेल रहा था । पगली गुजाता इस खेल को समझ नहीं सकती । कई बार वह भी अपने मन को समझा रही थी कि एक

लेखक की दृष्टि से वह 'उदय' का निरीक्षण कर रही है। परन्तु यह 'निरीक्षण' धीरे-धीरे कव प्रेम में परिवर्तित हो गया, इसे वह समझ ही नहीं सकी। जिस दिन उसे यह पता चला कि उदय तो केवल माध्यम के रूप में ही उसका उपयोग कर रहा है, उस दिन वह पूर्णतः क्षुब्ध हो गई। उसके युवा स्वप्नों पर यह जबरदस्त आघात था। जिसे वह अपना लक्ष्य समझ रही थी; वह तो महज उसका 'माध्यम' के रूप में उपयोग कर चुका है। यहाँ सुजाता तीनों रूपों में हार गई है। सबसे बड़ी असफलता तो लेखिका सुजाता की है; क्योंकि वह प्रिन्सेस अपर्णा और वहन अपर्णा के सम्बन्ध को समझ नहीं पायी। उदय तथा प्रिन्सेस अपर्णा के अभिनय को भी वह समझ नहीं सकी। संभवतः उसके प्रेयसी मन ने उसके लेखकीय व्यक्तित्व को दबोच लिया था; इसलिए शायद ऐसा हुआ। उदय न केवल उसका अपितु उसके माध्यम से अपर्णा का निरीक्षण कर रहा था और इसमें वह सफल हुआ। वह उदय के सही रूप को समझ नहीं सकी, यह एहसास उसकी लेखकीय चेतना को तोड़ देता है।

प्रेयसी-रूप में भी वह मात खा चुकी है। उदय उमसे किसी भी स्तर पर जुड़ा हुआ नहीं था—यह एहसास उसके प्रेयसी मन को तोड़ देता है। अलवत्ता 'नारी सुजाता' न मात खा चुकी है और न विजयी है। क्योंकि इस 'नारी' ने कोई प्रतिज्ञा नहीं की थी। वह तो बंधन तोड़ने वाली प्रेयसी पर रोक लगा रही थी। वास्तव में इस भीतरी मध्यवर्गीय 'नारी' ने ही सुजाता को बचाया है।

उदय का पत्र प्राप्त हो जाने के बाद सुजाता चिढ़-सी जाती है। इसी कारण वह लिखती है—“जी मैं तो मेरे भी आ रहा है कि मैं उदय से जाकर कह दूँ कि जो किस्से मैं राजकुमारी को लेकर रोज-रोज बताया करती थी उन्हें क्या तुम सच-मुच सच समझते हो? अरे यह कैसे भूल गए कि मैं कयाकार ही नहीं अभिनेत्री भी थी और रोज मन वहलाने को एक किस्सा गढ़कर सुनाया करती थी—?”^{११७} मात खाने के बाद अपने मन को समझाने की यह असफल तथा स्वाभाविक कोशिश है।

ढायरी के अन्तिम पृष्ठ में सुजाता का दुःख व्यक्त हुआ है। यह दुःख लेखिका तथा प्रेयसी सुजाता का है। “तुम चाहे जिसके दूत बनो, चाहे जिसके प्रति वफादार रहो—मगर मुझे यों सीढ़ी और सेतु मत बनाओ। मुझसे यह सब नहीं सह जाएगा। मैं तो तुमसे डोर का एक मिरा बनकर मिली थी...कमन्द का मिलसिला नहीं...”^{११८} यूँ सीढ़ी या कमन्द बन जाना सुजाता की शायद 'नियति' ही थी।

अपनी पराजय की स्थिति को सुजाता जिन्दगी-भर भूल नहीं पायी है। उन्नी कारण तो उसने युवावस्था की ढायरी आज तक संभालकर रखी है। इस पुरानी ढायरी को संभालकर रखने के भूल में तीन कारण हो सकते हैं—

(१) प्रेम की असफलता—जिसे भूलना किमी भी पुरुष अथवा स्त्री को संभव नहीं अर्थात् मूल्य अर्थों में यह 'प्रेम' नहीं है। उदय के सम्पर्क में आने के बाद पूरी

उत्कटता के साथ ये 'क्षण' वह जी चुकी थी । चरम तन्मयता अथवा चरम उत्कटता के इन क्षणों को मूलना उसे अममव था, इसीलिए इस ढायरी को उसने सुरक्षित रखा है ।

(२) आयु की विशिष्ट अवस्था—इस अवस्था में हुए अपमान या पराजय को व्यक्ति मूल नहीं सक्ता । इस समय की 'मानसिक अवस्था' ढायरी के इन पृष्ठों में सुरक्षित है । और पिछली जिन्दगी को फिर से देखने का एक मान माध्यम यह ढायरी है, इसलिए उसने यह ढायरी सुरक्षित रखी है ।

(३) उसका लेखकीय ध्यतिस्त्व—जो उस विशिष्ट अवस्था को शब्दबद्ध कर चुका है और उस लेखन को यह नष्ट होने नहीं देना चाहता । वहरहाल 'सुजाता' के मन पर इन ५१ दिनों के सम्पर्क का अमिट प्रभाव पड़ा है ।

सही अर्थों में सुजाता पराजित नहीं हुई है । क्योंकि अगर वास्तव में यह खेल था तो दोनों पक्षों को इस खेल का पता होना चाहिए था । एक व्यक्ति सम्पूर्ण आत्मीयता से, सम्पूर्ण लगन से प्रेम करें, समर्पित हो जाय और सामने वाला कुछ समय तक के लिए उस समर्पण के प्रति, प्रेम के प्रति योग्य प्रतिमाद दें और वाद में कह दें कि यह तो खेल था, ययार्य कुछ भी नहीं—तो दोष पहले का नहीं दूसरे का ही हो सकता है ।

'उदय' सुजाता की दृष्टि से

सचमुच बहुत ही सौंप हैं लड़कियों के सामने प्राण निकलते हैं । २५

यह तो जनाना पुरुष है । ३४

रुन्हे सहानुभूति चाहिए यह इनके गढ़ का सबसे कमजोर कोना है ।

कुछ कहते हैं कि वे तन्मयी स्नाँव और दम्भी हैं, अपने आगे किसी को कुछ लगाते ही नहीं । कुछ के खयाल से वे जरूरत से ज्यादा छिछने और 'चीय' हैं । कुछ के लिहाज से वे बहुत ही अध्ययनशील, गम्भीर और सौम्य हैं और कुछ उन्हें निहायत बना और घुटा हुआ कहते हैं । एक दल उन्हें वैसी-विदेशी पूँजीगतियों का दलाल बतलाता है और दूसरा उन्हें हमी एजेण्ट घोषित करता है । ४२

पहले यह आदमी मुझे भी बड़ा उद्गड और किसी हृद तक बदनमीज लगा था, लेकिन अब कुछ-कुछ दया आने लगी है । ८३

उदय में सचमुच बलावार के टच हैं । १२६

आदमी बड़ा शक्की है । १४५

न तो वे देखने में ही ऐसे सुन्दर, प्रभावशाली, न सामाजिक दृष्टि से ऐसे प्रतिष्ठित आर्थिक दृष्टि का तो कहना ही क्या ? एक उखड़ा हुआ हवा में उड़ता बीज जो अपने लायक परती खोजने में खुद यहाँ से वहाँ भटक रहा हो । १६१

बड़ा आत्मनुष्ट अरने में ही डूबा और कट्टे दम्भी-सा व्यक्ति भी कह

सकते हैं ।

१७१

उदय से बातें करते समय मन में एक आश्वासन, एक सन्तोष तो होता है ।

१७२

यह आदमी निहायत ही आत्म-केन्द्रित, अपने में ही डूबा, हमेशा अपनी ही समस्याओं में उलझा-खोया रहने वाला है ।

१७९

सचमुच, ऐसा ठण्डा-निर्जीव और अपने में ही डूबा रहने वाला; सिर्फ अपनी-ही-अपनी बातें करते रहने वाला आदमी तो मैंने आज तक देखा ही नहीं कभी ।

एक असमर्थ आदमी.....जो हर वक्त अपने-आप को, स्त्रियों को लेकर ही उलझा और डूबा दिखाकर एक मानसिक सन्तोष पाता है.....दूसरों के आगे हमेशा एक भ्रम बनाए रखना चाहता है ।

१८०

हमेशा, जब देखो तब, जान-बूझकर एक रहस्य का मकड़ी का जाल-सा अपने चारों ओर (यह आदमी) लपेटे रहेगा ।

१८४

क्या हक था इसे मेरी भावनाओं से यों खिलवाड़ करने का ? जी में आता है कि पागल और उद्भ्रान्त की तरह इसके सारे कपड़े चीर-चीर कर डालूँ, धूसों और मुच्छों से इसे कूट-कूटकर बेहाल कर दूँ, नाखूनों और दाँतों से इसके चियड़े उड़ा दूँ और फिर इसके मुँह पर खूब थूकूँ, “ले, और ले, और खेल ।”

उदय : सुजाता के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान ‘उदय’ का है । सुजाता के मानस-संसार का मूल आधार उदय का व्यक्तित्व ही है । उदय की मनःस्थिति का सूक्ष्म और गहरा चित्रण इस उपन्यास में नहीं हुआ है । इसका एक बहुत बड़ा कारण ‘ढायरी शैली’ है । क्योंकि इसमें केवल सुजाता की ढायरी के ही पन्ने अधिक हैं । उपन्यास के अन्त में उदय की ढायरी के ७-८ पन्ने हैं परन्तु उसमें उसका लेखकीय व्यक्तित्व ही उभरकर आया है । जिस प्रकार सुजाता अपने विभिन्न रूपों में—लेखिका प्रेयसी, नारी—प्रकट हुई हैं वैसे ‘उदय’ के विभिन्न रूप प्रकट नहीं हुए हैं । इसके दो कारण हो सकते हैं—(अ) सुजाता ढायरी लिख रही है; उदय वही । (आ) लेखक उदय अपने विषय के प्रति अत्यधिक तटस्थ है । वह ‘सुजाता’ को केवल माध्यम के रूप में देख रहा था । सुजाता के सम्पर्क से उसके भीतर का पुरुष वह नहीं सका है ।

उदय का अव्ययन स्वतन्त्र रूप से करना मुश्किल है । क्योंकि उदय के व्यक्तित्व को सुजाता के माध्यम से ही जानना पड़ता है । मजेदार बात यह है कि उदय सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग कर रहा था; और पाठक-समीक्षक ‘उदय’ को सुजाता के माध्यम से ही जान पाते हैं । इसीलिए नारी, प्रेयसी और लेखिका सुजाता ने उदय को जित-जित रूपों में देखा है वे विविध रूप तथा स्वयं उदय ने अपने सम्बन्ध में आखिर जो कुछ भी लिखा है और उसमें उसके जो विभिन्न

रूप उभरते हैं वे रूप—इन दोनों में आन्तरिक नगति खोजनी पड़ती है। इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से ही 'उदय' के वास्तविक चरित्र को हम जान सकेंगे।

उदय से परिचय हो जाने के बाद ही सुजाता उनके सम्बन्ध में लिखती है—
 "लड़कियों के सामने इनकी वाल्मीकि वन्द हो जाती है और सारा मुँह लाल पड़ जाता है।" आरम्भ से ही सुजाता उदय पर हावी होना चाहती है। वह उनके सम्बन्ध में मनमाने निष्कर्ष निवालने लगती है। उदय के आरम्भिक व्यवहार से ही स्पष्ट हो जाता है कि किसी युवती से उनका घनिष्ठ परिचय है। वह बार-बार उस पान करते रहते हैं। उसके सम्बन्ध में बड़े उत्साह से बोलते रहते हैं। यह युवती है—प्रिन्सेस अपर्णा। उनको फोन की बानबीन से स्पष्ट है कि वे स्त्रियों से बहुत ही खुलकर बातें करते हैं। फिर सुजाता के उपर्युक्त निष्कर्ष में कोई अर्थ नहीं है। सुजाता के अनुसार 'वह एक जनाना पुरुष है जिसको प्यार ने दिगाड़ दिया है।' इस मत में भी तथ्य नहीं है। क्योंकि उदय सुजाता की तरह न भावुकता में बहता है और न किसी प्यार के चक्कर में पड़ा है। इस लेखक के सम्बन्ध में लोगों की अलग-अलग रायें हैं। "कुछ कहते हैं कि नन्वरी स्नाँव और दम्मी है, अपने अपने किसी की कुछ लगाते ही नहीं। कुछ के खयाल से वे जख्मत में ज्यादा छिछरे और चीप हैं। कुछ के लिहाज से वे बहुत ही अध्ययनशील, गम्भीर और सौम्य हैं और कुछ उन्हें निहायत बना और घुटा हुआ कहते हैं। एक दल उन्हें देशी विदेशी पूँजीपतियों का दलाल बतलाता है और दूसरा उन्हें इसी एजेण्ट घोषित करता है।" उदय जैसे एक प्रसिद्ध लेखक के सम्बन्ध में ये परस्पर विरोधी निष्कर्ष स्वामाविक ही हैं। उदय की ओर आवृष्ट हो जाने के बाद सुजाता इन निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करती। "लेकिन, विश्वास नहीं होता कि उदय ऐसे हैं।" उदय के अनुसार वह खुद "कुछ बदतमीज और मुँह पट हूँ, दूसरे, हर बात को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कहने का मुझे बहुत अभ्यास है।"

उदय अपनी आर्थिक परिस्थिति से बहुत परेशान है। केवल लेखन पर जीने की वह कोशिश कर रहा है। परन्तु इससे कुछ अधिक तो मिलता नहीं। इसी कारण विस्मृत आजमाने के लिए वह बम्बई आया है। प्रिन्सेस अपर्णा नामक कोई स्त्री उससे उपन्यासों को पढ़कर उससे पत्र-व्यवहार कर रही है। यह पत्र व्यवहार बढ़ता गया। इन पत्रों के कारण उदय के मन में उसके प्रति 'एक लेखकीय जिज्ञासा' उत्पन्न हो गई है। यह प्रिन्सेस अपर्णा को उसके सम्पूर्ण परिवेश में समग्रता से जानना चाह रहा है। परन्तु सस्कार और वर्ण की दीवारों दोनों के बीच सड़ी है। फोन पर वह ही बात कर सकते हैं, प्रत्यक्ष मिल नहीं सकते। इसी कारण 'लेखक उदय' के मन में 'सस्कार और वर्ण की दीवारों की दरार टटोलने की बेचनी' दूर हुई। परन्तु प्रश्न था कि इस अपर्णा को समग्रता से कैसे जाना जाय? उचित माध्यम की तलाश

में वह था । और इसी समय उसका परिचय मुजाता से हो गया । “इस जिज्ञासा से मैं कैसे इन्कार कहूँ कि मैं अपर्णा और उसकी दुनिया के बारे में अधिक-से-अधिक नहीं जानना चाहता था ? मेरी यह दुर्दम्य महत्वाकांक्षा रही है कि मैं उसके सम्पूर्ण परिवेश में जानूँ; उसे अन्तर्तम तक जानूँ ।”^{११५} इस तथ्य की प्राप्ति का एक मात्र रास्ता था—“और रास्ता मेरे पास था और मैंने मुजाता की प्रतिमा, सूत्र और कुशलता पर विश्वास करके उसे वहाँ भेज दिया ।”^{११६}

“हल्का ठिगना कद, साँवला रंग और छरहरा वदन । एक सचेत असावधानी से सँवारकर बिखराये गये वाल, माथे पर घाव का निशान”^{११७}—यह उदय का शारीरिक वर्णन है । वह महत्वाकांक्षी है । इसी महत्वाकांक्षा के कारण वह वम्बई में तकदीर अजमाने आया है । पंडित चोखेलाल के साथ सिनेरियाँ और डायलॉग में सहायक के रूप में वह काम करता है, मासिक वेतन पर । किसी सिंह के साथ एक कमरे में रहता है । स्पष्ट है कि उदय की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है । उसके अपने ये संघर्ष के दिन हैं । मुजाता ने भूमिका में इसी बात को और स्पष्ट किया है—“उदय अपने उस काल से गुजर रहे थे जिसे सफल लेखक आगे जाकर ‘संघर्ष के दिन’ कहता है…………”^{११८} परन्तु इस आर्थिक संघर्ष के समय भी उदय का लेखकीय व्यक्तित्व अधिक सजग और अपने ‘विषय’ के प्रति ईमानदार और तटस्थ है । ‘प्रिन्सेस अपर्णा’ का समग्रता से अध्ययन करना यह लक्ष्य इसी समय का है । एक ओर अपने लेखकीय व्यक्तित्व के प्रति सजगता और तटस्थता है तो दूसरी ओर वह बहुत ही जिद्दी, महत्वाकांक्षी और अपने निश्चय में दृढ़ है । इसी कारण वह एक स्थान पर कहता है—मैंने भी निश्चय कर लिया है कि लौटना यहाँ से नहीं है । लौटूंगा तो सफल होकर ही लौटूंगा ।”^{११९}

प्रेम के सम्बन्ध में उदय के विचार भावुकता और शारीरिक आकर्षण से कोसों दूर हैं । किसी रश्मि नामक लड़की के सन्दर्भ में उसके ये विचार प्रकट हुए हैं । “आज का प्रेम बहुत अधिक व्यापारी हो गया है । उसमें हमेशा एक द्विविधा, एक धर्म-संकट, ऊपर से दिखावटी और भीतर से निहायत ही हिंसावीपन, साथ ही अपनी ही मनोवृत्ति पर ग्लानि—सब कुछ मिलाकर शायद यह आज के प्रेम की तस्वीर है ।”^{१२०} इस प्रकार के विचार व्यक्त करने वाला उदय आगे चलकर एक स्थान पर ठीक इसके उलटे विचार व्यक्त करता है । प्रिन्सेस अपर्णा के अनुसार “स्त्री-पुरुष के बीच में दोस्ती, एक आत्मीय घनिष्ठता बिना शारीरिक सम्बन्ध आये सम्भव नहीं है ।”^{१२१} और इसके लिए अपर्णा अनेक तर्क देती है । इस बात की चर्चा मुजाता जब उदय के साथ करती है तब उसे अनुभव होता है कि “प्रिन्सेस और उदय के तर्क एक-से हैं ।”^{१२२}

मुजाता के अनुसार “उदय रश्मि और अपर्णा के चक्कर में फँसा हुआ है ।

इन दोनों को लेकर उसके मन में सचपन है ।” तो सहेली रेखा के अनुसार “पहले उससे पास दो थी, अब तीसरी तू और हो जायेगी ।”¹¹¹ वास्तव में सुजाता और रेखा इन दोनों के तर्कों में कोई अर्थ नहीं है । क्योंकि उदय के मन में इस प्रकार का कोई द्वन्द्व इन युवतियों को लेकर नहीं है । ‘रश्मि’ से वह बन्धा हुआ है । अपर्णा उसके अध्ययन का लक्ष्य है और सुजाता मात्र माध्यम ।

सुजाता के प्रति उदय किसी भी स्तर पर जुड़ा हुआ नहीं है । सुजाता को अपनी प्रतिभा और सौन्दर्य पर गर्व है । उसे हर बार लगता है कि उदय उसके शरीर के साथ खिलवाड़ करेगा ही । परन्तु उदय इस सम्बन्ध में मौन है । इस मौन के पीछे ‘लेखकीय तटस्थता’ है । अपने माध्यम के साथ अतिरिक्त भावुकता तथा अन्य आकर्षण के कारण वह बहना नहीं चाहता । माध्यम लक्ष्य न बने इसकी पूरी कोशिश उदय करता है । इस कोशिश में उसे सफलता भी मिली है । प्रेयसी सुजाता को यह सम्भव नहीं हो सका है । उसकी इस तटस्थता का प्रमाण २४ जून की डायरी में मिलता है । सुजाता के अनुसार उदय में ऐसी कोई खास विशेषता नहीं है । “न तो वे देखने में ही ऐसे सुन्दर, प्रभावशाली, न मामाजिक दृष्टि से ऐसे प्रतिष्ठित आर्थिक दृष्टि से तो कहना ही क्या ? एक उखड़ा हुआ हवा में उड़ता बीज जो अपने लायक धरती खोजने में खुद यहाँ से वहाँ मटक रहा हो ।”¹¹² इन सारे अभावों के बावजूद उदय की ओर सुजाता आकृष्ट हुई है । यह स्थिति न केवल सुजाता की ही है अपितु अपर्णा और रश्मि की भी है । अर्थात् उदय की ओर स्थिरा अनजाने ही आकृष्ट हो जाती हैं । इस आकर्षण के बाद ये खुद तय नहीं कर पातीं कि यह कैसे सम्भव हुआ । इसी कारण सुजाता लिखती है—“वह कैसे मेरी भावनाओं को उकसा सका ?”¹¹³ व्यक्तित्व की इसी विशिष्टता के कारण सुजाता यह कहने को मजबूर है कि “वे प्रतिभाशाली हैं, और उनके व्यक्तित्व में एक आत्मविश्वास की दृढ़ता है ।”¹¹⁴

सुजाता की डायरी के पन्नों से एक बात साफ हो जाती है कि उदय सुजाता से कई चीजें छिपाता रहा । उसके अनुसार अपर्णा को जानने के लिए यह जरूरी था । प्रिन्सेस अपर्णा और बहन अपर्णा ये दो अलग-अलग न होकर एक ही हैं, प्रिन्सेस अपर्णा से उसका पुराना परिचय था और उसी ने प्रिन्सेस अपर्णा को उसकी ओर भेज दिया था; आदि सभी बातें उसने सुजाता से अन्त तक छिपाकर रखी । केवल संयोग से ही इन सारे रहस्यों को सुजाता जान सकी है । उदय पर दो दृष्टियों में विचार किया जा सकता है । (अ) एक दृष्टि सुजाता की अपनी दृष्टि है । उसके अनुसार “यह सरासर धोखा हुआ है । उसकी भावनाओं, यद्वाओं और स्वप्नों के साथ धोखा । उदय ने उसे मात जरूर किया है परन्तु “इटम् नॉट ए फेअर गेम ।” (आ) उदय की दृष्टि से एक लेखक के लिये इस प्रकार का दुराव-छिपाव जरूरी

था । वह अगर सारी बातें पहले से ही कह देता तो शायद अपने लक्ष्य को प्राप्त न करता । “अगर मैं यह कहूँ कि यह तो सिर्फ़ यह था और असल में तुम मात खा गई हो तो तुम्हें कैसा लगेगा ? सच सुजाता, कई बार मेरे मन में आया कि मैं यह सब न कहूँ, मेरे हाथों से कम-से-कम यह सब न हो……लेकिन एक बार खेल शुरू हो चुका था—मैं क्या करता ?”^{१११} सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग करने के के मूल में उदय के मन में मुख्यतः दो भावनाएँ थीं—(अ) एक उगती हुई प्रतिभा को पी जाने का स्वार्थ ।^{११२} (आ) अपर्णा को जानने के लिए मैंने सुजाता की प्रतिभा, सूझ और कुशलता पर विश्वास करके उसे वहाँ भेज दिया ।^{११३}—इसी उद्देश्य से उदय ने सुजाता के साथ सम्पर्क बढ़ाया था । कुछ सीमा तक उसने प्रेम का नाटक भी किया था । लेकिन उसके दिल की हालत बड़ी विचित्र हो गई । भोली और प्रतिभासम्पन्न युवती का इस प्रकार उपयोग उदय को कभी पसन्द न आया । परन्तु उसके सामने दूसरा रास्ता भी नहीं था । एक लेखक की हैसियत से क्रूर बनकर यह सब देखना भी अब उसकी नियति थी । बार-बार वह डर महसूस होता था कि “कहीं यह गन्ध भूझे भरमा न ले; भूझे मोहकर रोक न ले……कि कहीं यह कमन्द टूट न जाये ।”^{११४} “लेकिन मन में जाने कैसा एक क्रूर उन्माद था, एक पागल आवेश था कि लौटने नहीं देता था ।”^{११५} सुजाता उदय के निकट एक ही उद्देश्य से आई थी—कि उदय का सभी कोणों से अव्ययन किया जाये । परन्तु जैसे-जैसे यह निकटता बढ़ती गई वह अपने उद्देश्य को भूल गई । उसके भीतर की प्रेयसी उसके लेखकीय व्यक्तित्व पर हावी हो गई । उदय सुजाता के निकट आने के बावजूद भी अपने लक्ष्य को धन भर के लिए भी नहीं भूलता । उसके भीतर का लेखक बड़ा ही क्रूर, तटस्थ और कठोर है । हाँलांकि उदय इस समय युवावस्था में ही है । फिर भी अपने ‘विषय’ के प्रति वह अद्भुत रूप से तटस्थ रहता है । यही उसके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है । इसी कारण उसके मन में कहीं पर भी संघर्ष अथवा द्वन्द्व नहीं है । अलवत्ता उसकी डायरी के फाड़े हुए पन्नों में (२२२ से २२८ तक) कहीं-कहीं पर एक पुरुष और लेखक के द्वन्द्व का संकेत भर है । कमन्द के रूप में सुजाता का उपयोग कर लेने की यह साजिश उसके पुरुष मन को कतई मान्य नहीं थी । “बार-बार किसी के कोमल हाथ ऊपर से धक्का देते थे कि नाजुक फूल यों कमन्द बनने को नहीं हैं……ये बहुत ही कमनीय हैं । नीचे उतर आओ ।”^{११६} परन्तु उसके भीतर बैठा हुआ लेखक इस नाजुक फूल को स्वीकार करने को तैयार नहीं था । इसी कारण उसने लिखा है—“लेकिन मन में जाने कैसा क्रूर उन्माद था, एक पागल आवेश था कि लौटने नहीं देता था ।”^{११७} सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग कर लेते समय एक ओर उदय के भीतर का लेखक खुश था, समाधानी था; परन्तु भीतर का ‘युवा पुरुष’ हताश, दुःखी और पश्चात्तापदग्ध हो रहा था । इस ‘युवा पुरुष’ की स्थिति इन

वक्त्यों द्वारा बहुत ही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है—“ लेकिन अपने दिल के उन मजबूत हाथों को क्या कलें जो मेरा गला घोट देते हैं कि ये फूल यो कमन्द बनाने को नहीं हैं । नहीं मुजाता अब मुझ से नहीं चढ़ा जाता अब मैं नहीं चढ़ पाऊँगा मैं हारकर लौट आता हूँ हार मानता हूँ । तुम्हारे सामने दानो हाथ ऊँच करके आत्म-समर्पण करता हूँ । ” स्पष्ट है कि उदय भी अपने युवा पुरुष के सम्मुख मात खा चुका है । परन्तु मुजाता के और उदय के मात खाने में काफी अन्तर है । मुजाता अपने लेखकीय व्यक्तित्व की तटस्थता बनाये रख नहीं मगी । इस अर्थ में वह पूर्णतः मात खा चुकी है । मुजाता की मावुवता, उसका निश्चल प्रेम और उसके सहज स्वभाव के सम्मुख लेखक उदय अन्ततः हार जाता है । अर्थात् उपलब्धि की दृष्टि में उदय को अधिक सफलता मिल सकी है । क्योंकि वह मुजाता के माध्यम से अपनी को जान सना है । और मुजाता ? माध्यम की अपनी कोई उपलब्धि नहीं होती ।

लेखक उदय के माध्यम से राजेन्द्र यादव ने कलाकार तथा लेखक और लेखन-कार्म के सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य दिए हैं । इन वक्तव्यों की परीक्षा करना आवश्यक है । क्योंकि उदय का व्यक्तित्व इन्हीं वक्तव्यों की नींव पर खड़ा है ।

(१) लेखक को बड़ी क्रूरतापूर्वक अपने और दूसरों के प्रति तटस्थ रहने की जरूरत है । १४

(२) लेखक को निहायत क्रूर होना चाहिए उसे क्रूरतापूर्वक अपने पात्रों और अपने अध्ययन के विषयों से तटस्थ रहना होगा । उसे हर समय सावधानी बरतनी होगी कि वह अपने विषयों या पात्रों के दुःख सुख, हास परिहास और विलास-अवसाद से बिल्कुल बिल्कुल तटस्थ और निलिप्त रहे, वहे नहीं । १२९

(३) और दूसरी बात यह कि उसे बहुत ही ईमानदार होना चाहिए । १३०

(४) बेईमानी लेखन को गिरा देती है, खोखला कर देती है । १३०

(५) जनाव, लिखना यो नहीं होना, इसके लिए बहुत बिराल हृदय और गेड़े की खाल चाहिए । १३३

(६) लेखक को बड़ा क्रूर होना चाहिए । यानी अपने 'विषय' में व्यक्तिगत रूप से बहुत गहरे उतरकर और चाहे जैसी व्यक्तिगत दिलचस्पी रखते हुए भी उमंग दुःखमनो जैसी तटस्थता निवाहने की निर्दय क्षमता होनी चाहिए । १७४

(७) 'किले में घुसने वाले जासूस को (लेखक) इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि उसकी कमन्द रशम की है या साँप की । वह लटकता फाँसी का पन्दा भी हो सकता है, और किसी पद्मगन्धा की साडी भी ।" २२५

(८) हम लोग (लेखक) कभी भी राजकुमार नहीं होते—हम लोग तो जासूस होते हैं । कभी हम राजकुमार के देश में होते हैं, कभी मिखारी के । कभी डाक होते हैं और कभी गुण्डे । कभी साधु का स्वाँग भरते हैं तो कभी चरित्र-

हीन का ! हम एक तीव्र और दुर्निवार जिज्ञासा होते हैं, वस !” २२७

(९) कलाकार सब कुछ हो सकता है—खुद वह ‘आदमी’ हो ही नहीं सकता ।
हाँ, वह आदमी का दूत होता हो, तो हो । २२७

(१०) मैं खुद कुछ भी नहीं, (लेखक) किसी के हाथों का हथियार भर हूँ, किसी का एजेंट हूँ, जो कुछ भी करता हूँ वह सब अपने लिए नहीं ‘किसी’ के लिए करता हूँ । २२७

(११) अपने वेटे की मौत के समय मेरे भीतर का वाप रोता है और यह क्रूर दूत (लेखक) उस समय भी बैठा-बैठा नोट करता रहता है कि वेटे के मरते समय वाप को कैसा लगता है । कभी-कभी तो दूत उसे मजबूर कर देता है कि यही जानने के लिए वह वेटे को मारकर देखे……” २२७

वास्तव में ये विभिन्न वक्तव्य लेखक उदय की अपेक्षा श्री राजेन्द्र यादव की लेखन-दृष्टि को ही स्पष्ट करते हैं । अपने को उदय के रूप में वाँटकर राजेन्द्र यादव का यह मुखर चिन्तन (लाउड थिंकिंग) ही है । २० वीं शताब्दी के साहित्यकारों की लेखकीय दृष्टि इन वक्तव्यों द्वारा स्पष्ट हुई है । अपने सम्पूर्ण लेखन अर्थात् विषय के प्रति इस हद तक की तटस्थता—जिसे उदय क्रूर तटस्थता कहता है—सही लेखन के लिए बहुत जरूरी है । मुजाता में इस प्रकार की तटस्थता का अभाव रहा । उदय में इस प्रकार की तटस्थता रही है । इसी कारण वह मुजाता जैसी युवती का कमन्द के रूप में उपयोग कर सका है । गम्भीरता से अगर हम विचार करें तो और भी तथ्य हमारे सामने आ जाएँगे । एक ओर लेखकीय व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ये सारे निष्कर्ष, वक्तव्य अथवा लक्ष्मण-रेखाएँ हैं तो दूसरी ओर लेखक उदय का व्यवहार । “नहीं मुजाता, अब मुझ से नहीं चढ़ा जाता; अब मैं नहीं चढ़ पाऊँगा……” मैं हारकर लौट आता हूँ……हार मानता हूँ ।” उदय की इस मनःस्थिति का कौनसा स्पष्टीकरण दिया जा सकता है ? इस पूरे उपन्यास में उदय और मुजाता दोनों लेखकीय स्तर पर ही जीना चाहते हैं । उदय तो कलाकार के सामान्य व्यक्तित्व तक को नकारता है (वक्तव्य क्रमांक ९) । और मजेदार बात यह है कि ये दोनों इसी सामान्य व्यक्तित्व के कारण ही अधिक आकर्षक और सहज बन गए हैं । कलाकार के भीतर का यह द्वन्द्व दोनों चरित्रों के माध्यम से अत्यधिक स्पष्ट हुआ है । उदय एक साधारण व्यक्ति की तरह मुजाता की प्रतिभा को समाप्त करने निकलता है । उपर्युक्त वक्तव्यों में और उदय के व्यवहार में यही बहुत बड़ी विसंगति है । क्योंकि खुद उदय यह मानता है कि मुजाता को माध्यम बनाने के मूल में उसकी प्रतिभा को पी जाने का स्वार्थ था । इस स्वार्थ का समर्थन उपर्युक्त वक्तव्यों के आधार पर किस प्रकार किया जा सकता है ? प्रिन्सेम अपर्णा के माध्यम से वह उच्च वर्गों के जीवन को देखना चाह रहा था । इस कार्य के लिए उसने मुजाता को माध्यम बनाया है—

यह भी साधारण व्यक्ति का ही कार्य है, कलाकार का नहीं। क्योंकि सच्चे कलाकार के लिए 'माध्यम' की जरूरत नहीं होती। स्पष्ट है कि इन विभिन्न वस्तुव्यो द्वारा उदय अपनी सामान्यता अथवा स्वार्थी वृत्ति को छिपाने की बेहद कोशिश कर रहा है। परन्तु अपने ही वस्तुव्यो के कारण वह सब से अधिक नगा हो गया है। अत्यन्त सामान्य स्तर पर जाकर उसने मुजाता के भावों के साथ क्रूर खेल खेला है। इस क्रूर खेल का समयन भले ही वह 'कलाकार के विशिष्ट व्यक्तित्व' द्वारा करना चाह रहा हो, तो भी यह निश्चित है कि वह इसमें पूरी तरह असफल हो गया है। अपने इस कार्य को वह भले ही जीत कहे तो भी वह खुद मात खा चुका है। इसी कारण एक स्थान पर वह कहता है—“मुजाता ने स्वप्न भग की उस विनृष्णा में टीक ही कहा था कि इटम् नाँट ए फेअर गेम। सब ही यह ईमानदारी का खेल नहीं है।”

प्रिसेन्स अपर्णा : “अट्टाडस-उन्तीम की उम्र, गोल चेहरा, गेहूँआ रंग और मरा हुआ शरीर, सुन्दर फिगर” इस प्रकार के आकर्षक व्यक्तित्व वाली प्रिसेन्स अपर्णा इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप में प्रवेश करती है पृष्ठ १०७ पर, सोमवार २४ जून को, उपन्यास की दुरुआत होने के ठीक २१ दिनों बाद। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण उपन्यास पर वह छा गई है। अपर्णा के ही कारण उदय मुजाता के निवृत्त आता है। और अपर्णा के ही बहाने मुजाता उदय से बार बार मिलने जाती है। कुछ सीमा तक अपर्णा इन दोनों के बीच भेदु का काम कर रही है। उदय की चाल यह है कि मुजाता अपर्णा और उसके बीच 'सेतु' का कार्य करे। और उसने उसे सेतु बना भी दिया था। मुजाता एक प्रबुद्ध लेखिका के नाते 'अपर्णा' का अध्ययन कर रही है, सभी कोणों से। परन्तु यह अध्ययन वह 'उदय' के लिए ही कर रही थी, अपने लिए नहीं।

अपर्णा राजस्थान के एक राजघराने की राजकुमारी थी। “उनके अपने इस घर में पर्दा बगैरा कम नहीं था, लेकिन धूँक वहाँ की बे बेटी थीं, इसलिए वहाँ तो उन्हें काफी छूटे थीं, काफी स्वतन्त्र भी थीं वे। दो भाइयों के बीच की अकेली बहन, फिर राजमाता का प्यार।” इस समय उन्हें पढ़ने का शौक लग गया। खूब पढ़ती थी। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी साहित्य। संगीत की शिक्षा भी थोड़ी-बहुत हुई। उत्तर की एक बहूत बड़ी पहाड़ी रियासत में इनकी शादी हो गई। पति—जैसे इस काल के राजा-महाराजा हुआ करते थे—बड़े रंगीन तबियत के व्यक्ति थे। स्त्रियाँ को परम्पराबद्ध पद्धति से देखते थे। स्त्रियाँ उनके लिए विलीना मात्र थी। ‘दिनभर शिकार, पार्टियाँ और ह्विस्की की बोतलें। इसके अलावा उनका एक पूरा हरम था।’ खुले और स्वतन्त्र विचारों के घर से आई हुई अपर्णा इस नये वातावरण से मयभीत हो गई। वह यहाँ पूणत अन्दिस्त थी। “चारों ओर वन, वही ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और उनसे खिलवाड़ करती सुबह शाम की किरणें, बादल और फिर

नीला आसमान ।.....जिधर देखो, उधर ही एक घुटन और घिरावट का एहसास । ऐसे लगता था जैसे मैं आजन्म कैद पाया हुआ कैदी हूँ जो धीरे-धीरे अपनी मीत की राह देख रहा है.....मेरी चेतना और संवेदना इस तरह मरती चली जा रही थी कि कुछ दिनों में मुझे यह भी याद नहीं रहा कि पहाड़ों के पार भी कोई दुनिया है ।^{११२८} पढ़ने का शौक रखने वाली अपर्णा को न यहाँ पर कोई अखबार मिलता था, न कोई पत्रिका । ऐसे घुटन भरे वातावरण में वह मन मारकर जी रही थी कि अचानक उसे एक दिन पता चला कि युवराज नाममात्र के ही पुरुष हैं.....। लगा, पैर तले की जमीन ही खिसक गई है । भावुक, सम्बेदनशील अपर्णा अब सूख-सूख-कर काँटा हो गई । एक दिन उसके भाई उससे मिलने आए । भाई के पैरों पर सिर रखकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी । इस कैद से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना करने लगी । युवराज के कानों में गलत और विद्वत्पूर्ण समाचार इस घटना के सम्बन्ध में दिए गए । इसी कारण उस रात युवराज गुस्से के मारे कहने लगे—“अपने पार के तो पैरों पर गिर-गिरकर रोती है.....हाथी पाँवों तले रीन्दवा दूंगा । भाइयों के भरोसे मत रहना । इस महल में किसी का घमण्ड नहीं चलता ।^{११२९} इस समय अपर्णा की आयु केवल १६-१७ वर्ष की है । दो-एक वर्ष वह इसी नरक में जीती रही । और एक दिन उसे पता चला कि युवराज विलायत चले गए हैं । और जब उन्होंने यह सुना कि सरदार पटेल ने तेजी से रियासतों का विलीनीकरण शुरू कर दिया है तो वहीं जम गए ।^{११३०} अपनी माँ को मृत्यु का समाचार जब अपर्णा को मिला तो वह वहाँ से निकली और मँके आ गई । तब से आज तक समुराल जाने का नाम उसने नहीं लिया है । भाई और भाभी के साथ वह तब से बम्बई में रहती है ।

प्रिन्सेस अपर्णा की यह कण्ठ कहानी है । समुराल से छुटकारा पाने के बाद उसके पुराने शौक उमड़ पड़े । फिर पति का प्यार भी नहीं मिला था । परिणामतः वह साहित्य, संगीत और अभिनय की ओर आकृष्ट हुई । पढ़ना यह उसका सबसे बड़ा शौक है । इस राजपरिवार में उसका यह शौक सबसे निराला और विशिष्ट है । क्योंकि और लोग पार्टियाँ, क्लब, नृत्य, शराब, औरतें तथा झूठी प्रतिष्ठा में ही डूबे हुए हैं । अपने-आप को बहलाते-बहकाते हुए वह जिन्दगी गुजार रही है । अब इसके सिवा उसके लिए कोई चारा नहीं है । “वह जानती है कि वह खुद एक फाल्गू चीज है, जिसे दया पर रहना है । अपना हर कदम भाई के तैवर देखकर ही रखना पड़ता है ।^{११३१} अपनी इस स्थिति को अपर्णा ने लेनिन के इस प्रसिद्ध वाक्य द्वारा स्पष्ट किया है—“औरत की हालत सभी जगह एक-सी है—चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी—वह हमेशा ही पुरुष के तैवर देखकर चलती है, उसकी इज्जत उसके चाहने न चाहने पर है । उसकी प्रतिष्ठा उसकी शरीर-शुद्धता की परम्परागत मान्यता पर है ।^{११३२} भारतीय स्त्री की उसे सुन्दर व्याख्या थायद हो नहीं सकती । ऐसी है

यह प्रिन्सेस अपर्णा । सम्पत्ति और भौतिक समृद्धि से घिरी हुई; फिर भी दुःखी, निराश । साहित्य का शौक होने के कारण वह लेखक उदय के पुस्तकों के सम्पर्क में आई । उनके उपन्यासों से प्रभावित होकर उनसे पत्र-व्यवहार शुरू हुआ । यह पत्र-व्यवहार काफी बड़ा । दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति 'जिज्ञासा' निर्माण हुई । यह 'जिज्ञासा' लेखक उदय के मन में बहुत है । इसी कारण वह प्रिन्सेस अपर्णा को समझना से जान लेना चाह रहा है । पत्र-व्यवहार करने वाली इस प्रिन्सेस अपर्णा को सुजाता के सम्मुख उसने 'बहन अपर्णा' कहा । और इस 'बहन अपर्णा' के सम्बन्ध में अनेक नई काल्पनिक कहानियाँ उसने गढ़ी । सुजाता 'बहन अपर्णा' और 'प्रिन्सेस अपर्णा' को अलग-अलग ही समझ रही थी ।

पत्रों के माध्यम से उदय प्रिन्सेस अपर्णा के निकट चला गया था । प्रिन्सेस भी उदय को ५५५ सिगरेट के डिब्बे भेजा करती है (पृष्ठ १८३) पृ० २११ पर अपर्णा को लिखा गया उदय का पत्र भी उन दोनों के सम्बन्धों की अनौपचारिकता को स्पष्ट करता है । इन सारी विशेषताओं के बावजूद भी अपर्णा और उदय खुलकर मिल नहीं सकते । उदय अपर्णा को उसके अपने परिवेश में समग्र रूप से जान नहीं सकता । क्योंकि अपर्णा इस प्रकार के सामान्य आर्थिक स्थिति वाले लोगों से—विशेषण पुस्तों से—मिल नहीं सकती । "जिस वातावरण में अपर्णा रहती है उसमें ऐश्वर्य और पैसा हमेशा एक हीका बनकर भोगने वाले और मोम के बीच में खड़ा रहता है ।" १११

वम्यई आने के बाद अपर्णा अब दूसरी दीवारों में कैद हो चुकी है । इन दीवारों का एहसास उसे है या नहीं—मालूम नहीं । क्योंकि इन दीवारों को उदय के सामने भी एक रहस्य बनाए रखना पसन्द करती है या इसमें आनन्द लेती है । "पहले वह ईंट-पत्थरों की दीवारों में कैद थी, आज शीशे की दीवारों से घिरी है ।

शीशे की सिडकियाँ, शीशे की दीवारें, शीशे के मोबाइल पार्टिशन जड़ तह-जीव-कायदों की अदृश्य और पारदर्शी शीशे की दीवारें ।" ११२ इन दीवारों की सुरक्षा की सर्वाधिक चिन्ता अपर्णा को ही है । इन दीवारों को तोड़ने की हिम्मत का उस में अभाव है । "अपर्णा को हमेशा ही यह खयाल रहा है कि कहीं यह शीशे की दीवार टूट न जाये यह कितनी कीमती और दुर्मेख है, यह जो उसे परम्परा और इतिहास से मिली है । बन्द मुट्ठी की तरह अपने आस-पास एक रहस्य बनाए रखना भी तो एक अजब-सी रोमांटिक गुदगुदी देता है न ।" ११३ उदय के साथ मिलने समय, बातचीत करते समय वह ऐसा ही 'रहस्य' बनाए रखती है । और उदय का लेखक इस 'रहस्य' के पार छिपी हुई अपर्णा को समझ लेना चाहता है । "अब अपने सामने यों एक पारदर्शी परदे के पार से इन्हें देखकर तो उत्तुकता और भी बढ़ती है ।" ११४ अपर्णा और अपर्णा की स्थिति में जीने वाले लोगों को शेष सारी दुनिया

कैसी दिखाई देती है ? “यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न था । और उदय “इन सब को उनकी निगाहों से देखना चाहता था ।”

वम्बई आने के बाद अपर्णा अपनी प्रतिष्ठा, अमीरी और व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग है । वह उदय से मित्रता चाहती है परन्तु अपना आसन न छोड़ते हुए । वह अपनी इन दीवारों की रक्षा में तत्पर है ।

उदय ने सुजाता को अपनी ओर क्यों भेजा है इसे अपर्णा कभी नहीं जान सकी । अलवत्ता वह उदय की उस सूचना का कठोरता से पालन करती है कि सुजाता कभी यह जान न पाये कि दोनों एक-दूसरे से परिचित ही नहीं, अच्छे मित्र भी हैं । इस दृष्टि से अपर्णा अच्छी अभिनेत्री भी है । क्योंकि जब-जब सुजाता लेखक उदय की चर्चा छोड़ती है तब-तब अपर्णा बड़ी होशियारी से दूसरे विषय छेड़ती है । (पृ० ११४) विनय और नम्रता का अभिनय वह सहज रूप से करती है । अपनी कमियों को वह इस प्रकार बतलाती है कि वह कमजोरी उसकी श्रेष्ठता साबित हो जाए ।

उदय के अनुसार अपर्णा सुजाता के साथ जो दोस्ती का नाता स्थापित कर रही है उसके मूल में गम्भीरता अथवा ईमानदारी नहीं है । अपर्णा जैसी स्थिति में रहने वालों के लिए लेखक, अभिनेता अथवा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों के साथ दोस्ती का मतलब वक्त काटने का एक मनोरंजक उपाय मात्र । एक खिलौने की तरह वे ऐसी दोस्ती का उपयोग कर लेते हैं । “एक निर्जीव खिलौना……जब तक इनका मन हो वे खेल सकें और जब वह पुराना पड़ जाय या उबर से रुचि हट जाए तो दूसरा बदल लें ।”^{१५०}

एक ओर उदय यह कह रहा है कि अपर्णा जैसी स्त्रियाँ किमी भी सम्बन्ध या मित्रता को निर्जीव खिलौने की तरह लेती हैं, अपनी शीशे की दीवारों के प्रति अत्यधिक सजग रहती हैं तो दूसरी ओर यह भी संकेत किया गया है कि इन दिनों अपर्णा के मन में किसी को लेकर बड़ा भारी द्वन्द्व है । अजब खोई-खोई और अनमनी-सी रहती हैं । हर वक्त लगता है जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो । जैसे अचानक किसी के आ जाने की उत्कण्ठा हो । टेलिफोन इस तरह चीँककर उठाती हैं, जैसे अप्रत्याशित रूप से वहीं से आया है जहाँ की इसे प्रतीक्षा है ।^{१५०} यह द्वन्द्व, खोयी-खोयी स्थिति, अनमनी वृत्ति, प्रतीक्षा करना, उत्कण्ठा, चीँकना उदय के प्रति तो है । और ये किस ‘रोग’ के लक्षण हैं इसे अलग से स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । तो फिर क्या अपर्णा उदय के प्रति वैसा ही सोच रही है जैसा कि सुजाता ? लेखक राजेन्द्र यादव उसकी इस मनःस्थिति का संकेत मात्र देकर रह जाते हैं । वास्तव में सुजाता के जो विभिन्न रूप अत्यन्त सहजता से प्रकट हुए हैं वैसे अपर्णा के नहीं । ऐसा लगता है कि लेखक जान-बूझकर अपर्णा को शीशे की दीवारों में कैद

कर रहा है। अपर्णा का "सन्वेदनशील नारी रूप" भीतर छटपटा रहा है। परन्तु यादव अथवा उदय इस नारी को शब्दबद्ध नहीं कर पाये हैं। एक ओर यह लेखक की सीमा है तो दूसरी ओर डायरी शैली की। क्योंकि इस शैली के कारण मुजाता के बहुत भीतर यादव जा सके हैं। और अपर्णा की 'नारी' को पकड़ नहीं पाये हैं। पति सुख और निश्चल प्रेम से वञ्चित अपर्णा के तन-मन की छटपटाहट शीमे की दीवारों में कैद हो चुकी है अथवा कैद की गई है इस कारण सम्पूर्ण उपन्यास में अपर्णा 'प्रिन्सेस' के रूप में ही उभरकर आई है, नारी रूप में नहीं।

अपर्णा के अनुसार "स्त्री-पुरुष के बीच में दोस्ती, एक आत्मीय घनिष्टता बिना शारीरिक सम्बन्ध आए संभव नहीं है।" दोस्ती और आत्मीय घनिष्टता के लिए वह शारीरिक सम्बन्ध को अनिवार्य मानती है। उसके इस मत का जोरदार समर्थन उदय ने किया है। शरीर की आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना न अपर्णा को मान्य है न उदय को। एक विशेष संस्कृति और वातावरण में जीने वाली स्त्री के रूप में इस विचार को स्वीकार किया जाए अथवा अपर्णा के मन में जो अनुप्राप्त शारीरिक भूख है उसकी अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाय—यह एक प्रश्न ही है।

अंतिम प्रश्न अपर्णा की यथार्थता को लेकर है। आज की पीढ़ी को यह पात्र अधिक कृत्रिम, फिल्मी, अतिशयोक्तिपूर्ण और घायक काल्पनिक लगे। परन्तु रियासतों के बारोबार और उनके उच्छृंखल व्यवहार से जो परिचित हैं उनके लिए यह पात्र काल्पनिक नहीं है। जहाँ तक वातावरण तथा अपर्णा के समुदाय का चित्रण है वह अत्यन्त ही यथार्थ और जीवन्त है। अपर्णा की बम्बई की जिन्दगी का जो वर्णन है वह अलवत्ता कुछ सीमा तक फिल्मी दृश्यों का हुआ है। बम्बई आने के बाद उसकी सहज स्वाभाविक मन स्थिति का चित्रण नहीं किया गया है। उसके आस-पास एक रहस्यमय वातावरण की सृष्टि की गई है।

शिल्पविधि . विल्पविधि की दृष्टि से सोचा जाए तो यह उपन्यास काफी कमजोर लगता है। डॉ० सत्यपाल चुध इसे "आत्मकथात्मक या डायरी शैली" में लिखा गया उपन्यास मानते हैं। अधिकतर आलोचकों ने इसे डायरी शैली में लिखा गया उपन्यास ही कहा है। लेखक ने इसे "प्रथम पुरुष डायरी में लिखी गई कहानी" कहा है। लेखक की भूमिका भी डायरी शैली में है। आरम्भ से अन्त तक केवल डायरी के पन्ने ही रहे गए हो। इन पन्नों के माध्यम से ही क्या विकसित हो—ऐसी यादव जी की कोशिश है। अब यहाँ पर अनेक प्रश्न उठाए जा सकते हैं। क्या लेखक 'डायरी शैली' का निर्वाह कर सका है? इसकी कथावस्तु में और इसके शिल्प में अभिन्नता स्थापित हो सकी है? कथावस्तु पर यह शिल्प थोपा हुआ तो नहीं लगता? कथ्य और शिल्प का समन्वय क्या यहाँ मिलता है?

डायरी शैली की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. डायरी लेखक के व्यक्तित्व प्रकाशन का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम है ।
२. डायरियाँ अपने निजी भावों-विचारों को नोट कर लेने के उद्देश्य से लिखी जाती हैं; पुस्तक-प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं । विद्युद्ध डायरी संभवतः इस दृष्टि से कभी नहीं लिखी जाती कि कालान्तर में वह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो सकेगी ।
३. इसमें कलात्मक तटस्थता का अभाव होता है ।
४. यह कोई विशेष कलापूर्ण साहित्य रूप नहीं है ।
५. साहित्यिक दृष्टि से डायरी में सम्बद्धता या संगति और शिल्पगत कलात्मकता की कमी हो सकती है ।
६. स्पष्ट कथन, आत्मीयता और निकटता आदि—विशेषताएँ डायरी की उपर्युक्त पाँच कमियों को पूरी कर देती हैं ।
७. डायरी आत्मकथा का एक बदला हुआ रूप है ।

(साहित्यकोश भाग १, पृष्ठ ३४६ से)

इन विभिन्न विशेषताओं की दृष्टि से अगर इस उपन्यास के शिल्प का मूल्यांकन करना चाहें तो इसकी सीमाएँ स्पष्ट होने लगती हैं । अर्थात् हम यह भी खयाल रखें कि आधुनिक कृतियों का मूल्यांकन इस प्रकार से करना कहाँ तक उचित है ? इस प्रकार के मानदण्डों के कटघरे में कृति को खड़ा करके निष्कर्ष रूप में कुछ कहना एक खतरा मोल लेना ही है । 'डायरी' यह अपेक्षाकृत नवीन शैली है और इसके मानदंड अभी पूर्णतः निर्धारित नहीं हो सके हैं । इस कारण जो भी मानदंड निश्चित हुए हैं उनके आधार पर मूल्यांकन करना इस कृति के साथ अन्याय करना नहीं है, ऐसा मुझे लगता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुजाता के व्यक्तित्व का प्रकाशन इस शैली के ही कारण हुआ है । डायरी लेखक अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति केवल अपने ही लिए करता रहता है । डायरी लेखन में कहीं-न-कहीं आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति होती है । वह सम्पूर्णतः उसकी अपनी निजी सम्पत्ति होती है । उसमें किसी भी प्रकार का दुराव-छिपाव नहीं होता । इस दृष्टि से अगर हम इस उपन्यास को देखें तो गहरी निराशा होती है । क्योंकि मुजाता यह सम्पूर्ण डायरी प्रकाशन की दृष्टि से लिख रही है । "अब इसी डायरी को ही लो मैं क्या वाकई वही सब लिख पा रही हूँ जो अपने मन की आँखों के सामने देख रही हूँ । पता नहीं कितनी बातें छोड़ती जा रही हूँ । सब लिख दूंगी तो पढ़कर हाय, कोई क्या कहेगा ?" "मुजाता का यह वाक्य ही डायरी-शैली की असफलता को स्पष्ट करता है । माना कि लेखक राजेन्द्र यादव ने कथाकार मुजाताजी की डायरी के इन पन्नों को सम्पादित किया है ("मैंने निश्चय किया है कि अनावश्यक प्रसंगों या अप्रासंगिक बातों का

निर्ममता से सम्पादन कर डालूंगा।" तो भी मुजाता के उपर्युक्त वाक्य से यह ध्वनित होना है कि वह डायरी लिखते समय बहुत कुछ छिपा गई है।

डायरी के लिखित पृष्ठ हमेशा सलिप्त होते हैं। यहाँ विस्तार अनपेक्षित है। और कहीं-कहीं पर अगर ऐसा विस्तार हो भी गया होगा तो लेखक राजेंद्र मादव के अनुसार उन्होंने उसका सम्पादन किया है। परन्तु दुर्भाग्य से यह कहना पड़ता है कि या तो यह सम्पादन करने वाली बान अप्रामाणिक है अथवा डायरी शैली इस कथ्य पर थोपी गई है। उदा २४ जून की डायरी ३२ पृष्ठों से भी अधिक है। और वे भी पुस्तकाकार मुद्रित ३२ पृष्ठ। डायरी के पृष्ठ तो ७० ८० होंगे। क्या यह संभव है कि कोई युवती दिनभर के काम-काज से मुक्त हो रात्रि में डायरी के नाम पर ८० पृष्ठ लिखे? ३० जून की डायरी २४ पृष्ठों की है। जुलाई की डायरी १४ पृष्ठों की है। डायरी सारा के ५०-६० पृष्ठ डायरी के नाम पर लिखे जाने की संभावना यथार्थ के स्तर पर उचित नहीं लगती। स्पष्ट है कि लेखक इस शैली के प्रति ईमानदार नहीं है।

पृष्ठ २३ पर मुजाता ने लिखा है "समय बहलाने के लिए मैं डायरी लिखने बैठ गई हूँ।" समय बहलाने के लिए अगर वह डायरी लिख रही है तो फिर इसकी यथार्थता को लेकर दूसरे अनेक प्रश्न उभर आते हैं। और फिर डायरी-लेखन क्या मन बहलाने की क्रिया है? फिर मुजाता डायरी के इन पन्नों में जिस रूप में व्यक्त हुई है उसमें ऐसा नहीं लगता कि वह मन बहलाने के लिए लिख रही है। अभिव्यक्ति की विवशता और मजबूरी के कारण वह डायरी लिख रही है, यह वास्तविकता है।

डायरी के कुछ पृष्ठों में प्रकृति और वातावरण का बड़ा सुन्दर और विस्तृत चित्रण हुआ है। (दृष्टव्य मंगल १८ जून, सोमवार २४ जून, बुध २६ जून, मंगल २ जुलाई, गुरुवार ४ जुलाई, सोमवार १५ जुलाई इत्यादि) मन स्थिति को व्यक्त करने के लिए आवश्यक प्रकृति चित्रण डायरी लेखन की और अधिक जीवन्त बना देता है। परन्तु आत्मन्दन रूप में प्रकृति चित्रण और वह भी विस्तृत, डायरी में उचित नहीं लगता। मुजाता के इस सम्पूर्ण लेखन में अत्यधिक सम्बद्धता और संगति है। ऐसा लगता है कि उदय के साथ इक्कावन दिनों की जिन्दगी जीने के बाद वह इसे लिखने बैठी है। अथवा इन ५१ दिनों की मन स्थिति को वह रोज सक्षेप में लिखकर रखा करती थी और बाद में उसने इसे विस्तृत रूप दिया है। अथवा क्या-कार मुजाता की उन दिनों की मन स्थिति को राजेंद्र मादव ने व्यवस्थित और बलात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है।

मुजाता की डायरी के इन पन्नों को मादव दूसरी पद्धति से लिख सकते थे। डायरी शैली के अतिरिक्त मोह के कारण ही वे दूसरी पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इसीलिए यह शैली इस पर थोपी हुई लगती है। इसमें कोई सन्देह नहीं

कि इस शैली के कारण वे सुजाता का बड़ा ही सुन्दर, यथार्थ, जीवन्त और सूक्ष्म चित्रण कर सके हैं। एक ओर यह उपलब्धि है तो दूसरी ओर वे उदय और अर्पणा के चरित्र को न्याय नहीं दे सके हैं। क्योंकि इस शैली के कारण वे इन दोनों पात्रों की कुछ सीमा तक उपेक्षा कर गए हैं। वे सीधे एक उपन्यास लिखते तो अधिक अच्छा था। यादव एक प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। टुकड़ों में वांटकर कथ्य को प्रस्तुत करना शायद उन्हें अधिक आसान लगता हो। इस कारण भी उन्होंने डायरी शैली चुनी हो। इसीलिए इस डायरी शैली पर कहानीकार राजेन्द्र यादव का व्यक्तित्व हावी हो गया है।

इस शिल्पगत सीमा के बावजूद यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर लिखा गया यह उपन्यास अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। प्रेम के मानसिक संसार के नये आयाम खोलने में यह समर्थ हो सका है। मानसिक प्रेम का सूक्ष्म व्यापार और उस समय की मनःस्थिति तथा उस मनःस्थिति का व्यक्तित्व-परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य—यही इस उपन्यास की विशिष्ट कथा है जो अपने में मौलिक है। राजेन्द्र यादव के ही शब्दों का उपयोग करके इस उपन्यास पर अंतिम बात इस तरह से कही जा सकती है—

“आँजवेंशन—अर्थात् निरीक्षण। परिस्थिति का चित्रण, वातावरण, लोगों की मंगिमाओं का चित्रण और वार्तालाप सचमुच बाँधे रखने वाले हैं, लेकिन कुछ जगहें पढ़ना तो सजा काटना है।”

टिप्पणियाँ

१. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन : डा० शांति भारद्वाज : पृ० २४७
२. हिन्दी उपन्यास : डा० गुपमा घवन : पृ० ३१९
३. हिन्दी उपन्यास : डा० महेन्द्र चतुर्वेदी : पृ० २०७
४. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन : डा० कल्याणमल लोढ़ा : पृ० २४३
५. हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन : डा० शांति भारद्वाज : पृ० २९०
६. गृह और मात : राजेन्द्र यादव : पृ० १९४
- ७, ८, ७५, ७६, ७७ : गृह और मात : पृ० १२७
९. गृह और मात : पृ० १२
- १०, ११, १३, १४, १५, १६, १८, १९, २० : गृह और मात : भूमिका अंश
१२. गृह और मात : पृ० १९१
- १७, २४, १५४, १५५, गृह और मात : पृ० २२३
- २१, २२, २३, ११९ वही, पृ० १८
२४. वही, पृ० १९

- २५ दाह और मात, पृ० २१
 २६ वही, पृ० २५
 २७ वही, पृ० २६
 २८, ३० वही, पृ० २७
 २९ वही, पृ० २८
 ३१ वही, पृ० ३१
 ३२ वही, पृ० ३२
 ३३ वही, पृ० ३३
 ३४, ३५, १२० वही, पृ० ३४-३५
 ३६. वही, पृ० ३७
 ३७, ३८, ३९, ४० वही, पृ० ३९
 ४१, ४२, ४३ वही पृ० ५०
 ४४. वही, पृ० ४१
 ४५, ४६ वही, पृ० ४५
 ४७, ४८, ४९ वही, पृ० ४७
 ५०, ५१ वही, पृ० ४८
 ५३. वही, पृ० ५९
 ५४ वही, पृ० ६३
 ५५, ५६ वही, पृ० ७४
 ५७. वही, पृ० ७५
 ५८ वही, पृ० ८१
 ५९, ६०, १३२ वही, पृ० ८४
 ६१ वही, पृ० ८७
 ६२ वही, पृ० १०३
 ६३, ६४ वही, पृ० १०४
 ६५, ६६ वही, पृ० १०८
 ६७ वही, पृ० १२०
 ६८ वही, पृ० १२१
 ६९, ७० वही, पृ० १२२-१२३
 ७१, वही, पृ० १२५
 ७२, ७३, ७४ वही, पृ० १२६
 ७८, ७९, ८०, ८१ वही, पृ० १२८
 ८२ वही, पृ० १२९

८३. शह और मात : पृ० १३२-१३३
 ८४, ८७, ८८, १३०, १५९ वही, पृ० १५०
 ८५, १३१ वही, पृ० १५१
 ८६. वही, पृ० १५२
 ९१. वही, पृ० १६१
 ९२. वही, पृ० १६३
 ९३, ९४, ९५ वही, पृ० १६५
 ९६, ९७ वही, पृ० १६६
 ९८. वही, पृ० १६७
 ९९, १३३, १३४, १३५ वही, पृ० १६९
 १००. वही, पृ० १६८
 १०१, १०२ वही पृ० १७०
 १०३, १०४ वही, पृ० १७५
 १०६. वही, पृ० १९६
 १०७, १०८ वही, पृ० १९८
 १०९. वही, पृ० १९९-२००
 १११. वही, पृ० २०२
 ११२. वही, पृ० २१२
 ११३. वही, पृ० २१६
 ११४. वही, पृ० २२८
 ११५, १४४ वही, पृ० २२७
 ११६, ११७, ११८ वही, पृ० २२९
 १२१, वही, पृ० ४२
 १२२. वही, पृ० ४३
 १२३. वही, पृ० ५५
 १२४, १५४, १५५ वही, पृ० २२३
 १२५. वही, पृ० २२५
 १२६. वही, पृ० ६५
 १२७. वही, पृ० ९
 १२८. वही, पृ० ६६
 १२९. वही, पृ० ७३
 १३६. वही, पृ० २१७
 १३७. वही, पृ० २२१

- १३८ दाह और मात • पृ० २१५
 १३९, १४०, १४१ वही, पृ० २२६
 १४२, १४३ वही, पृ० "
 १४५ वही, पृ० १०७
 १४६, १४७, १४८ वही, पृ० १८६
 १४९ वही, पृ० "
 १५० वही, पृ० १९१
 १५१ वही, पृ० १९२
 १५२ वही, पृ० १९३
 १५३ वही, पृ० २२२
 १५६ वही, पृ० २२४
 १५७ वही, पृ० १५७
 १५८ वही, पृ० १९४
 १६० वही, पृ० १३२
 १६१ वही, पृ० ९

कितने चौराहे : एक संस्कारशील उपन्यास

सूर्यनारायण रणसुभे

‘जीवन में कितने ही चौराहे आएँगे, न दाएँ मुड़ो, न बाएँ ।’

—कितने चौराहे

‘मैं जिंदगी भर जलता रहूँगा तुम्हारी चिताओं की आग कलेजे में लेकर । तुमने मुझे पुकारा कमाण्डर ! तुम्हारी पुकार पर, तुम्हारे हुक्म पर

मैं मैं दोपी हूँ । अनुशासन भंग किया है मैंने । मुझे गलत मत समझना प्रियोदा, कृत्या, अशर्फी, भोला ।’

—कितने चौराहे

‘मनमोहन अभी इधर उधर नहीं देखेगा । सीधा चलता जायेगा । किसी चौराहे पर मुड़ेगा नहीं—न दाहिने, न बाएँ ।’

—कितने चौराहे

‘नायक शून्यता आचलिक उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है ।’

—डॉ० धनजय वर्मा

‘कितने चौराहे’ एक आचलिक उपन्यास है जिसमें सम्बन्धीन लोकजीवन रेखांकित हुआ है ।

वास्तव में ‘कितने चौराहे’ में कस्बाई जीवन की सहज अभिव्यक्ति हुई है ।

कितने चौराहे

(अ) पृष्ठभूमि—श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' का यह उपन्यास "उनके अब तक प्रकाशित उपन्यासों के क्रम में पाचवाँ और आखिरी आंचलिक उपन्यास है।" इस उपन्यास पर आलोचकों द्वारा सबसे कम विचार किया गया है। शायद "समसामयिक कथावस्तु" यही एक कारण हो सकता है। परन्तु इसी समसामयिकता के कारण यह उपन्यास हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट कर लेता है। इस उपन्यास में सन् १९३३-३४ से लेकर सन् १९६५ तक की भारतीय राजनीति को पृष्ठभूमि में रखा गया है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर भारतीय भाषाओं में सैकड़ों उपन्यास लिखे गये हैं। सन् १९२० से १९४७ तक का काल ही इतना जीवन्त तथा राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित था कि किसी भी भाषा के साहित्यकार के लिए वह एक जीवन्त स्रोत था। इसी कारण अलग-अलग पद्धतियों से इस काल पर काव्य, नाटक, कहानियाँ तथा उपन्यास लिखे गये। स्वतन्त्रता के लिये किये गये इस संघर्ष में समाज के सभी स्तर के लोग सम्मिलित थे। इतिहास के पृष्ठों से यह साबित किया जा सकता है कि उस काल के विद्यार्थी भी इस संग्राम के प्रति न केवल सजग ही थे, अपितु अपनी पद्धति से क्रियाशील भी थे। परन्तु दुर्भाग्य से विद्यार्थियों—विशेषतः १० से २० तक की उम्र के बालकों तथा नवजवानों के सम्बन्ध में बहुत ही कम लिखा गया है। अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की बात तो मैं नहीं जानता; परन्तु मराठी और हिन्दी में तो इस विषय पर सबसे कम लिखा गया है। सन् १९२०-३५ के भारतीय स्कूलों में पढ़ने वाले इन छोटे-छोटे बच्चों की इस आन्दोलन के प्रति क्या प्रतिक्रिया थी; यह वास्तव में विचारणीय प्रश्न है। क्या ये बच्चे अपनी स्कूली शिक्षा चुपचाप ग्रहण कर रहे थे? अथवा वे आन्दोलन में हिस्सा ले रहे थे? अगर वे हिस्सा ले रहे थे, तो फिर उनके पीछे कौन-सी शक्तियाँ कार्य कर रही थीं? उस समय प्रचलित एक विचारधारा के अनुसार विद्यार्थियों को सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिए। जीवन के किसी भी चौराहे पर न रुकते हुए अपनी पढ़ाई ख़तम करके आन्दोलन में भाग लेना चाहिए। दूसरी विचारधारा के अनुसार अंग्रेजों द्वारा संचालित इन स्कूलों

की पड़ाई व्यर्थ है, निरर्थक है। ऐसे स्कूलों में उन्हें शिक्षा नहीं लेनी चाहिए। शिक्षा दीक्षा छोड़कर आन्दोलन में भाग लेना चाहिए। इसी कारण इस उपन्यास में एक स्थान पर श्री तिवारी जी मनमोहन से कहते हैं कि "तुम लोग पड़ाई छोड़ दो। धानर सेना बनाओ तथा अंग्रेजों के विरोध में कार्य शुरू करो।" परन्तु बड़े महाराज मनमोहन से बार बार यह कहते हैं कि इस आयु में राजनीति से दूर रहना ही योग्य है। "जीवन में कितने ही चौराहे आर्येंगे, न दायें मुड़ो न बाएँ।" इस प्रकार इस उपन्यास में इन दो विचारधाराओं का आपसी संघर्ष बतलाया गया है। आज भी विद्यार्थियों को लेकर ये दो विचारधाराएँ न केवल चल रही हैं, अपितु उनके पक्ष विपक्ष में विचार रखे जाते हैं। इसी कारण कह सकते हैं कि यह उपन्यास युवा जगत् की मूलभूत समस्याओं के साथ जुड़ा हुआ है। मनमोहन तथा उसके साथियों में अक्सर यह चर्चा होती है। और मनमोहन पहले अध्ययन फिर राजनीति इस प्रकार का निर्णय ले लेता है। बड़े महाराज भी इसी विचार के थे। आज के विरोधी दल के लोग शायद यह कहेंगे कि रेणु जी प्रस्थापित व्यवस्था को बदलने के लिए युवकों को इस राजनीति से दूर रहने का सन्देश देना चाहते हैं। यह आरोप ठीक उसी प्रकार निरर्थक है जैसे बड़े महाराज को अंग्रेजों का भेदिया कहना। वास्तव में हर युग में इस प्रकार के प्रश्न उठे हैं। समाज तथा राजनीति के भीतर जब जब अराजकता निर्माण हो जाती है, तब-तब युवकों—विरोधित विद्यार्थियों—को आह्वान किया जाता है। युवा शक्ति के जोश पर, उत्साह पर सब का अधिक विश्वास होता है। इसी कारण यह शक्ति इस अराजकता को समाप्त कर सकती है—ऐसा माना जाता है। 'युवा शक्ति' के सामने द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा हो जाती है। अत्यधिक सम्बेदनशीलता के कारण वह समाज को स्वीकार करना चाहता है। परन्तु इसके कारण उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास संभव नहीं हो पाता। शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति का एक सीमा तक विकास होने के बाद ही इस प्रकार की चुनौतियों को स्वीकार किया जा सकता है, ऐसा रेणु मानते हैं। इनका यह अर्थ नहीं कि विद्यार्थी जगत् इस सारी अराजकता को, अन्याय और अत्याचार को अपनी खुली आँखों से देखता रहे। अपने स्थान पर रहकर वह अपनी पद्धति से इन सब का प्रति-कार कर सकता है। इसके लिए यह जरूरी नहीं कि वह अपने कर्तव्य को छोड़कर बाहर निकले। यह किम प्रकार सम्भव है, इसे रेणुजी ने इस उपन्यास में बतलाया है। प्रियोदा, मनमोहन और उसके अन्य साथी अंग्रेजी सत्ता का प्रतिवार अपने तरीके से करते ही रहते हैं। अपने कर्तव्य को छोड़कर उसमें वे सीधे प्रवेश नहीं करते। आज जब कि 'राजनीति' सस्ती हो रही है, आधे दिन युवकों को शिक्षा-दीक्षा छोड़कर विरोध के लिए सड़कों पर आने का आग्रह दिया जा रहा है, 'कितने चौराहे' उपन्यास ऐसे आग्रह के खतरो को सूचित करता है। मनमोहन यह कहना भी है कि

पढ़-लिखकर अंग्रेजों की नौकरी करना यह उसका जीवनोद्देश्य नहीं है । परन्तु पढ़ाई की पूर्णता यह उसकी पहली मंजिल है । इसी कारण यह उपन्यास समसामयिक विषय के बावजूद आज का लगता है ।

स्वतन्त्रता-संग्राम में शहीदों की एक लम्बी परम्परा मिलती है । इन शहीदों में विद्यार्थी भी थे । वे किसी क्रान्तिकारी दल से अथवा किसी राजनीतिक विचार-धारा से सम्बन्धित नहीं थे । उन्हें इतना मालूम था कि गांधी, सुभाष अथवा भगत-सिंह राष्ट्र के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं । और हमें भी कुछ-न-कुछ करना चाहिए । न ये किसी नेतृत्व के पीछे थे; न नेतृत्व के भूखे । न इनका कोई प्रत्यक्ष मार्गदर्शक था; न इन्हें कहीं से सूचाने प्राप्त होती थीं । माँ, पिता अथवा गाँव के किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति से इन्हें पता चलता था कि गांधीजी पकड़े गये हैं; भगतसिंह को फाँसी की सजा हुई है अथवा इसी प्रकार से अन्य व्यक्तियों पर अंग्रेजों का दमन-चक्र चल रहा है । यह सुनकर ही वे इतने क्षुब्ध हो जाते थे कि हमें कुछ करना चाहिए । और इसी इच्छा से वे कमी हड़ताल करते थे; कमी अन्नग्रहण न करने की कसम खाते थे; कमी खादी पहनने की प्रतिज्ञा करते थे । यह सब अपने आप होता था । प्रौढ़ लोग तो नेताओं के भाषण पढ़कर अथवा किसी के निर्देशन से यह कार्य करते थे । ये बच्चे तो 'भीतरी आवाज' के कारण यह सब करते थे । भावुकता तथा दुनियादारी की समझ न होने से उन्हें यह पता भी नहीं होता था कि इसके क्या परिमाण होने वाले हैं ? निर्णय तो लेते थे; निर्णय के अनुसार कार्य भी करते थे । इतना ही नहीं, बाद में परिणामों को मुगतने की हिम्मत भी बतलाते थे । इन स्कूली बच्चों की हिम्मत, निर्भयता और सहज-निर्णय को रेणुजी ने पहली बार शब्दबद्ध किया है । इस कारण भी यह उपन्यास अधिक महत्वपूर्ण, जीवन्त तथा मनोवैज्ञानिक बन गया है ।

कथावस्तु—मनमोहन नाम का एक छोटा-सा बच्चा सिमवरी से सातवीं की परीक्षा उत्तीर्ण होकर अगली पढ़ाई लिए अररिया कोर्ट में चला आता है । इस परीक्षा में पूरे जिले में वह सर्वप्रथम आया है । उसे शिष्यवृत्ति भी मिली है । माँ-पिता के सपने हैं कि बेटा वकील बने । सम्भवतः इसी उद्देश्य से वह आगे की पढ़ाई के लिए निकला भी है । जिन्दगी में पहली बार किसी कस्बे में पढ़ाई के लिए निकले हुए इस बच्चे की मनःस्थिति का बड़ा ही हृदयस्पर्शी तथा सूक्ष्म चित्रण लेखक ने किया है । शहर, वहाँ के लड़के, अंग्रेजी माध्यम, वेशभूषा आदि के प्रति उसके मन में जिज्ञासा है, शंका है तथा भय भी । ऐसा यह मनमोहन पढ़ाई के लिए अररिया आता है । और थोड़े ही दिनों में उसका परिचय मौंट्रिक की कक्षा में पढ़ने वाले प्रियोदा के साथ हो जाता है । प्रियोदा—जो राजनीति के प्रति अत्यधिक सजग है, गान्धीजी का भक्त है, राष्ट्रीयता की शपथ ले चुका है । प्रियोदा के सम्पर्क में आने के बाद मनमोहन में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगते हैं । अब वह मनमोहन से मोना

घन गय है। उमने भीतरी गुप्त गुणों का विकास होने लगता है। इस वस्त्र में उसकी निवास-व्यवस्था किसी मोहरिल मामा के यहाँ हुई है, जो वास्तव में सगा मामा नहीं है। अररिया कोर्ट में मनमोहन दो परस्पर भिन्न वातावरणों से जी रहा है। एक ओर अत्यधिक स्वार्थी, डररोक तथा गन्दी आदतों वाला मोहरिल मामा, उमकी पत्नी और उनका अवारा बेटा मटरू है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय वृत्ति के प्रियोदा, अच्छे साथी तथा सहृदयी शरद्वतिया है। दोनों प्रकार के सत्कार मनमोहन पर गिरने लगते हैं। क्षणभर के लिए लगता है कि वह भी मटरू की तरह बन जाएगा, परन्तु वह प्रियोदा की ओर ही आकृष्ट होने लगता है। प्रियोदा के कारण ही वह बड़े महाराज के सम्पर्क में आता है। और फिर धीरे धीरे अपनी मजिल की ओर बढ़ने लगता है। बीच में कितने ही चौराहे आते हैं। उसके साथी चौराहों को ही मजिल समझकर वहीं रुक जाते हैं। परन्तु मोना किसी भी चौराहे पर न रुकते हुए आखिर अपनी मजिल तक पहुँच ही जाता है। पर सवाल यह है कि मोना की जिन्दगी की मजिल कौन-सी थी? वास्तव में यह लेखक भी स्पष्ट नहीं कर पाया है। अलवत्ता मोना पश्चात्ताप की अग्नि में जलता रहता है। सारे सारी हिम्मत के साथ एक के बाद एक शहीद होते गये। पर मोना बचा। शायद नीलू के आकर्षण के कारण। और इसीलिए वह अपनी जिन्दगी परिवार के लिए न देते हुए राष्ट्र की भावी पीढ़ियों के निर्माण के लिए दे देता है।

विशेषताएँ—(१) इस प्रकार इस उपन्यास की कथावस्तु अत्यन्त ही सक्षिप्त सी है। इस सक्षिप्त सी कथावस्तु में मनमोहन के बचपन से लेकर बृद्धावस्था तक की कहानी रक्खी गई है। सम्पूर्ण उपन्यास के केन्द्र में 'मनमोहन' ही है। उससे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सम्बन्धित सभी व्यक्ति और घटनाएँ यहाँ आई हैं, परन्तु पृष्ठ-भूमि के तौर पर ही। वास्तव में 'कितने चौराहे' मनमोहन की स्मरण-गाथा ही है। एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की प्रमुख घटनाओं को एकसूत्रता के साथ रक्खा गया है, इसलिए इसे 'उपन्यास' के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

मात्र १४४ पृष्ठ के इस उपन्यास में कुल २५ प्रकरण हैं। सन् १९३० में लेकर १९६५ ई० तक के काल को इसमें पृष्ठभूमि के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इस 'काल' का तथा उपन्यास के प्रमुख चरित्र मनमोहन की जिन्दगी के भीतरी परिवर्तन का गहरा सम्बन्ध है। इसी विशिष्ट राजनीतिक परिस्थिति के कारण ही उसमें विशेष परिवर्तन हुआ है। उसमें भी सन् १९३० से १९४५ तक के काल का बहुत महत्त्व है। वास्तव में इस उपन्यास की कथा प्रकरण २४ में ही समाप्त हो जाती है। सन् १९४५ में राजनीतिक कँदियों की रिहाई के बाद मनमोहन भी जेल से छूट गया तथा पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसता रहा। "पाँच-पाँच चिताओं की आग में झुलसता हुआ मनमोहन पाँच साल तक जेल और जेल में यही बुदबुदाता

रहा—नीलू नहीं आतीनीलू नहीं होती तो इस ग्लानि की आग में क्यों तपता ? मुझे क्षमा करना साथियों ! मैंने गद्दारी नहीं की ।” इसी पश्चात्ताप की स्थिति में मनमोहन फिर एक बार निर्णय ले लेता है—“वह घर नहीं जायेगा लौटकर ! वह मुड़ेगा नहीं । उबर मुंह नहीं करेगा ।” वास्तव में उपन्यास की कथावस्तु यही पर समाप्त हो जाती है । परन्तु बीस वर्ष का अन्तराल देकर लेखक फिर मनमोहन को स्वामी सच्चिदानन्द के रूप में प्रस्तुत करता है । मनमोहन इस समय तो अपनी कम-जोरी के कारण शहीद नहीं हो सका । बाद में भी यह सम्भव न हुआ । परन्तु मनमोहन का छोटा भाई जनमोहन भारत-पाक युद्ध में शहीद हो गया है । और आज स्वामी सच्चिदानन्द इस घटना को पढ़कर अनुभव कर रहे हैं—“भैया के मन की ग्लानि को छूमन्तर कर दिया गुनीजी ने ! आह ! पाँच-पाँच चिताओं की आग में एक युग से झुलसते हुए हृदय पर चन्दन-श्लेष रहा है कोई ।” “गुनीजीकौन गुनीजी ? कौन जनमोहन—कौन मनमोहन—कौन माँ ? इतने इतने जनमोहन..... सच्चिदानन्द !” मनमोहन के प्यार का उदात्तीकरण बतलाने के लिए शायद यह अन्तिम प्रकरण लिखा गया है । परन्तु इतना जरूर है कि यह अन्तिम प्रकरण मुख्य कथावस्तु से कटा हुआ-सा लगता है । कथावस्तु का मानो उपमहार ही लेखक ने इस प्रकरण द्वारा किया है । आरम्भ—विक्रम—चरमोत्कर्ष और उपमहार इस प्रकार उसी कथावस्तु की रचना हुई है । कथावस्तु अत्यन्त ही बीभी गति में आगे बढ़ती है । प्रकरण १ से १९ तक यह स्थिति है । परन्तु प्रकरण २० में बड़ी तेजी के साथ घटनाएँ घटने लगती हैं । १ से १९ तक के प्रकरण में मनमोहन की करीब दो-तीन वर्ष की जिन्दगी का चित्रण है । और प्रकरण २० से २५ तक उसकी ४० से ४५ वर्ष की जिन्दगी के संकेत हैं । अर्थात् मनमोहन की जिन्दगी के चित्रण में किन्नी प्रकार का संतुलन नहीं है । वास्तव में निष्कर्ष स्थूल ही हैं । क्योंकि जैसा आरम्भ में ही कहा गया है कि रेणु विद्यार्थी-अवस्था का चित्रण ही मुख्यतः करना चाहते हैं । उमीकारण ‘मोना’ की विद्यार्थी-अवस्था पर ही वे केन्द्रित हो गये हैं । सम्भवतः प्रकरण २५ को रखकर वे मोना की जिन्दगी के उत्तरार्द्ध को स्पष्ट करना चाहते हैं ।

(२) इस उपन्यास की कथावस्तु राजनीति में सम्बन्धित होते हुए भी राजनीतिक नहीं है । प्रेम से सम्बन्धित होकर भी प्रेममूलक नहीं है । राजनीति यहाँ पृष्ठभूमि के रूप में है । प्रेम यहाँ प्रेरणा के रूप में है । इसे पूर्णतः आंचलिक भी कह नहीं सकते । यह ‘कस्वाई’ परिवेश में लिखी गई एक अन-आंचलिक कृति है । उमी कारण किसी परम्पराबद्ध चौखट में इसकी कथावस्तु को रख नहीं सकते । अब तक के लेखकों का ध्यान शिम आगु की ओर गया नहीं था; वहाँ रेणु का ध्यान गया हुआ है । प्रत्येक अवस्था के व्यक्तियों के साथ कुछ खान प्रकार के कथानक जोड़ने की हमारी परम्परा है । यहाँ पर तो बाल्यावस्था—किशोरावस्था तथा युवावस्था

का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। वातावरण तथा मानसिक संघर्ष का बड़ा ही सहज चित्रण हुआ है। इस संघर्ष से ही व्यक्तित्व-विकास को स्पष्ट किया गया है।

(३) प्रकरण १ से २ तक मनमोहन का नये गाँव के नये स्कूल में जाने का तथा उस नये गाँव का चित्रण किया गया है। प्रकरण ३ से ६ तक मनमोहन जिनके यहाँ रहता है उनका तथा उसके नये मित्रों का चित्रण किया गया है। प्रकरण ७ से ही उपन्यास का आरम्भ होता है। 'प्रियोदा' के सम्पर्क में आने के बाद ही मनमोहन के जीवन में एक नई क्रान्ति हो जाती है। आगे होने वाली घटनाओं के संकेत भी यही पर मिलने लगते हैं। इसी कारण यहाँ से 'आरम्भ' मानना पड़ता है। तो फिर प्रकरण १ से ६ तक की गति क्या है? आरम्भ, विकास तथा अन्त को अधिक आकर्षक, सहज तथा यथार्थ बनाने के लिए लेखक ने इन छ प्रकरणों की आयोजना की। इसीलिए इन्हें 'पृष्ठभूमि' के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। "जहाँ पर दिए संकेतों का निस्तार किया जाता है, उसे 'मध्य' कहते हैं।" इस दृष्टि से प्रकरण ९ से २३ तक 'मध्य' है। २४वाँ प्रकरण 'अन्त' है, क्योंकि आगे की किसी भी घटना का संकेत यहाँ नहीं मिलता। परन्तु फिर २५वाँ प्रकरण लिखा गया है। उसे 'उप-संहार' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार पृष्ठभूमि-आरम्भ-मध्य-अन्त और उपसंहार यह इसका स्थूल शिल्प विधान है। प्रकरण ८ के बाद ही क्या-कस्तु सहज रूप से बढ़ने लगती है।

(४) कथानक के विकास में सुगुप्तता का अभाव है। घटनाओं को स्पष्ट करके रेणु आगे चलते हैं। एक में से दूसरी घटना निकली हो—ऐसा नहीं लगता। वास्तव में इसमें एक ही प्रमुख घटना है—स्कूल हड़ताल अर्थात् केनिंग वाली घटना। इसी एक घटना के कारण मनमोहन की जिन्दगी में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता है। अन्य घटनाएँ अघूरी-अघूरी सी लगती हैं। चरित्र प्रधान कथानक के कारण शायद ऐसा हुआ है। केवल उन्हीं घटनाओं का लेखक संकेत देना जाता है, जिनके कारण 'चरित्र' की कोई विशेषता स्पष्ट हो जाती हो। इसीलिए घटनाएँ क्याविकास के लिए नहीं आती, चरित्र-चित्रण के लिए आती हैं।

(५) कथावस्तु अत्यधिक यथार्थ है। सन् १९३०-३५ का वातावरण ही कुछ ऐसा था कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के लिए मर मिटने को तैयार हो रहा था। ऐसे समय छोटे छोटे बातों की प्रतिक्रियाओं को लेखक ने शब्दबद्ध किया है। 'मन-मोहन' को यथार्थ रूप में हमें स्वीकार करना पड़ता है। केवल मनमोहन ही नहीं अपितु उसके साथ जुड़े हुए वातावरण में अत्यधिक यथार्थता है। मोहरिल मामा तथा उनका परिवार, अररिया कोर्ट, वहाँ के लोग, उनकी मनोवृत्ति, परम्परागत आस्थाएँ, विश्वास, पूरन विश्वास का चरित्र, दरबतिया की स्थिति, काका, मनमोहन के पिता—

आदि अत्यधिक यथार्थ रूप में उभरकर आये हैं। तत्कालीन भारतीय राजनीति की पृष्ठभूमि में लेखक ने जिस समाज को अंकित किया है, वह जीवन्त हो उठा है। मनमोहन के मन में शरवतिया के प्रति इधर जो एक विचित्र-सा (परन्तु आयु के अनुसार बड़ा ही यथार्थ) शारीरिक आकर्षण उत्पन्न हो रहा था, उसके कारण भी इसकी यथार्थता और गहरी हो जाती है। (प्रकरण १६, पृष्ठ ९६)

(६) कथावस्तु में कौतूहल-उत्सुकता के तत्त्व पर्याप्त मात्रा में हैं। पृष्ठभूमि और उपसंहार के बावजूद भी कथावस्तु आकर्षक बन पड़ी है। मनमोहन, शरवतिया, मनमोहन की माँ का स्वप्न, नीलू, काका, हड़ताल, प्रियोदा आदि विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं को लेकर पाठकों के मन में सतत उत्प्रेरकता बनी रहती है; जिज्ञासा निर्माण हो जाती है। इतने छोटे उपन्यास में भी रेणु पाठकों के मन को पूरी तरह से आकृष्ट कर लेते हैं।

इसकी कथावस्तु की सबसे बड़ी विशेषता इसकी मौलिकता में है। जैसा कि आरम्भ में ही कहा गया है कि सम्भवतः रेणु पहले लेखक हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में विद्यार्थियों के योगदान को लेकर इतना हृदयस्पर्शी उपन्यास लिखा है। इसमें न परम्पराबद्ध प्रेम है, न यौन आकर्षण, न सस्ते और रूमानी संवाद; न बहुत बड़ा उपदेश या आदर्श। अपनी कमजोरियों को लेकर मनमोहन जिन्दगी के चौराहे किस प्रकार पार करता रहा; इसका सहज तथा तटस्थ चित्रण इसमें किया गया है। इसी कारण इसकी मौलिकता कथानक के चुनाव तथा चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता में है।

(८) इसकी कथावस्तु समसामयिक जीवन पर आधारित है। कुछ हद तक इसे 'ऐतिहासिक उपन्यासों' की कोटि में रख सकते हैं। क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं की नींव पर ही कथानक का भवन खड़ा है। कथावस्तु की इन्हीं ऐतिहासिकता के कारण इसमें अनेकार्थ की शक्ति नहीं है। आज के सन्दर्भ से यह नया अर्थ दे नहीं सकता। इसकी कथावस्तु की यह सबसे बड़ी मर्यादा है।

(९) इसकी शैली तरल और सांकेतिकता को लिए हुए है। इस शैली में सास 'रेणुपन' के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं। अन्तिम प्रकरण में पूर्वदीप्ति (flash-back) पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसे मिश्रित शैली कहना उचित है।

(१०) एक ज्वलन्त युग को, राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए तड़पने वाले युवकों की मनःस्थिति को, उनकी इच्छा-आकांक्षा तथा संयम को रेणु ने अत्यधिक सहजता के साथ व्यक्त किया है। यह इस कथावस्तु की सबसे बड़ी विशेषता है। मनमोहन, शरवतिया तथा नीलू ये ऐसे प्रसंग थे जहाँ कोई भी लेखक कथानक को अधिक रोमान्टिक और नाटुक बना सकता था। परन्तु रेणु की पकड़ यथार्थ पर से

क्षणमर के लिए भी छूटती नहीं। इसी कारण ऐसे प्रसंग लाने के बावजूद भी वह सहज रूप में उनका निर्वाह करता है। उसकी प्रतिभा और लेखनी का यह सबसे बड़ा समय है। इस समय के दर्शन जहाँ-तहाँ इस उपन्यास में होते हैं।

[इसकी आचलित्वता पर आगे विचार किया गया है।]

चरित्र-चित्रण

मनमोहन —जैसा कि कहा गया है मनमोहन इस उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र है। सम्पूर्ण उपन्यास पर वह छा गया है। शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग करके हम यह कह सकते हैं कि वही इस उपन्यास का नायक है। क्योंकि सभी प्रमुख घटनाएँ उसके कारण घटित होती हैं तथा घटनाओं का वहन भी वह करता है। उसके वचन से लेकर वृद्धावस्था तक का चित्रण इसमें है। उसके जीवन चरित्र का क्रमिक विकास देखने का हम यहाँ प्रयत्न करेंगे।

एक छोटे-से देहात सिमवरीली में उसका जन्म हुआ है, और वही पर आरम्भ की पड़ाई। "इस बार तो उसे अपर प्राथमरी की परीक्षा में छात्रवृत्ति मिली है।" आगे की पड़ाई के लिए उसे अब शहर जाना है। लड़का पढ़ने के लिए शहर जा रहा है, इसलिए पिता ने बार-बार कहा है—“शहर जाकर शहरी लड़का मत बन जाना। बीड़ी सिगरेट मत पीना।” वह मन-ही मन सोच रहा है—“शहरी? शहर जाकर शहरी मत बन जाना। तो फिर शहर के स्कूल में भेजते ही क्यों हैं?” स्पष्ट है कि छोटा मनमोहन बुद्धिमान है। उसे किसी दूसरे देहात के स्कूल में भेजने का भी आग्रह हुआ है। परन्तु उसके बाबूजी के अनुसार शहर के स्कूल में ही जाना ठीक होगा। शहर के स्कूल में जाने के पूर्व उसके मन में इस शहर के प्रति अनेक प्रश्न उभर रहे थे। अंग्रेजी में बात बरनी होगी, विशेष तरीके के कपड़े पहनने होंगे आदि आदि। सारी तैयारी के बाद मनमोहन शहर की ओर निकलता है तो उसका मन उदास हो जाता है। अपनी माँ, बहन और बाका को छोड़कर वह पहली बार दूर जा रहा था। उसकी इस मन स्थिति का बड़ा ही सहज चित्रण रेणु यहाँ करते हैं। रेलगाड़ी में पैर रखते समय बाबूजी ने कहा था—“सँभलकर पैर रखना पाँवदान पर। फिसल मत जाना।” “फिसल मत जाना” इस वाक्य को मनमोहन जिन्दगीभर याद रख गया है। और इसी कारण जिन्दगी के पाँवदान पर पैर पक्के रखना उसने सीख लिया है। आगे कभी वह फिसल नहीं सका, हालाँकि प्रसंग कई आये।

शहर के स्कूल में पहली बार मरती होने के बाद उसे कई नई बातें मातृम हुईं। जैसे—“यहाँ फूटवाल खेचना जानना होगा।” नये मित्रों—कालू, रोवी आदि का परिचय हुआ। जिस घर में मनमोहन के रहने की व्यवस्था हो गई थी उस मोहरिल मामा के घर के एक ही सदस्य से वह प्रभावित हुआ है, वह है शरवतिया। पता नहीं क्यों उसे शरवतिया दीदी के आचल में माँ के आचल की गंध आती

है।”^{१३} इस शहर में आने के कुछ ही दिनों बाद वह प्रियोदा के सम्पर्क में आता है और यही से उसके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। अपनी मातृभूमि की गुलामी का एहसास उसे हो जाता है।—“मनमोहन की आँखों के आगे बहुत देर तक प्रियोदा के कुर्ते पर टँकी हुई ‘गोल चकत्ती’ की तस्वीर छाई रही…… जजीर में जकटी एक देवी की मूर्ति। नीचे लिखा हुआ था—बन्दे मातरम् !”^{१४} यह तस्वीर जिन्दगी के आखिरी समय तक उसके दिलो-दिमाग पर छाई रही है।

स्कूल के गिरावटी लड़के तथा कठोर स्वभाव के मास्टर्स के कारण मनमोहन इतन निराश और उदास हो जाता है कि वह यहाँ से हमेशा के लिए अपने घर वापिस जाना चाहता है। “मैं यहाँ नहीं पढ़ूँगा। मैं आज ही घर जाऊँगा।”^{१५} परन्तु गरवतिया और पिता के समझाने पर वह इस विचार को निकाल देता है। वास्तव में वह इस शहर में पढ़ता रहा प्रियोदा के व्यक्तित्व के ही कारण। प्रियोदा के ‘किंगोर क्लब’ का सदस्य हो जाने के बाद तो उसे यहाँ की जिन्दगी में काफी आनन्द आने लगता है। वह जितना भावुक है, उतना ही बुद्धिमान। अपने मन और बुद्धि को जो बात पटती है, वह उसे चुपचाप करता करता है, चाहे जितना विरोध हो। इसी कारण स्काउट-ट्रोज के लिए दिए गए पैसें से वह खट्टर का कपड़ा खरीदता है। और केनिंग की घटना होने के बाद पिताजी और काका के अनगन के बावजूद भी वह प्रियोदा का साथ छोड़ने को तैयार नहीं होता। उसका विश्वास था कि वह जो कुछ भी कर रहा है, वह बुरा नहीं है। वह अब धीरे-धीरे निर्भय बनते जा रहा है। प्रियोदा की यह बात उसे पूर्णतः मान्य हो चुकी है कि “दस और देश का काम करनेवाला तो खुद ही भूत होता है—उसको भूत क्या कर सकता है ?”^{१६} इसीलिए ग्रामीण अंचल से आए हुए इस मनमोहन के हृदय से भूत, प्रेत, पुलिस, अंग्रेज आदि का डर निकलने लगता है। “मुनीजी इतना जल्दी निडर हो गया। यहाँ गाँव में जिस दिन कोई “लाल पगड़ी” वाला आ जाता, तो दिनभर घर में छिपा रहता था—डर से। अब देखिए कि ‘टिक्स चेकर’ से लेकर गाट साहब तक से अंग्रेजी में बातियाता है। सैकड़ों लाल पगड़ी वाले पुलिस के सामने खट्टर की बर्दी पहनकर ‘लैफ रैट’ करता हुआ शान से चला जाता है।”^{१७} यह परिवर्तन प्रियोदा के सम्पर्क के कारण ही संभव हो सका है। गान्धीजी की गिरफ्तारी के बाद प्रियोदा के नेतृत्व में स्कूल में हड़ताल की जाती है। आरम्भ में तो हड़ताल में भाग लेने वालों की संख्या काफी थी। परन्तु “पुलिस के सिपाहियों का नाम मुनकर अधिकांश विद्यार्थी धवराए और भागे।”^{१८} और रेस्टिकेट के मय से “तीसरे दिन करीब-करीब हर दर्जे के हड़ताली छात्रों ने लिखकर माफी माँग ली—सात मैदानों के सिवा।”^{१९} इन मात शैतानों में प्रियोदा और उसके बलब के छह सदस्य ही थे—जिनमें सबसे छोटा मनमोहन था। फिर केनिंग की घटना हुई। इन बातों को स्कूल के मैदान में

समी छात्रों के बीच छड़ी से पीटा गया। गाँव के लोग भी काफी सख्या में आए हुए थे। मनमोहन ने उस दिन अद्भुत साहस का परिचय दिया। इसी कारण "मनमोहन को किसी ने कंधे पर उठा लिया है। उसकी देह में गुदगुदी लगती है।" और डॉक्टर बनर्जी का अधपगला कम्पाउण्डर बोटल से दूध जैसी दवा एक बर्तन में डालकर पट्टी बिगो रहा है और हँस रहा है "ये शीव रोकतो मिछे नेही जाएगा— अर्थात् यह रक्त देकर नहीं जाएगा।" इस प्रकार मनमोहन अब उग बरखे का 'वीर बालक' बन गया है। केवल ऐसे ही कामों में वह निर्भयता के साथ आगे बढ़ नहीं रहा है, तो स्कूली परीक्षाओं में भी वह सबसे आगे है। "मनमोहन को छमाही परीक्षा में डबल परमोशन मिला है। छैं महीना में ही एक बलास पास। अब बोन कह सकता है कि मुनीजी पढ़ने के बदल हडताल करता है।" इतनी कम उम्र में उसे काफी प्रतिष्ठा मिल गई है। कभी-कभी उसकी इच्छा होती है कि पढाई लिखाई छोड़कर 'स्वतन्त्रता-आन्दोलन' में बूढ़ा जाए। परन्तु "बड़े महाराज कहते हैं कि अभी तुम लोगों का समय नहीं आया। अभी पढो लिखो, देह और मन को मजबूत बनाओ।" स्वतन्त्रता-आन्दोलन की ओर मनमोहन के इस प्रकार मुड़ जाने के कारण 'काका' भी इस आन्दोलन में बूढ़ पड़े हैं। और मनमोहन के पिताजी अब इस काम के प्रति पहले की तरह तिरस्कार से नहीं देखते। उलटे "वे तो अब बड़े निश्चिन्त हैं। अतः मे बड़े महाराज का ही असर हुआ है।" उन्होंने कहा—'बड़े महाराज जो कहें वही करना। वह बुरा रास्ता क्यों बनलाएंगे? तुम्हारे काका के बिना कोई नाम यहाँ पढा तो नहीं है। जेल में निवारी जो बंगरह के 'सगत' से आदमी का जयगा।" इस बीच मनमोहन बड़े महाराज द्वारा स्थापित 'स्टुडेंट्स होम' में जाकर रहने लगा है। इसके भी कई मनोवैज्ञानिक कारण हैं। जैसे-जैसे वह अपनी बाल्यावस्था की छोड़कर कैंशोर्यावस्था में प्रवेश कर रहा है, वैसे-वैसे चारवतिया के प्रति उसके मन में यौन आकर्षण बढ़ रहा है। मोहरिल मामा के घर का वातावरण वैसे भी बड़ा ही सराब है। उसमें फिर बिघवा चारवतिया। सराब और मटरू की सगत। "नही लो, नही लो किसी दिन वह एक घूट दारू पी लेगा, धुपनी साकर किसी दिन हे वीर। विवेकानंद स्वामी की मूर्ति।" इस स्टुडेंट्स होम में आने के बाद उसकी मारी जिंदगी ही बदल जाती है। सब कुछ नये ढंग से जानने की कोशिश वह करने लगा है। इस बीच पढाई अबूरी छोड़कर राजनीति में प्रवेश करने वाले की सख्या कम नहीं थी। परन्तु बड़े महाराज ने कहा है—'देखो माना। तुम्हारे ऊपर मुझे बहुत भरोसा है। कभी जेल में आकर तुम भी पढ़ना लिखना मत छोड़ बैठना। अभी सीधे बड़े जेलों। राह में, छाँव में वहीं बैठना नहीं है। वित्तने ही चौराहे आएंगे। न दारू मुँगा, न दारू—मीचे चरते जाना।' बड़े महाराज के इसी उद्देश और मार्गदर्शन

के कारण वह सीधे बढ़ने की कोशिश कर रहा है। काल-चक्र अपनी गति के साथ आगे बढ़ रहा है। मनमोहन की जिन्दगी में आकर्षण के “कितने ही चौराहे” आ रहे हैं। वह सब को पार करते हुए आगे बढ़ रहा है। शरवतिया के आकर्षण का चौराहा, नीलू के प्रति सहज-सुलभ आकर्षण का चौराहा, प्रतिष्ठा का चौराहा ! सब को तटस्थता से देखते हुए वह आगे बढ़ रहा है। न दाएँ मुड़ रहा है और न बाएँ। अलवत्ता उसके मन में द्वन्द्व जरूर है। परन्तु इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को वह सहज रूप से जी लेता है और लगातार आगे बढ़ता जाता है। “डूबर दीपू-तपू की भांजी नीलू से मिलने की उसे इच्छा हो रही है। इसके लिए उसने नियम का भंग भी किया है।”^{११} परन्तु फिर वह संभल जाता है। १५ जनवरी, १९३४ ई० में बिहार में भूमि-कम्प हुआ। “प्रलयकारी भूकम्प की विनाश-लीला की खबरें चारों ओर से आ रही हैं। मुँगेर, मुजफ्फरपुर, दरभंगा में हजारों लाशें पड़ी हुई हैं। मलवे के नीचे हजारों जानें दम तोड़ रही हैं।……महादमघान ! सारे उत्तर बिहार में ब्राहि-ब्राहि मची हुई है।”^{१२} और इसी कारण मनमोहन वहाँ के अस्ताल में काम करते समय वह अनुभव करता है कि “हर अवेड़ के चेहरे पर वह अपने बाबूजी के मुँह के छाया देखता है। सभी घायल, बीमार आरतें उसकी माँ हैं……कितनी पुष्पी, नीलू, गुनी जी, शरवतिया दीदी, प्रियोदा……कितने-कितने……आह ! चीख-पुकार !”^{१३} डेढ़ महीने के बाद मनमोहन वहाँ से लौट आता है। फिर वही चक्र ! जिन्दगी अपनी गति से आगे बढ़ रही है। और सन् १९४२ का ‘भारत छोड़ो’ आंदोलन ! इस कत्वे के छात्र भी ‘ट्रेजरी आफिस’ पर तिरंगा झंडा फहराने का निर्णय लेते हैं। सूरज और हफीज तो हिन्दू-मुस्लिम दंगे में शहीद हो गए। अब कृत्यानन्द, शिवनाथ, हरेन्द्र, अशर्फी, प्रियोदा और मनमोहन मिलकर ‘ट्रेजरी आफिस’ पर तिरंगा फहराने का निर्णय ले चुके हैं। अंग्रेजों की ओर से भी सारी तैयारी है। १२ से २० की आयु के ये लड़के झंडा लेकर जैसे ही आगे बढ़ने लगते हैं, तुरन्त गोलियाँ चलने लगती हैं। फिर भी तिरंगा नीचे गिरेगा नहीं। एक शहीद हो गया है तो दूसरे के हाथ में झंडा देकर ही। “और देखते-ही-देखते एक के बाद एक घरायायी होने लगे। प्रियोदा, कृत्यानन्द, अशर्फी, मोला और तपू—एक गिरता, दूसरा आगे बढ़कर उसके हाथ से झंडा लेता। दूसरा गिरता, तीसरा झंडा धामता। चौथे ने गिरने से पहले मोना को आवाज दी—अपने जोड़ीदार को। किन्तु मोना को पकड़कर नीलू पागल की तरह चिल्ला रही थी—नहीं—नहीं !”^{१४} और इसी कारण मोना बच गया है। परन्तु—“मैं जिन्दगीभर जलता रहूँगा तुम्हारी चिताओं की आग कलेजे में लेकर। तुमने मुझे पुकारा कमांडर ! तुम्हारी पुकार पर तुम्हारे हुक्म पर……मैं—मैं दोषी हूँ।…… अनुशासन-भंग किया है मैंने। मुझे गलत मत समझना प्रियोदा, कृत्या, अशर्फी, मोला।”^{१५}

इसी पश्चात्ताप की आग में मोना जिन्दगीभर जलता रहा । मातृभूमि पर शहीद होने का उसका सपना अधूरा ही रहा । सन् १९६५ के भारत-पाक युद्ध में इस मोना का छोटा माई जनमोहन शहीद हुआ । और तब स्वामी सच्चिदानन्द (मोना) अनुभव करते हैं—‘पाँच-पाँच बिनाओ की आग में एक युग में झुलसत हृदय पर चन्दन लेप रहा है कोई । अब मुड़ना होगा माँ के पास नहीं गुनीजी कौन गुनीजी ? कौन जनमोहन कौन माँ ? इतने इतने जनमोहन सच्चिदानन्द ।’”

मनमोहन के चरित्र का यह ब्रमिक विकास देखने के बाद हम उससे सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष दे सकते हैं ।

(१) मनमोहन का यह चरित्र अत्यधिक यथार्थ है । वह प्रातिनिधिक भी है और विशिष्ट भी । उसमें मानव दुर्बलताएँ हैं । और जहाँ जहाँ पर ये मानव गुण दुर्बलताएँ बतलाई गई हैं—शरबतिया का आकर्षण, नीलू का आकर्षण, प्रतिष्ठा का आकर्षण—वहाँ-वहाँ पर वह यथार्थ बन पड़ा है । परन्तु जहाँ पर वह इन कम जोरियों पर विजय प्राप्त करके आगे बढ़ने लगता है, वहाँ पर वह ‘विशिष्ट’ बन जाता है । इस प्रकार ‘प्रातिनिधिकता’ और ‘विशिष्टता’ का जाने-अनजाने सुन्दर समन्वय इसके चरित्र में हुआ है । इसी समन्वय के कारण यह चरित्र अधिक आकर्षक तथा यथार्थ बन पड़ा है ।

(२) मनमोहन स्थिर स्वभाव का व्यक्ति नहीं है । उसमें विकासात्मकता के सारे लक्षण प्राप्त हैं । अक्सर ‘ध्येयवादी’ लोग स्थिर चरित्र के होते हैं । परन्तु मनमोहन अपनी बुद्धि और अनुभव के बल पर आगे बढ़ने की कोशिश करता है । किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को स्वीकार करके ठीक उसी प्रकार चलने का उसका अन्धा प्रयत्न नहीं है । प्रियोदा, बड़े महाराज तथा अपने व्यक्तित्व अनुभवों के माध्यम से वह जिन्दगी को समझने की कोशिश करता है और उसी तरीके से जीने की भी । इसी विशेषता के कारण वह बड़ा ही जीवन्त और सहज लगता है ।

(३) इसके व्यक्तित्व विकास में एक निश्चित प्रकार का क्रम है । एक के बाद एक घटनाएँ रची गई हैं । छात्रावस्था-युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था । प्रत्येक अवस्था में जो दिक्कतें आई हैं, उनका सजेन रेणु देने गए हैं । युवावस्था की उसरी निर्ममता, कुछ कर बतलाने की जिद तथा यौन आकर्षण का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया गया है । अर्थात् हर अवस्था में ‘चोराहे’ आते हैं । पर प्रत्येक चोराहे पर स गुजर कर वह आगे चला जाता है । चोराहो का आकर्षण उसे थोड़ी देर के लिए बाधकर रख देता है । परन्तु चोराहे को ही मजिल समझकर वह वहीं रुक नहीं जाता । श्री वातिदेव ने अपनी पुस्तक “रेणु का आचलिक कथा-साहित्य” में कितने चोराहो का समन्वय राष्ट्र की गति से माना है । “यह जीवन्त राष्ट्र एक के बाद

एक कितने ही चीराहों को पार करता गया है।"....."और यह महाप्राण जनता पुनः उनके गन्दे मनसूवों को रौंदकर आगे बढ़ती जाती है। न दाएँ मुड़ती है न बाएँ, आगे ही बढ़ती है।" वास्तव में कितने चीराहों का समन्वय राष्ट्र की गति के साथ नहीं, मनमोहन के चरित्र के साथ ही है। क्योंकि 'मनमोहन' ही अनेक चक्रों को, चीराहों को पार करता हुआ आगे बढ़ने लगता है। 'चीराहा' तो वास्तव में एक परीक्षा-स्थल है। हमारे सन्तों ने इसी को 'माया-मोह' कहा है। जिन्दगी में भी इस प्रकार के अनेक चीराहे आते हैं जो हमें मंजिल की ओर जाने नहीं देते। सीमाग्य से मनमोहन इन चीराहों रूपी परीक्षा-स्थल पर से उत्तीर्ण होकर आगे बढ़ जाता है—यह उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है।

(४) मनमोहन आरम्भ से 'आदर्श' की खोज में निकला है। वह अपना सम्पूर्ण जीवन "दस और देश" के लिए देना चाहता है। उसका तो सपना था—देश के लिए मर मिटने का। उसके सभी साथी इस सपने को पूर्ण कर सके हैं। और वह अकेला बचा रहा है—वह भी अपनी भीतरी कमजोरी के कारण; नीलू के कारण। उसी पश्चात्ताप की अग्नि में वह जल रहा है। शहीद होने का सपना पूरा नहीं हुआ तो क्या हुआ; वह दूसरे तरीके से तो अपने भपने को पूरा कर सकता है। इसी कारण वह "दस और देश" का काम कर रहा है—स्वामी सच्चिदानन्द बनकर। वास्तव में २५वें प्रकरण में उसका यह उदात्त और धीरगम्भीर रूप उसके 'आदर्श' को ही स्पष्ट करता है। माँ-पिता, भाई-बहन आदि के व्यक्तिगत प्रेम का इतना उदात्तीकरण हो गया है कि वह प्रत्येक में अपने माँ-पिता अथवा भाई-बहन को देखता है। इस प्रकार रेणु इसे पूर्णतः आदर्श में परिवर्तित कर देते हैं। इस आदर्श तक पहुँचने के लिए उसे कितने ही चीराहों को पार करना पड़ता है; इसे हम न भूलें।

(५) संस्कार तथा वातावरण के समन्वय से मनमोहन का व्यक्तित्व बना है। प्रकृतितः वह बुद्धिमान है। अच्छे साथी मिले, इसी कारण उसकी बुद्धिमत्ता विकसित हो सकी है। एक ओर मोहरिल मामा का गन्दा घर है, तो दूसरी ओर प्रियोदा जैसे प्रखर राष्ट्रीयवादी मित्र। बरेलू संस्कार उत्तम थे। पिता के कठोर व्यावहारिक ज्ञान और काका के लाड़-प्यार के संस्कार हैं। कस्बे में आने के बाद शरवतिया की भमता, प्रियोदा की निर्भयता तथा बड़े महाराज के मार्गदर्शन से उसके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। उपर्युक्त सभी बातों का उसके व्यक्तित्व में अद्भुत समन्वय हुआ है; और इसी कारण वह अपनी मंजिल तक पहुँच सका है।

इस प्रकार रेणु 'मनमोहन' के माध्यम से तत्कालीन युग की बाल तथा युवा जनःस्थिति को व्यक्त कर गये हैं। सन् १९३०-३५ का वातावरण ही कुछ ऐसा था कि मनमोहन की तरह ऐसे सैकड़ों युवक "दस और देश" के लिए निकल पड़े थे।

मनमोहन एक ऐसा ही युवक है । तरकालीन वातावरण का विचार किये बगैर हम इस चरित्र पर न्याय नहीं कर सकते । २०वीं शताब्दी के इस स्वार्थ से परिपूर्ण युग में मनमोहन तथा उसके साथियों का यह कार्य शायद 'वेवकूपी' अथवा 'पागलपन' का हो सकता है । परन्तु १९२० से १९४५ तक का युग ही ऐसे 'पागलपन' और 'वेवकूपियों' से भरा हुआ था । वास्तव में मनमोहन के इस व्यक्तित्व को लेकर माथी प्रियोदा के एक मोत की पत्ति याद आती है—“सबाय बोलि आमाय पागल, आमि सबाय के पागल बोली ।”

प्रियोदा—मनमोहन के बाद सबसे अधिक प्रभावित कर जाने वाला पात्र प्रियोदा ही है । “सेकण्ड हेडमास्टर का बेटा प्रियोदा—प्रियव्रत राय—मेट्रिक में पढता है । स्कूल के सभी लड़के और मास्टर उसे प्यार करते हैं । स्कूल ही नहीं, उस छोटे से कस्बे में उसको प्रायः सभी जानते हैं । “स्कूल का कोई छात्र या शिक्षक बीमार पड़ा कि प्रियोदा अपनी टोली के साथ उसके घर पर हाजिर ।”” प्रियोदा ने एक ‘किशोर क्लब’ बनाया है । यह ‘किशोर क्लब’ स्कूल के सभी दोस्तों के काम आता है । ‘किशोर क्लब’ के सदस्य बीमार की सेवा करते हैं, सन्यासी आश्रम के लिए मुठिया वसूलते हैं । बाराब-बन्दी का आप्रह्न करते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं । और सबसे बढ़कर राष्ट्रीय गतिविधियों को जानकारी छात्र तथा सामान्य लोगों को देते हैं और समय आने पर हड़ताल भी करते हैं । पहले ये सात थे । बंनिंग की घटना के बाद दो और सदस्य इसमें शामिल हुए हैं । अब ये नौ रहते हैं । इन नौ रहतों के सरताज हैं ‘प्रियोदा’ । प्रियोदा गंभीर प्रवृत्ति के हैं । बौद्धिकता और भावुकता का अद्भुत समन्वय इनमें हुआ है । इसी भावुकता के कारण ही पूरन विश्वास जैसे स्वामी, क्रूर तथा सशयी छात्र को उन्होंने ‘स्टूडेंट्स होम’ में प्रवेश दिलाया था । क्योंकि “प्रियो ने ही पूरन की पैरवी और सिफारिश करके उनको (बड़े महाराज) राजी किया था—महाराज ! पूरन खूब प्रतिभावान् लड़का है । उसे रखना ही होगा ।”” प्रियोदा नियम के बड़े पक्के हैं । ‘किशोर क्लब’ के नियमों का भंग उन्हें कभी पसंद नहीं आता । गालियों का प्रयोग, टरफोक तथा समुचित वृत्ति उन्हें कभी भी स्वीकार नहीं है । इसीलिए वे हर बार साथियों को डाँटते रहते हैं । इस डाँट में प्यार भी है और आदर्शों के अनुकूल व्यक्तित्वों को ढालने की जिद भी । प्रियोदा की निर्मयता के कारण ही हड़ताल सफल हो जाती है । प्रियोदा के मार्गदर्शक बड़े महाराज हैं । परन्तु बड़े महाराज के इशारे पर नाचने वाले वे नहीं हैं । राजनीति के प्रति तो वे अत्यधिक सजग हैं । इसी कारण तो गांधीजी को जेल होने के बाद वे हड़ताल कराते हैं । और सन् १९४२ के ‘चले जाव’ आन्दोलन में अपनी ओर से कुछ करने की प्रतिज्ञा करते हैं उन दिन ट्रेजरी ऑफिस पर निरगा पहराने के प्रयत्न में वे शहीद हो जाते हैं ।

आरम्भ से अन्त तक प्रियोदा का व्यक्तित्व तेजस्वी है। वह है ही १५-२० वर्ष का युवक। परन्तु लेखक भी उसके सामने शायद नतमस्तक है। इसीलिए प्रत्येक स्थान पर उसके लिए आदरसूचक शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। 'नेतृत्व' की शक्ति प्रियोदा को जन्म से ही मिली है। यह नेतृत्व सत्ता अथवा आज की तरह का नहीं। इस नेतृत्व में वह सबसे आगे है। चाहे केनिंग की घटना हो अथवा फायरिंग की घटना। वह गांधीजी के व्यक्तित्व से प्रेरित है। "सर्वसेवामात्र" की उसने प्रतिज्ञा ही की है। इस सर्वसेवामात्र के कारण ही उसने 'किशोर बल्लव' की स्थापना की है। इसी सेवामात्र के कारण वह भूकम्प के बाद उत्तर विहार में दौड़कर जाता है। गांधीजी का वह अन्धा भक्त नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण क्रांतिकारियों के प्रति उनकी श्रद्धा में प्रकट होता है। एक ओर वह बड़ी श्रद्धा से तकली कातता है तो दूसरी ओर क्रांतिकारियों की कहानियाँ भी सुनाता है। उसे पता है कि स्वतन्त्रता के लिए चल रहे इस यज्ञ में अनेक आहुतियाँ देनी पड़ेंगी। इसी कारण बाघा यतीन की मृत्यु पर वह कहता है—“बात रोने की नहीं, हँसने की है। अब देरी नहीं। स्वराज्य करीब आ रहा है—धीरे-धीरे।और भी मरेंगे। मारे जाएँगे.....।”^{११} एक दिन वह अपनी भी आहुति इस यज्ञ में दे देता है। मनमोहन से भी प्रियोदा का व्यक्तित्व अधिक प्रखर है।

प्रियोदा का सबसे बड़ा कार्य यह है कि उसने नायक मनमोहन के चरित्र को ही मोड़ दिया है। मनमोहन जो कुछ भी बन सका है; उसका बहुत बड़ा श्रेय तो प्रियोदा को ही है। शायद ऐसा बहुत कम बार होता है कि नायक को नायकत्व किसी दूसरे की प्रेरणा, मार्गदर्शन तथा व्यक्तित्व से मिल जाए। प्रियोदा न होता तो मोना का व्यक्तित्व ही न बनता।

शरवतिया :—आज की भारतीय युवती का प्रतिनिधित्व शरवतिया करती है। वह विधवा है। सन् १९३०-३५ के जमाने में इस प्रकार की विधवाओं की समस्या बड़ी गम्भीर थी। इस काल में इस विषय पर सैकड़ों उपन्यास लिखे गए हैं। शरवतिया तो पतिगृह जाने के पूर्व ही विधवा बन गई है। विधवा-जीवन की सम्पूर्ण कान्ठा को लेकर वह यहाँ आई है। माँ-बाप एकदम प्रतिकूल स्वभाव के हैं। पिता का शराब पीना और माँ का उसमें शरीक होना उसे कतई पसन्द नहीं। छोटा भाई मटरू दिन-ब-दिन विछड़ रहा है इससे वह चिन्तित है। उसके सारे दर्द को रेणु ने मुखरित नहीं किया है। परन्तु ऐसा लगता है कि शरवतिया के अपने निश्चित स्वप्न हैं—जिन्दगी के प्रति। मनमोहन आने के बाद तो उसकी जिन्दगी में ही परिवर्तन हो जाता है। “शरवतिया को यह क्या हो गया है ? मनमोहन जब से आया है, वह एकदम बदल गई है।अब वह दिनभर फिरकी की तरह काम करती रहती है।”^{१२} इस परिवर्तन के मूल में मनमोहन का स्वभाव है। मनमोहन को देखकर

उसका वात्सल्य अधिक विवर्धित होता है। वात्सल्य की अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम मिल जाता है। इसी कारण वह मनमोहन की सभी प्रकार से देख-भाल करती है। इस घर को छोड़कर वह जाएगा, यह मुनकर रोती है। मनमोहन के प्रति वह पूर्णतः समर्पित है। इस समर्पण में न शरीर है, न कोई अनृत इच्छा। इसमें तो 'शुद्ध वात्सल्य' है। मनमोहन के प्रति उसके इस प्रकार के व्यवहार से घर के सब सदस्य नाराज हैं। माँ मनमोहन के साथ उसका नाम जोड़कर गन्दी गालियाँ देती है। मटल भी इसी प्रकार के मकेत करता है। पिता मोहरिल शरवतिया का हाथ किसी प्रौढ़ व्यक्ति के हाथ में देकर पैसे कमाना चाहता है। इसी कारण इस परिवार में वह एकदम अलग पड़ जाती है। मनमोहन 'स्टूडेंट्स होम' में रहने के लिए चला जाने के बाद तो वह काफी उदास और निराश रहने लगती है। सन् १९३६ के प्रान्तीय स्वराज्य के बाद मनमोहन शरवतिया को एकदम प्रसिद्धि दिला देता है। शरवतिया के हाथों वह छोटी बालिका विद्यालय का शिलान्यास करा देता है। परिणामतः दूसरे दिन 'पूर्णिया समाचार' के मुखपृष्ठ पर बड़ी सी तस्वीर छपती है—'शिक्षामंत्री शरवती देवी की।' और इसी कारण एक स्त्री कहती भी है—'तुम्हारा भाँजा मोहन चाहेगा तो वह भी (पेन्सन) एक दिन मिल जाएगा। नमक का बदला चुकाना वह नहीं मूलेगा।'" स्पष्ट है कि शरवतिया के चरित्र पर अनेक आरोप किए जा रहे हैं। परन्तु शरवतिया चुपचाप अपनी जिन्दगी जीती चली जाती है। एक दिन माँ और पिता मिलकर उसका चुमौना कर देते हैं। "शरवतिया का चुमौना हो गया, समुराल चली गई है।"

शरवतिया मनमोहन के लिए प्रेरणा थी और मनमोहन उसके लिए। निन्दा तथा दुखों को वह चुपचाप सहती रही। परन्तु वह कभी नाराज नहीं रही। भीतर-ही-भीतर जलती रही, परन्तु सबको प्रकाश देते हुए। वह एक बाती की तरह थी, जो खुद तो जलती रहती है, परन्तु औरों को प्रकाश देते हुए।

काका —मनमोहन के काका अशिक्षित और सर्वसामान्य जन के प्रतिनिधि होने के बावजूद भी पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। भारतीय ग्रामीण जनजीवन की थढ़ाओं, अन्धविश्वासों तथा संस्कारों से काका का व्यक्तित्व बना है। काका का मनमोहन पर सर्वाधिक प्यार है। वास्तव में "माँ के बदले मनमोहन को उसके काका ने माँ का लाड़-प्यार दिया है।" मनमोहन की माँ तो मनमोहन को अपना नहीं परमा लड़का मानती है। क्योंकि उसके सपने में अक्सर बड़ी-दाढ़ी-भूँछो वाला एक जटाधारी आता है।" इस जटाधारी को उमने आश्वासन दिया है कि "बाबा ! यह आपका ही बच्चा है। मैं तो इसकी दाई हूँ, पालती हूँ इसको।" और इस दिन से सचमुच वह मनमोहन की दाई बनती है और माँ बना है काका। मनमोहन के बचपन से ही उसकी हर तरह की सेवा काका करते रहता

है। इसी कारण “उनके स्वभाव में कुछ स्त्री-सुलभ गुण-दोष आ गए हैं।”^{४५} काका की उम्र यही २५-३० के आस-पास की है। कटिहार के पास के एक गाँव पाँकी-टिकैली में उनकी शादी हुई थी। परन्तु “काकी का स्वर्गवास हो गया; गौना के पहले ही।”^{४६} इस प्रकार काका ‘अकेले’ हैं। अर्थात् लौकिक दृष्टि से। वैसे तो उनका अपना पुत्र मनमोहन है; भाईसाहब हैं और भामी भी। काका काम-धंधा कुछ नहीं करते। सब कुछ मनमोहन के पिताजी ही देखते हैं। संयुक्त परिवार के कारण काका का बेकाम रहना खटकता भी नहीं। “वह यहाँ करता ही क्या था? दिनभर इस दरवाजे से उस चौपाल में बेकार बेवात की बातों में समय बरबाद करता था।”^{४७} मनमोहन की खबर लेने वह प्रत्येक रविवार को अररिया कोट जाता है। मोना के बगैर उसका जी ही नहीं लगता। मोना स्कूल से नाराज हो गया है, वह वहाँ पढ़ना नहीं चाहता, खूब रो रहा था; यह सुनकर काका खुद रोने लगते हैं। और बड़े माई के मना करने पर भी “अब भैया बिगड़ें मुझपर या जो करें। मैं तो कल दही मछली लेकर जाऊँगा ही।”^{४८}

स्पष्ट है काका के पास माँ का हृदय है। स्त्री-प्रेम उन्हें नहीं मिला। शायद पत्नी-प्रेम का ही उदात्तीकरण होकर ‘वात्सल्य’ में परिवर्तित हो गया है। व्यक्तिगत जिन्दगी दुःखपूर्ण है, परन्तु वह हमेशा हँसते हुए जीते हैं। पहले इस ‘अकेलेपन’ और ‘दुःख’ का परिवर्तन अथवा उदात्तीकरण पहले ‘मनमोहन के प्रेम’ में हो जाता है; और बाद में बड़े महाराज की संगत के कारण इसी प्रेम का उदात्तीकरण ‘राष्ट्र-प्रेम’ में हो जाता है। मनमोहन के प्यार के कारण ही वह राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। आरम्भ में तो उन्हें मनमोहन के इस प्रकार के सामाजिक कार्यों के प्रति चिढ़ ही थी। अपनी अज्ञानता के कारण वह प्रमातफेरी को भीख माँगना कहते हैं। और फिर उल्टे पूछते हैं “भीख माँगने को प्रमातफेरी कहते हैं?”^{४९} उन्हें लगता है कि मनमोहन को “चार दिन में ही जहर की हवा लग जाएगी, यह जानता तो भैया को हरगिज.....”^{५०} उन्हें संदेह है कि मनमोहन अब उन्हें मंडलजी मास्टर की तरह अपने काका के बारे में लोगों से कहेगा—“ही इज माय सरह्वण्ट। अभी तो साल भी पूरा नहीं हुआ है।”^{५१} केनिंग की बट्ना के बाद तो काका मनमोहन के साथ ही रहने लगते हैं। और मनमोहन एक दिन उनका परिचय बड़े महाराज के साथ करा देता है। यहीं से अशिक्षित काका में क्रान्तिकारी परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। इस कस्बे में मनमोहन के पास आकर वह रहे थे; मनमोहन को ऐसे कामों से दूर रखने के उद्देश्य से। परन्तु धीरे-धीरे वे खुद राष्ट्रीय-आन्दोलनों में रुचि लेने लगे। वास्तव में यह बड़े महाराज, प्रियोदा और मनमोहन की जीत है। इससे भी बढ़कर काका के भावुक तथा विद्याल हृदय का यह प्रमाण है। बड़े महाराज से पहली बार मिल आने के बाद काका कहते हैं “.....सावु संन्यासियों की क्या बात। कोई मंतर पढ़-

कर मन फेर देते हैं ।^{१५} मन फेर जाने के कारण—“टमटक से उतरकर मनमोहन के काका सीधे राखाल बाबू की दुकान में गये, खादी की घोंती खरीदी, खादी का कुर्ता सिलने को दिया ।”^{१६} इतना ही नहीं एक दिन पिक्वेटिंग करके जेल में भी चले गए । जेल जाते समय “काका ने हाथ की हमकड़ी दिखल कर कहा—‘अब तो खुश हो ।’” स्पष्ट है काका आन्दोलन में कूद चुके हैं, मनमोहन की प्रसन्नता के लिए । अर्थात् बड़े महाराज की बातें उन्हें अच्छी लगती हैं । वह इस बात का विश्वास हो गया है कि वह जो कुछ भी कर रहा है, बुरा नहीं है । काका के जेल चले जाने से मनमोहन के पिताजी को कोई दुःख नहीं । उलटे वे तो कहते हैं—‘जेल में तिवारी जी वगैरह की ‘सगत’ में आदमी बन जाएगा ।’^{१७} जेल में जाकर सचमुच वे आदमी बनने की कोशिश कर रहे थे । बैठे-बैठे क्या करेंगे ? चरखा कातते हैं, मन नहीं चरखा कातते हैं, मन नहीं लगता है तो किताब पढ़ते हैं । उद्धू शिक्षक भी मँगवा लो है । यहाँ एक होमियोपैथी डॉक्टर भी पिक्वेटिंग करके आए हैं । उनसे डाक्टररी पढ़ता हूँ । सुबह में आसन भी शुरू कर दिया है ।”^{१८} इस प्रकार एक अशिक्षित व्यक्ति स्वतन्त्रता-आन्दोलन में धीरे-धीरे कैसे खींचा गया, इसका बड़ा सहज और मनोवैज्ञानिक चित्रण रेणु ने यहाँ किया है । सन् १९३० से ४७ तक के इस काल में परिवार की इस युवा पीढ़ी के कारण प्रौढ़, बड़े तथा बूढ़े भी इस आन्दोलन में इन युवकों के प्रेम की मजबूरी के कारण अथवा उनके उत्साह के कारण कूद पड़े । काका अशिक्षित होते हुए भी दुनियादारी समझ लेने की वांछित करते हैं । वे भावुक हैं, और उतने ही सहज । काका के हृदयस्थी कागज पर मात्र मन-मोहन का प्यार ही लिखा हुआ था । बड़े महाराज हृदयस्थी कागज पर ‘राष्ट्रीयता’, ‘शिक्षा’, ‘बलिदान’ आदि शब्द भी लिख देते हैं । इस सामान्य पात्र के भीतर सुप्ता-वस्था में स्थित असामान्य गुणों का सकें रेणु ने इस उपन्यास में किया है । काका हर नई बात के प्रति सजग हैं । आम भारतीय व्यक्ति की तरह प्रत्येक बात के प्रति सन्देही भी । जैसे ही यह सन्देह समाप्त हो जाता है, वे खुद काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं । इसी कारण ‘आलस्य’ की व्यर्थता का ज्ञान हो जाने के बाद वे लगातार इन प्रकार के राष्ट्रीय कामों में मग्न हो जाते हैं । आम भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व काका करते हैं । स्त्री-मन की सारी ‘ममता’ इनमें इक्कट्ठी हुई है । यह ‘ममता’ इनमें इक्कट्ठी हुई है । यह ममता पहले केवल गहरी थी, अब वह अधिक व्यापक बन गई है—यही इस मन की असाधारणता है ।

शीर्षक की प्रतीकात्मकता —प्रतीकात्मक शीर्षक देने की प्रवृत्ति ‘रेणु’ में सर्वाधिक है । ‘भैना आचल’, ‘परती परिकया’, ‘जुलूस’ आदि इसके प्रमाण हैं । कहानियों के शीर्षक भी वह इसी प्रकार से देते हैं । ‘रमप्रिया’, ‘लाल पान की बेगम’ आदि । समस्त आचलिक कथा-साहित्य की यह विशेषता ही है । ‘किन्ने चोरहे’

शीर्षक भी इसी परम्परा में है। अब प्रश्न है कि 'कितने चौराहे' शीर्षक द्वारा रेणु किस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं। श्री पूर्णदेव ने इस शीर्षक का सम्बन्ध राष्ट्र के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया है; जो पूर्णतः असंगत है। पूर्णदेव के अनुसार "उग्र क्रान्तिकारी देशभक्तों के संघर्ष से लेकर सन् १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण तक यह जीवन्त राष्ट्र एक-के-एक कितने ही चौराहों को पार करता गया है।"^{५६} वास्तव में इस शीर्षक का सम्बन्ध उपन्यास के प्रमुख पात्र मनमोहन के साथ ही है। उपन्यास में इस शीर्षक के सम्बन्ध में दो-तीन स्थान पर उल्लेख हुआ है। बड़े महाराज मनमोहन से एक स्थान पर कहते हैं—"कभी अोंक में आकर तुम भी पढ़ना-लिखना मत छोड़ बैठना।.....अभी सीवे बड़े चलो। राह में छाँव में कहीं बैठना नहीं है। कितने चौराहे आएँगे। न दाएँ मुड़ना, न बाएँ—सीवे चलते जाना।"^{५७} एक और स्थान पर—"मनमोहन अभी इधर-उधर नहीं देखेगा। सीधा चलता जाएगा। किसी चौराहे पर मुड़ेगा नहीं—न दाहिने, न बाएँ।"^{५८} इन संकेतों से स्पष्ट है कि 'कितने चौराहे' शीर्षक का सम्बन्ध एक विधेय ध्येयवादी जीवन-दृष्टि से है। राष्ट्र के साथ इस शीर्षक का कतई सम्बन्ध नहीं है। व्यक्ति के जीवन से ही इसका सम्बन्ध घटित किया जा सकता है। क्योंकि व्यक्ति-जीवन में ही आकर्षण के अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं; जिस कारण उसके रुकने की संभावना होती है। 'कितने चौराहे' पार करके ही व्यक्ति को आगे बढ़ना पड़ता है। व्यक्ति को उसकी ध्येयवादिता से गुमराह करने वाले ये चौराहे अनगिनत हैं। और आधुनिक युग में तो इन चौराहों की संख्या बढ़ती जा रही है। मनमोहन की जिन्दगी में भी ये चौराहे आये हैं। कानून की पढ़ाई अंग्रेजों के कानून की सेवा करना अथवा ऊँची नौकरी करना, यह उसके बाल-मन की मंजिल थी। परन्तु प्रियोदा के सम्पर्क में आने के बाद यह 'मंजिल' नहीं 'चौराहा' सञ्चित हुआ है। इसीलिए मनमोहन इस चौराहे की ओर मुड़ता ही नहीं। बाद में शरवतिया का प्यार चौराहा बन जाता है। और मनमोहन बड़े ही संयम तथा कठोरता से इसे भी पार करता है। क्रान्तिकारियों की जीवन-कहानियाँ मुनकर पढ़ाई बीच में छोड़कर उधर चले जाने की इच्छा होती है। "मनमोहन सोचता है अपने बारे में.....लोग उसका नाम लें, जयजयकार करें, वहादुर कहें, उसकी तसवीर छापें, गीतों में उसके नाम का जिक्र हो।"^{५९} 'प्रतिष्ठा' का यह चौराहा उसकी जिन्दगी में आया है। परन्तु फिर "वह तय करता है कि अब वह ऐसे सपने नहीं देखेगा।"^{६०} 'नीलू का प्यार' भी एक चौराहा बन गया था। मनमोहन इस नीलू के कारण ही तो सहीद नहीं हो सका है। इसी कारण पश्चात्ताप की अग्नि में वह झुलसता रहा। और फिर 'अकेलेपन' की यात्रा शुरू हो जाती है। इस प्रकार के कई चौराहों को पार करने वाला ध्येयवादी आदमी जिन्दगी में 'अकेला' ही रह जाता है। मनमोहन इसी कारण अन्त में 'अकेला' ही है।

अपनी मजिल बनाकर उसकी ओर बढ़ने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं । एक वे जिनके मार्ग पर कोई 'चौराहा' आता ही नहीं । मोह, उलझन अथवा द्वन्द्वात्मक स्थिति से वे गुजरते ही नहीं । सीधे चलने लगते हैं । और मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती । बड़े सुदैवी होते हैं ऐसे लोग । परन्तु दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो मजिल की ओर बढ़ने लगते हैं तो अनेक प्रकार के 'चौराहे' आने लगते हैं । वासना, सम्पत्ति, सतति, प्रतिष्ठा, मोह, स्वार्थ आदि अनेक प्रकार के इन चौराहों की वे दृढ़ता, निष्ठा तथा मयम के साथ पार करते हुए मजिल पर पहुँच जाते हैं । ऐसे ही लोग महान् कहलाने योग्य होते हैं । मनमोहन इसी प्रकार का व्यक्ति है । पहले के लोगों का रास्ता सीधा, सरल होता है । उन्हें कोई परीक्षा नहीं देनी पड़ती । दूसरे प्रकार के लोगों का मार्ग बाटों से भरा हुआ होता है । उन्हें कई परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं । अनिर्णय की स्थितियाँ उभरती हैं । यही पर एक बहुत बड़ा खतरा होता है कि वे किसी 'आकर्षक चौराहे' को ही 'मजिल' समझकर स्वीकार कर लें । वास्तव में ये चौराहा परीक्षा के केन्द्र होते हैं । मनमोहन इन सारी परीक्षाओं में सर्वाधिक सफल हो गया है । इस प्रकार इस शीर्षक का सम्बन्ध सीधे मनमोहन की जिन्दगी के साथ जुड़ा हुआ है ।

इस शीर्षक द्वारा लेखक ने सन् १९३०-४६ तक के लोगों की जीवन-दृष्टि की ओर सन्नेत किया है । विविध प्रकार के मोह तथा आकर्षणों को त्याग कर इस देश की जनता स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कूद पड़ी थी । ११ वर्ष के मनमोहन से लेकर ३०-३५ वर्ष के काका, हफीज मियाँ, बड़े महागज की जीवन दृष्टि इसी प्रकार की थी । वे लोग इन अनेक चौराहों को पार करते हुए आगे बढ़े, इसीलिए स्वतन्त्रता का उपभोग हमारी पीढ़ी कर पा रही है ।

शास्त्रीय दृष्टि से विचार करें तो कहना होगा कि शीर्षक देने की कई परम्पराएँ रही हैं । उपन्यास में वर्णित (अ) प्रमुख घटना (आ) प्रमुख पात्र (इ) प्रमुख स्थान अथवा (ई) प्रमुख जीवन-दृष्टि को केन्द्र में रखकर शीर्षक दिये जाते हैं । आधुनिक काल में 'प्रतीकात्मक शीर्षक' देने की पद्धति शुरू हुई है । प्रतीकात्मक शीर्षक एक ही समय अनेक अर्थ देने लगते हैं । 'जिनने चौराहे' यह शीर्षक इस अर्थ में प्रतीकात्मक है कि वह विशिष्ट जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करता है । प्रमुख पात्र की मन स्थिति का व्यक्त करता है तथा घटनाओं की ओर भी सन्नेत करता है ।

इस शीर्षक के द्वारा लेखक नई पीढ़ी के सम्मुख आदर्श भी रख रहा है । जीवन के इस काल-प्रवाह में आने वाले खतरों की ओर भी सूचित कर रहा है । समभवतः वह अप्रत्यक्ष रूप में सुझा रहा है कि एक 'मनमोहन' इन चौराहों को पार करता हुआ आगे निकल चुका है । हमारी स्थिति क्या है ? ऐसा तो नहीं हो रहा है कि हम जिसे मजिल समझकर आगे बढ़ रहे हैं, वह वास्तव में 'चौराहा' तो नहीं

क्या इन चौराहों को पार करने की चारित्रिक दृढ़ता, संयम तथा नियंत्रित मन हमारे पास है ? आखिर मंजिल और चौराहों में अन्तर कैसे कर पाएँगे ? संभवतः मंजिल वही श्रेष्ठ है जिससे 'दस' और 'देस' को लाभ होता है। हमारी मंजिल 'दस और देस' से सम्बन्धित है अथवा केवल 'मैं' से ! वास्तव में यह शीर्षक युवा पीढ़ी को आत्म-निरीक्षण के लिए मजबूर कर देता है। इसीकारण यह शीर्षक अत्यन्त ही सार्थक और आकर्षक बन गया है। छात्रों पर योग्य और आदर्श संस्कार डालने की शक्ति इस उपन्यास और शीर्षक में है। इसीकारण इसे एक "संस्कारप्रधान उपन्यास" कह सकते हैं।

आंचलिकता:—'कितने चौराहे' की आंचलिकता को लेकर अनेक प्रश्न उठाये जा सकते हैं और उठाए गए भी हैं। श्री पूर्णदेव एम० ए० इसे "रेणु का पार्श्वार्ध और अब तक प्रकाशित अखिरी आंचलिक उपन्यास"¹¹ मानते हैं। दूसरी ओर डा० विवेकीराय अपने प्रबन्ध "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन" में रेणु के आंचलिक कथा-साहित्य के अन्तर्गत 'मैला आंचल', 'परती परिकथा' और 'जुलूस' इन तीन उपन्यासों तथा 'ठुमरी' और 'आदिम रात्रि की महक' इन कहानी-संग्रहों का उल्लेख करते हैं। आंचलिक उपन्यासों के अन्तर्गत वे 'कितने चौराहे' का कहीं पर उल्लेख नहीं करते।¹² स्पष्ट है विवेकीराय इसे आंचलिक नहीं मानते। डा० ज्ञानचन्द्र गुप्त के अनुसार "आंचलिकता की दृष्टि से रेणु की अत्यधिक सफलता मिली 'मैला आंचल' में। परन्तु बाद में 'रेणु जी स्वयं अपने बाद के तीन उपन्यासों—'जुलूस', 'दीर्घतपा' और 'कितने चौराहे' में चुकते से दृष्टिगत होते हैं अन्वया चमत्कारिकता के चक्कर में न पड़ते।"¹³ उन तीन उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'कितने चौराहे' की आंचलिकता पर एक निश्चित निर्णय नहीं दिया जा सकता। दुर्भाग्य से हमारे यहाँ ऐसा समझा जाता है कि श्रेष्ठ आंचलिक कथाकार की प्रत्येक कृति आंचलिक ही होती है। इसी कारण रेणु की प्रत्येक कृति को आंचलिक घोषित किया गया है। अथवा एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह हो सकता है कि आंचलिकता के मानदण्ड अभी स्पष्ट नहीं हुए हैं। अन्य विधाओं की अपेक्षा यह काफी नई होने से अभी हम निश्चित रूप से कुछ निर्णय नहीं ले पा रहे हैं। इसी कारण यह समीक्षा की एक मर्यादा हो सकती है। सर्वसाधारणतः 'मापा' तथा 'परिवेश' इन दो मानदण्डों के आधार पर ही कृति की आंचलिकता सिद्ध की जा रही है। मापा तथा परिवेश का तो आंचलिक साहित्य में अनन्य साधारण महत्त्व होता है। यहाँ तो 'परिवेश' ही नायक है। परिवेश की विशिष्टता के कारण ही पात्रों की प्रतिक्रिया विशिष्ट पद्धति से होती रहती है। हर कार्य, घटना तथा चारित्रिक दोष के लिए 'परिवेश' ही कारण होता है। इस परिवेश का वज़ा ही सूक्ष्म, विस्तृत तथा तटस्थ चित्रण आंचलिक कथा-साहित्य में आवश्यक होता है। मापा और परिवेश के साथ-साथ वहाँ की

सांस्कृतिक का चित्रण भी जरूरी होता है। डा० विवेकीराय ने अपने प्रबन्ध में आचलिक साहित्य के मानदण्डों को निश्चित करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है। उनके अनुसार आचलिक साहित्य में ग्राम-जीवन की आर्थिक समस्याओं (जमींदारी, योजना विकास, सहकारिता, गरीबी, भूमिहीन और भूदान, मध्यमवर्ग, नारी-चित्रण, नगरोन्मुखता, निम्न मध्यवर्ग, आर्थिक विघटन, आर्थिक संक्रमण), सांस्कृतिक स्थितियों (धर्म, धर्म की दीवारें, विवाह, विवाह-विट्टियाँ, ब्रौडा, त्योहार, मेला, लोकाचार, अश्विद्वारा लोकगीत, लोककथा, रामलीला, सरकारी समारोह, शिक्षा, अध्यापक, अछूत, ग्राम सौन्दर्य, ग्राम-रचना), नये सामाजिक मूल्यों (मूल्य संक्रमण, नई नैतिकता, अस्पताल, परिवार नियोजन, सम्बन्धों में सनाव, पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यक्ति विघटन, भ्रष्टाचार) तथा नये गाँव की समस्याओं (ग्राम पंचायत, पंचायती के दोष, समापति, सरपंच, चुनाव-संघर्ष) का चित्रण जरूरी है। श्री पूर्णदेव के अनुसार "इन उपन्यासों की दृष्टि अचलकेन्द्रित होती है।" "कथा के गठन का आधार कथानक, पात्र अथवा उद्देश्य-विशेष न होकर एक विशिष्ट भूभाग होता है, अतः कथानक अचलकेन्द्रित होता है।" जैनेन्द्र जी के अनुसार "आचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है जिसके केन्द्र में कोई पात्र या चरित्र उतना नहीं, जितना वह भूभाग स्वयं है।" "नायक-मूल्यता आचलिक उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता नहीं जा सकती है।" "विभिन्न पात्रों की अलग-अलग विशेषताएँ मिलकर अचल के सामूहिक चरित्र को प्रकट करती है।" "लेखक उस अचल विशेष की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक विभूतियों का यथास्तथ्य चित्रण करके उसके बहिरंग का मानचित्र प्रस्तुत करता है तथा दूसरी ओर वहाँ के निवासियों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विचारों और परम्पराओं का अंकन करके उस अचल की आन्तरिक चेतना को निरूपित करता है।" डा० धनजय वर्मा के अनुसार "उपन्यासों में लोकरंगों को उभारकर किसी अचल विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासों को आचलिक उपन्यास कहा जायगा।" डा० हरदयाल के अनुसार "आचलिक उपन्यास वह है जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के वैविध्यपूर्ण जीवन का चित्रण हो। जिसमें वहाँ की भाषा, लोकगीतियाँ, लोककथाएँ, लोकगीत, मुहावरे और लहजा, वेशभूषा, धार्मिक-जीवन, समाज, संस्कृति तथा आर्थिक और राजनीतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आएँ।" इनकी रचना को लेकर कहा गया है कि आचलिक उपन्यासों की रचना के प्रमुख विधायक तत्त्व हैं—"नवीन कथा-विन्यास, जटिल यथार्थवादी विशिष्ट परिवेश, पात्रों की परिवर्तित मन स्थितियाँ, आचलिक सन्दर्भों एवं स्वरो से रचित भाषा तथा विम्बों, प्रतीकों और रंगों की अद्भुत योजना।" इन विभिन्न उद्घरणों में आचलिक उपन्यासों के मानदण्ड निश्चित करने का प्रयत्न हुआ है। इन विभिन्न मतों के आधार

पर आंचलिक उपन्यासों के मानदण्ड स्थिर किये जा सकते हैं—जो इस प्रकार होंगे—

(१) ग्रामजीवन की आर्थिक समस्याओं, सांस्कृतिक स्थितियों, नये सामाजिक मूल्यों तथा गाँव की नई समस्याओं का चित्रण उसमें हो ।

(२) दृष्टि अचल-केन्द्रित हो ।

(३) नायकयून्यता हो—अचल का साभूहिक चरित्र ही व्यक्त हो ।

(४) अंचल की आन्तरिक चेतना व्यक्त हो ।

(५) अचल-विशेष की भाषा, लोककथा, लोकगीत, मुहावरे, वेद्यभूषा, धर्म-जीवन आदि की अभिव्यक्ति हो ।

(६) नवीन कथा-विन्यास, जटिल यथार्थवादी विविष्ट परिवेश, पात्रों की परिवर्तित मनस्थितियाँ, आंचलिक सन्दर्भ, आंचलिक विम्व, प्रतीक और रंगों की योजना ।

उपर्युक्त छह मानदण्डों के आधार पर 'कितने चौराहे' उपन्यास की समीक्षा अगर हम करना चाहे तो काफी निराश होना पड़ता है । क्योंकि 'कितने चौराहे' पूर्णतः आंचलिक उपन्यास है ही नहीं । किन्ती एक विशेष अचल के कारण यह कथा घटित हुई है—ऐसा भी दावा नहीं कर सकते । भारत के किसी भी प्रदेश के किसी भी कोने के स्कूल के बच्चों में ऐसा घटित होना नभव है । चरित्रों के परिवर्तन तथा घटनाओं के लिए 'अचल' नहीं 'बहु विशेष काल' कारणीभूत है । इसी कारण 'कितने चौराहे' काल-विशेष की नींव पर खड़ा है; अचल-विशेष की नहीं । केवल रेणु ने यह उपन्यास लिखा है इसलिए आंचलिक कहना वास्तव में उस काल-विशेष की शक्ति के प्रति अन्याय करना है । अररिया कोर्ट के स्थान पर भारत का कोई भी कस्बा हो सकता है । हाँ, हम अलवत्ता यह कह सकते हैं कि 'कितने चौराहे' में 'कन्वार्ड जीवन' की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है । पृष्ठभूमि के रूप में यहाँ कस्बा है । कस्बाई जीवन के गुण-दोषों की चर्चा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उसमें काफी हुई है । वास्तव में आधुनिक भारत की संस्कृति 'कस्बों' में ही विकसित हो रही है । कस्बे-जो न शहर हैं और न देहात । आंचलिकता के गुण उसमें हैं तथा शहरी जीवन के दोष भी ।

पूरन विश्वास, उसकी मशायी वृत्ति, बड़े महाराज को लेकर विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ, पूरन विश्वास का भ्रष्टाचार के मामले में पकड़ा जाना, मोहरिल मामा का घर, मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण, दीपू-तपू और नीलू का व्यक्तित्व, बकीलों के घर, उनका व्यवहार, ट्रेजरी ऑफिस, कोर्ट, नहमील, पिकेटिंग, जेल—आदि विभिन्न व्यक्तियों, स्थानों, घटनाओं में स्पष्ट है कि इन उपन्यास का सम्बन्ध कस्बे में ही अधिक है । कन्वार्ड जीवन की क्षारी विशेषताओं की अभिव्यक्ति इसमें हुई है । उसका

अर्थ यह नहीं है कि इसमें आचलिक तत्त्व हैं ही नहीं । इसमें शहर और अचल के संस्कारों का समन्वय हुआ है । इसी कारण इस उपन्यास में आचलिक तत्त्वों को हम रेखांकित कर सकते हैं । डा० निवेकीराय ने जिस तरह अपने प्रबन्ध के परिशिष्ट २ में हाल ही प्रकाशित चार उपन्यासों (अलग-अलग चैतरणी, जल टूटता हुआ, राग दरबारी और रोछ) के सम्बन्ध में जो शीर्षक “अनाचलिक उपन्यास, जिसमें समकालीन लोक जीवन रेखांकित हुआ है” दिया है, वही ‘कितने चौराहे’ के सम्बन्ध में भी पूर्णतः सार्थक लगता है । क्योंकि इसमें भी लोक-जीवन के जगद्विश्वासों (मनमोहन की माँ का स्वप्न), लोकगीतों (गाँधी स सम्बन्धित गीत), कृषि-संस्कृति, कृषि सौंदर्य और विवाह विकृतियों (शरवतिया के नये विवाह को लेकर), शिक्षा (मनमोहन की आरम्भिक शिक्षा), परम्परागत धारणाओं (जिम लडकी का कपाल चौड़ा हो वह जवानी में ही बेचा हो जाती है।^{११}), ग्रामीण जनता पर होने वाले अत्याचारों (महंगाई, अकाल, अनावृष्टि के मारे किसानों पर जमींदारों का जोर-जुल्म, अत्याचार होता है ।)^{१२} का यथार्थ चित्रण हुआ है । इसकी शैली में आचलिक शब्दों का जहाँ तहाँ प्रयोग भी हुआ है । परन्तु इसमें आचलिकता के अन्य लक्षण नायक-सून्यता, अवलोकन-दृष्टि, अचल का सामूहिक चरित्र, जटिल यथार्थ-वादी विशिष्ट परिवेश, आचलिक विम्व प्रतीक, अचल की आन्तरिक चेतना—आदि का सम्पूर्ण अभाव है । लेखक ने ‘अररिया कोर्ट’ की कथा कहा है । कस्बे की मारों विशेषताएँ अररिया कोर्ट में मिलती हैं । पूरी कथावस्तु ‘अररिया कोर्ट’ के परिघेद में ही घटित होती है । फिर यह, कहना कि यह ‘आचलिक उपन्यास’ है, ‘अररिया कोर्ट’ के अस्तित्व को ही नकारता है ।

टिप्पणियाँ

- १ रेणु का आचलिक कथा साहित्य - श्री पूर्णदेव, पृष्ठ ५० ५१
- २ कितने चौराहे फणीश्वरनाथ रेणु : पृ० ८३
- ३ कितने चौराहे, पृ० ९९
- ४, ५. वही, पृ० १४१
- ६, ७ वही, पृ० १४३
- ८, ९, १०, ११. वही, पृ० ७
१२. वही, पृ० ११
१३. वही, पृ० १६
- १४, १६ वही, पृ० ३१
- १५ वही, पृ० ३०
- १७ वही, पृ० ४४

२३८ । हिन्दी उपन्यास : विविध आशय

१८. कितने चौराहे, पृ० ५८

१९. वही, पृ० ६२

२०. वही, पृ० ६३

२१, २२, वही, पृ० ६७

२३. वही, पृ० ६८

२४. वही, पृ० ७६

२५. वही, पृ० ७९

२६. वही, पृ० ८९

२७. वही, पृ० ९६

२८. वही, पृ० ९९

२९. वही, पृ० ११२

३०. वही, पृ० ११६

३१. वही, पृ० ११७

३२, ३३. वही, पृ० १४०

३४, ३५. वही, पृ० १४३

३६. वही, पृ० ४०

३७. वही, पृ० १०६

३८. वही, पृ० ८८

३९. वही, पृ० ३४

४०. वही, पृ० १२९

४१. वही, पृ० १३८

४२. वही, पृ० ४७

४३. वही, पृ० ४६

४४, ४५. वही, पृ० ४७

४६. वही, पृ० २७

४७. वही, पृ० ८९

४८. वही, पृ० ४७

४९. वही, पृ० ४९

५०. वही, पृ० ५१

५१. वही, पृ० ५७

५२. वही, पृ० ७१

५४. वही, पृ० ७६

५५. वही, पृ० ८०

५६, ५७ कितने चौराहे, पृ० ८०

५९ वही, पृ० ९९

६० वही, पृ० १०७

६१, ६२ वही, पृ० ११०

७६ वही, पृ० ४६

७७ वही, पृ० १३७

३५, ५८, ६३ रेणु का आचलिक कथा साहित्य श्री पूर्णदेव एम ए, पृ० ५९

६४ स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य में ग्राम-जीवन डा विवेकीराय, पृ० १४१-१४५

६५ आचलिक उपन्यास सवेदना और शिल्प डा ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृ० २०

६६ स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य में ग्राम जीवन : डा विवेकीराय, पृ १०-१४

६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२ रेणु का आचलिक कथा साहित्य श्री पूर्णदेव
पृ १२-१३

७३ आलोचना (त्रैमासिक) अक्तूबर, १९६७, डा धनजय वर्मा

७४ आधुनिक हिन्दी साहित्य डा हरदयाल, पृ ८०

७५ आचलिक उपन्यास सवेदना और शिल्प ज्ञानचन्द्र गुप्त पृ १७

राग दरवारी : भारतीय जीवन का जीवन्त दस्तावेज

ओम्प्रकाश होलीकर

आज के भारतीय जीवन के इस पक्ष की (पननोन्मुखता, गिरावट, विवृति, मूल्यहीनता) बहुत सी विभिन्न स्थितियों के बड़े प्रभावी चित्र 'राग दरवारी' में हैं, जो हमारे चिर-परिचित अनुभव को फिर से ताजा करते हैं।

—नैमिचन्द्र जैन

'रागदरवारी' ग्रामीण पद्यार्थ की क्रूरता को बहुत निर्मम भाव से उजागर कर सता है।

—रामदरश मिश्र

आजाद हिन्दुस्तान की राजनीति से इस दौर में चले विक्रम कार्यों से, सरकार और उसकी नीकरशाही से तथा दूसरे ओजारों की गतिविधियों से इस दरमियान किम तरह की ओलादों पैदा हुई हैं, उनका व्यक्तित्व शास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र क्या है—यही रागदरवारी की वस्तु है।

—कमलेश

'समाज का प्रतिनिधित्व'—की दृष्टि से रागदरवारी को महाकाव्यात्मक उपन्यास कहने में कोई सकोच नहीं होता।

—शानिस्वरूप गुप्त

प्रामाणिक अनुभूतियों को लेकर जिस प्रकार इस उपन्यास का आरम्भ हुआ है, यदि व्यंग्य एवं हल्के-फूल्के सतही विवरणों के मोह में न पड़कर उसे गहरी अन्तरदृष्टि से, सूक्ष्मता से ग्रहण करने की कोशिश की होती तो निश्चय ही यह उपन्यास विगत बीस वर्षों की एक विशिष्ट उपलब्धि बन सकता था।

—लक्ष्मीसागर वाष्ण्य

राग दरबारी

स्वातंत्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज का चित्र इस काल के उपन्यासों का प्रमुख विषय है। इन उपन्यासकारों ने स्वातंत्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज की उथल-पुथल, आरोह-अवरोह, गति-स्थिति, पुरातन-अधुनातन का संघर्ष तथा टूटन, घुटन, क्षोभ, निराशा, हताशा, कुंठा, मूल्यहीनता, अनैतिकता आदि आधुनिक समाज की मानसिकता को अपना उपजीव्य बनाया। कविता और कहानी में आधुनिकता के ये विम्ब स्पष्ट और बहुलता से उमरे हैं, किन्तु उपन्यास और वह भी विशालकाय उपन्यास में बहुत कम मात्रा में चित्रित हुए हैं। संभवतः इसका कारण उपन्यास के लिए आवश्यक विराट और व्यापक अनुभव का होना नितान्त जरूरी है, जो कि कुछ ही रचनाकारों के पास होता है। व्यापक कथा-फलक और विराट अनुभव वाले उपन्यासों में 'राग दरबारी' अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है।

राग दरबारी : औपन्यासिक कटघरे के दायरे में—इस उपन्यास का रचना-काल सन् १९६८ ई० है। इस उपन्यास का मूल विषय स्वतंत्रता-परवर्ती भारतीय समाज की मूल्यहीनता को चित्रित करना है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टियों से भारतीय समाज पतन के कगार पर खड़ा हुआ है। इस गिरावट या पतनोन्मुखता को ही श्रीलाल शुक्ल ने अपनी कथा के केन्द्रीय स्थल के रूप में स्वीकारा है।

कथानक—उपन्यास की कथा का मुख्य केन्द्र 'शिवपालगंज' है। 'शिवपालगंज' उत्तर प्रदेश का एक काल्पनिक गाँव है। इस गाँव की दैनंदिन जीवन की घटनाओं का व्योरा प्रस्तुत किया गया है। यह गाँव वास्तविक रूप से अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता। वह प्रतीक है—स्वातंत्र्योत्तर भारत के किसी भी विकृत तथा पतनोन्मुख गाँव का और साथ ही सम्पूर्ण भारत का भी। क्योंकि स्वयं 'भारत' ग्रामों में ही बसा हुआ है। इसलिए रचनाकार ने गाँव की कल्पना के माध्यम से सम्पूर्ण भारत की पतनोन्मुखता का मखौल उड़ाया है। शिवपालगंज केवल उत्तर भारत का ही कोई गाँव हो, वह भी जरूरी नहीं है। हाँ, अलवत्ता यह जरूर है कि इस गाँव की

कुछ विशिष्ट अचलीय घटनाएँ यही परिलक्षित होती हैं जो समग्र है, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण भारत के गाँवों में न मौजूद हो। किन्तु ग्रामीण जीवन की इन आवश्यक घटनाओं, रीति रिवाजों की बजाय लेखक का गाँव के समग्र चित्र को प्रस्तुत करना ध्येय रहा है। अतः 'शिवपालगज' का मूल स्वर—पतनोन्मुखता गिरावट विवृति मृत्युहीनता—जो हमें भारत के किसी भी गाँव में सुनाई पड़ता है। यहाँ तक कि नामपरिवर्तन से वह अपना ही गाँव प्रतीत होने लगता है, जो कि हम चिर-परिचित है जिसकी सभी घटनाएँ जीवन प्रक्रिया आदि से हम सम्बद्ध हैं। एक गाँव को केन्द्र मानकर भी लेखक की तन्स्पृशनी दृष्टि में उसका कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह सका है। जल्यत व्यापक घरातल पर उसकी कथा का विकास होता चलता है। समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू को उसने बहुत खबी के साथ चित्रित किया है जिसे देखकर अपने ही गाँव का चिर-परिचित समग्र चित्र पाठकों की आँखों के सामने तैर उठता है। "आज के भारतीय जीवन के इस पक्ष की बहुत सी विभिन्न स्थितियों के बड़े प्रभावी चित्र 'राम दरबारी' में हैं जो हमारे चिर-परिचित अनुभव की फिर से ताजा करते हैं।" हाँ यह शिवपालगज स्वामाविक ग्रामों से थोड़ा-सा प्रगत और उन्नत दिखाई देता है, किन्तु इस अन्तर में भी अस्वामाविकता नहीं आ पाती। क्योंकि भौतिक या वाह्य उन्नति की बजाय दोनों के दैनंदिन क्रिया-कलाप, जीवन-पद्धति इत्यादि समान दिखाई देती हैं।

३७४ पृष्ठों के इस विशालकाय उपन्यास के कथाफलक का व्यापक होना जरूरी ही है। अतः कथा का मूल विषय शिवपालगज का चित्रण ही है और इस गाँव में भी 'छागमल विद्यालय इंटरमीडिएट कॉलेज' को कथा के केन्द्र के रूप में चुना है। इस बड़े उपन्यास की मुख्य कथा को एक ही पंक्ति में इस प्रकार कहा जा सकता है—'शिवपालगज' के सभी क्षेत्रों की उथल पुथल का चित्रण। वस्तुतः इनके सुदीर्घ उपन्यास में मृत्युहीन एक ग्राम का चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त दुष्पर कार्य है, क्योंकि विवृति, धिनीनापन, गिरावट, मृत्युहीनता आदि से ग्रस्त भारतीय समाज के चित्र का साक्षात्कार पाठक दुरु से अन्त तक करता है—बिना ऊबते हुए। यही थोलाल मुकल का सब से बड़ा कौशल है। व्यय उसका एक ऐसा माध्यम है कि जिससे वे भारतीय सामाजिक मृत्युहीनता की पतों को उघाड़ते हुए भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किए हुए रहते हैं। लेखक शिवपालगज का चित्रण करते हुए उस गाँव की छोटी से छोटी गतिविधि पर पूरी-पूरी नजर रखता है। इसलिए वह गाँव के माध्यम से—सहकारी संस्था चुनाव, पंचायत बैंक मुल्लिम, शिक्षा सम्मेलन, प्राध्यापक प्राचार्य, सचालक मंडल, न्यायालय, बैंक, सरकारी नौकर, डॉक्टर, दुकानदार, व्यापारी, अफसर, सत्तारूढ दल, विरोधी दल, पंचवार्षिक योजनाएँ, भ्रष्टाचार, युवा जगत्, प्रेम, अंतरराष्ट्रीय स्थिति, फिल्म, जुआरी, रिवाजवाले, पहलवान, गूडे,

कृषि, अखवार, विज्ञापन, विवाह-पद्धति, दहेज प्रथा, वेकारी, धर्म, यूथ फेस्टिवल, नारेवाजी, खेलकूद, भूदान यज्ञ, वनसंरक्षण, वृक्षारोपण, भाषा-समस्या, बुद्धिजीवियों की पलायनवादी वृत्ति इत्यादि न जाने कितने ही ऐसे दैनंदिन जीवन के विषयों का स्पर्श करता हुआ अपनी कथा का विकास करता है—व्यंग्य के सहारे ।

विषय की परिधि अत्यन्त विशाल है । अतः केवल अध्ययन की सुविधा के लिए वैद्यजी की कथा को मुख्य कथा और शेष कथाओं को सहायक कथाओं के रूप में माना जा सकता है । यद्यपि ऐसा विभाजन न तो संभव है, न ही लेखक का उद्देश्य रहा है । क्योंकि मुख्य कथा जितनी महत्वपूर्ण, उतनी ही और कहीं-कहीं तो उससे ज्यादा ये सहायक कथाएँ विविध पहलुओं को उजागर करने में समर्थ बन पड़ी हैं । विषय की विविधता से कथानक में रोचकता का समावेश हुआ है, किन्तु साथ ही सुसूत्रता का अभाव दिखाई देता है । कथा विखरी-विखरी सी लगती है फिर भी कथानक में कहीं ऊँच नहीं आ पायी है । ऊँच और एकसूत्रता के अभाव को लेखक ने परिच्छेद-विभाजन के माध्यम से कम करने का प्रयत्न किया है । क्योंकि ये परिच्छेद स्वयं एक पृथक् स्नैप हैं, चित्र हैं जो मूल्यहीनता, विकृति, विमंगति और अनैतिकता का पर्दाफाश करते हैं । पृष्ठों की बड़ी संख्या के कारण उत्पन्न होने वाली नीरसता से इसी परिच्छेद-विभाजन ने बचाया है । साथ ही ये विभिन्न परिच्छेद भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का अंकन करते हैं, जिनसे विषय-विविधता के कारण भी नीरसता नहीं आ पाई है । उपन्यास की कथा की गति में आरोह-प्रत्यारोह भी नहीं है अतः कथानक की गति में त्वरा नहीं है । वह समान गति से अपनी आस-पास की भूमि का स्पर्श करता है । किन्तु कथानक की गति में त्वरा न होते हुए भी पाठक व्यंग्य के माध्यम से उत्पन्न होने वाली रोचकता के कारण कथा में रमा रहता है । शुरु से अन्त तक कहीं-कोई उतार-चढ़ाव नहीं । कथानक समान धरातल पर चरता है । उपन्यास के प्रारम्भ में कोई पृष्ठभूमि नहीं है और न ही अन्त में उपसंहार ।

कथानक की सब से बड़ी विशेषता है विषय का मौलिक होना । यद्यपि सामाजिक पतन की अवस्था को लेकर न जाने कितने ही उपन्यास हिन्दी में लिखे गए हैं फिर भी उन सब से अलग दृष्टिकोण को लेकर, व्यंग्य का सहारा लेकर, व्यंग्य से मूल्यहीनता के साक्षात्कार से उत्पन्न मानसिक तनाव को हल्का कर लेखक ने भारतीय समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, जो पूर्णतः यथार्थ है । “राग दरवारी” ग्रामीण यथार्थ की क्रूरता को बहुत निर्मम भाव से उजागर कर सका है ।¹³ विषय की इस मौलिकता के कारण कथानक में नवीनता, रोचकता, कौतूहल, प्रभावोत्पादन और आकर्षकता आ गई है । लेखक की विशेषता विषय को नवीन दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने तथा प्रस्तुत करने में है । उनके लेखन का विषय एक सामाजिक जानवर है, मानव प्राणी नहीं । श्रीलाल शुक्ल ने इन्सान के भीतर बैठे हुए हैवान

को चित्रित करने की कोशिश की है जो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए घातक है, मानव-संस्कृति का रोग है। और व्यंग्यकार के लिए तो यह और भी आवश्यक बन जाता है कि वह मानव के वास्तव चित्रण की बजाय उसके भीतरी स्वभाव को उजागर करे। वैद्य, रंगनाथ आदि के माध्यम से लेखक ने आधुनिक सामाजिक जीवन की विकृति, दमूँहापन, मुग्धोद्वेगन को अभिव्यक्त किया है। अतः सम्पूर्ण 'राग दरबारी' में 'सिद्धपालगज' के गजहो का चित्रण प्रमुख नहीं अपितु मानसिक, सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से विकृत और पतित मानव का चित्र प्रस्तुत करना रहा है, जो विषु या हैवान को अपने भीतर सहेजे और सजोए हुए है। वही हमारा असली स्वरूप है जिसे हम छिपाए रहते हैं। एकात में जिसमें साक्षात्कार करते हैं, जो हमारे जीवन का नियामक और संचालक है। इन्सानियत की खाल में छिपे हुए हैवानियत को चित्रित करना उनका प्रमुख ध्येय है। और इस पशु का चित्र व्यंग्य के माध्यम से खींचा है जो मर्माहत करने की बजाय गुदगुदता है और अततोत्पत्ता आत्म साक्षात्कार के लिए बाध्य करता है। इसी दृष्टि से ऊपर विषय को पूर्णतया मौलिक कहा गया है। "आजाद हिन्दुस्तान की राजनीति से, इस दौर में चले विकास-कायों से, मरजार और उसकी नीकरशाही से तथा दूसरे जोरारों की गतिविधियों में इस दरमियान किस तरह की औलादें पैदा हुई हैं, उनका व्यक्तित्वशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र क्या है—यही 'राग दरबारी' की धस्तु है।"

कथानक की दूसरी विशेषता है—घटनात्मक सत्यता की। लेखक सम्पूर्ण उपन्यास में यथार्थ की सभावना का नहीं अपितु यथार्थ का चित्रण करता है। जा है वा वह अनावरण करता है। चाहिए की कल्पना नहीं करना। अतः घोर तथा क्रूर यथार्थपरक लेखक का दृष्टिकोण रहा है किन्तु फिर भी कहीं भी वीभत्सता तथा अदलीलता के दर्शन नहीं होते। गाँव को वेद्व बनाने के कारण "आज की राजनीति ने भारतीय गाँव की जिन्दगी को कितना तोड़ दिया है, उसमें कैसे-कैसे अजनबी स्वर उभार दिए हैं, लेखक ने बहुत सहज भाव से इस यथार्थ को मूर्त किया है।" लेखक गाँव के जीवन की प्रत्येक घटना का अंकन करता है, फिर वह शौच की क्यों न हो। कई आलोचकों के मतानुसार लेखक ऐसे प्रमगों से बच सकता था, जिसमें प्यास में वीभत्सता और अदलीलता नहीं आ पाती थी। किन्तु ऐसे वर्णन जो कि दो-तीन स्थान पर आए हैं, वे सोद्देश्य हैं—मनेत मात्र से काम नहीं चल सकता था। अतः जान-बूझकर किन्तु अदलील या घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण को न रखकर ग्रामीण जीवन की सघाटता का अत्यन्त मशहूर बयानी से वर्णन किया है। 'राग दरबारी' जब गाँव की कथा को वेद्व मानकर लिखा गया है तो गाँव को सामान्य घटना को भी चित्रित करना लेखक का कर्तव्य हो जाता है। अतः औरतों के प्रान्विधि में सम्बन्धित वर्णन ग्रामीण जीवन-व्यवस्था की श्रेष्ठता के उपहास रूप में किया गया है।

एक तरफ हम गाँवों में भारत की आत्मा और संस्कृति को मौजूद बताते हैं, तो दूसरी तरफ आश्चर्य की बात है कि ग्रामीण जीवन सामान्य मानव की नागरी सभ्यता और प्रगति से कोसों दूर है और इस दूरी को पाटने का कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। यहाँ वे राममनोहर लोहिया की दिचारधारा के समीप आ जाते हैं। उनका मत था कि मनुष्य की स्वच्छता का मूल्यांकन करना हो तो उसके शौचालय को देखकर किया जा सकता है। अतः यदि आधुनिक ग्रामीण जीवन में अभी भी इस ओर किसी राजनेता या समाज-सुधारक का खयाल नहीं आ पाता जो कि नितांत जरूरी है। अतः इस वर्णन को अश्लील कहना समुचित प्रतीत नहीं होता। तभी तो विदेशी यात्री अल्बुअस हक्सले भारत-यात्रा के अपने सस्मरणों से अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटनाओं और मुरम्य स्थलों के साथ-साथ 'गार्ड ऑफ़ आनर' वाले दृश्य का संकेत करना नहीं भूले हैं। लेखक पर अश्लीलता का आरोप लगाना अयुक्तियुक्त है। क्योंकि अगर उसे अश्लील चित्र प्रस्तुत करने होते तो स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से भरे उद्दीपक चित्रों की कल्पना कर सकता था किन्तु वह उनसे बचता चला है। फिर भी दो-चार स्थलों पर ऐसे दृश्यों को वह चित्रित करता है तो यथार्थपरक ही, न कि उद्दीपक।

कथानक का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग 'पलायन-संगीत' है, जिसकी समायोजना लेखक ने सामग्राय की है। शुरू से अन्त तक व्यंग्यात्मक शैली के कारण हारम मौजूद रहता है किन्तु 'पलायन-संगीत'—जो कि अंतिम परिच्छेद का अन्तिम भाग है—में आकर गंभीर्य, विपाद, हताशा, यथार्थ और आत्म-परीक्षण के स्वर मुखरित हुए हैं। लेखक को ऐसे लोगों से चिढ़ पैदा हो जाती है जो अपने को बुद्धिजीवी कहते हैं। ये स्वयं को 'cream of the society' समझते हैं। जिनमें वैचारिक संघर्ष तो मौजूद रहता है किन्तु अवसर आने पर जीवन की यथार्थता और कटुता को झेलने की बजाय, उन संघर्षों से टकराने की जगह पलायन का मार्ग ढूँढ़ते हैं। वे केवल सामाजिक व्यवस्था तथा अव्यवस्था के प्रति आक्रोश की भाषा करना जानते हैं, उसे कृति में उतारना नहीं। कथनी और करनी का अन्तर इन बुद्धिजीवियों के व्यक्तित्व का प्रमुख गुण है। ये केवल 'अतीत' में ही जीते हैं। और यह 'अतीत बोध' ही उन्हें अकर्मण्य बनाता है। इन बुद्धिजीवियों का काल्पनिक जगत् दल-दल या कीचट के समान है, जिससे उबरना अत्यन्त कठिन है। रंगनाथ के माध्यम से आधुनिक तथा-कथित बुद्धिजीवियों के रूप को 'पलायन-संगीत' में उभारा है। यहीं आकर कथा पाठक को कुछ सोचने के लिए, अपने भीतर झाँकने के लिए विवश कर देती है।

इतना होते हुए भी कथानक में एकात्मकता और संगठनात्मकता का अभाव दिखाई देता है जिसे शैलीगत कौशल, परिच्छेद-विभाजन ने काफी अंशों तक दूर किया है। वर्णनात्मक और विवरणात्मक शैली में मुदीर्य कथा का विकास हुआ है, फिर भी पाठक कहीं भी रुकता नहीं। अतः निःसन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है

कि कुछ दोषों के बावजूद भी कथाओं को गूथने में लेखक अत्यन्त सफल रहा है।

पात्र—विशालकाय उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक न हो तो ही आश्चर्य का विषय है। विषय-वैविध्य के कारण पात्रों की संख्या का यहाँ बाहुल्य है। प्रमुख रूप से १०-१२ पात्र समस्त कथा में गुंथे हुए हैं—वैद्यजी, रगनाथ, रूपन, प्रिन्सिपल, खन्ना, सनीचर, बड़ी पहलवान, रंगड, रामाधीन, बेला। किन्तु इन पात्रों में वैद्यजी और रगनाथ प्रमुख हैं। वैद्यजी सम्पूर्ण घटनाओं के मंचालक हैं और रगनाथ तटस्थ द्रष्टा। इनके अतिरिक्त पात्र स्वयं अपना अस्तित्व रखते हुए भी वे किसी विशिष्ट प्रवृत्ति को चित्रित करने के माध्यम बने हैं।

धैर्य कथा के प्रमुख पात्र है। वे ही नायक बने जा सकते हैं। सारी कथा का ताना-बाना वैद्यजी के चारों ओर ही बुना जाता है। उनके घर पर सारा दरबार जमा होता है। वहीं से सारे गाँव की व्यवस्था की जाती है। वैद्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हैं अतः आदर और श्रद्धा के वे योग्य ही हैं। दूसरे उनका व्यवसाय भी वैद्य का जो कि मानव शरीर का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है। अतः चाहते हुए या न चाहते हुए भी सभी की श्रद्धा यदि वैद्यजी के प्रति हो, तो इसमें बेचारे वैद्यजी का क्या दोष? वे ही शिवपालगज पर राज्य करते हैं किन्तु अपनी इच्छा से नहीं—जनता की इच्छा से। वस्तुतः "असली शिवपालगज वैद्यजी की बैठक में था।" उनके घर की बैठक में दरवार लगा करता है। उनके न रहते हुए बहुत से 'गजदे' उस दरवार की देखभाल करते हैं। और वैद्यजी का काम सेवा का काम है अतः सारे गाँव की देखभाल करना उनका काम है। सारे गाँव की प्रगति और विकास के साधनों और उपायों के वे प्रवर्तक और सरक्षक हैं। गाँव की सभी समस्याओं के वे चेयरमैन हैं। हाँ, जब कभी उनकी इच्छा होती है तो वे किसी दूसरे को—सनीचर—कोई एकाध पद दे देते हैं। किन्तु मुख्य पद 'छगमल इण्टरमीडिएट कॉलेज' मैनेजर का पद वे कभी नहीं छोड़ते। इसी प्रकार 'को-ऑपरेटिव यूनियन' के बारे में रगनाथ के द्वारा पूछे जाने पर रूपन का यह कहना "मैनेजिंग डाइरेक्टर थे और रहेगे।" उनकी शक्तिमत्ता को प्रतिपादित करता है। उनका यह मत था कि ये पद बिकाला-बाधित हैं। कोई सत्ता आए, किसी का शासन हो, कोई सी भी शासन-प्रणाली व्यवहार में लायी जाए, इनसे वैद्यजी के नेतृत्व और सेवा भाव में कोई अन्तर नहीं आता। स्वातन्त्र्योत्तर काल में आधुनिक जीवन में व्यापी हुई crisis of leadership की वैद्यजी जीती-जागती तस्वीर हैं। सिद्धान्त, आदर्श, पथ, मानवीयता आदि सारी बातें ध्येय हैं। येन केन प्रकारेण सत्ता को हथियाना आज की नेताजीरी का प्रमुख तारा है। वैद्यजी यदि चुनाव में जीत नहीं पाते तो वे तमचा पद्धति को स्वीकार करते हैं। वे साध्य पर चल देते हैं, साधन पर नहीं। वे सब की सहायता करते हैं बशर्त वह सिद्धान्तों या आदर्शों की लड़ाई न हो। रंगड को वे कहते हैं—"जाओ

माई तुम धर्म की लड़ाई लड़ रहे हो, उसमें मैं क्या सहायता कर सकता हूँ।” इसके साथ ‘को-ऑपरेटिव यूनियन’ में गवन होने पर उनकी स्पष्टवादिता और सत्यप्रियता दृष्टव्य है—“अब तो हम कह सकते हैं कि हम सच्चे आदमी हैं। गवन हुआ है और हमने छिपाया नहीं है।”^{१८} और गवन कोई दोष नहीं है व्यक्तित्व का। क्योंकि हर वस्तु की तरफ देखने का उनका अपना दृष्टिकोण है। हर शब्द का उनका एक अपना ही अर्थ है—जो लचीला है, स्वार्थ के लिए उसे खूब तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। उनका तर्क है कि “गवन वही कर सकता है, जिसकी अपनी मुद्राएँ न हों।”^{१९} और सहकारी सम्पत्ति किसी विशेष व्यक्ति की न होकर सब की सम्पत्ति है। यदि कोई इस सम्पत्ति का उपयोग करता है तो वह गवन नहीं करता अपितु उसका अनुचित व्यय करता है। और यदि गवन हो भी जाए तो इसमें चौकने का कोई कारण नहीं क्योंकि ‘सहकारी सम्पत्ति के साथ गवन शब्द जुड़ते देखकर उससे घबराना न चाहिए।”^{२०} गवन और सहकारिता मानों परस्पर पूरक हैं। यही उसकी नियति है। और साथ ही व्यक्ति को अपने भीतर रहने वाले दोष छिपाने नहीं चाहिए। उनका सिद्धान्त है कि “दोष को छिपाना न चाहिए, नहीं तो जड़ पकड़ लेता है।”^{२१} अतः वे अपनी बुराइयों को बेलास और बेरोक सब के सामने कह देते हैं। इसमें उनका क्या दोष जो ऐसे भीतर और बाहर दोनों से समान रहने वाले व्यक्ति को अगर सामान्य जनता डकारने की वृत्ति कहती हो।

इस प्रकार वैद्यजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ऐसे ही अन्तर्विरोधों से भरा हुआ है; जो आधुनिक नेता के प्रतीक रूप में चित्रित हैं। आधुनिक नेताओं में माँजूद स्वार्थप्रियता, अवसरवादिता, प्रतिष्ठा, कुर्मी-प्रेम, रियलत्वगोरी, भ्रष्टाचार, गुटबंदी, भाई-भतीजावाद, झूठे आश्वासन सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को अत्यन्त नूष्मता के साथ उजागर करने में लेखक समर्थ हुआ है। इन आधुनिक नेताओं की अपनी भाषा, अपनी ही संस्कृति है। प्राचीन परिभाषाएँ नवीन रूप में ढल गई हैं। इसलिए वैद्यजी भी द्योपनिषद के मन्त्र के आधार पर अपने जीवन को ढालते हैं—“तेन त्यक्तेन मुंजीथाः” अर्थात् त्याग द्वारा भोग करना चाहिए। अन्तर केवल यही है कि ये नेता पहले उपभोग करते हैं, जिसकी अति के कारण उन्हें वे पद छोड़ने पड़ते हैं। तब वे सब के सामने ‘त्याग’ का आदर्श रखते हैं और फिर तिकड़मवाजी के द्वारा पुनः उसे प्राप्त कर लेते हैं।

वैद्यजी के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग है कि वे शिवपालगंज के प्रत्येक व्यक्ति को खूब अच्छी तरह पहचानते हैं। यह नेता या शासक का कर्तव्य भी है। तभी वह उनके दुःखों और कठिनाइयों को दूर कर सकता है। किन्तु उसके साथ-साथ दूसरी बात यह है कि उनके व्यक्तित्व को जनता पूरी तरह नहीं पहचान पाती। ऐसा व्यक्ति ही आधुनिक समाज में चिर नेता रह सकता है। गयादीन का मत है

कि नेता के लिए यह गुण अत्यन्त आवश्यक है—“चाहिए यह कि लीडर तो जनता की नस नस की बात जानता हो, पर जनता लीडर के बारे में कुछ भी न जानती हो।”¹ वैद्यजी ऐसे ही नेता हैं—“ऐसा मैनेजर पूरे मुल्क में न मिलेगा। सीधे के लिए बिल्कुल सीधे हैं और हरामी के लिए खानदानी हरामी।”²

वैद्यजी ‘गुटवदी’ को अपना धर्म समझते हैं। नेता बनने के लिए गुटवदी निहायत जरूरी है। इसके बिना वह समाज-कार्य नहीं कर पाता। इस गुटवदी का वे द्र है—“छगामल विद्यालय इण्टरमीजिएट कॉलेज।” इस कॉलेज में प्राध्यापकों को बिना इण्टरव्यू के नौकरी पर रख लिया जाता है। केवल एक ही योग्यता होनी चाहिए—वैद्यजी के साथ या उनकी चमचेगीरी। ‘प्रिंसिपल’ ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया गया है जिसका काम कॉलेज को व्यवस्थित रूप से चलाने की वजाय कॉलेज के प्रामाण्य में बीती हुई और होने वाली घटना की सूचना पहले वैद्यजी के दरबार में मिलनी चाहिए। उनके आदेश के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। “गुटवदी परमात्मानुभूति की चरम दशा का एक नाम है। वेदात हमारी परम्परा है और चूँकि गुटवदी का अर्थ वेदात से खींचा जा सकता है। इसलिए गुटवदी भी हमारी परम्परा है और दोनों हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं।”³ किन्तु इस गुटवदी से वे कभी बतराते या घबराते नहीं थे, क्योंकि वैयक्तिक विकास और उन्नति के लिए गुटवदी अत्यन्त आवश्यक है। कॉलेज में दो पार्टियाँ, पचायत में दो पार्टियाँ, को-ऑपरेटिव मूविमेंट में दो पार्टियाँ इसी प्रकार शिवपालगज की सार्वजनिक संस्थाओं में वे गुटवदी बनाए रखते थे। क्योंकि उनके सामने शहरी नेताओं का आदर्श था—“यदि तुम्हारे हाथ में शक्ति है तो उसका उपयोग प्रत्यक्ष रूप से शक्ति को बढ़ाने के लिए न करो। उसके द्वारा कुछ नई और विरोधी शक्तियाँ पैदा करो और उन्हें इतनी मजबूती दे दो कि वे आपस में एक दूसरे से संघर्ष करती रहें। इस प्रकार तुम्हारी शक्ति सुरक्षित और सर्वोपरि रहेगी।”⁴

इस प्रकार समग्र रूप से देखने पर वैद्यजी का व्यक्तित्व चिर-परिचित किसी भी नेता के व्यक्तित्व जैसा लगता है, जो पूर्णतः यथार्थ है। अतिरेक, धल्पना या अतिशयोक्ति का अवलम्ब नहीं। बाहर से अत्यन्त सम्य, पवित्र, सहानुभूतिपूर्ण, नापाक, निर्दय तथा छली दिखाई देता है। वे निःशक, स्वार्थी, अर्थलोलुप, सत्तावादी हैं। उनके व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं है। कमी है तो सिर्फ़ एक बात की कि इन्सान की पोशाख में हैवान के रूप को छिपाकर आते हैं। अब जितना जमीन के ऊपर हैं उतना ही नीचे धुसे हुए हैं। पैशाच में चिराग जल रहा है।”⁵

रगनाथ—दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है रगनाथ जो कि निम्नगता के साथ शिव-पालगज की जिन्दगी को देखता है। रगनाथ एम० ए० कर चुका है। आगे उसकी रिसर्च करने की इच्छा है। किन्तु एम० ए० तक पढ़ते हुए उसने अपने स्वास्थ्य को

खो दिया है। और अब स्वास्थ्य-मुधार के लिए अपने मामा-ब्रह्मजी-के घर-शिवपाल-गंज-आता है। रंगनाथ यहाँ बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। रंगनाथ के व्यक्तित्व की सबसे पहली विशेषता यह दिखाई देती है कि बेचारा एम० ए० तक पढ़कर अपने स्वास्थ्य को खो देता है। आधुनिक शहरी संस्कृति की यह जीती-जागती तस्वीर है। बड़ी मेहनत से मध्यवर्ग के ये नवयुवक किसी तरह पढ़कर अपने अस्तित्व को टिकाने के लिए एम० ए० की डिग्री हासिल कर लेते हैं—किन्तु साथ ही तब तक शरीर-सम्पत्ति को नष्ट हुई पाते हैं और फिर से उनके जीवन में नौकरी यदि मिल भी जाये, तो भी एक प्रकार की विसंगति मौजूद रहती है। दूसरी बात यह है कि एम० ए० करने के बाद भी लतियायी हुई कुतिया जैसी वर्तमान शिक्षा-पद्धति के कारण जीविकोपार्जन का कोई साधन जुटा नहीं पाता। फलस्वरूप रिसर्च करता है, जिसे वह घास खोदना मानता है। क्योंकि जिस प्रकार घास खोदना एक निरर्थक और निठल्ले का काम है, ठीक उसी प्रकार इस देश में जितने भी बुद्धिजीवी इस कार्य में लगे हुए हैं वे वास्तव में न तो कोई ठोस कार्य कर रहे हैं और निठल्ले होने के कारण अपने को व्यस्त रखने के लिए लोकलाज के कारण रिसर्च का वहाना कर रहे हैं। अतः इस देश में विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली गवेषणाएँ—घुड़ व मालिक गवेषणाएँ न होकर आयातित, अनुवादित और चोरी हुई गवेषणाएँ करवाई जा रही हैं, जिनका वास्तविक जीवन में कोई उपयोग नहीं। अन्यथा यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि जिस देश में प्रत्येक बड़ी विडम्बना है कि जिस देश में प्रत्येक वर्ष विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में असंख्य नवयुवक अपने शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे हों वह देश आज भी शिक्षा और विज्ञान दोनों ही दृष्टियों से संसार के प्रगत राष्ट्रों से सैकड़ों साल पिछड़ा हुआ है।

रंगनाथ के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है, वैचारिक संघर्ष। आजकल ये तथाकथित बुद्धिजीवी वैचारिक संघर्ष में ही जीते हैं। किसी भी विचारधारा या जीवन-पद्धति के स्वयं ही दो प्रतिकूल तटों की कल्पना कर संघर्षरत रहना। किन्तु इनका यह संघर्ष मानसिक घरातल पर घटित होता है। इनका जीवन समस्याओं से आक्रांत रहता है। घांका तथा सन्देह की नजरोں के कारण इन्हें सभी स्थानों पर विकल्प की बू आने लगती है परिणामतः वे स्वयं अपने विचारों पर दृढ़ नहीं रह पाते। जिस दृढ़ता और निश्चय को लेकर रंगनाथ शुरू में दिखाई देते हैं वह अन्त में दिखाई नहीं देते हैं।

अक्सर आने पर परिस्थिति का सामना न कर पाना रंगनाथ के व्यक्तित्व का एक पहलू है जो कि आज के बुद्धिजीवी वर्ग पर पूर्णतया चरितार्थ होता है। यद्यपि रंगनाथ तटस्थ द्रष्टा के रूप में मौजूद है तथापि ग्रामीण व्यक्तियों द्वारा उसकी तार्किकता को काट दिए जाने पर चुप रह जाता है। पढ़ा-लिखा होने के कारण मेले के

समय विशिष्ट मूर्ति को देखकर उसे देवता की बजाय सिपाही की मूर्ति बताकर गाँव वालों के सामने उस सिद्ध नहीं कर पाता, अपितु स्वयं उपहास का पात्र बन जाता है। उसकी ताकिकता का मन्दिर के पुजारी द्वारा कोई युक्तियुक्त उत्तर न दिए जाने पर स्वयं को 'ईसाई' कहलवाकर अपनी ही गलती का अनुभव करता है। तब ह्मपन कहता है—“बसूर तुम्हारा भी नहीं, तुम्हारी पढ़ाई का है।” आधुनिक पढ़ाई ने मनुष्य को इतना निकम्मा बना दिया है कि हम अपने सामने ही सच्चाई पर रहते हुए अपना उपहास करने वाले व्यक्ति के प्रति विद्रोह नहीं कर पाते। ठीक इसी प्रकार खन्ना को निवाल दिये जाने के बाद प्रिंसिपल उन्हें खन्ना की जगह लेने को कहता है। वहाँ भी प्रिंसिपल के द्वारा डाट खाकर तथा अपमानित होकर “कुल मिलाकर उनसे यही साबित होता है कि तुम गधे हो।” इस उपाधि को लेकर धापिस लौटता है। आधुनिक बुद्धिजीवी भी इसी प्रकार सर्वत्र अपमानित, उपहासित, तिरस्कृत होकर भी उसके विरोध में कुछ न कहता हुआ मौन होकर वदस्त करता रहता है।

रगनाथ हमेशा अपने ही काल्पनिक जगत् में विचरण करता रहता है। यह सही है कि वह शहरी सस्त्रुति और पढ़ाई लिखाई के सस्वार लेकर गाँव आता है, किन्तु वह गाँव की जिन्दगी में अपना मेल नहीं बिठा पाता। शिवपालगज का जीवन—चाहे वह विकृत, मूल्यहीन क्यों न हो—यथार्थ है। इस यथार्थ का साक्षात्कार करने से वह कतराता है। वर्णमान से दूर भागता है और अतीत में जीना चाहता है। जिराफे लेखक ने 'पलायन-मगीत' में स्पष्ट किया है। बुद्धिजीवी की अकर्ण्यता, पुस्तकहीनता और पलायनवादी वृत्ति को उद्घाटित किया है। बड़े-बड़े शहरो में रहनेवाले ये अन्ध लोग जो इस देश पर शासन करते हैं, किन्तु देश के यथार्थ चित्र—गाँव—को देखे बिना वातानुबलित बगलो, रेस्तरो, बलबो, सम्रा और सोनापटी में घँठकर निर्णय लेते हैं। वस्तुतः उनके ये निर्णय वास्तविक परिस्थिति से पलायन ही हैं। ये बुद्धिजीवी जीवन-सघर्षों को झेलने के बजाय उनसे पलायन करने में ही माहिर हैं। सफेद पोश के इस समाज में छाई हुई नपुंसकता ही रगनाथ के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। वह केवल आक्रोश की भाषा जानता है, उसे वृत्ति में उतारना नहीं। भाषात्मक आक्रोश कर वह अपने कर्तव्य से चुक जाता है, ऐसी उसकी मान्यता है।

शासन-यन्त्रणा और शासकों के बदल जाने के बाद भी प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं आ पाया। पहले इस्लैंड से आकर अंग्रेज यहाँ शासन करते थे जो कि गाँवों को न देखते हुए, उनसे परिचित न होते हुए, उनकी जीवन-वृद्धि को निर्धारित करते थे। आज उन अंग्रेजों की जगह बड़े-बड़े शहरो में रहने वाले ये बुद्धिजीवी जिनका ग्रामीण जीवन से या समस्या के किसी भी यथार्थ पक्ष से सरोकार नहीं है, वे इस

देश की नियति का निर्माण कर रहे हैं । होना यह चाहिए था कि यह वर्ग वास्तविक जीवन के कार्य-क्षेत्र में उतरे, स्वार्थ को छोड़े किन्तु कागजी घोड़े दौड़ाने में ये सिद्धहस्त हैं । अतः शिक्षा, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में हमारी आंखें या तो अतीत में झाँकती हैं या पश्चिमी चकाचाँच को देखती हैं । “तो हालत यह है कि हैं तो बुद्धिजीवी, पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाये कि हम अपने बाप की ओलाद नहीं हैं तो साबित कर देंगे । चौराहे पर दस जूते मार लो पर एक बार अमेरिका भेज दो ।”^{११} विदेश-गमन की धुन हमारे बुद्धिजीवियों पर ऐसी छाई हुई है कि जीवन की एकमेव और अन्तिम इच्छा वही है । सारे संसार को, परिस्थितियों, वस्तुओं, आदर्श और विचारघातों को वे ऐसे प्रगत राष्ट्रों के चर्म से ही देखते हैं । और अगर कभी चापलूसी, रियलिस्म या अवैध मार्गों से अपनी ‘रिसर्च’ को पूरा करने के लिए कभी विदेश जाने का अगर मौका मिल भी जाता है तो “उसे विलायत भेज दिया जाता तो वह निश्चय ही बिना हिचक किसी गोरी औरत से शादी कर लेता । बाहर निकलते ही हम लोग प्रायः पहला काम यह करते हैं कि किसी से शादी कर डालते हैं और फिर सोचना शुरू करते हैं कि हम यहाँ क्या करने आये थे ।”^{१२}

इन बुद्धिजीवियों को एक और बीमारी है और वह है—‘क्राइसिस ऑफ कांशस’ । ये स्वयं अपने व्यक्तित्व, मन्तव्य तथा अस्तित्व के प्रति आवश्यकता से अधिक जागरूक रहते हैं । परिणामतः जहाँ जड़रत नहीं वहाँ भी ये अपने को सम्बद्ध मान लेते हैं जिसके कारण मानसिक तनाव, निराशावाद, आवागामी, शराब आदि में वह अपने को पूरी तरह खो देता है । वस्तुतः ऐसे को बुद्धिजीवी कहना अपने आप में ही एक प्रश्न है । क्योंकि ये बुद्धि की वजाय “आहार, निद्रा, भय, मैथुन के सहारे जीवित रहते हैं ।”^{१३} जो वस्तुतः पशु के लक्षण हैं । इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल ऐसे बुद्धिजीवियों के विषय में ऐसी वारणा बनाते हैं कि इन बुद्धिजीवियों और पशु में कोई अन्तर नहीं है । दोनों की मूल प्रकृति समान है तथापि वह सारे संसार को भ्रष्ट समझता है । उसकी यह स्थिति है कि “बुद्धिजीवी होने के कारण अपने को बीमार होने के कारण अपने को बुद्धिजीवी साबित करता है । और अन्त में इस बीमारी का अन्त कॉफी-हाउस की बहसों में, शराब की बोतलों में, आवागामी औरतों की बाँहों में, सरकारी नौकरी में और कभी-कभी आत्म-हत्या में होता है ।”^{१४}

‘पलायन-संगीत’ बुद्धिजीवियों की पलायनवादी वृत्ति का पर्दाफाश करता है । ये बुद्धिजीवी जीवन, संघर्ष, समस्या या परिस्थिति को झेलने के वजाय उनसे भागना सिखाते हैं । इनके मन्तव्य, अभिव्यक्त्य तथा मुदीर्घ भाषण सामान्य जन को एक वारगी विस्मय-विभोर कर डालते हैं । किन्तु अन्त में ये सब ‘वाक्पटु’ सिद्ध होते हैं । आश्चर्य तो यह है कि इन बुद्धिजीवियों में राष्ट्रप्रेम, स्वामिमान आदि की भाव-

नाथें दिखाई नहीं देती । छोटे-से-छोटे प्रलोभन पर अपनी बुद्धि को बेचने के लिए तैयार हैं । उनके जीवन का एक ही ध्येय है, वह है भौतिक समृद्धि । इस प्रकार ऊपर से साफ दिखाई देने वाले भीतर से अत्यन्त क्लुपित हैं । स्वार्थ, स्वर्त, भौतिक समृद्धि इनके जीवन के ध्येय हैं । जो बुद्धिजीवी अपनी बुद्धि को बेचकर भौतिक ऐश्वर्य, सम्पत्ता को प्राप्त नहीं कर पाता वह अपनी निराशा और दुःख को दूर करने के लिए अतीत में छिप जाता है । वर्तमान को झेलने का, जीने का, उससे जूझने का साहस मला इन में कहाँ ? जिस किसी भी प्रकार हो—यथार्थ से पलायन इनके जीवन का प्रमुख मुद्दा है—“भागो, भागो, भागो । यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है ।” रगनाथ का शिवपालगज से शहर को वापिस जाना उसी इसी पलायनवादिता—जो कि हर बुद्धिजीवी की भी है—का प्रतीक है ।

रूपन—रूपन वैद्यजी की लडका है । सामन्तराही प्रवृत्ति के कारण सामाजिक सम्पत्ति पर पैतृक अधिकार समझता है । उनकी उम्र १६ वर्ष की है जो हमारे यहाँ बालिक के योग्य समझी जाती है । अतः रूपन भी अपने को पूर्णतः स्वतन्त्र समझते हैं । यहाँ तक कि पिता का हस्तक्षेप भी उन्हें मजूर नहीं है । किन्तु वे विद्यार्थी हैं । “स्थानीय कॉलेज की दसवी कक्षा में पढ़ते थे । पढ़ने से, और खास-तौर से दसवी कक्षा में पढ़ने से उन्हें बहुत प्रेम था, इसलिए वे पिछले तीन साल में उसमें पढ़ रहे थे ।”^{११} ऐसे विद्यार्थियों का स्वतन्त्र भारत में नेता बनने का जन्मसिद्ध अधिकार है । रूपन भी छोटी-सी इस उम्र में स्थानीय नेता थे । “उनका व्यक्तित्व हम आरोप को काट देना था कि इंडिया में नेता होने के लिए पहले धूप में बाल मफेद करने पड़ते हैं ।”^{१२} बौद्धिक परिपक्वता वे न होने हुए भी वे स्वयं को नेता समझते थे और उनको नेतागिरी का केन्द्र भी ‘छगामल इण्टरमीडिएट कॉलेज’ ही था, जिसके विद्यार्थी पढ़ने की वजह से ‘गजहापन’ में अत्यन्त माहिर हैं । उन्हें उक्त-सना, गुटबन्दी करना, हाथापाई की नौबत आना आदि रूपन बाबू के लिए अत्यन्त सामान्य बातें थीं । यद्यपि शारीरिक मौल्य उनके पास नाम मात्र की भी नहीं था, किन्तु नेतागिरी के अधिकार को वे अपना पैतृक हक्क समझते थे क्योंकि उनके बाप भी नेता थे ।^{१३} इसलिए राजनीति के क्षेत्र में वह आधार सहिता, नैतिकता आदि मूल्यों को स्वीकार नहीं करता । वह आधुनिक युवा-शक्ति का प्रतीक है, जो स्वतन्त्र भारत के उत्थान और विकास के वजह से पुरानी पीढ़ी के समान स्वार्थ के दलदल में फँसी हुई है । प्रिंसिपल के ज्यादा बड़बड़ करने पर—जो कि वैद्यजी का खास आदमी है—उसके विरोधी खप्पा मास्टर को उक्ताता है और “कटके नैव कटकम्” न्याय के अनुसार प्रिंसिपल तथा वैद्य दोनों को राजनैतिक क्षेत्र में हराकर स्वयं आसोन होना चाहता है । वह अपनी चिर-परिचित गजहो की डंडामार शैली में कहता है—“यह तो पालिटिक्स है । इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है ।”^{१४}

रूपन 'बेला' से प्रेम करता है, क्योंकि वह समझता है कि हर युवा को गाँव की किसी भी युवती से प्रेम करने का अधिकार है। 'बेला' के न चाहते हुए भी येन-केन-मार्गे उसे हथियाना अपना लक्ष्य समझते हैं। वैद्यजी के विरोध करने पर, नाराजगी प्रकट करते हुए "मुझे तुम्हारे आचरण की खबर है" कहने पर वह भी वैद्यजी को खरे-खरे शब्दों में "तो मुझे भी आप के आचरण की खबर है" कहकर अपने पिता की जवान वन्द कर देता है। प्रेम का क्षेत्र निर्वन्ध और स्वतन्त्र है। उसमें जाति-पाँति, ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी की दीवारें नहीं हैं। इसलिए बेला के न मिलने पर गाँव में रहने वाली निम्न जाति की मजदूरनियों के साथ दुर्व्यवहार करना कोई अनैतिक नहीं मानते। रूपन के चरित्र में आवुनिकता का स्पर्श हुआ है। वे एक आवुनिक गरम दिमाग दिमाग वाले नवयुवक विद्यार्थी-नेता के प्रतिरूप कहे जा सकते हैं जो विधायक कार्यों की वजाय विध्वंसक की तरफ अधिक झुका हुआ प्रतीत होता है। अपने पिता के पद, मान और नाम का दुरुपयोग कर अपनी नेता-गिरी के क्षेत्र को व्यापक बनाता है। "तहसीलदार उसका हमजोगी, थानेदार उसका दरबारी और प्रिंसिपल उसके मातहत था।.....मास्टर लोग "भयाना भयं भीषण भीषणाना" और पिताओं का पिता मानते थे।"^{१७} समग्र रूप से देखने पर रूपन बाबू नवयुवक, प्रेमी, मंद बुद्धिवाला, तिकड़मी, गुटवन्दी और गुंडागर्दी कराने वाले पिता के अधिकार, पद, नाम का सदुपयोग करने वाले तथा योग्य पिता का योग्य पुत्र के रूप में चित्रित हुए हैं।

प्रिंसिपल—इस उपन्यास का महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण और गौण होते हुए भी महत्त्वपूर्ण पात्र है। शिवपालगंज में भी 'कॉलेज' संपूर्ण कक्षा का केन्द्र होने के कारण उसका मुख्य अधिकारी, सर्वोच्च मुख्य न हो तो ही आश्चर्य है। छंगामन्य कॉलेज के मैनेजर वैद्य हैं। वैद्य किसी भी व्यक्ति की नियुक्ति या तो भाई-भतीजा-वाद के आधार पर या 'हाँ जी' के स्वभाव के आधार पर करते हैं। इस कॉलेज के प्राचार्य की नियुक्ति दूसरी कोटि के मानदण्डों के आधार पर हुई है। अतः शैक्षणिक योग्यता, अच्छी शासन-यन्त्रणा, अनुशासन का महत्त्व आदि इस कॉलेज में हो तो ही आश्चर्य है। वैद्यजी ने इसके अतिरिक्त उनकी नियुक्ति त्वास गुण के आधार पर की है—“खर्च का फर्जी नक्शा बनाकर कॉलेज के लिए ज्यादा से ज्यादा मरकारी पैसा खींचने के लिए।”^{१८} दुबला-पतला जिस्म वाला यह प्रिंसिपल अपने दूसरे गुण गुस्से की चरम दशा में अवधी बोली का इस्तेमाल के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रिंसिपल का काम वैद्यजी के दरबार को प्रतिदिन, कई बार तो दिन में चार-चार बार तक मस्तक टेकना जरूरी है। उनके साथ मंग पीने हुए उनकी हाँ में हाँ मिलाता, चापलूनी करना, झूठी बड़ाइयाँ मारना और अन्त में डाँट त्वाकर वापिस आ जाना है। वैद्य जैसे नेताओं ने इन शैक्षणिक संस्थाओं को आहत-दुकाने समझा

हुआ है। वे स्वयं दण्डाल हैं जो निरक्षर होने हुए भी प्राचार्य के माध्यम से सरकारी पैसे को नया बुद्धिजीवियों के वेतन को हड़प करते हैं। कॉलेज की उन्नति, नवन, शिक्षणक वानावरण, विद्यार्थी समस्या और उनके परिणाम प्राध्यापकों की स्थिति आदि पर सोचने का प्रिंसिपल को समय ही नहीं है। किन्तु उनके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण भाग उम समय प्रकट होता है जब वह आर्थिक विवशता को अभिव्यक्त करते हैं। प्रिंसिपल भी विवश और मजबूर हैं। आधुनिक जीवन की आर्थिक विपन्नता के लिए न चाहते हुए भी अनैतिकता को स्वीकार करना पड़ता है। स्वामिमान को तिलाजलि देनी पड़ती है। 'मुझे चार चार दण्डों की सजा करनी है। एक बीड़ी पाम नहीं है। अगर बैद्यजी वान पकड़कर कॉलेज से निवाल दें ना माय भीव तक न मिलेगी।' पारिवारिक उत्तरदायित्व सामान्य व्यक्ति के स्वामिमान को जड़ें हिला देता है और तब उसे न चाहते हुए कुत्तो की जिन्दगी बसर करनी पड़ती है। प्रिंसिपल के इस कथन के माध्यम से श्रीराल मुकुल ने आधुनिक समस्या-प्रमुखों की आर्थिक विपन्नता और पारिवारिक बोझ को चक्की में पीसने वाले व्यक्तियों के चरित्र को रेखांकित किया है। क्योंकि पड़ लिक्कर भी किमी-न किसी पद पर नौकरी ही करती है और नौकरी के लिए स्वामिमान का छाड़कर चमचेगिरी की वृत्ति को अपना जाना जरूरी है। अब वे रगनाथ को कहते हैं 'वाडम चामलर' के बजाय प्रिंसिपल की नौकरी ज्यादा अच्छी है, क्योंकि वहाँ दम लोगों के सामने मिर झुकाना पड़ता है यहाँ केवल अरेले बैद्यजी के सामने ही। इसलिए वे विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी नहीं बनते। वे अपनी चारित्रिक विशेषता को इस प्रकार प्रकट करते हैं—'बैद्यजी को खुशामद बरा लो, पर हरेक के आगे मिर झुकाने को तैयार नहीं।'"

प्रिंसिपल भी कभी बुद्धिजीवी थे। इसलिए इन बुद्धिजीवियों की चापटूरी वृत्ति, स्वार्थ, सिद्धतत्त्वोरी, पलायनवाद और नपुंसकता का खुलकर मजाक उड़ाते हैं। "रिसर्व भी क्या, जिनका खाते हैं उसका गाते हैं।" कहकर वे स्वयं को तया इन तयोकथित बुद्धिजीवियों को एक समान परातल पर दिखाने हैं। बुद्धिजीवियों के खोबले तक और स्वार्थ पर कचरा प्रहार करते हुये कहते हैं—"विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यदि यह साधित करना पड़ जाये कि हम अपने बाप की औलाद नहीं, तो साधित कर देंगे।" अब जब अनैतिकता और स्वार्थ से समझौता ही करता हो, उसके मागे निन्न हो सकते हैं—प्रिंसिपल का एक अपना मार्ग है। लड़ा विरोध कर उसकी जगह लेना चाहे या उन्हें निकलवाना चाहे तो वे कभी रूपरत को कहकर, कभी बैद्यजी को कहकर या अन्य किसी उपाय से उसे इतना विवश करने हैं, जिससे उसे त्यागपत्र देकर जाना पड़ता है।

प्रिंसिपल के भी कभी रगनाथ के समान कुछ विशिष्ट ध्येय और आदर्श थे। किन्तु प्रिंसिपल भी शिवपालगज की राजनीति का शिकार है। रगनाथ को प्रिंसिपल

के मुख से 'पिकासो' का नाम सुनकर गद्य आ जाता है। वे अच्छे गप्पवाज भी हैं, सहानुभूतिपूर्ण मित्र भी हैं किन्तु इस राजनीति के शिकार होकर आदर्शवादिता की खाल उतारकर व्यावहारिकता की खाल ओढ़ लेते हैं—जिनसे रंगनाथ असहमत हैं। इसी व्यावहारिकता के आधार पर खन्ना के निकाल दिये या चले जाने पर वे उसकी जगह नौकरी करने के लिए रंगनाथ को कहते हैं। क्योंकि सारे मुल्क में शिवपालगंज फैला हुआ है। यहाँ नौकरी न कर किसी दूसरी जगह जाओगे तो "जहाँ जाओगे, तुम्हें किसी खन्ना की ही जगह मिलेगी।" कहकर अपनी व्यावहारिकता, विवशता, परिवेश की मार तथा आधुनिक जीवन की विडम्बना को अभिव्यक्त करते हैं। प्रिंसिपल को रंगनाथ में कोई खास लगाव नहीं किन्तु बैद्यजी के मानजे हैं अतः उनकी इच्छानुसार उनके रिस्तेदारों को कॉलेज में नौकरी देकर वे अपनी नौकरी पक्की करते हैं। प्रिंसिपल के माध्यम से औक्षणिक जगत् में फैली हुई रिश्ततन्त्री, निकम्मापन, स्वार्थ, गुटबन्दी, सरकारी पैसे का दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और अनाचार का माध्यम ये संस्थाएँ आदि दोषों को उजागर करने में समर्थ हुआ है—च्यंग्य के सहारे।

लंगड़—"माथे पर कबीर पंथी तिलक, गले में तुलसी की कंठी, आँधी-पानी अँला हुआ दड़ियल चेहरा, दुबली-पतली देह मिर्जई पहने हुए। एक पैर घुटने के पास से कटा था।"^{१३} ऐसा लंगड़ जो कि शिवपालगंज से पाँच कोस दूर रहने वाला, कबीर और दादू के भजन गाने वाला है—थोड़ी देर के लिए मूल्य चेतना के बाह्यक के रूप में दिखाई देता है। तहसील से उसे एक नकल लेनी है। उसके लिए वह रिश्तत देना नहीं चाहता। वह धर्म, सिद्धान्त और सत्त की लड़ाई लड़ता है। ऐसे व्यक्ति को शिवपालगंज में कोई सहायता नहीं देता; जिसमें वह जीवन भर थक कर हार जाता है किन्तु नकल नहीं मिल पाती। फिर भी लंगड़ मूल्य-चेतना का बाह्यक बन नहीं पाता, क्योंकि उसकी 'सत्त' की लड़ाई रिश्तत की राशि के विवाद को लेकर शुरू हुई है, रिश्तत को नहीं।

इसके अतिरिक्त सनीचर, बन्नी पहलवान, गयादीन, रामादीन, जोगनाथ इत्यादि अनेक पात्र हैं जो आधुनिक सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। 'बेला' जो एकमात्र प्रमुख स्त्री पात्र है। इसके माध्यम से श्रीलाल मुखर्जी ने भारतीय समाज के नारी-जगत् की जातीयता, विवाह-प्रथा, प्रेम, दहेज आदि पतों को उद्घाटित किया है। 'राग दरवारी' के सभी पात्र उसकी कथा के मूल स्वर के अनुकूल हैं। कथा और पात्रों में परस्पर कहीं कोई विरोध नहीं दिखाई देता। सभी पात्र यथार्थ, स्वाभाविक तथा जीवन्त हैं। हाँ, उनमें संघर्ष दिखाई नहीं देता। क्योंकि पतनोन्मुख शिवपालगंज में मूल्यों की बजाय मूल्यहीनता की स्थिति है। सभी पात्रों का विकास सहज और नैसर्गिक है। उनमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। कोई भी पात्र अमाधारण तथा अपवादात्मक रूप में नहीं दिखाई देता। यह सम्भव है

कि 'टाचं बीअरर' के रूप में कोई पात्र मौजूद न हो—बयोंकि श्रीलाल शुक्ल का वह उद्देश्य भी नहीं है। 'राग दरवारी' का प्रत्येक पात्र एक तरफ वैयक्तिक स्वरूप को लिए हुए है जो कि गीत दिखाई देता है, किन्तु दूसरी तरफ आधुनिक समाज में मौजूद ऐसी ही विशेषताओं से सम्बन्धित पात्रों का स्मरण कराते हैं जो उसका मुख्य है। निमन्दिग्य रूप से पात्रों की मूर्ष्टि में श्रीलाल शुक्ल को सफलता मिली है।

कथोपकथन—दीर्घकाय उपन्यास में महादो का सुन्दर समायोजन इस उपन्यास में ऊँकटाइट आने से बचाता है। सम्पूर्ण उपन्यास वर्णनात्मक और विवरण-आत्मक शैली में लिखा गया है। जिवने पाठक के ऊँक जाने का भय पूरा-पूरा बना रहता है। किन्तु लेखक ने उपर्युक्त शैली को अपनाकर भी व्यंग का उसे मुलम्मा चढ़ाकर सवादों के सौन्दर्य को उसने बढ़ाया है। राग दरवारी के सम्वाद तितारे ढंग से काम करते हैं—(अ) कथा का विकास, (ब) पात्रों की व्याख्या (स) लेखक के उद्देश्य का स्पष्टीकरण।

समग्र कथा पद्यपि वर्णन प्रधान ही है किन्तु उपन्यास के प्रारम्भ में ही गडक और टुक का व्यंग्यात्मक वर्णन करने के बाद द्राइवर और रगनाथ के सवादों से कथा को गति और एक नवीन अर्थ प्राप्त होता है। इन सवादों को उन्होंने सान पर चराकर खूब तीक्ष्ण किया हुआ है। इसलिये प्रारम्भ से ही वे पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं और साथ ही कथा को गति भी देते चलते हैं। दूसरा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन लेखक सम्वादों के माध्यम से करता है। पात्रों का केवल बहिरा लेखक ने चित्रित किया है किन्तु उनका अन्तरंग—जो उपन्यास का मूल स्वर है—पारस्परिक सवादों में ही अभिव्यक्त हुआ है। प्रिंसिपल का सही रूप हमारे सामने बैद्य जी, जन्ना और रगनाथ के साथ अलग-अलग किए सम्वादों में स्पष्ट हो पाता है। प्रिंसिपल के व्यक्तित्व की आन्तरिक पीड़ा, विवशता सम्वादों के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुई है, वर्णन और विदलेपन से नहीं। इस प्रकार सभी पात्र—रुणन, बैद्य, गयादीन, खन्ना, सनीचर, लगड इत्यादि—अपने आन्तरिक चरित्र को सम्वादों में उद्घटित करते हैं। नीमरा—लेखक के उद्देश्य का स्पष्टीकरण है। श्रीलाल शुक्ल स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज की विकृतावस्था का चित्रित करना चाहते हैं। यदि लेखक केवल वर्णनात्मकता से उसका चित्र प्रस्तुत करता तो शायद प्रभावोन्पादक, यथार्थ तथा आकर्षक न बन पाता। किन्तु व्यंग्य की सान पर चढ़े हुए इन सम्वादों ने प्रत्येक क्षेत्र में मौजूद खोखलेपन, दुमुहेपन, स्वार्थी तथा अरि-तिक्ता की स्थिति को बड़ी खूबी से चित्रित किया है। विकृतावस्था के चित्रण के कारण उत्पन्न बढ़ता, तनाव और तिक्ताता पाठक के मन में अरुचि उत्पन्न कर सकती थी। किन्तु इन सम्वादों ने उल्टे उसे रोचक बनाया है। इस दृष्टि से ये

सम्वाद लेखक के उद्देश्य को और स्पष्टता से उजागर करने में समर्थ हुए हैं।

इसके अतिरिक्त 'राग दरबारी' के सम्वादों के कुछ अन्य आकर्षक गुण हैं; जिनमें सर्व प्रथम है उपयुक्तता। यहाँ यह उपयुक्तता चार दृष्टियों से दिखाई देती है—घटना, वातावरण, अवसर और पात्र। घटनाएँ जिस प्रकार और जिस स्तर की हैं सम्वाद भी उसी स्तर के लेखक प्रयुक्त करता चलता है। वातावरण यहाँ परिवेश के लिए प्रयुक्त हुआ है। सम्पूर्ण उपन्यास ही परिवेश का चित्रण करता है और जहाँ कहीं भी लेखक को अपने लक्ष्य को संकेतित करने का अवसर मिला है वहाँ वह चूका नहीं। पात्रानुकूल सम्वाद तो आदि से अन्त तक विद्यमान हैं। संक्षिप्तता इसके कथोपकथन का अपना ही गुण है। समूचे उपन्यास में लघु सम्वादों का ही प्रयोग हुआ है फिर भी वैद्य जी के भाषण बहुत लम्बे हैं किन्तु वे सोद्देश्य हैं, उवाने वाले नहीं हैं। इसी संक्षिप्तता के कारण सरसता और रोचकता का स्वर्य समावेश हो गया है। कुछ स्थानों पर वैद्य जी के भाषण उवाने वाले हैं। परन्तु वह आधुनिक नेताओं की भाषणवाजी वृत्ति का पर्दाफाश करने के लिए सोद्देश्य प्रयुक्त हैं। तीसरा गुण है स्वाभाविकता का। समाज का यथातथ्य चित्रण करने वाले लेखक के लिए यह अत्यन्त जरूरी है। स्वाभाविकता के बिना विकृति ग्राह्य न होकर त्याज्य बन जाती है—मानसिक स्तर पर। प्रिसिपल, वैद्य इत्यादि पात्रों के संवाद अत्यन्त स्वाभाविक तथा यथार्थ हैं। वस्तुतः आज का सारा शिवपालगंज वैद्य जी की बैठक में समाया हुआ है। पात्र और कथा ये समानान्तर स्तर पर चलते हैं; शास्त्रीय शब्दावली में इसे ही सम्बद्धता कहा गया है। अनुकूलता इसके सम्वादों का अपना ही वैशिष्ट्य है। यह अनुकूलता मित्र-मित्र स्तरों की है—परिस्थिति, मनःस्थिति, अवस्था, उम्र इत्यादि। सभी पात्रों के सम्वाद इन्हीं मित्र-मित्र स्तरों की अनुकूलता को लिए हुए हैं। इस उपन्यास के सम्वादों की सबसे बड़ी विशेषता है चरित्रोद्घाटन की। श्रीलाल शुक्ल ने शिवपालगंज तथा शिवपालगंजीय प्रवृत्तियों का उद्घाटन अपना उद्देश्य समझा है अतः मनुष्य के मन के भीतर छिपे हुए सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलुओं को सम्वादों के माध्यम से ही उद्घाटित कर खोजने मनुष्य के कृत्रिम रूप को उजागर किया है। समग्र रूप से कहा जाये तो इसके संवाद चुटीले तथा रमणीय हैं वे एक तरफ पाठक को रिसाते चलाते हैं तो दूसरी ओर यथार्थ का दर्शन कराते हैं। लेखक निःसंदिग्ध रूप से संवादों की सृष्टि में सफल है।

भाषा बोली :—श्रीलाल शुक्ल भाषा के खिलाड़ी हैं। शब्द तथा शब्द के भीतर रहने वाले विभिन्न अर्थों पर उनका पूरा अधिकार है। प्रमुख रूप से उन्होंने पाँच प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया है। (क) पात्रानुकूल भाषा :—उपन्यास के सभी पात्र सामाजिक हैं अतः समाज में जिस प्रकार भाषा बोली जाती है उसी भाषा का यहाँ प्रयोग हुआ है। सरपंच, प्रिसिपल, पहलवान तथा गंजहे इनकी भाषा

अत्यन्त स्वामाविक है। क्योंकि समाज के निचले तबके से सुन्दर भाषा की कल्पना भी व्यर्थ है (ख) ग्राम्य भाषा —यह इस उपन्यास का दोष भी है और गुण भी प्रातर्विधि तथा ग्रामीण स्त्रियों के शौच-समय के सम्वादों में लेखक ने ग्राम्यत्व दोष से युक्त भाषा का प्रयोग किया है किन्तु उसे असलील नहीं कहा जा सकता हाँ, उसमें फूहड़पन जरूर है परन्तु वह यथार्थ है। (ग) विभिन्न भाषाओं का प्रयोग — भाषा विचारों की वाहिका है। वह साधन है अभिव्यक्ति का। अतः लेखक विभिन्न भाषाओं से शब्दों को ग्रहण करता है बिना किसी मक्कोच के। अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत आदि सभी प्रकार की भाषाओं से पाए शब्दों को ग्रहण कर अर्थ-छटाओं की अभिव्यक्ति को वह महत्वपूर्ण समझता है। किन्तु कहीं भी यह भाषा बिचड़ी नहीं लगती अपितु वे स्वामाविक रूप से आने के कारण ऐसे उपयुक्त हुए हैं कि उनका विदेशी पन समाप्त हुआ मालूम होता है। (घ) लोक भाषा —शौच बीच में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है जैसे प्रसिद्ध 'अवधी' का प्रयोग करते हैं। किन्तु लोक भाषा का प्रयोग बहुत कम स्थान पर और कम मात्रा में ही हुआ है। (ङ) कृत्रिम भाषा —बीच-बीच में सरसता, चुटीलापन, श्रम-परिहार और मनोरंजन के लिए 'मर्करी' जैसी कृत्रिम भाषा का प्रयोग किया गया है।

वरतुन यह तो शास्त्रीय परिधि है जिसमें हमकी भाषागत सूबिरी का बिछाया गया है। किन्तु श्रीलाल शुक्ल भाषा के कुशल शिल्पी हैं। अतः उनमें किसी किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं। भाषा प्रवाहपूर्ण, सरस तथा सरल है। प्रवाह, सरलता और सरसता के लिए मुहावरे, लोकोक्ति तथा संस्कृत के श्लोक जड़त चले हैं। अपने व्यंग्यात्मक कथा के समर्थन में कहीं श्रेष्ठ कवियों की पंक्तियाँ, फिल्मी गीत, कहीं उर्दू के दोर कही कही कुछ विशिष्ट पंक्तियाँ—हेर फेर कर जड़ते चरते हैं जिनसे वे अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य का स्वरूप धारण कर लेते हैं।

श्रीलाल शुक्ल की भाषा की सशक्त अस्पष्ट, व्यंग्य। समाज की विद्रोशिता, विवृति तथा पतनोन्मुख अवस्था के चित्र प्रस्तुत करने वाले कलाकार को व्यंग्य का अवलम्ब अत्यन्त आवश्यक है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य ऊपर से रिझाने वाला, हँसाने वाला तथा गुदगुदाने वाला है किन्तु भीतरी स्तर पर असह्य हो जाता है मन को बचोटता रहता है, टीसता है, सलता है। इस टीस का निर्माण ही लेखक का मुख्य उद्देश्य है। 'राग दरवारी' पाठकों को आन्तरिक स्दन बगती है।

शैली—राग दरवारी मुख्य रूप से वर्णन-रूप में लिखा गया है। शुरू से अन्त तक चित्रों और वर्णन की ही प्रशंसा है। किन्तु लेखक इतना निपुण है कि पाठकों में नीरसता पैदा होने की सम्भावना के साथ ही एकाध हँसी की फुलझड़ी छोड़ देता है। या फिर तनाव को व्यंग्य के माध्यम से हल्का करता है, और भाव ही बचावक को गति देता है, इसके अतिरिक्त अथ शैलियों का प्रयोग

भी लेखक ने किया है—हास्य-व्यंग्य, रिपोर्ताज, विदलेपणात्मक, आंचलिक तथा संवादात्मक । जहाँ जिस किसी शैली से अपना लक्ष्य उद्घटित किया जा सकता है उसे निःसंकोच लेखक ने स्वीकारा है ।

देश काल वातावरण:—आधुनिक उपन्यासों में इस तत्त्व का बहुत कम मात्रा में प्रयोग मिलता है । वस्तुनः ऐतिहासिक उपन्यासों में ही इसका पूर्णता के साथ निर्वाह हुआ है । किन्तु समाज का ह्रवह चित्रण करते समय लेखक ने देशकाल और वातावरण का चित्रण अत्यन्त सजगता के साथ किया है । देहाती और शहरी मंस्कृति के द्वन्द्व को बखूबी चित्रित किया है । कहीं-कहीं इनका विपरीत चित्रण भी मिलता है—वह सोद्देश्य है । लेखक मानवीय विकृत मूल्यों और गन्दी सतहों को उबारना चाहता है अतः यह लेखक की सजगता ही है । सजसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने स्थानीय रंगों (Local colours) का प्रयोग अत्यन्त कुशलता के साथ किया है । वातावरण के समानान्तर ही स्थानीय रंगों का प्रयोग हुआ है । उपन्यास का मूल स्वर जिन्दगी की विकृति को दिखाना है । शिवपालगंज उत्तर भारत का विशिष्ट अञ्चल होने के कारण उत्तर भारतीय संस्कृति उसमें मौजूद है किन्तु वह शिवपालगंज पर हावी नहीं हुई है । स्थानीय रंगों के प्रयोग से समूचे उपन्यास में सजीवता आ गई है । उपन्यास में अनेक स्थानों पर आंचलिकता का प्रभाव दिखाई देता है । पात्रों की वेश-भूषा, भाषा-अवधी तथा गंजहों का चित्रण करते समय आंचलिकता का पुट आया है । इस आंचलिकता के स्पर्श ने कथानक में यथार्थता ला दी है । तीसरी विशेषता है प्रकृति चित्रण की । किन्तु यहाँ बहुत कम मात्रा में प्रकृति का चित्रण हुआ है । यहाँ प्रकृति का चित्रण परिवेश और मानसिक स्थिति के उद्घाटन के लिए किया गया है, प्रकृति-चित्रण में लेखक का मन नहीं रमा जो स्वभाविक ही है ।

उद्देश्य :—स्वातन्त्र्योत्तर भारत की पतनोन्मुख अवस्था का यथातथ्य चित्रण लेखक का प्रमुख उद्देश्य है । लेखक भी जन-सामान्य के समान ही निराश, हताश और पीड़ित है किन्तु वह जीवन या यथार्थ से भागता नहीं । वह हमें जूझना सिखाता है । जीवन जीना है तो कर्मठ होकर ही । अतः उपन्यासकार केवल गन्दगी विकृति, गिरावट, मूल्यसंकट आदि स्वरों को यदि गुंजाता है तो अश्लीलता, नर्द और फूहड़ रूप में नहीं बल्कि आशावादी स्वरों के साथ पाठकों के जीवन के प्रति आकृष्ट करता है । वह पाठकों को मृत्यु से परे ढकेलकर जीवन की ओर फेंकता है । इस दृष्टि से लेखक अपने उद्देश्य में सफल है । यह ठीक है कि यह समस्याओं का समाधान नहीं सुझाता, सुधार का उपदेश नहीं देता किन्तु यथातथ्य के दर्शन कराकर वह एक टीस हमारे भीतर जरूर पैदा करता है जो हमें फिर से सोचने के लिए मजबूर करता है । हमें आत्मनिरीक्षण के लिए बाध्य करता है । यही उस

उपन्यास का उद्देश्य है जिसमें लेखक पूर्णतया सफल है ।

राग दरबारी महाकाव्यात्मक उपन्यास ?

'मोदान' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य में महाकाव्यात्मक उपन्यास की चर्चा विस्तार से शुरू हुई । वस्तुतः केवल पूछो के आधिक्य से कोई भी कृति महाकाव्यात्मकता का स्पष्ट नहीं कर पाती । जब तक उपन्यास की कथावस्तु, पात्र तथा भाषा-शैली में औदात्य, गाम्भीर्य, वैविध्य व्यापकत्व, देशकालानुवृत्तता आदि गुण नहीं आते तब तक उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास कहना अनुचित ही कहा जायगा । यहाँ हम चार तत्त्वो-कथानक, पात्र, भाषा-शैली तथा उद्देश्य के आधार पर राग-दरबारी की महाकाव्यात्मकता को निकपेंगे ।

कथानक — इस उपन्यास का कथानक अत्यन्त विशाल है । मयाज के प्रत्येक अंग तथा जीवन के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया गया है । यथार्थ का तो चित्रण करता ही है भाष ही जीवन के सभी समाहित कोणों में उसकी व्याख्या करता चलता है । इस कथा का मूल केन्द्र शिवपालाज नामक एक काल्पनिक गाँव है, जो समग्र हिन्दुस्तान का प्रतीक है । जहाँ 'सत्कारहीनता', नैतिक विघटन और विकृति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये हैं । स्वप्न वावू को सारे हिन्दुस्तान में शिवपालाज छाया हुआ दिखाई देता है । स्वान्धोत्तरकागीन भारतीय जन-जीवन की मूल्यहीनता और ह्रासोन्मुख-मस्तिष्क का सुलकर चित्रण किया गया है । कथानक की विशालता के साथ-साथ विषय-वैविध्य भी यहाँ दृष्टिगोचर होता है । सहकारी सभा, चुनाव पद्धति, पंचायत, बैंक, पुलिस-महकमा, शिक्षालय, प्राध्यापक, मैनेजिंग बॉर्डो, न्यायालय, बैंक, डाक्टर, सरकारी नौकर, चपरासी, अपसर, दुकानदार व्यापार, पंचवर्षिक योजनाएँ भ्रष्टाचार, सत्तासुद दल, विरोधी दल, युवा-जगत, प्रेम, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, फिल्म, जुआरी, रिक्शे वाले, पहलवान, गुंडे, कृषि, नारेबाजी, नेता, खेलकूद, मूदान यज्ञ, अलवार, विवाह-पद्धति, बेकारी, धर्म, युष्-फेस्टिवल, वन संरक्षण, वृक्षारोपण, अन्ध विश्वास, भाषा-समस्या, नयी और पुरानी पोड़ी का समर्थ इत्यादि न जाने कितने विषयों को लेखक ने अपने कथानक में स्थान दिया है । हाँ, इनका ज़रूर है कि मुख्य विषय के साथ-साथ ही अवसर मिलने पर इन विषयों पर अपना मत व्यंग्यात्मक पद्धति से देता है जो आधुनिक जीवन की कृत्रिमता को बखूबी रेखांकित करता है ।

कथानक की विशालता, वैविध्य तथा घटना बाहुल्य इसकी सफलता है किन्तु इतने मात्र से उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसका कथानक देशकाल की सीमा से अनिवद्ध नहीं । विशिष्ट काल की तथा विशिष्ट परिस्थितियों से घिरे हुए लोगों का चित्रण यहाँ किया गया है । घटनाएँ भी समय सापेक्ष हैं । 'शिवपालाज को केन्द्र माना है किन्तु यह कथानक में शास्व-

नता और सार्वजनीनता के तत्त्व को नहीं उत्पन्न कर पाते । फिर भी सदीप क्यों न हों कथानक की दृष्टि से 'राग दरवारी' महाकाव्यात्मक उपन्यास की परिधि का स्पर्श तो कर लेता है । "स्थितियाँ इतनी बजादार हैं कि उन पहलुओं का वस्तुगत प्रस्तुतीकरण ही महान उपन्यास बन जाता है । अतः समाज का प्रतिनिधित्व (chronic Quality) की दृष्टि से राग दरवारी को महाकाव्यात्मक उपन्यास कहने में कोई संकोच नहीं होता ।"^{११}

पात्रः—इस उपन्यास में पात्र बहुलता और पात्र-वैविध्य विद्यमान है । किन्तु जायवततथा अमर पात्र नहीं हैं, जो कि महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए आवश्यक हैं । इस उपन्यास में वैद्य जी तथा रंगनाथ ये दो ही प्रतिनिधि पात्र हैं जो कि सशक्त हैं अन्य पात्रों के प्रतिनिधित्व में कोई अर्थवत्ता नहीं है किन्तु उपर्युक्त दोनों प्रातिनिधिक पात्रों के व्यक्तित्व में कोई औदात्य नहीं और न ही कोई Tregic element है । इसके अतिरिक्त समूचे उपन्यास में एक भी ऐसा पात्र नहीं जो जानि का प्रतिनिधित्व करता हो और सबसे बड़े आश्चर्य की बात है कि स्त्री पात्र का तो अभाव है, जो महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से दोष ही माना जायगा । कोई भी पात्र व्यक्तित्व के भीतरी-संघर्ष, तनाव और घुटन को चित्रित नहीं करता न ही कोई पात्र मूल्यों की प्रतिष्ठापना ही करता है; केवल समाज में विद्यमान पतित या पतनोन्मुख पात्रों को ही चित्रित किया गया है । यह ठीक है, कि ये पात्र यथार्थ और विकृति का हृदय चित्र प्रस्तुत करते हैं किन्तु व्यक्तित्व के प्रति आस्था उत्पन्न नहीं कर पाते । "पर वे पात्र कहाँ हैं जो दर-दर की ठोकें खा रहे हैं; लेकिन अन्वरे में ही कहीं उनकी संघर्ष यात्रा अनवरत चल रही है और वे दिन-रात अपने-अपने रास्तों को पा लेने या उसे बना लेने के लिए वेचैन हैं ।"^{१२} अतः पात्र की दृष्टि से देखा जाये तो 'राग दरवारी' का कोई भी पात्र महाकाव्यात्मक उपन्यास के स्तर का नहीं है ।

शिल्पः—'राग दरवारी' की भाषा में यथार्थता है, सरसता है, प्रवाह है और प्रभावोत्पादकता है किन्तु उसमें गांभीर्य का अभाव है । उपन्यासकार गाँव की जिन्दगी को चित्रित करना अपना ध्येय मानकर चला है अतः जब गाँव ही फूहड़, बेहूदा तथा भद्दा है तो उसकी अभिव्यक्ति उसमें भिन्न कैसे ? जन-सामान्य के जीवन को चित्रित करने के कारण तथा उसमें जीवंतता लाने के लिए सामान्य जन की भाषा का प्रयोग किया है । कहीं-कहीं लोक भाषा का प्रयोग किया है । इतना ही नहीं कई स्थानों पर उनकी भाषा में ग्राम्यत्व दोष भी मिलते हैं । इसके अतिरिक्त इनके प्रकृति वर्णन भी अभिजात्य नहीं और काव्यात्मक भी नहीं हैं । इनकी भाषा का सबसे बड़ा अस्व है व्यंग्य । व्यंग्य श्रीलाल मुकुल की सीमा भी है और उपलब्धि भी । आद्यांत उपन्यास में व्यंग्य समाया हुआ है, अतः कई स्थानों पर वह हल्का-फुल्का हो गया है । "प्रामाणिक अनुभूतियों को लेकर जिस प्रकार इस उपन्यास

वा आरम्भ हुआ, यदि व्यंग्य एक हल्के-फुल्के सतही विवरणों के माह में न पड़कर उसे गहरी अन्तर्दृष्टि से, सूक्ष्मता से ग्रहण करने की कोशिश की होती तो निश्चय ही यह उपन्यास विगत बीस वर्षों की एक विशिष्ट उपलब्धि बन सकता था।" आलोचक का यह कथन स्पष्ट कर देता है कि लेखक व्यंग्य के मोह में पड़कर महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए आवश्यक औदात्य और गाम्भीर्य का नहीं बटोर पाया है और यही वह महाकाव्यात्मक उपन्यास की माया की दृष्टि में हल्का लगता है।

उद्देश्य — 'राग दरबारी' स्वातन्त्र्योत्तर विघटन का हूबहू चित्र प्रस्तुत करता है। किन्तु हम किसी आदर्श स्थिति की कल्पना तक भी नहीं की गई है, न ही लेखक उदात्त ध्येय को लेकर चला है। इसके उद्देश्य से पाठकों को न तो कोई मदद मिलता है और न ही विशिष्ट जीवन दृष्टि। महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए उदात्त लक्ष्य का होना नितांत अनिवार्य है। अतः उद्देश्य की दृष्टि से भी यह उपन्यास महाकाव्यात्मक उपन्यास की कोटि में नहीं बैठ पाता है।

उपर्युक्त चार तत्त्वों के आधार पर किये गये विवेचन में स्पष्ट है कि 'राग-दरबारी' की विशालता तथा दीर्घकायत्व उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की कोटि में बिठा पाने में असमर्थ है।

राग दरबारी व्यंग्य कृति या व्यंग्य दृष्टि

व्यंग्य कृति या व्यंग्यदृष्टि से युक्त यह उपन्यास लिखा गया है। इसकी परखने के लिए व्यंग्य की परिभाषा को जानना अत्यन्त आवश्यक है। डिफो ने "The end of satire is Reformation व्यंग्य का लक्ष्य सुधार को माना है। इसी प्रकार स्विफ्ट, ड्रायडन आदि लेखकों ने व्यंग्य का प्रमुख उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व में निहित दोषों के सुधार को ही माना है। व्यंग्यकार का कार्य डॉक्टर के समान है जो समाज में फैली हुई गन्दगी को दूर करता है। वह यथार्थ का उद्घाटक, दोष-सुधारक, नियम-प्रतिष्ठापक, न्यायाधीश, आदर्शों का पालक, नीति-मत्ता का प्रस्तोता, दोषी को दण्डित करने वाला, सामाजिक असंतुलन को नष्ट कर उसे सन्तुलित करने वाला होता है। कई सतहों पर एक साथ काम करता है। इसलिए उसे Moral agent तथा Social Scavenger कहा जाता है।

राग दरबारी १९६८ में लिखा गया। समूचा भारत राजनैतिक दृष्टि से पतन की जगह पर खड़ा हुआ था। चारों तरफ उच्छ्वसलता छाई हुई थी। सभी आदर्शों तथा मूल्यों का अवमूल्यन हो चुका था। ऐसे समय से प्रभावित होकर ही लेखक ने उपन्यास के कथानक का ताना-बाना बुना है। शिवपालगज क्यापट का केन्द्रबिन्दु है, जो प्रतीक या प्रतिनिधि रूप में चित्रित है। इसी शिवपालगज में सारा भारत समाया हुआ है। इस गाँव में सभी क्षेत्रों में अन्याय, अत्याचार, मृष्टाचार, आर्थिक शोषण, नैराश्य, कुण्ठा तथा नैतिक अवमूल्यन का साम्राज्य है।

“सच्चा व्यंग जीवन से सीधा नाशात्कार होता है, जीवन की मञ्ची समीक्षा होती है। यह शर्त तो रागदरवारी पूरी करता है किन्तु इसके साथ ही “विसंगतियों से टकराने का सहस्र पैदा करना सफल व्यंग का काम है। यह मनुष्य को एक और अच्छा मनुष्य बनाने की एक प्रक्रिया है।” व्यंग्यकार के इस ध्येय की पूर्ति रागदरवारी नहीं कर पाता है अतः इसे व्यंग-कृति कहने की वजाय व्यंग-दृष्टि युक्त लिखा गया या क्रीड़ा-दृष्टि युक्त (Comic) लिखा गया उपन्यास कहना अधिक समीचीन जान पड़ता है। दूसरी बात यह कि लेखक घटना और पात्र दोनों दृष्टियों से घोर यथार्थ का उद्घाटन तो करता है किन्तु मूल्यों के प्रतिष्ठापक पात्र का अभाव दिखाई देता है। तीसरी बात यह कि हास्य-व्यंग की अति के भी कारण दोष उत्पन्न हुआ है। इसीलिए आलोचकों ने ‘स्माइल ए टू डे’, ‘स्वतन्त्रता दिवस का सप्लीमेंट’, ‘अच्छा मजाक’ आदि विशेषण दिए हैं, जो प्रभाव के गाम्भीर्य को हल्का करते हैं। अतः समग्र रूप से विचार करने पर डॉ० शातिम्बरूप गुप्त के मत से महमत होकर कहा जा सकता है कि रागदरवारी को “व्यंग-कृति तो नहीं कहा जा सकता, पर उसमें व्यंग-दृष्टि या क्रीड़ा (Comic) दृष्टि अवश्य है। पूरे उपन्यास को इसी क्रीड़ा-दृष्टि से देखा गया है। व्यंग-दृष्टि ने उपन्यास की समृद्धि में निश्चित योगदान दिया है।”

आंचलिकता का प्रश्न :—मानव में आंचलिक प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन काल में विद्यमान है। वह जिस अंचल में पलता है उसे अभिव्यक्ति देना चाहता है। यह आंचलिक प्रवृत्ति कलाकार को व्यापक फैलाव की वजाय गुणात्मक गहनता की ओर ले जाती है। आंचलिक कलाकार उस अंचल विशेष के रीति-रिवाज, धर्म, मस्कृति तथा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक इन सभी चित्रों को विस्तार में प्रस्तुत करता है। कोश में अंचल शब्द के दो अर्थ दिए गए हैं :—(१) अंचल शब्द एक ऐसे भूगण्ड विशेष का वाचक है जो सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से अपने आप में एक ज्वाड़ हो जिसके जीवन की कुछ अपनी विशेषताएँ हों। (२) जनपद और क्षेत्र ‘अंचल’ के कोशगत अर्थ को जान लेने के बाद आंचलिक उपन्यासों के मूल तत्त्वों का संकेत करना भी आवश्यक हो जाता है जिसके आधार पर ही रागदरवारी आंचलिक उपन्यास है या नहीं, यह सिद्ध किया जा सकता है। प्रमुख रूप में आंचलिक उपन्यास के छः मूलतत्त्व हैं :—

(क) कथानक का आंचलिक आधार

(ख) लोक संस्कृति का चित्रण

(ग) अंचल की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का चित्रण

(घ) भौगोलिक स्थिति का अंकन या प्रकृति-चित्रण

(ङ) पात्रों के चरित्र विकास में अंचल का योग

(च) जनजागरण की नयी दिशा का संकेत ।

उपर्युक्त इन छ तत्वों के आधार पर रागदरवारी को निकष कर देखा जाए तो यह सिद्ध होता है—

(क) शिवपालगज विशिष्ट अचल मान नहीं है । रूपन बाबू तो स्वयं कहते हैं कि "सारे मुलक में शिवपालगज फैला है ।" वस्तुतः शिवपालगज तो प्रतीक है पतनोन्मुख और मूल्यहीन स्वातन्त्र्योत्तर समग्र भारत का । अतः जब शिवपालगज विशिष्ट अचल ही नहीं सिद्ध होता तो अन्य तर्क स्वयं निराधार हो जाने हैं ।

(ख) आचलिक उपन्यासों में नैतिक मूल्यों का खडन-मडन तथा विकास और प्रतिष्ठापना की चर्चा नहीं होती किन्तु 'रागदरवारी' का तो यही मूल उपजीव्य है ।

(ग) आचलिक उपन्यास व्यापकता की बजाय सक्षिप्तता का चित्रण करते हैं । किन्तु 'रागदरवारी' शिवपालगज के माध्यम से स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय मूल्यहीनता का दस्तावेज है । इसे स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज का दर्पण कहा जा सकता है ।

(घ) 'शिवपालगज' के शिवप्रसाद सिंह के 'करंता' की गाँव की तरह तो है जिसमें ग्रामीण, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थितियों के चित्र भोजूद हैं किन्तु 'मैल आँचल' और 'परती परिकथा' से सर्वथा भिन्न है ।

(ङ) 'रागदरवारी' में गाँव की ज़िन्दगी को रूपायित किया गया है, यत्र-तत्र ग्रामीण भाषा का प्रयोग भी किया गया है किन्तु इतने से कोई उपन्यास आचलिक नहीं कहलाया जा सकता ।

उपर्युक्त समीक्षण से यह स्पष्ट है कि 'रागदरवारी' दरवारी गाँव की ज़िन्दगी से घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध होते हुए भी एक अत्यन्त अनाचलिक उपन्यास है । गाँव के माध्यम से यह आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता और सस्वास्तीहीनता को एक सहज निर्ममता के साथ अनादृत करता है ।¹¹

शीर्षक की प्रतीकात्मकता —शीर्षक और कृति का परस्पर सम्बन्ध रहता है । शीर्षक से ही कृति के कथानक का बोध होता है, और कथानक का मूलभाव शीर्षक में केन्द्रित रहता है । किन्तु आजकल यह आवश्यक नहीं रहा है फिर भी पारस्परिक सम्बन्ध को अस्वीकारा नहीं जा सकता । 'रागदरवारी' में किसी साहित्यिक मानदण्ड के समीप होने की बजाय ज़िन्दगी के ज्यादा समीप होने की कोशिश है ।¹² यह कथन स्पष्ट करता है कि रागदरवारी जीवन की धारा को पकड़ने का प्रयास है । लेखक का लक्ष्य देश में फैले हुए अनाचार, भ्रष्टाचार, अन्याय तथा अधमूल्यन को चित्रित करना है । समूचे उपन्यास का सम्बन्ध ही भारतीय जीवन से है । अतः शीर्षक का सम्बन्ध भी जीवन से है किन्तु उसे प्रतीकात्मक रूप से रखा गया है । दरवारी शब्द से सामंती संस्कृति का चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता

है, जिसमें राजा की रुचि की प्रधानता को महत्व दिया जाता था। दरबारी उराकी पूर्ति करने के लिए विवश होते थे। यहाँ तक कि वह उनका स्वभाव ही बन जाता था। लेखक का मत है कि आज भी भारत में सामंतवाद के नष्ट होने के बाद भी सामन्तवादी मनोवृत्ति नष्ट नहीं हुई। प्राचीन राजा-महाराजाओं के स्थान पर आधुनिक मंत्रियों ने, अधिकारियों ने स्वयं को आसीन कर लिया है। सामान्य जनता आज भी दरबारी बनी हुई है। आधुनिक नेता-सामंतों के प्रतीक के रूप में तथा सामान्य जन दरबारी के रूप में चित्रित हैं। इस प्रकार प्रतीकात्मक अर्थ लगाने का ठोस आधार यह है कि श्रीलाल शुक्ल की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन व्यंग्य है। सम्पूर्ण कथा में लाक्षणिक अर्थ प्रमुख है। ऐसे व्यंग्य कथाकार से शीर्षक अछूता रहे यह सम्भव ही नहीं। अतः शीर्षक का सम्बन्ध जीवन से है, भारतीय जनमानस की मनोवृत्ति से है। "यह शीर्षक न तो संगीतशास्त्र से कोई सम्बन्ध रखता है और न तो दर्शन एवं धर्म से।".....

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद नये सामंतों का उदय हुआ है और नये दरबारी अस्तित्व में आए हैं। ये दरबारी परोपजीवी प्रवृत्ति वाले हैं जो दगुलामगत नेताओं की 'राग' अलाप रहे हैं।".....

रागदरबारी : कृति की राह से कृति की पहचान :—जिस प्रकार जीवन और मूल्य निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं उसी प्रकार साहित्य और उसके प्रतिमान भी निरन्तर परिवर्तित होते चलते हैं। साहित्य के रूप के साथ समीक्षा के प्रतिमान न बदले तो सच्ची समीक्षा सम्भव ही नहीं। अतः 'रागदरबारी' की समीक्षा पूर्व-निर्धारित मानदण्डों के आधार पर न कर 'रागदरबारी' के माध्यम से ही की जाए तो ज्यादा उपयुक्त होगी। ऊपर औपन्यासिक तत्त्वों के आधार पर की गई समीक्षा का शीर्षक ही स्वयं स्पष्ट कर देता है कि वह केवल अध्ययन की सुविधा मात्र के लिए है। किसी भी कृति की सही पहचान उसके बीच से गुजर कर ही संभव है। यहाँ हमने यही प्रयास किया है।

'रागदरबारी' १९६८ में प्रकाशित रचना है जबकि भारतीय समाज पतन की चरम अवस्था पर पहुँचा हुआ था। किसी भी पीढ़ी के लिए स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही अन्तिम ध्येय नहीं होना चाहिए। उपलब्ध स्वतन्त्रता के अस्तित्व को टिकाना अत्यन्त आवश्यक होता है। किन्तु भारत में इस प्रकार नहीं हुआ। पराधीनता के काल में जनता की वृत्ति त्याग, सेवा, देशप्रेम आदि से समन्वित थी। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही हमारी मनोवृत्ति में अवसरवादिता, स्वरति, व्यक्तिपूजा, ऐश-व्याराम की वृत्ति, चारित्रिक अभाव, अनुशासनहीनता, दायित्वहीनता, कार्यकुशलता का अभाव आदि ऐसे घर कर बैठ गए जिससे सामाजिक जीवन में एक प्रकार की असंगति और अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। चारों तरफ नैतिक पतन छा गया। कोई भी राष्ट्र या

व्यक्ति चारित्रिक उन्नति के बिना समृद्ध नहीं बन सकता । स्वतन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति (Crisis of Leadership) और (Crisis of Character) में इस प्रकार फँस गया है कि उसके बाहर वह नहीं निकल पा रहा है ।

यह युग असंतोष और अस्वीकार का युग है । आधुनिक पीढ़ी में यह असंतोष और अस्वीकार परिस्थितिजन्य है । अतः आधुनिक पीढ़ी के व्यक्ति को पुराने नेना, विश्वास, आस्था, आदर्श, परम्परा और मूल्यों से सम्बन्ध नकरता है । वह इन सबको तोड़ना चाहता है, बदलना चाहता है । पुराने आदर्शों और मूल्यों की जड़ें इस असंगति में पूरी तरह हिला दी हैं जिससे चारों तरफ एक प्रकार का असंतुलन, आक्रोश, निराशा और कुण्ठा भारतीय जन जीवन में विद्यमान दिखाई देती है ।

‘रागदरवारी का कथा-पट उपर्युक्त सामाजिक यथार्थ के तन्तुओं से निर्मित है । वस्तुतः ‘रागदरवारी’ स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय यथार्थ का दर्पण है । ‘शिवपलाशज’ कथा का केन्द्रबिन्दु है जो सारे मुल्क में फैला हुआ है । रागदरवारी भारतीय जीवन का आत्मसाक्षात्कार है और इसका माध्यम है व्यंग्य । व्यंग्य जीवन की सच्ची समीक्षा है । अतः लेखक ने व्यंग्य के माध्यम से भारतीय जीवन की अव्यवस्था, रिक्तता और मूल्यहीनता के चित्र उपस्थित किये हैं । यह युग नारो का युग है, ठोस कार्य का काम । स्वतन्त्रता के बाद भारतीय सामाजिक जीवन की उपलब्धि के नाम हुल्लट-वाजी, नगई, विघटन, असुरक्षा, असहकार, तस्करी, सभ्या-जीविता, मोहभंग, तनाव, लूटवृत्ति, भ्रष्टाचार, महँगाई, दिशाहीन विद्रोह ६० अनगिनत वृत्तियों को गिनाया जा सकता है । ‘रागदरवारी’ इन सब वृत्तियों का कच्चा चिट्ठा है । इसलिए उसे भारतीय यथार्थ जीवन का दस्तावेज कहा गया है । जिसमें स्त्रियाँ और कथ्य वर्गन-ब्रम से नहीं जीवन-क्रम से अर्थात् उन्हें जिए जाने की व्यंग्य सचेदनाओं से ओत-प्रोत है ।

लेखक ने कथा के माध्यम से समाज की विनगति को उजागर किया है जैसे इस कथा का केन्द्र शिक्षा-संस्था है जिसका प्रमुख कार्य गुटबन्दी और अशिक्षा देना है, पुलिस असुरक्षा के लिए है, सहकार—स्वाहाकार तथा गबन के लिए, राजनीति अराजकता के लिए है । देशरक्षक आज देशभक्त बन बैठे हैं । चुनाव—बलान् सर्वसम्पत्ति से लिए जाते हैं । अधिकारी रिश्वतखोर हैं । इस प्रकार सारा समाज एक प्रकार के छत्ररूप को धारण किए हुए है । प्रत्येक व्यक्ति मुसौटा ओढ़े हुए है अतः असली व्यक्तित्व की पहचान करना अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है । उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि मानो आदि से अन्त तक घटनाएँ घटित नहीं होती अपितु दुर्घटनाएँ होती हैं । और आश्चर्य है कि जननामाय तब भी निष्क्रिय, निश्चेष्ट और निश्चिन्त है ।

इस प्रकार लेखक ने समाज के उस अंग को जो मूल्यहीन और खोखला है, व्यंग के माध्यम से उद्घाटित किया है। संभव है कि कथापट 'समग्रता' को न लिए हो किन्तु निसंदिग्ध रूप से यह स्वीकार करना होगा कि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में श्रीलाल शुक्ल को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

कथा के समान सभी पात्र 'स्वरति' में मग्न हैं। हाँ, यह ठीक है कि कोई भी पात्र 'आदर्श पात्र' नहीं है जो कि स्वाभाविक है। क्योंकि यथार्थ जीवन में ही कहीं आदर्श नहीं रहा है तो कृति में कैसे सम्भव है? सभी पात्र यथार्थ तथा जीवन्त हैं।

वैद्य कुलपूज्य ब्राह्मण है। पेशा वैद्यकी है। साथ ही वे स्कूल मैनेजर तथा कॉम्प्लेक्स के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। इतने से ही वे सन्तुष्ट नहीं। पंचायत को भी वे अपने आधीन रखने का प्रयत्न करते हैं। वैद्य आधुनिक नेताओं के प्रतीक हैं, जो वगुलामगत हैं। शाकाहारी पोशाक पहनकर मांसाहार करते हैं। प्रिन्सिपल वैद्य के दरवाजे पर बांग घोटते हैं। उनका प्रमुख कार्य कॉलेज में गृहवन्दी, मारपीट, गद्दगी, नंगई, गालीगलौज, शह-मात इ० कराना है। किसी भी शिक्षक को उसकी योग्यता पर नहीं अपितु या तो चापलूसी के आधार पर या वैद्यजी के रिश्तों के आधार पर नियुक्त करते हैं। आधुनिक अधिकारियों की प्रमुख चापलूसी वृत्ति के रूप में प्रिन्सिपल प्रतिनिधि रूप में चित्रित किए गए हैं। रूपन ७८ वर्षीय युवक है। असंतोष एवं अस्वीकार उनके व्यक्तित्व के प्रमुख अंग हैं। स्कूल मैनेजर के पुत्र हैं, छात्रनेता हैं तथा साथ स्थानीय राजनीति में सक्रिय भाग लेते हैं। वे उच्छृंखलता उदण्डता तथा अनुशासनहीनता के रोग से ग्रस्त हैं। स्कूल, थाना, कॉम्प्लेक्स नस्पा आदि सब में युवक होने के नाते दखलदाजी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। रूपन को सबसे बड़ी विषेपता है कि युवक होने के कारण जब मन में आए तब वे किसी भी युवती से प्रेम करने का अधिकार रखते हैं। वस्तुतः रूपन के माध्यम से आधुनिक छात्रनेताओं की स्वार्थवृत्ति का पर्दाफाश किया है। रंगनाथ काफी पढ़े-लिखे हैं। अतः अकर्मण्य, निष्क्रिय तथा निठल्ले हैं। समाज उन्हें बुद्धिजीवी कहता है अतः वे यथार्थ से पलायन करते हैं, अतीत के स्वप्नों में रमने वाले, कायर, आत्मघाती, कुण्ठित, खोखले, पराश्रित, निराश आदि रोगों से ग्रस्त हैं। उनका समूचा व्यक्तित्व लिजलिजा है जो अधिक पढ़े-लिख लेने के कारण है। रंगनाथ यहाँ आधुनिक बुद्धिजीवी के प्रतिनिधि पात्र रूप में चित्रित हैं जो यथार्थ से दूर भागकर स्वरति में डूबकर आत्मघात करता है। लंगड़ और खन्ना—दो ऐसे पात्र हैं जो थोड़े से आदर्शों को लेकर जीते हैं। वे भी पूर्णतः आदर्श पात्र नहीं हैं। संभव भी नहीं क्योंकि लेखक का उद्देश्य यथार्थ का चित्रण है। एक नकल के लिए लंगड़ को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है। आधुनिक लालफीतशाही तथा आदर्शवादिता का

निर्भय उपहास किया गया है ।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त सनोचर, मोतीराम, मालवीय, छोटा पहलवान, रामाधीन आदि वैयक्तिक चरित्रों के माध्यम से लेखक ने उनके स्वार्थीवृत्ति तथा खोललेपन का पर्दाफाश किया है । और दरोगा, जज, वकील, सिपाही पंच, चपरासी, गवाह, इञ्जीनियर किसान, कुटुम्ब नियोजन अधिकारी, बलक आदि प्रातिनिधिक पात्रों के माध्यम से इनकी भ्रष्टाचार, कामचोर, रिश्वतखोरी वृत्ति का अंकन किया है । वेला एकमेव स्त्री पात्र है जो गौण पात्र है । नारी सत्ता आज भी भारतीय जीवन में उपेक्षित है, इसका ज्वलन्त उदाहरण है ।

सम्भव है कि उपर्युक्त पात्रों में मूल्यों का प्रतिष्ठापक पात्र न हो अतः लक्ष्मी सागर वाष्पों ने पात्रों को लेकर खूब आलोचना की है कि जहाँ समाज ही ऐसे पात्रों में मरा हुआ हो जिसने उसे जीर्ण शीर्ण, खोखला, दण तथा मोहमग की आस्था तक पहुँचाया हो वहाँ आदर्शों के प्रति आस्था रखने वाले पात्रों का सृजन गथायें न होकर काल्पनिक होगा जो उपन्यास में गुण की बजाय दोष ही अधिक साक्षित होगा ।

कथ्य के नवीन होने के कारण लेखक को नए शिल्प का अनलम्ब ग्रहण करना पड़ा है । कथ्य के अनुकूल शिल्प को ढाला है । विसंगतिमय समाज को प्रस्तुत करने के लिए व्यंग को साधन के रूप में ग्रहण किया है । इनके सवाद सक्षिप्त, चुमते, तीखे तथा आन्तरिक विमर्श को उद्घाटित करने वाले हैं । व्यंग, उनका सबल अस्त्र है । मवादों ने कथा को गति दी है और साथ ही हास्य की सृष्टि भी । भाषा पर लेखक को असाधारण अधिकार है । भाषा न तो संस्कृतनिष्ठ है न ही अत्यन्त गम्भीर तथा न ही विशिष्ट गरिमायुक्त । जनसामान्य के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग सर्वत्र हुआ है । भाषा में कहीं भी कुटि दिखाई नहीं देती । वह सीधी-सादी, सरल तत्सम, तदभव तथा देशज शब्दों को लिए हुए चलती है । भाषा का प्रमुख साधन है व्यंग । इसी व्यंग से अभिप्रेय अर्थ के साथ लक्षणीक अर्थ का संकेत देते चलते हैं । अभिधापरक अर्थ हास्य की सृष्टि करता है तो लक्षणीक पाठक के अन्तर्धन में पीडा और आक्रोश जगाता है । भाषा में मुहावरे, लोकोक्तियाँ, फिल्मीगान तथा संस्कृति की उक्तियों को तोड़-मरोड़ कर जड़ा है किन्तु वे विकृत अर्थ को स्पष्ट करते हैं । कहीं-कहीं काव्यात्मक भाषा का भी प्रयोग हुआ है । इतिम भाषा का सोहेय्य प्रयोग भी मिलता है । प्रत्येक शब्द नये आयामों को उद्घाटित करता है जिससे कथनमणिमा में सादृता और तीखेपन का समावेश हुआ है । व्यंग के माध्यम से लेखक ने अर्थों के खोललेपन विभिन्न आयाम, व्यङ्ग्यता, लक्षणीकता, हास्य का उद्रेक तथा आन्तरिक पीडा को व्यक्त किया है । व्यंग उसके शिल्प की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

इस प्रकार कृति की राह से गुजरने पर यह कृति सम्भव है कि उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर श्रेष्ठ उपन्यास सिद्ध न हो, महाकाव्यात्मक उपन्यास के लक्षण न हों, श्रेष्ठ व्यंग-कृति न हो किन्तु यह निःसंदिग्ध रूप से स्वीकार करना होगा कि 'राग-दरवारी' भारतीय स्वातन्त्र्योत्तर जीवन के चारित्रिक ह्रास तथा जीवन के विभिन्न सदोष अंगों के चित्रण के माध्यम से वह आत्मसाक्षात्कार कराता है, यही उसकी महती उपलब्धि है।

टिप्पणियाँ

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : नेमिचन्द्र जैन
२. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि : डॉ. रामदरश मिश्र, पृ० ११८
३. आलोचना : त्रैमासिक : कमलेश का लेख
४. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि : डॉ. रामदरश मिश्र, पृ० १२६
- ५, ६. रागदरवारी : श्रीलाल शुक्ल, पृ० ३३
७. वही, पृ० ४१
८. वही, पृ० ४५
- ९, १०, ११. वही, ३२७
१२. वही, ३४४
१३. वही, ३६
१४. वही, पृ० ८९
१५. वही, पृ० ३२३
१६. वही, पृ० २०५
१७. वही, पृ० १३६
१८. वही, पृ० ३७४
१९. वही, पृ० २१८
२०. वही, पृ० ८१
२१. वही, पृ० १६५
२२. वही, पृ० १८५
- २३, २४, २५. वही, पृ० २१
२६. वही, पृ० १६७
२७. वही, पृ० २७१
२८. वही, पृ० २८
२९. वही, पृ० २१५
- ३०, ३१. वही, पृ० २१८
३२. वही, पृ० ३९

- ३३ हिन्दी उपन्यास महाकाव्य के स्वर डॉ शान्तिस्वरूप गुप्त
 ३४, ३५ डॉ लक्ष्मीसागर वाण्य
 ३६ रागदरवारी : प्रनाशनीय वक्तव्य
 ३७ कमलेश
 ३८ डॉ त्रिभुवन सिंह

विपात्र का कथ्य : दरमियानी दूरियों का दर्द

डॉ० चन्द्रमानु सोनवणे

मुक्ति, अकेले में अकेले की नहीं हो सकती । यदि वह है तो सब के साथ है ।

—मुक्तिबोध

अद्वैत का ब्रह्म मात्र 'अनरित्त्व का अस्तित्व' है जिसकी मनुष्य को विलग्नता जरूरत नहीं है ।

—मुक्तिबोध

धृतिस्वात्मन्य का ढोंग करने वाले विषमतापिस्त देशों में मजदूरी के कारण जननेन्द्रिय भी बेचे जाते हैं ।

गरीबी की वेदना और धन की अहमस्त वासना के युग्मीकरण के कारण भीतर और बाहर की दरिद्रता बढ़ती ही जाती है ।

—मुक्तिबोध

वेदना स्वयं कर्म का उत्साह उत्पन्न नहीं कर सकती ।

—मुक्तिबोध

सवाल जिन्दगी में होने वाली गलतियों का नहीं है, सवाल उन फासलों का है, जिन्हें बीचोबीच रखकर गलती नहीं सुधारी जा सकती । ऐसा क्यों इसलिए कि हर एक को घमण्ड है कि उसके अपने पास जो कुछ है वह मूल्यवान है

—मुक्तिबोध

'विपात्र' उपन्यास मुक्ति की उपनिषद् है। मुक्तिबोध ने पारम्परिक भारतीय विचारधारा के समान ही मुक्ति को मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ माना है, किन्तु उनकी मुक्ति-विषयक धारणा पारम्परिक धारणा से एकदम भिन्न है। उनकी दृष्टि में परलोक सम्बद्ध एवं व्यक्तिपरक मुक्ति की कैवलयात्मक धारणा उद्दाम स्वार्थमात्र है। इस उद्दाम स्वार्थ के मूल में ब्रह्मविषयक अद्वैतवाद की विचारधारा है। उनके अनुसार अद्वैतवाद का यह ब्रह्म 'मात्र अनस्तित्व' का अतिस्तित्व है, जिसकी मनुष्य को 'बिल्कुल जरूरत नहीं है।' उन्होंने 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' कविता में ब्रह्म के मुँह का टेढ़ापन कहते हुए स्पष्ट किया है कि इसी ब्रह्म के आश्रय में अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब बनते चले जा रहे हैं। इस व्यक्तिपरक ब्रह्म की आराधना से प्राप्त होने वाली मुक्ति की धारणा के विपरीत उनका तो विचार यह है कि— 'मुक्ति, अकेले में, अकेले की नहीं हो सकती।' "यदि वह है तो सबके साथ है।"

सब के साथ रहकर "भीतर व बाहर के दलित्वा से मुक्ति" प्राप्त करना ही उनकी दृष्टि में सच्ची मुक्ति है। दूसरों के साथ सघन आत्मीय सम्बन्धों के परिवेष्टा में जीने को ही वे जीवन का परम पुरुषार्थ मानते हैं। सघन आत्मीय सम्बन्धों से रहित जीवन उनकी दृष्टि में शून्य मात्र है।

भीतर और बाहर की दरिद्रता से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सघन आत्मीय सम्बन्धों का स्थापित होना अनिवार्य है। मुक्तिबोध ने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच स्थापित होने वाले सम्बन्धों के महत्त्व पर बल देते हुए लिखा है कि— "विभिन्न वायुमण्डलों और दिक्कालों में से आए हुए लोग भी, एक ठंडे घने पीपल की छाया के नीचे विश्राम करते हुए गले मिलें तो इसमें मुझे प्रकृति का विशेष उद्देश्य ही दिखाई देता है।"

इस प्रकार के विविध मिलन-स्थलों पर स्थापित हुए सम्बन्धों के माध्यम से ही व्यक्तियों में उस सामाजिकता का उदय होता है, जिसे मुक्ति की माता कहा जा सकता है। सौहार्दपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों के कारण अनेक व्यक्ति एक सामाजिक

इकाई के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। आत्मीय सम्बन्ध के जादूमे प्रभाव से एक और एक व्यक्ति मिलकर गणित के नियम के अनुसार दो नहीं हो जाते, बल्कि एक ही बने रहते हैं। मुक्तिबोध ने इसीलिए कहा है—

“एक-घन एक से

पुन एक बनाने का यत्न है अविरत।”

एक-घन-एक से पुन एक बनाने वाले आत्मीय सम्बन्धों पर विचार करते हुए व्यक्तियों की रचि भिन्नता को मूलाया नहीं जा सकता, क्योंकि “आदमी की पसदगी-नापसदगी, रहन सहन आदि के तरीके अलग-अलग होने हैं। किसी दूसरे आदमी के ढाँचे में वे फिट नहीं किए जा सकते।” दूसरे के ढाँचे में फिट करने के प्रयत्न आत्मीयता का आधारभूत व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है और व्यक्ति के नाम पर केवल वह कठपुतली या अधि-मे-अधि-रोबो मात्र बनकर रह जाता है। ‘विपाय’ का वास दूसरी की जिन्दगियों को समित्त करके उनकी गतिविधियों को अपने अनुकूल ढालना चाहता है। वाग के अनुकूल ढाँचे में कसा जाना निवेदक को अपने व्यक्तित्व के प्रतिकूल प्रतीत होता है। ढाँचे के कसाव से मुक्त रहने के लिए उसकी आत्मा छटपटाने लगती है, क्योंकि व्यष्टि ही नहीं, अपितु ममष्टि के विकास के लिए व्यक्ति स्वातन्त्र्य की नितान्त आवश्यकता है। स्वतन्त्र व्यक्तियों में ही आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं, परतन्त्र कठपुतलियों में नहीं।

व्यक्तिस्वातन्त्र्य की समस्या बड़ी नाजुक समस्या है। बिशिष्ट ढाँचे में बसा ढालने वाली समाज व्यवस्था में जिस प्रकार व्यक्तिस्वातन्त्र्य असंभव है, उसी प्रकार भेदाभेद की विषमता से ग्रस्त शोषणयुक्त समाज में भी वह असंभव है। विषमता-ग्रस्त समाज में व्यक्तिस्वातन्त्र्य केवल उन व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है, जिनके पाग पैसा होता है। शोषित नियंत्रित को तो ‘स्वतन्त्रता बेचने की आजादी की मजदूरी’ हो सकती है। इस मजदूरी के कारण अलग-अलग लोग अपनी आजीविका को पाने के लिए अलग-अलग ढंग से पूँछ हिलाने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इसी कारण विद्या केन्द्र के लोग बाँस के सामने अलग-अलग शैली से अपनी-अपनी पूँछ हिलाते हुए दीख पड़ते हैं। यह बात दूसरी है कि पूँछ हिलाने के बावजूद निवेदक राजसाहब के समान अपने को बाँस के सामने हीनता से ग्रस्त होकर पूर्णतः समर्पित नहीं कर पाता है। लेकिन वह बाँस से झगड़ा मोल लेने को भी तैयार नहीं हो पाता, क्योंकि उसकी यह पन्द्रहवीं नौकरी है। उसे यह अच्छी तरह से मालूम है कि नौकरी को दूतकारना आसान है, किन्तु पेठ साल्फर बहुत मुश्किल है। बाँस से झगड़ा करके लौकर को दूतकारने का विचार आते ही उसके सामने घर के सारे दुर्भाग्य आ सजे होते हैं। लम्बे-लम्बे रोग तथा बालवच्चों और बूढ़े माता-पिता की जिम्मेदारियाँ उसे अक्षमता के बोध से कृण्ठन करके प्रवाह-पतित भूमे काठ की तरह परिस्थितियों की विवशता

में वहे चले जाने के लिए वाध्य कर देती हैं। दूसरी ओर भनावत अपनी चौदहवीं नौकरी को बनाए रखने के लिए मीकापरस्त बनने के लिए विवश है। अपने अनुभवों के आधार पर उसे यह मालूम हो गया है कि खोटा सिक्का अच्छा चलता है। यह दशा मध्यमवर्ग के व्यक्तियों की है। निम्नवर्ग के व्यक्तियों की विवशता का तो कोई अन्त ही नहीं है। पूंजीबल पर उच्च वर्ग के लोग उन्हें गुलाम बनाने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र हैं। तात्पर्य यह है कि विपमता से ग्रस्त समाज में अपनी-अपनी गति के अनुकूल अपने-अपने व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने के लिए मनुष्य को व्यक्तिस्वातंत्र्य मिल सकना संभव नहीं है। यही कारण है कि तथाकथित व्यक्तिस्वातंत्र्य का ढोंग करने वाले विपमताग्रस्त देशों में मजबूरी के कारण "जननेन्द्रिय भी बेचे जाते हैं।"

वर्गवैपम्य से पीड़ित समाज में आत्मीय सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए आवश्यक सच्चा व्यक्तिस्वातंत्र्य न होने के कारण शोषित व्यक्ति वेदना की अधिकता के कारण आत्मवद्ध बन जाता है। एक ओर वह निस्सहायता और अगुरक्षितता के कारण किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास करने की क्षमता खो बैठता है तथा दूसरी ओर उसका आत्मविश्वास लुप्त हो जाता है। परिणामतः हीनता का शिकार बनने के कारण उसमें कर्म का उत्साह रह नहीं पाता। दुःख की अतिमात्रा उसके व्यक्तित्व को माँजने के स्थान पर घिस डालती है। वह अपनी पेट की आग बुझाने के लिए चोरी करने के लिए विवश हो जाता है। उसकी विवशता को समझने का प्रयत्न करने के स्थान पर उच्च वर्ग का व्यक्ति निर्धन व्यक्ति को चोर और आचारा समझने लगता है। 'लामलोम की समझदारी' के कारण उसकी मानवीय समझदारी लुप्त हो जाती है। निर्धनता से सम्बन्धित यह मानसिक ग्रन्थि वाँस में भी है। 'दो कदम चलने में भी तकलीफ' महसूस करने वाला वाँस पेट के लिए मछली या आम चुराने वाले फटेहाल गरीब लड़कों को बेरहमी से पीटता है। परन्तु यही वाँस वगीचे के आम तोड़कर खाने वाली कॉलेज की लड़कियों के पीछे-पीछे घूमता है। उसके मन में गरीबों के प्रति असीम घृणा है। वह शोषक वर्ग की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। वह जनता को कुत्ता और गरीब को कमीना समझता है। वह अपने मातहतों को संस्कृति के नाम पर गरीबों से घृणा करने के लिए उकसाता है। उसकी दृष्टि में गरीबों की वस्ती 'डिसरेप्यूटेबल जगह' है। इस प्रकार की जगहों में रहने वाले शोषित मनुष्यों के व्यक्तित्व, इतने अधिक कुचल जाते हैं कि वे शोषकों की 'मेहरबानी' या उपभोग्यता को प्राप्त करने में गरीब का अनुभव करने लगते हैं। अंग्रेज अफसरों की उपभोग्यता वनी काली नौकरानियाँ दस बात पर गर्व किया करती थीं कि वे 'बड़ों के घर' में हैं। स्वाधीनता के बाद विदेशी शोषकों का स्थान देशी उच्च वर्ग के लोगों ने लिया है।

जिस प्रकार शोषणजन्य वेदना व्यक्ति को आत्मवद्ध बनाती है, उसी प्रकार

शोषकों की वासना भी उन्हें आत्मवद्ध बना डालती है । शोषणयुक्त समाज में शोषक उच्च वर्ग को वासनामयी कल्पनाओं में रममाण होने के लिए भरपूर भुविघाएँ उपलब्ध होती हैं । वासना की अधिकता के कारण इस वर्ग के लोग उत्तरोत्तर अधिकाधिक व्यक्तिवद्ध बनते चले जाते हैं । गरीबों से आत्मीय सम्बन्ध प्रस्थापित करना इन लोगों को अपमानारूपद प्रतीत होता है । वैसे इन्हीं लोगों में से एक है । वॉम के अतिरिक्त उच्च वर्ग के एक अन्य सारावी और रणडीबाज रईम का समावेश 'विपात्र' में किया गया है । इस रईस की अपनी कोई कमाई नहीं है और न ही उसकी अपनी कोई मेहनत है । उसने केवल 'विधवा जमींदारिन के साथ मेहनत की है ।' इसी मेहनत के बल पर वह हर तीसरे साल कार बदलता है और हर दूसरे साल प्रेमिका । इस वर्ग के लोगों के लिए ही श्री अज्ञेय ने यह लिखा है कि इन लोगों को धर्म के नाम पर केवल रतिधर्म से ही परिचय होता है ।" ऐसे ही लोगों के पीछे विधायक फिरते दिखाई देते हैं, जो श्यामल जनसमुदाय से मतों को पाकर जीतने के बाद उस समुदाय को बड़े ठाठ से मूल जाया करते हैं ।

शोषक वर्ग से सम्बन्धित एक मुनीम का वेदा भनावत है । वह स्वयं स्वीकार करता है कि गरीब लोगों से व्याज बढ़ा करके उसके पिता ने भ्रष्टाचार भरा है । भनावत के पिता ने अपने वेदे को शोषण की तिजारा के सब 'गुर' बता दिए थे, किन्तु भनावत को तिजारा करना नामजूर था । वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता था । उसने पिता से बगावत करके दूसरों की स्वतन्त्रता खरोदने के काम में इनकार कर दिया । उसने 'शैतान का बच्चा' होते हुए भी शैतान बनना नहीं चाहा, किन्तु समाज के शैतानी ढाँचे ने उसे 'शैतान का भोकर' बनाकर छोड़ा । समाज की रचना ही कुछ इस प्रकार की है कि इसमें शोषक बनने से इनकार करने पर शोषित बनने के लिए विवश होना पड़ता है । इस प्रकार के समाज में व्यक्तिस्वातन्त्र्य जनता के लिए छलना मात्र होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शोषणग्रस्त समाजव्यवस्था में वेदना और वासना से उत्पन्न व्यक्ति बद्धताओं के कारण व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच आत्मीय सम्बन्ध प्रस्थापित करने के लिए अवकाश ही नहीं होता । इस प्रकार के समाज में एक ओर अस्तित्वरक्षा के तथ्य में चबे हारे वेदनाग्रस्त लोग व्यक्तिवद्ध बन जाते हैं तथा दूसरी ओर सम्पन्न लोग वासनाग्रस्त हो जाने के कारण अहंकार के दलदल में धँसकर व्यक्तिवद्ध बन जाते हैं । 'गरीबी की वेदना और धन की अहंकार वासना के युग्मीकरण' के कारण भीतर और बाहर की दरिद्रता बढ़ती ही जाती है । समाज दुराचारों का अड्डा बन जाता है । गरीबी की वेदना धन की वासना को भ्रष्टाचार के लिए विवश हो जाती है । इसी स्थिति को दृष्टि में रखकर मुक्ति-बोध ने लिखा है कि—

जोपण की अतिमात्रा
स्वार्थों की मुखयात्रा
जब-जब सम्पन्न हुई

आत्मा से अर्थ गया, मर गई सभ्यता ।''^{१२}

उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की वासना और वेदना से उत्पन्न आत्मवद्वेष्टाओं के कारण इन दो वर्गों के व्यक्तियों में दरमियानी फासले उभर आते हैं। ऊँच-नीच की भावना से उत्पन्न होने वाले इन फासलों को निवेदक ने अक्षांश वाले फासले कहा है। ये फासले उस प्रकार के फासले हैं जिस प्रकार के फासले एक ही निर्मनी की उपरली और निचली सीढ़ियों पर खड़े दो व्यक्तियों के बीच में होते हैं। इस प्रकार के फासले सबने अधिक खतरनाक होते हैं, क्योंकि उपरली और निचली सीढ़ियों पर खड़े व्यक्तियों में न घर्ष छिड़ जाने पर घातक परिणाम सामने आते हैं। इन फासलों के मूल में घृणा है। आज तक उच्चवर्ग के लोग निम्नवर्ग के लोगों से घृणा करते आए हैं, किन्तु अब निम्न वर्ग के लोगों में ज्यों-ज्यों आत्मचेतना जाग रही है, त्यों-त्यों उनमें उच्चवर्ग के प्रति अतोप और घृणा का भाव बढ़ता जा रहा है। वे उच्चवर्ग से अपना सम्बन्ध तोड़ने के लिए या तो ईसाई बन रहे हैं या संघबद्ध होकर बौद्ध धर्म की शरण में जा रहे हैं। उनके इन घमन्तिर के मूल में आध्यात्मिकता की भूख प्रमुख कारण नहीं है, अपितु उत्पीड़क उच्चवर्ग से मुक्ति पाने की इच्छा है। इन उच्च और निम्न वर्गों की पारस्परिक घृणा का अवश्यम्भावी परिणाम सामाजिक विस्फोट के रूप में फलने वाला है। वर्गवैषम्य की राई को पाटे बिना उस विस्फोट के घातक प्रभावों से बचा नहीं जा सकता। इस राई में फँसे हुए दलदल को मुझाने के लिए क्रान्ति के ज्वालामुखी की आग ही चाहिए। इन आग का एक मात्र अन्य पर्याय वर्गवैषम्य को दूर करने वाला वास्तविक समाजवाद ही है। "समाजवाद ही जननाधारण की मुक्ति का राजपथ है।"^{१३} समाजवादी समाजव्यवस्था में ही.....

“श्रम गरिमा का पी दूध

सत्य नवजान

विकसना जाएगा ॥''^{१४}

धनजीवी उच्चवर्ग के सम्पर्क से गव्यवर्ग के व्यक्तियों में भी जनघृणा की भावना पंक्रमित हो गई है। इन वर्ग में जनता से घुल-मिल जाने वाले, मनावत जैसे लोग बिरले ही होते हैं, जो 'काफ़े-द-मजदूर' की 'अच्छी चाय' पीना पसन्द करते हों। न्यय निवेदक को अपनी माँ से यह शिकायत है कि गरीब घर से आई हुई उनकी माँ ग्राते-पीते परिवार की गृहलक्ष्मी बनने के बाद धीरे-धीरे अपनी जमीन को ही तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगी है। लेकिन निवेदक निम्नवर्ग के फटीचरों से घृणा

करना नहीं चाहता । जनता को कुत्ता समझने वाले बाँग पर उसे बहद गुस्सा आता है । गदी गरी से गुजरते हुए बूढ़ी ठठरी और शिशु ठठरी को देखकर उसके अवचेतन में से अनायास ही जवर्दस्त आह निकल पड़ती है । उसके लिए मनुष्य की अच्छाई की एक मात्र बगैरी व्यक्तिगत हित को जनसामान्य के हित के नीचे रखना है । उसकी दृष्टि में वही मनुष्य अच्छा है, जिसके हृदय में गरीब जनता के लिए कृपा की नदी लहलहाती है । इसीलिए उसका कहना है कि—

‘आदमी की ददमरी गहरी पुकार गुन

पड़ता है दोड़ जो

आदमी है वह खूब ।”

मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग के बीच अज्ञात वाले घृणाजन्य फासल तो है ही किन्तु मध्यमवर्ग के उच्च मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग के रतरो में भी य फासले पैदा हो गए हैं । धन की मुविधा के कारण ऊँचा ज्ञान प्राप्त करने वाले लोग विश्वविद्यालयों, सचिवालयों आदि में पद प्राप्त करने के बाद प्राथमिक पाठशालाओं के शिक्षकों को बड़ी ही तुच्छता की दृष्टि से देखने लगते हैं । इस दृष्टि को बढाने में अंग्रेजी दासना का भी बड़ा भारी हाथ है । अंग्रेजी की ऊँची शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति प्रायः अपने को जनसाधारण से ही नहीं, अपितु निम्न मध्यम वर्ग से भी वरिष्ठ समझने लगते हैं ।

अज्ञात वाले फासलों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के फासले होते हैं, जिन्हें निषेदक ने देशान्तर वाले फासले कहा है । ये फासले दो भिन्न वर्गों के व्यक्तियों के बीच में नहीं, अपितु एक ही वर्ग के व्यक्तियों के बीच होते हैं । ये फासले उम्र प्रकार के फासले हैं, जिस प्रकार के फासले एक ही समतल मैदान पर खड़े हुए व्यक्तियों में होते हैं । ‘विपात्र’ में देशान्तर वाले फासला का उल्लेख मध्यम वर्ग के सदस्यों में हुआ है । यहाँ यह प्रश्न खड़ा होता है कि इस वर्ग के लोग व्यक्तिवद्धता को जन्म देने वाले दासना और वेदना के कारणों से मुक्त होने पर भी दरमियानी दूरियों के दूर से क्यों पीड़ित हैं ? ऊँचा ज्ञान पाने के बावजूद अज्ञात वाले तथा देशान्तर वाले फासलों को लाँघने में असमर्थ क्यों हैं ? इसी विवेचन के प्रसंग में निषेदक ने चिढ़कर यह उत्तर दिया है कि—‘हम में सामाजिक चेतना नहीं थी क्योंकि असल में हम सब लोग हरामखोर थे ।’”

बुद्धिजीवी वर्ग की असामाजिकता का विश्लेषण करते हुए निषेदक ने यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल में ज्ञान वैयक्तिक मोक्ष का साधन माना गया था । आधुनिक काल में ज्ञान विषयक आध्यात्मिक एवं मोक्ष पर दृष्टिकोण के अनुपपुक्त हो जाने पर ज्ञान को भीतर और बाहर की दारिद्रता से मुक्ति दिलाने वाली सामाजिकता का साधन बना दिया जाना चाहिए था, किन्तु पूँजीवादी समाज में दुर्भाग्य

से ऐसा नहीं हो सका । वह व्यक्ति की भौतिक उन्नति की पूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गया । इसीलिए शिक्षित लोग 'अच्छी जिन्दगी बसर करने' की 'विशेष जीवन प्रणाली के उपासक' बन गए । वे 'ठाठ से रहने के चक्कर से बँधे हुए बुराई के चक्कर, में फँस गए ।' 'चाहे जैसे व्यक्तिगत उन्नति प्राप्त करना' उनके जीवन का नियम बन गया । इसी के परिणामस्वरूप 'खाओ, पिओ, मौज करो' का सिद्धान्त उनके लिए 'मारो-खाओ, हाथ मत आओ' के सिद्धान्त में बदल गया । नतीजा यह हुआ कि "उदर से लेकर शिश्न तक के पूर्तिवाले जो ऐंद्रियिक जीवन है" उस पर 'बौद्धिक कलई' करना मात्र ज्ञान का उद्देश्य हो गया । संस्कृति और 'ऊँची वातचीत' व्यक्ति की 'आत्मा को सहलाने का एक तरीका' बनकर रह गई । ऊँची वातचीत में पिछड़ जाने के भय पर विजय पाने के लिए रावहसाहब जैसे लोग रोज दो-चार अखबार देख लिया करते हैं । इस कोटि के लोग "अपनी वर्चस्वता को ढाँकने के लिए रवीन्द्र की जयन्तियाँ मनाते हैं, अपने पशुत्व को छिपाने के लिए, मुन्दर भावों से जंगली आत्मा को ढँकते हैं ।" "इन लोगों के लेखे 'ब्राह्मणेन निष्कारणं पडङ्गः वेदो ज्ञेयोध्येययव' की मुक्ति का कोई महत्त्व ही नहीं है । विद्युद्ध जिज्ञासा उनकी दृष्टि में निरर्थक है । ज्ञान के द्वारा अपने व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने का विचार सपने में भी उनके मन में नहीं आता । इसी कारण राव साहब की दृष्टि में 'जगत का ज्ञानार्जन आदर नहीं, अपितु उपेक्षा और दया की वस्तु है क्योंकि वह अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग करके कैरियर नहीं बना सका ।' अपना-अपना कैरियर बनाने के लिए रावसाहब जैसे लोग बाँस की रखैलों बनकर इसी बात में लगे रहते हैं कि किसी प्रकार वे दूसरी रखैलों से अधिक ग्रिय बनकर और अधिक ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाएँ । ऊँचे ओहदे पर पहुँचने की स्पर्धा के कारण सहयोगी लोग प्रतियोगी प्रतीत होने लगते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि सहयोगियों के बीच में देशान्तर वाली दूरियाँ आ जाती हैं । अवसरवाद के शिकार बने हुए ये लोग व्यक्तिस्वातंत्र्य के नाम पर अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए दौड़-धूप में लगे रहते हैं । अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए किसी दूसरे के हित को चूल्हे में झोंकने में इन्हें कतई संकोच नहीं होता । ऐसे लोगों के लिए मुक्ति बोध ने कहा है कि—

“बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराये के विचारों का उद्भास ।”

क्रीतदास बौद्धिक वर्ग के रावसाहब जैसे अवसरवादी लोगों की जिज्ञासा मूल्य में ही दुर्भावनाग्रस्त होने के कारण के समान होती है, क्योंकि स्वार्थ साधन में अनुपयोगी जिज्ञासा इन लोगों को निरर्थक प्रतीत होती है । ये लोग कभी अपने उच्च स्तर को प्रदर्शित करने के लिए किसी बहस में भी भाग लेते हैं तो वे अपने

अन्तरंग व्यक्तित्व में पशुता से मुक्त नहीं हो पाते । थोथी बहमों में लगे हुए ऐसे ही लोगो के सम्बन्ध में मुक्तिदाय ने लिखा है—

“और मेरी आँखें उन बहस करने वालों के
कपड़ों में छिपी हुई

सपन रहस्यमय पूछ देवती ।।”

मध्यम वर्ग के जगत जैसे अध्ययनशील व्यक्ति इनमें अन्तर्मुख होत हैं कि वे अपने को बाहर की दुनिया में अजनबी महसूस करने लगते हैं । उनका त्रिया-शक्तिहीन निस्संग जीवन समाज की दृष्टि से निरर्थक हो जाता है । उनमें सामा-जिक क्षेत्र में घुमने की शक्ति नहीं होती । समाज से अर्नपूत रहने के कारण किसी इरीना के साथ विलायत में जाकर घर बसाने के स्वप्न देना करते हैं । इस प्रकार के लोग विदेश जाकर लौट भी आएँ तो उनकी स्थिति ऐसी होती है—“लौट विदेशों में । अपने ही घर पर मैं इस तरह नवीन हूँ । इतना अधिक मौलिक हूँ— । असत्य नहीं ।” साहित्य के अध्ययन के कारण इन लोगो को मानवीय जीवनमूल्यों की समझने की शक्ति अगर प्राप्त हो जाती है, तो भी त्रियाशीलता के अभाव में वे जीवनमूल्य जानकारी मात्र बन कर रह जाते हैं । इस प्रकार के व्यक्ति वारीक वेईमानियों के सूफियाना अन्दाज से भले ही मुक्त हो, किन्तु जनता से अम-पृक्त रहकर आत्मतोष में जीने के पाप से वे बरी नहीं किए जा सकते । ज्ञान के द्वार लाया गया उत्तरदायित्व निभाने के लिए सतरो का सामना करने से बनराने वाले ये लोग भी सामाजिक दुर्दशा की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकते । ऐसे ही लोगो के सम्बन्ध में मुक्तिदाय ने लिखा है कि—“आजकल सचाई का सबसे बड़ा दुश्मन असत्य नहीं, स्वयं सचाई ही है, क्योंकि वह ऐंझती नहीं, सज्जनता को साथ लेकर चलती है ।” इन लोगो में अपने जीवन मूल्यों के प्रति दुर्दान्त म्नेह की आसितवता का अभाव होता है, परिणामतः उनमें जीवन की वास्तविक अस्मिता का उदय नहीं हो पाता । अस्मिता से वंचित ये लोग सृजन की क्षमता को खो बैठते हैं । इसी कारण इनका जीवन निस्संग और अन्तर्मुख बन जाता है ।

मध्यम वर्ग के लोग उपर्युक्त असामाजिकताओं के कारण दरमियानी फासलो से पीड़ित हो उठते हैं । अपनी पीड़ा से राहत पाने के लिए इस वर्ग के लोग ‘सम्मि-लन कासना’ का ससारा लेते हैं । महफिलवाजी, गपवाजी आदि इसी सम्मिलन कासना को तृप्त करने के अनेक साधन हैं । आत्मीय सम्बन्ध से हीन यह थोथी गामाजिकता फासलो को मिटाने के स्थान पर बढ़ाने में ही सहायक होती है । “कन्द में जाकर ‘त्रिज’ खेलने के बावजूद इन लोगो के बीच की खाई को पाटने वाले त्रिज तैयार नहीं हो पाते । महफिलवाजी में अजीब-सी धुटन महसूस होने लगती है । बाँधी हाउस में दो-चार घण्टे गप्पें लगाने के बाद ताजगी महसूस होने

के स्थान पर विरक्ति की दूटन मन को पीड़ित करने लगती है । मित्रों को चिट्ठियाँ लिखने और उनसे फोन करने के बाद भी ये फासलें ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं । ऊपरी सम्बन्धों के कारण ये लोग परिचित होकर भी अपरिचित रह जाते हैं, क्योंकि परिचय सतही और छिछला होता है और अपरिचय घना और कड़ा । एक अबूझ बेपहचान दर्द इन लोगों के जीवन की गति को अवरुद्ध कर डालता है । घोषी सामाजिकता से 'सोशल' बनने का प्रयत्न इनको अकेलेपन के दर्द से मुक्त नहीं कर सकता । फासले बने रहते हैं, क्योंकि फासलों को पाटने वाली सृजनशील संकल्प-शक्ति इनमें नहीं होती । दरमियानी फासलों को दूर करने का एक मात्र उपाय सृजनशीलता को अपनाना है । निस्संगता को झटक कर क्रियाशील बनना है । खचाली धुन्ध में खोये रहने से अपने को उबार कर बुद्धिजीवियों को साल्वादोरद मादारिमागा की पंगत छोड़नी होगी और उसे एडना सेण्ट विसेण्ट मिले के समान शोषित को शोषणमुक्त करने के लिए क्रियाशील बनना होगा । पीड़ितों के प्रति सच्ची करुणा के बिना क्रियाशीलता सम्भव नहीं है । इसलिए मुक्तिबोध ने कहा है—

“.....करुणा करनी की माँ है ।

बाकी सब कूहासा है, घृणासा है ।”^{२१}

यदि करुणा-प्रेरित क्रियाशीलता को अपनाकर मध्यम वर्ग वर्गवैषम्य से ग्रस्त समाजव्यवस्था को नहीं बदलेगा, तो दरमियानी फासले बने रहेंगे और प्रेम का भूखा संवेदनशील मनुष्य एक ओर सहानुभूति का एक-एक कण पाने के लिए तरस कर रह जायगा । वर्ग वैषम्य अगर किसी प्रकार बना रहा, तो मनुष्य की प्रेम प्रदान करने की शक्ति, दूसरी ओर, क्षीण होती चली जायगी । इन फासलों के कारण न निम्नवर्ग सुखी है और न सुविधानोगी उच्च वर्ग संतुष्ट है । उच्च वर्ग के बाँस फासलों से पीड़ित हैं और अहसान तथा अधिकार के बल पर अपने मात-हत्तों का 'साय' पाना चाहते हैं, पर क्या वह उन्हें मिल पाता है ? मध्यम वर्ग के लोग भी अकेलेपन से घिर कर ग्रस्त हैं । उनकी स्थिति कटी हुई डाल के समान निजत्व से हीन हो गई है । सृजनशीलता के अभाव में वे एवीलार्ड बनकर रह गए हैं । विद्याकेन्द्र का सारा वातावरण घुटन से भरा है । इस घुटन से भरे तिलस्म को तोड़कर बाहर आने के लिए वहाँ के शिल्पियों की आत्माएँ तड़प रही हैं, पर निस्संगता के कारण तिलस्म की कैद तोड़ पाने में असमर्थ हैं । हेमिंग्वे जैसा अदभ्य जिजीविषा से सम्पन्न व्यक्ति पूँजीवादी समाज में सर्वत्र व्याप्त अकेलेपन की अस-हायता के कारण आत्महत्या करने के लिए विवश हो गया, फिर सामान्य लोगों की स्थिति का कहना ही क्या ? व्यक्तियों को जिजीविषा को सार्थक रूप में क्रियाशील बनाए रखने के लिए सामाजिक विषमता को नष्ट करके आत्मीय सम्बन्धों को

धिमसित करता हो होगा ।

दरमियानी फासलो को दूर करने के लिए आत्मीय सम्बन्ध आवश्यक हैं और आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतन्त्र व्यक्तित्व अपेक्षित हैं । मध्यम वर्ग के लोगो की आत्माएँ प्रायः पैसो के लिए बिक जाने के कारण तिज्जारती जन-नेन्द्रियो के समान हो जाती हैं । इस प्रकार के बिके हुए लोगो के साथ 'आत्मीय' सम्बन्ध स्थापित नहीं किए जा सकते, क्योंकि इनके पास आत्मा होती ही कहाँ है ? मुक्तिबोध की दृष्टि में 'सामाजिक व्यक्तित्व' का नाम ही 'आत्मा' है । बिके हुए आत्महीन लोगो के साथ सम्बन्ध रखने की अपेक्षा दुनिया के किसी अँधेरे कोने में मर जाना निवेदक को पसन्द है । इसीलिए दर्शनशास्त्री मिश्र ने विद्या केन्द्र के घुटनभरे वातावरण को छोड़कर चले जाने का इरादा निवेदक के पास व्यक्त किया, तो निवेदक को उसका साहस अच्छा ही लगा । परन्तु इसके साथ अपनी जिम्मेदारियों से भरी जिन्दगी की असहायता का अनुभव भी उसे तीव्रता के साथ हुआ । अपनी असमर्थता के अनुभव के कारण वह मिश्र के साथ के बावजूद अकेला अनुभव करने लगा । दिल की हलचल के मुताबिक 'हलचल' न कर पाने से उसकी दशा उस छपाई मशीन के समान हो गई, जो चल तो रही है, पर कागज के न होने से छपाई के काम में व्यर्थ सिद्ध हो रही है । सृजनशील संकल्प शक्ति के कुष्ठित हो जाने के कारण उत्पन्न वज्ररूप ने उसे दुरी तरह से थका-हारा बना डाला है । इस विपरीततम स्थिति में भी उसकी कदिमल जान ने आत्म-समर्पण करने से इनकार कर दिया है । वह मृत्यु के अँधेरे में समा जाने की कल्पना करने तक की सुविधा पाने के लिए साली नहीं है । उसे निराशा ने ग्रस्त नहीं लिया है, इसलिए 'से नो टु डेय' यह पुस्तक का नाम अच्छा लगता है । उसे जनसमुदाय की 'तालीम की मूस' देखकर यह विश्वास हो चला है कि नविष्य उज्ज्वल है । उपन्यास का अन्त करते-करते वह एड्ना सेण्ट विन्सेण्ट मिले के समान सधन आत्मीय सम्बन्धो के परिवेष्ट में जीने का संकल्प व्यक्त करता है । वह 'सकर्मक सत्चित् वेदना भास्वर' समानधर्मा को न पाकर मुक्तिबोध ने लिखा है—

"अपने समाज में अकेला हूँ बिल्कुल,

मुझमें जो भयानक छटपटाहट है

नहीं वह किसी में ।" ११

'विपात्र' के निवेदक ने दरमियानी फासलो और अकेलेपन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए आत्मीय सम्बन्धो के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है । रुचिमिश्रता के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मेद तो बना ही रहेगा और भेद के होने पर मिश्र रुचि के व्यक्तित्वो में टकराहट होती ही रहेगी । मतभेदों की दूरियों के बावजूद आत्मीय सम्बन्धों के कारण दरमियानी फासले और अकेलापन नहीं रहेंगे । मतभेदो

और रुचिभेदों की दूरियाँ लीलामूमि में परिवर्तित हो जाएँगी । पारम्परिक सक्रिय आत्मिक सम्बन्ध अपने निर्वैयक्तिक गीलेपन में लीलामूमि को हरियाली से समृद्ध कर देंगे । यह लीला क्या है ? इसका प्रयोजन कौन ना है ? इन प्रश्नों के उत्तर में हमारा ध्यान परमेश्वर की लीला की व्याख्या की ओर सहज ही चला जाता है । परमेश्वर भी अपने अकेलेपन की निरानन्दता को लीला के द्वारा आनन्द में परिवर्तित कर देता है । लीला के अतिरिक्त उसका दूसरा प्रयोजन नहीं है । इसी प्रकार दुनियादारी के प्रयोजनों से मुक्त सहज मानवीय सम्बन्ध ही लीला है । सहज मानवीयता की छाया में व्यक्तित्वों की खुली टकराहट भी एक दूसरे के दृष्टिकोणों को विचर बनाने में सहायक ही बनेगी । मुक्तिबोध ने इसीलिए कहा है कि—“एक दूसरे का मूल्यांकन करते । हम निज को भँवरने जाते हैं ।” अन्तःकरण का आयतन नक्षिप्त न हो, तो फलाने सहकने मुनहले फेलावो में स्थापित हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में किसी से हाथ मिलाने ही दिलों के मिलने में विलम्ब नहीं होता । तभी तो मुक्तिबोध का कहना है कि—

“..... हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फँलेगी वरगद छाँह बही ।”^१

निष्कर्ष यह है कि ‘विपात्र’ ब्रुद्धिजीवियों के सकट की अभिव्यक्ति है । श्रीकान्त वर्मा ने मुक्तिबोध की कहानियों के सम्बन्ध में जो यह लिखा है कि— “मुक्तिबोध की कहानियाँ मध्यम वर्ग के विरुद्ध एक जिरह हैं,”^२ वह ‘विपात्र’ पर भी पूर्णतः लागू है । मध्यम वर्ग के विरुद्ध की गई यह जिरह उसे ‘जनचरित्र’ बनाने के लिए जनता का पक्ष लेकर की गई है । विद्यतिनवास मिश्र ने ठीक ही कहा है कि—“मुक्तिबोध का काव्य (नाट्यत्व) ऐसा नरकाव्य है, जिसमें नारायण की आँखों की व्यथा बरी है ।”^३

टिप्पणियाँ

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है : मुक्तिबोध : पृ. १२९.
२. विपात्र : पृ. ६५.
३. वही, पृ. १९७
४. विपात्र : पृ० ७३
५. चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० ८६
६. विपात्र, पृ० ३०
७. वही, पृ० ३२
८. वही, पृ० ७५
९. वही, पृ० ५४

- १० "हम लोगो का एकमात्र धर्म है—सुरतिधर्म
उम अत्यज का एकमात्र सुख है—मैयुन सुख ।" (अज्ञेय)
- ११ विषय, पृ० ८४
- १२ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० १९६
- १३ नई कविता का आत्मनर्घर्ष तथा अन्य निबन्ध मुक्तिबोध, पृ० ११५
- १४ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० १३९
- १५ वही, पृ० ४५
- १६ विषय, पृ० ३३
- १७ काठ का सपना पृ० ३४
- १८ विषय, पृ० ८०
- १९ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० ३०४
- २० वही, पृ० २१
- २१ एक साहित्यिक की डायरी, पृ० ५०
- २२ काठ का सपना, पृ० ४४
- २३ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० २५५
- २४ वही, पृ० ६
- २५ काठ का सपना : प्राक्कथन, पृ० ९
- २६ गजानन भावव मुक्तिबोध : म० लक्ष्मणदत्त गीतम, पृ० २३९

वे दिन : अकेलेपन की अवसादपूर्ण गाथा

डा० चन्द्रमानु सोनवणे

आधुनिकता-बोध का तीसरा मोड़ 'वे दिन' है, जिसमें आधुनिकता की कलात्मक अभिव्यक्ति बड़ी सहजता से हुई है।"

डा० इन्द्रनाथ मदान

"मृत्युबोध और अकेलेपन का बोध आधुनिक मानसिकता के महत्वपूर्ण अंग हैं। 'वे दिन' के कलेवर में इन अंगों की महत्वपूर्ण स्थान मिला है।"

"लड़ाई में बहुत लोग मरते हैं—इसमें कुछ अजीब नहीं है लेकिन कुछ
घोर्जे हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं—शांति के दिनों में हम उनमें
से थे।"

'वे दिन'

"वे दिन उपन्यास में मृत्युबोध की चर्चा गौण रूप से आई है, उसका मुख्य विषय तो अकेलेपन का बोध है।"

"व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के अलगाव के अंधेरे को परिचय के द्वारा भेद कर अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित किए बिना अकेलेपन की पीड़ा से मुक्ति सम्भव नहीं है।"

"बुनियादी अकेलेपन की संवेदना को अभिव्यक्त करने वाला यह उपन्यास इन्द्रिय संवेदनो और मनोदशाओं को 'विविड' और 'बहरफुल' ढंग से अंकित करने के कारण अद्वितीय हो गया है।"

डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान आधुनिकता-बोध की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास-साहित्य के तीन महत्वपूर्ण मोड़ मानते हैं। उनके अनुसार पहला मोड़ 'गोदान' है, जिसमें आधुनिकता का अर्थ स्पष्ट हुआ है तथा दूसरा मोड़ 'शेखर : एक जीवनी' है, जिसमें आधुनिकता का विकसित रूप अंकित हुआ है। आधुनिकता-बोध का तीसरा मोड़ 'वे दिन' है, जिसमें आधुनिकता की कलात्मक अभिव्यक्ति बड़ी सहजता से हुई है।^१ प्रथमतः आधुनिकता-बोध की दृष्टि से 'वे दिन' पर विचार करना उपयुक्त होगा।

आधुनिकता-बोध आज सारे संसार के साहित्य क्षेत्र का सर्वाधिक प्रचलित फैशन है। श्री निर्मल वर्मा हिन्दी साहित्य में आधुनिकता-बोध के अच्युत व्यक्तियों में से एक माने जाते हैं। इसलिए उनके साहित्य में आधुनिकता-बोध से सम्बद्ध मानसिकता का समावेश अनिवार्यतः हुआ है। मृत्युबोध और अकेलेपन का बोध आधुनिक मानसिकता के महत्वपूर्ण अंग हैं। 'वे दिन' के कलेवर में इन अंगों को महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

यद्यपि 'वे दिन' में मृत्युबोध की चर्चा कुछ-एक प्रसंगों में हुई है, किन्तु उन प्रसंगों में मृत्युबोध ओढ़ी हुई मानसिकता मात्र प्रतीत होती है। पश्चिमी संसार में मृत्युबोध का प्रमुख आधार युद्ध की विभीषिका रही है। प्रस्तुत उपन्यास का घटना-स्थान प्राग नगर है, जो चेकोस्लोवाकिया की राजधानी है। यद्यपि यह नगर द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका में से गुजरा है, किन्तु इस उपन्यास में किसी ऐसे स्थल को अंकित नहीं किया गया है, जो इस विभीषिका को साकार करने के लिए आधार बन सके। इसके अतिरिक्त मुक्तमोगी पात्रों के माध्यम से भी मृत्युबोध को उभारने में लेखक को सफलता नहीं मिली है। मुक्तमोगी पात्रों में से एक पात्र फ्रांज है, जिसका यह कहना है कि "तुम्हें अपना वचपन लड़ाई में नहीं गुजारना चाहिए.....वह जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ती।"^२ यद्यपि फ्रांज का वचपन लड़ाई में गुजरा था, किन्तु वह लड़ाई किस रूप में उसके पीछे पड़ी है, यह स्पष्ट नहीं है। सचमुच ही

यदि लडाई उसके पीछे पड़ी होती, तो वह 'तदस्य भाव से' लडाई की घटनाएँ न सुनाता। फ्रांज के अतिरिक्त लडाई की विभीषिका में से गुजरा हुआ दूसरा पात्र रायना है, जिसने जवानी के दिनों में लडाई का आतक सहा है। इस कारण वह शस्त्रास्त्रों के खिलौनों से भी सख्त नफरत करती है। यद्यपि उसने जाव के प्रसंग में नाज़ियो के कर्मिंदेगाने कैम्प का उल्लेख किया है, किन्तु यह उल्लेख निराश्रयता ही प्रतीत होता है। इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट नहीं हो पाता कि लडाई की विभीषिका में से वह निकलने के बावजूद ऐसे कौन-से कारण हैं, जिनके कारण लडाई के बाद शान्ति के दिनों में उसे अपना घर ही वासिंदेगाने कैम्प लगने लगा। हम उन कारणों को समझ पाने में असमर्थ रह जाते हैं, जिनके कारण रायना अपने और जाव के सम्बन्ध में यह कहती है कि 'लडाई में बहुत लोग मरते हैं—रसमें कुछ अजीब नहीं है लेकिन कुछ चीजें हैं जो लडाई के बाद मर जाती हैं—शान्ति के दिनों में हम उनमें से थे।'^१

'वे दिन' उपन्यास में मृत्यु के आतक की अभिव्यक्ति केवल उस फोनिश यहूदी के प्रसंग में ही सही है, जिसके लिए महज जीना मात्र जीवन का सबसे बड़ा सुख था। यहूदी होने के कारण नाज़ियो ने उसे गोली से उड़ा दिया था। मृत्युबोध में सम्बन्धित यह छोटी-सी वर्णित घटना कथानक का अत्यंत गौण भाग है और इस घटना के अवशोषण के अंकन में लेखक विशेष रूप से प्रवृत्त नहीं है।

लडाई के अतिरिक्त शासन विशेष के आतक के माध्यम से भी मृत्युबोध को उभारा जा सकता था। विभक्त बर्लिन इस प्रकार के आतक का धारदार स्थल बन सकता था, किन्तु विभक्त बर्लिन की दृष्टि से केवल इतना ही कहा गया है कि फ्रांज की माँ पश्चिम बर्लिन में रहती थी और हर महीने उसकी ओर से फ्रांज को कुछ न कुछ मिलता ही रहता था। इसी कारण फ्रांज के साथी उससे मजाक में कहा करते थे कि 'उसे दोनों दुनियाओं का 'आनंद' मिलता है। साम्यवादो दुनिया के 'गमून चेकेस्त्रोवाकिया के शासन के प्रतिवन्धमय रूप की दृष्टि से केवल इतना ही उल्लेख हुआ है कि हॉस्टेल के रेडियो पर केवल प्राग को सुनने की व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त फ्रांज के कमरे में दीवार पर लगे निधिनस्त्री के चित्र का उल्लेख है, फ्रांज ने जिसे 'शीतान' कहा है। निधिनस्त्री कौन है और उसकी शीतानियन का रूप क्या है, यह सामान्य पाठकों के लिए अनबूझ बना रहता है। कहने का आशय यह है कि मृत्युबोध को उभार सकने वाले सम्भावित स्थलों का यथोचित उपयोग नहीं किया जा सकता है। इससे विपरीत प्राग का चित्रण 'सिटी ऑफ ड्रीम्स' के रूप में ही हुआ है। स्केटिंगरिंक के सम्बन्ध में रायना तो यह कहती भी है कि—'इट इज लाइक ड्रीम लैंड।'^२ ऐसी स्थिति में उपन्यास में मृत्यु का हर उसी प्रकार अवास्त-

विक डर सा प्रतीत होता है , जिस प्रकार स्केटिंग रिक की उस लड़की का डर है, जो लड़कों के सीटी बजाने पर डर का अभिनय करते हुए चीख उठती है और उसकी वह चीख उनकी हँसी के ठहाकों में डूब जाती है । ड्रीम-लैण्ड के वातावरण में मृत्यु का डर विलाए बिना कैसे रह सकता है ?

उपन्यास के भारतीय पात्रों की दृष्टि से तो मृत्युबोध बैठे-ठाले की वातचीत तक ही सीमित है । थानथुन से बातें करते समय इंदी लड़ाई की चर्चा छोड़ देता है, जिस पर थानथुन 'मुसकराकर' पूछ ही बैठता है कि मुद्दत से बीती लड़ाई की बात उसे कैसे सहसा याद या गई ? स्वयं इंदी को यह पता नहीं है कि इस 'अजीब' बात की याद उसे क्यों हो आई है ? कि "एक बार मैं ऊँचे टावर पर चढ़ा था.....उस दिन मैंने पहली बार मृत्यु के बारे में सोचा था ।" अपने मृत्युविषयक चिन्तन पर उसे 'हैरानी' अवश्य है, किन्तु वह मृत्युबोध के आतंक से सर्वथा मुक्त है । स्पष्ट है कि इंदी और थानथुन के लिए मृत्युबोध की चर्चा केवल फैशन की वस्तु है, जीवन की भोगी हुई सचाई नहीं । अनुभव की सचाई के अभाव के कारण ही वे मृत्युबोध से आतंकित नहीं हैं ।

'वे दिन' उपन्यास में मृत्युबोध की चर्चा गीण रूप से आई है, उसका मुख्य विषय तो अकेलेपन का बोध है । आधुनिकता बोध के अनुसार यह अकेलेपन का बोध महज जीने के नंगे बनने के आतंक से जुड़ा है । सामान्यतः यह समझा जाता है कि अकेलेपन का रामबाण इलाज प्रेम है, किन्तु आधुनिकता बोध का बुनियादी अकेलेपन इस इलाज के किए जाने पर भी घटने के स्थान पर बढ़ने वाला मर्ज है । 'वे दिन' उपन्यास में इसी बुनियादी अकेलेपन की अवसादमय स्थिति की अभिव्यक्ति है । हमें यह देखना है कि अकेलेपन की इस मूल संवेदना को अभिव्यक्त करने में लेखक को किस सीमा तक सफलता मिली है ?

अकेलेपन की संवेदना को गहराने के लिए लेखक ने 'वे दिन' में अत्यन्त सत-कंता से प्रयत्न किया है । उपन्यास का आरम्भ अकेलेपन की असहाय स्थिति से किया गया है तथा उपन्यास का अन्त अकेलेपन की पीड़ा को मुलाने के लिए प्राग से दूर पहाड़ों पर चले जाने के इंदी के विचार के साथ हुआ है । उपन्यास के बीच में स्थान-स्थान पर अकेलेपन को प्रगाढ़तर रूप में उपस्थित करने के लिए विविध प्रकारों से सहायता ली गई है । और तो और, धीरान टैक्सी-स्टैंड के टेलीफोन की 'आतुर अकेली पुकार' को सुनने वाले के अभाव का अंकन सोद्देश्य है । इसी प्रकार होस्टल के सूने गलियारे में अचानक अकेले पड़ गये बच्चे के समान बार-बार चीख उठने वाले टेलीफोन का उल्लेख अकेलेपन के भावबोध की गूँज लिए हुए है । पात्र एवं परिस्थिति का चयन करते समय अकेलेपन की अनुकूलता को दृष्टि में रखकर परदेश में अस्थायी रूप से रहने वाले विद्यार्थियों को चुनने में लेखक का कौशल

प्रवृत्त है। प्रायः-ऐसे विद्यार्थियों के प्रति स्थानीय लोगों की जिज्ञासा म्यूजियम इन्ट-रेस्ट तक ही सीमित होती है। अन्यथा प्रायः इन विदेशी विद्यार्थियों को अलग ही छोड़ दिया जाता है। इसके कारण इंदी और यानयून तीन-तीन वर्ष से प्राग में रहने के बावजूद अपने को अजनबी अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास की बधा का बाल क्रिसमस की छुट्टियों का काल है। छुट्टियों के कारण इंदी का रमानियम रूममें किसी दूसरे स्थान पर चला गया है, जिसके कारण इंदी अवलेपन का अनुभव करता है।

आधुनिक-जोध के अनुसार हर व्यक्ति दूसरे के लिए अंधेरा है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के अलगाव के अंधेरे को परिचय के द्वारा भेद कर अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित किए बिना अवलेपन की पीड़ा से मुक्ति सम्भव नहीं है। अतः होस्टल के विदेशी विद्यार्थियों में अन्तरंग घरेलू सम्बन्ध की भाषावी छलक का होना स्वाभाविक ही है। होस्टल के तीसरी मजिल पर लेलीग्रेड का रहनेवाला युगोस्लाव मेलन्कोविच राजनी-तिक कारण से अपने घर नहीं जा सकता। वह जब कभी आधी रात को अपनी पीड़ा को एकोइडियन के स्वरो में वाणी दे देता, तो होस्टल के विद्यार्थी एक दूसरे के कानों में फुसफुसा कर कहते—“यह मेलन्कोविच है, जो अपने घर नहीं जा सकता।” स्वयं इंदी को अपने कमरे में रायना को गुनगुनाते हुए बर्तन धोते देखकर घर के आत्मीय वातावरण की याद या आर्तता है। उसे ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह अपने घर में ही है और उसकी बड़ी बहन रसोईघर में काम करते समय धीरे-धीरे गुनगुना रही है किन्तु घर के आत्मीय वातावरण की याद करने वाले इसी इंदी की पत्रविषयक उत्पुङ्गता अपनी बहन के आत्मीयतापूर्ण पत्र को पाकर सहसा मर जाती है। यह समझ में नहीं आता कि वह बहन के पत्र को पढ़कर उस रात मन से अपने घर क्यों नहीं जाना चाहता था? वह उस पत्र को अगले दिन पढ़ने के लिए जेब में रख छोड़ता है। शुक्रवार को मिले इस पत्र को वह रविवार को भी नहीं पढ़ पाता। इतना ही नहीं, उसे इस बात की हलकी-सी खुशी ही होती है कि बिजली के न होने के कारण वह उस पत्र को पढ़ नहीं पायेगा। इंदी ने इस पत्र को बाद में कब पढ़ा, या कभी पढ़ा ही नहीं, इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा गया है। बहन के पत्र की इस प्रकार उपेक्षा करने वाला इंदी यदि अवलेपन की पीड़ा का शिकार है, तो वह उसके लिए बहुत कुछ सुद जिम्मेदार है। यदि उसे अपने घर की याद नहीं सताती, तो घरेलू सम्बन्ध के अभाव के कारण उत्पन्न उसकी अवलेपन की पीड़ा का मतलब ही नहीं रह जाता। इंदी के समान ही घर की अवहेलना यानयून में भी दिखाई देती है।

अवलेपन की पीड़ा को भोगने वाले इंदी, यानयून आदि आधुनिक युवकों की तुलना में हमें कुछ अन्य पात्र ऐसे दिखाई देते हैं, जो घरेलू सम्बन्धों से दूर कर

दिशाहारा उत्का की तरह भटक नहीं गए हैं । फ्रांज की माता दूसरा विवाह करके पश्चिमी वॉलिन में बस जाने के बाद भी अपने अट्ठाईस वर्ष के बेटे को हर महीने कुछ-न-कुछ भेजती ही रहती है । इसी प्रकार थानथुन की माता इकलौते बेटे के विदेश चले जाने पर 'बहुत अकेली' रह जाती है । वह दूसरा विवाह करने से पूर्व अपने बेटे के मुख का विचार छोड़ नहीं पाती, इसीलिए वह अपने विवाह के सम्बन्ध में बेटे की प्रतिक्रिया को जानने के लिए उत्सुक है । फ्रांज और थानथुन की इन माताओं के अतिरिक्त पीटर जैसा सामान्य गेटकीपर भी घर से जुड़ी हुई आत्मीयता की भावना से वंचित नहीं है । होस्टल के विद्यार्थी घनाभाव की दशा में घर चिट्ठी लिखने के लिए टाक-टिकट खरीदने के वहाने हमेशा पीटर से पैसा उधार लेते रहते हैं । पैसा देते समय पीटर को इस बात का संतोष होता है कि हजारों मील दूर रहने के बावजूद ये विद्यार्थी अपने घरों को नहीं भूले हैं । घर-विषयक इस आत्मीयता के कारण होस्टल के तरुण विद्यार्थियों की तुलना में वह 'सेट' तो क्या, एंजिल से कम नहीं है ।

अपने-अपने घरों से उदासीन इन विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व इंदी करता है । उसके पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उसने ऐसी उम्र में घर को छोड़ा है, जब कि वचपन का सम्बन्ध घर से टूट जाता है तथा बड़प्पन का नया रिश्ता अभी जुड़ नहीं पाता । घर छोड़ने के बाद विशिष्ट काल तक घर से दूर भिन्न सांस्कृतिक वातावरण में रहने के बाद उसके लिए फिर से अपने पुराने घर में पहले की तरह लौट सकना सम्भव नहीं है । ऐसी स्थिति में उसे घर बहुत अवास्तविकता जान पड़ता है, जैसे वह दूसरे की चीज हो, दूसरे की स्मृति हो ! यह तर्क एक सीमा तक ही सच है, क्योंकि घरेलू आत्मीय सम्बन्ध दो व्यक्तियों के बीच के अन्तराल को पाटने में समर्थ हो सकते हैं । यदि दुर्जनतोपन्याय से यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि तेजी से मानसिक विकास लाने वाली उम्र में घर छोड़ने के बाद घर का लगाव नहीं रह पाता, तो यह भी उतना ही सच है कि इसी उम्र में नए रिश्ते जोड़ने की संभावनाएँ भी सबसे अधिक होती हैं । इसके लिए एक मात्र शर्त इतनी है कि व्यक्ति में परचने की प्रवृत्ति हो । यदि हम अन्य व्यक्ति की प्राइवैसी का आदर करने के क्षिप्ताचार के नाम पर उसकी निजी जिन्दगी में दखल न देने की मान्यता से चिपके रहेंगे, तो अकेलेपन की भावना के अतिरिक्त हमारे हाथ और क्या लग सकता है ? हम एक दूसरे की निजी जिन्दगी का परिचय केवल व्यावहारिकता की दृष्टि से ही नहीं पाना चाहते । व्यावहारिकता की सीमाओं में बँधा हुआ सतही परिचय हमें भीड़ में भी अकेला बना देता है । इसलिए इंदी का यह विचार कि हम एक दूसरे को इतनी सीमा तक जानने लगे थे, जहाँ यह पता चल जाता है कि हममें से कोई एक दूसरे की मदद नहीं कर सकता । यदि कोई कुछ मदद कर भी

सक्ता है, तो उतनी नहीं, जितनी दूसरे को जरूरत है, ठीक नहीं है। यह ठीक है कि एक विशिष्ट सीमा के आगे कोई किसी की मदद नहीं कर सकता, किन्तु यह भी सही है कि वह परिचय-जन्य सहानुभूति दे सकता है, जो सबसे बड़ी मदद मिद्ध होती है और जिसके कारण नरक की घटक भी नहीं रह जाती। ट्रेजडी तो यह है कि इंदी के समान रायना भी अपने और इंदी के सतही परिचय की आवश्यकता से अधिक समझती है। रायना की इस धारणा के पीछे दूध से जलने के बाद छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीने वाले व्यक्ति की मत्कर्ता है। व्यावहारिकता के बने बनाए घरे से बाहर आकर प्राप्त किए गए परिचय में ही अन्तरंग सम्बन्ध का सुलापन महसूस होता है और इस प्रकार के सुलेपन में ही किसी के व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास होता है।

अकेलेपन की संवेदना के इस प्रसंग में यह देखा आवश्यक है कि अकेलेपन से पीड़ित पात्रों ने अपने अपने अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए जिन मार्गों का सहारा लिया है, वे कहाँ तक सही हैं। प्रथमतः हम रायना के अकेलेपन पर विचार करें, तो हमें यह दिखाई देता है कि अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए नियन्ता से बाहर प्राण आदि नगरी में जाती रहती है। इन प्राण आदि पराये नगरी में भी वह सदिशों के भीम में जाना पसन्द करती है, क्योंकि सदिशों के दिनों में दूरिस्टों की भीड़ नहीं रहती। पराये नगरी में भी अगर अकेलेपन का उसे अनुभव होने लगता है, तो वह उस अकेलेपन को बहलाने के लिए ढ़ुंनें बदलती रहती है, जिससे उसका अकेलेपन बहुत कुछ कम हो जाता है। अकेलेपन को तनाव से मुक्त होने के लिए वह इंदी के समान अपने को शराब में डुबो देना चाहती है। शराब के नशे की एक सीमा के बाद प्रायः मनुष्य डेर-सी बातें कहने के लिए आतुर हो जाता है। नशे में उसे इस बात का भान नहीं रह जाता कि सुनने वाले के लिए उसकी बातें विशेष महत्त्व की हैं या नहीं। श्रोता की सहृदयता निजी अन्तरंग को खोलने की बसीटी हाती है। शराबी आदमी नशे में इस बसीटी को परपने की शक्ति को देता है। नशे के माध्यम से अकेलेपन से छुटकारा पाने की यह प्रवृत्ति तात्कालिक उपाय मात्र बनकर रह जाती है। अकेलेपन के दबाव और तनाव के प्रसंग में शराब के नशे का समर्थन केवल उस दशा में ही किया जा सकता है, जबकि दबाव और तनाव शर जाएँ और वह नशा बेंबेंबेंबाएँपन के अल्पाव को भेदने की भूमिका बन जाए। मॉनेस्टरी से जरा नीचे उतरने के बाद होस्टिनेस या सराय में भरपूर वियर पीने के बाद ही रायना इंदी के सामने सहज भाव से खुलकर बोझ ले लगी है और इस सुलेपन के कारण इन दोनों में निकटता का अहसास बढ जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में केवल इसी दृष्टि से शराब के नशे को स्थान दिया गया होता था भीम में तबाने के अनुसार उसकी मात्रा नियत होनी, तो कोई बात नहीं थी, किन्तु खटनेमात्रे

बात तो यह है कि सम्पूर्ण उपन्यास शराब से सराबोर है ।

उपन्यास का घटनास्थल प्राग वियर के नगर के रूप में में विख्यात है । इस वियर के नगर से सम्बन्धित इस उपन्यास में वियर का तो जैसे अखण्ड साम्राज्य है । उपन्यास के प्रारम्भ में ही इंदी टूरिस्ट एजेन्सी में जाने से पहले वियर पीता है और उसके वियर पान के साथ ही उपन्यास का अन्त होता है । उसे वियर पीने के बाद गिलास में बची हुई वियर फेंकना हमेशा ही अखरता है । इसीलिये वह होस्ति-नेस या सराय में रायना के गिलास में बची हुई वियर को उसके बराबर मना करने के बावजूद पी कर खत्म कर देता है । वियर के अतिरिक्त अन्य अनेक शराबों का भी वह रसिक है । उसके पलंग के नीचे का भाग तो मानों शराब की खाली बोतलों का 'सैलर' ही है । वह तो कुछ पी कर संभलने वाले व्यक्तियों में से एक है ।^१

इंदी के समान ही रायना पीती हीं नहीं, बेतहाशा पीती है । उसे तो बचपन से ही वियर पीने की आदत है । इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त उपन्यास के अन्य पात्र भी प्रायः जब तब पीते ही रहते हैं । और तो और पीटर जैसा गीण पात्र भी गेट-कीपरी करते-करते विदेशी टिकट इकट्ठा करता रहता है और उन्हें बेच कर अपनी रात को वियर के पैसे जुटाता रहता है ।

'वे दिन' उपन्यास में केवल शराब का ही बोलवाला नहीं है, अपितु वोद्का, स्लीवोवित्से (ब्रांडी), शेरी, कोन्याक, तोकाई, पापरिका आदि न जाने कितने जाने-अनजाने शराबों के नाम आये हैं । इतना ही नहीं, विभिन्न शराबों के प्रभाव वैशिष्ट्य की सूक्ष्मताओं का जहाँ-तहाँ उल्लेख हुआ है । कहते हैं कि वोद्का सुख का चिह्न है, जिसे पीने के बाद इंदी को हमेशा भूख सताने लगती थी । स्लीवोवित्से (ब्रांडी) को पीकर ऐसे लगने लगता है, "जैसे अन्तर्द्वियों में कोई धीमे-धीमे गुदगुदी कर रहा हो ।"^२ कोन्याक तो अपने प्रभाव में अद्भुत होती है । "और चीजें प्यास बुझाती हैं, कोन्याक उसमें खेलती है—और वह खलती नहीं । वह खोलती है..... दिन भर के जमा किए हुए शब्दों को ।"^३ इन सबसे भिन्न प्रभाव तोकाई का पड़ता है । वह "शुरू-शुरू में हमेशा खामोश-सा बना देती है । लेकिन लगता नहीं कि हम खामोश बैठे हैं । हम मुनने लगते हैं—आवाजों को, जो अब है या जो हमने बहुत पहले सुनी थीं और यह 'मुनना' उतना ही उत्तेजित कर देता है जितना बातें करना ।पीने के समय कुछ बीता हुआ नहीं लगता । लगता है, सब स्मृतिर्या एक जगह ठहर गई हैं—पानी के नीचे मुड़ील, चमकीले पत्थरों की तरह ।"^४ अनावश्यक रूप में जहाँ-तहाँ की गई शराबों की चर्चा के विषय को अनावश्यक आलोचना विस्तार से बचने के लिए हम यहीं पर छोड़ देना ठीक समझते हैं ।

अकेलेपन के दुःख को जिस प्रकार कुछ काल के लिये शराब की मस्ती में डुबाने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार उसे मदन की मस्ती में भी अल्पकाल

के लिए डुबोया जा सकता है । कुछ लोगो का तो ऐसा विचार है कि अकेलेपन का रामबाण इलाज ही मदनमस्ती है । उनका तर्क है कि अद्वैतवाद का एकाकी ब्रह्म भी अकेलेपन की ऊँच से उबरने के लिये निजी स्वरूप को ही पति-पत्नी के रूप में द्विधा विभक्त करके स्वरूपगत आनन्द को विषयगत रूप देकर भोग करना है । मदन या काम विषयक यह विचार गलत नहीं है, इसमें केवल इतना परिवर्तन कर लेना चाहिए कि काम अकेलेपन का शक्तिया इलाज तभी बन सकता है, जब कि वह सह-भोक्ताओं के अन्तरंग सम्बन्ध की भूमिका बन कर सहभोक्ताओं को एक दूसरे का पूरक अर्धांग बना दे । अन्यथा यह भी शराब की मस्ती की तरह तात्कालिक भुलावा मात्र बन कर रह जाता है । प्रस्तुत उपन्यास में देह की सतह तक सीमित रह जाने वाले काम सम्बन्धों का अनेक प्रसंगों में उल्लेख हुआ है । उपन्यास के प्रारम्भिक भाग में ही इदी ने शिकायत करते हुए उस नियम का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार कोई भी विद्यार्थी आठ बजे के बाद अपनी प्रेमिका को होस्टल पर नहीं ला सकता था । उसे यह नियम 'काफी हास्यास्पद' लगता है । इस नियम के कारण गर्मियों में तो विशेष अडचन नहीं होती थी, क्योंकि गर्मियों की रातों में अपनी-अपनी लड़कियों के साथ चेन्नोवी गार्डन्स आदि स्थानों में सहवास का सुख उठाया जा सकता था; किन्तु सर्दियों के दिनों के लिए यह नियम अत्यन्त ही असुविधाजनक था । सर्दियों के दिन फ्राज जैसे विद्यार्थियों के लिए अडचन नहीं थी, क्योंकि वह होस्टल पर नहीं रहता था । उसके कमरे पर उसकी लड़की कभी भी आ जा सकती थी । सर्दियों में उसके कमरे में आगीठी में सुलगती हुई आग देख कर ही उसके मित्र जान जाते थे कि उसकी लड़की मारिया घर में है । होस्टल पर रहने वाले साहसी प्रेमी सर्दियों के दिनों में भी म्यूजियम आदि की सीढ़ियों के अँधेरे कोनों में यथाव्यक्ति सहवाससुख उठा ही लेते थे, किन्तु निश्चिन्तता और सुविधापूर्वक नहीं । इसलिए विद्यार्थी सर्दियों के दिनों में होस्टल के गेटकीपर या 'एजिल' को मना कर इस मुश्किल से बच जाते थे । होस्टल के कमरे में एक दूसरी दिक्कत अवश्य थी और वह थी रूममेट की । अपने रूमानियम रूममेट की प्रेमिकाओं के कारण इदी को अक्सर अपनी शामें होस्टल के बाहर काटनी पड़ती थी । इदी की असुविधा का विचार करके उसके रूममेट ने उसे आँखें मूँदकर अपने पलंग पर लेटे रह सकने की अनुमति ही नहीं दे रखी थी अपितु यहाँ तक कह रहा था कि चाहे वह बीच-बीच में आँखें खोल कर देख भी सकता है । अपने रूममेट के समान इदी की भी कोई निश्चित प्रेमिका नहीं थी । वह हर तीन चार महीनों के बाद किसी नई अपरिचित के साथ अपने प्रिय होटल स्लाबिया में पहुँच जाता था । उस होस्टल के क्लॉकरूम के बाउटर पर काम करने वाली मिसेज तानिया हर बदली हुई लड़की को देखकर पहले तो दुखी हो जाती थी, किन्तु बाद में उसका दुःख कुतूहल में बदल गया था ।

इंदी उसके दुःख को तो सह लेता था, किन्तु उसके कुतूहल के कारण उसे शर्म महसूस होती थी। गनीमत है कि शर्म को पूरी तरह से धोखे से धो कर पी नहीं गया था।

लड़की-बदल इंदी के लिए रायना का सम्बन्ध अपने पूर्वसम्बन्धों से भिन्न प्रकार का सम्बन्ध सिद्ध हुआ। पहले ही दिन रायना के अवोव ढंग से फलट होने के बाद वह इंदी के लिए टूरिस्ट-कम-न्यूटे हो गई थी। दूसरे दिन इंदी के चूमने और आलिंगन करने के तरीके से ही वह जान गई थी कि इंदी इन बातों में 'बहुत अम्यस्त' है। तीसरे दिन तो वह रायना को भोगने की तैयारी करके ही होस्टल से निकला था। इसलिए उसने कड़ाके की सर्दियों में सवेरे स्नान किया था। होस्टल के लड़के किसी लड़की से मिलना हो, तो ही सदियों में नहाने का कष्ट उठाते थे। नहाने में दिलचस्पी न होते हुए भी इंदी ने विशेष कारण से ही सवेरे स्नान किया था। इस प्रसंग में इंदी ने नग्न होकर अपने गुह्यांग को छूकर प्यार करने का जो विवरण उपस्थित किया है, वह बड़ा ही अनावश्यक है। रायना को भोगने की इंदी की योजना सहज ही सफल हो गई, क्योंकि रायना भी तो अधिक दिन अकेली नहीं रह सकती थी। दूसरे शहरों में उसके साथ जो घटित होता था, वह प्राग में भी घटित हुआ। इंदी और रायना दोनों के लिए ही दैहिक सम्बन्ध में कोई नवीनता की बात नहीं थी, किन्तु दोनों ने ही इस दैहिक सम्बन्ध में यह अनुभव किया कि यह केवल रोजमर्रा की चीज नहीं है। आत्मीयता के स्पर्श ने इस सम्बन्ध के स्वरूप को मौलिक रूप से परिवर्तित कर दिया था। इस सम्बन्ध की आत्मीयता को गणितीय पद्धति से संकारण सिद्ध करना सरल कार्य नहीं है। इस प्रसंग में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कभी-कभी दैहिक सम्बन्ध के माध्यम से सहभोक्ताओं को अपने व्यक्तित्वों की परस्पर संवादी आंतरिक लयों की उपलब्धि हो जाती है। इंदी के जीवन-मंच पर रायना का पदार्पण अप्रत्याशित रूप में हुआ, किन्तु उसे यह अनिवार्य ही प्रतीत हुआ। इस सम्बन्ध के विषय में अनपेक्षितता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इंदी ने जिन्दगी-भर बहुत-से दरवाजों को खटखटाया, किन्तु उसे उन दरवाजों के परे कुछ नहीं मिला। एक दिन अकस्मात् उसका हाथ उस दरवाजे के भीतर से खींच लिया गया, जिसको उसने खटखटाने का विचार भी नहीं किया था। उस हाथ ने इंदी को इस तरह से पकड़ा कि वह उसे जिन्दगी भर छोड़ नहीं सका। दरवाजों को खटखटा कर बड़े जाने वाली जिंदगी में वह पहली बार रुका और वहीं का होकर रह गया। उसे बड़े ही अनजाने रूप से 'झूठे वसन्त' के दिनों में जिंदगी के असली वसन्त के दिनों का अनुभव मिला। इंदी ने इन दिनों का अधिकतम आनन्द बड़ी आतुरता से निचोड़ा और अब उसी के कारण पूरी तरह से निचुड़-सा गया है। उसके लिए रायना का सम्बन्ध महज चेतना की सतही परत को छूकर ही गुजर नहीं गया, अपितु

चितना की गहनतम परतों को विदग्ध करने वाला सिद्ध हुआ । इसलिये रायना के साथ भोगी हुई स्थितियों को वह आज अकेले भोगने के लिए विवश है । आज भी अतीत से वर्तमान में पहुँचने वाली रायना की अघोर और आग्रहपूर्ण आवाज इंदी को पकड़ लेती है । रायना के सम्बन्ध के दिन, आज की अकेली पुकार के दिन बन कर रह गए हैं । ये वे दिन हैं, जिन्हे इंदी न छोड़ सकता है और न ही दुबारा पकड़ सकता है । यही स्थिति कुछ निम्न सदमों के साथ रायना के लिए भी सच है । ठिठुरन के दिनों में इंदी के आत्मीय सम्बन्ध की ऊष्मा पाकर जाक के साथ अनुभूत जिदगी के मुलुगते क्षणों की उससी सजातीय एवं सघनतर स्मृतियाँ फिर से दहक उठती हैं । रायना के लिए इंदी के सम्बन्ध के दिन मन को हॉट करने वाली पूर्व-स्मृतियों को उत्प्रेरित करने वाले दिन हैं । इसी कारण इन दिनों में इंदी जितना ही रायना से अपने लिए सुख छीनता जाता था, उतना ही रायना अपने जाक से सम्बन्धित उन दिनों की स्मृतियों के कारण खाली होनी चाही गई थी । उनके लिए प्राण के ये दिन वियेना के उन दिनों के साथ अनिवार्यतः जुड़े हुए हैं ।

‘वे दिन उपन्यास इंदी और रायना के सम्बन्ध के गिने-चुने साठे तीन दिनों की कहानी है । उनके सम्बन्ध के विकास की बड़ी ही सूक्ष्मता और संशयता के साथ उपस्थित किया है । इस सम्बन्ध के स्थापित होने के पूर्व इन दोनों चरित्रों की मानसिक भूमिकाओं की ध्यान में रखना आवश्यक है । इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध होने से पूर्व दोनों की मानसिक भूमिकाओं में हमें मूलभूत अन्तर दिखाई देता है । रायना से मिलने से पूर्व इंदी अनेक लड़कियों से मिला था, परन्तु इन दैहिक मिलन में मन के मिलन से वह प्रायः मुक्त ही रहा था । इंदी ने रायना से मिलने पर ही प्रथमतः आत्मीय लगाव का अनुभव किया । इंदी के समान ही रायना अपने काम-सम्बन्धों में एकनिष्ठ नहीं रही है, किन्तु इन सम्बन्धों में से उसका और जाक का सम्बन्ध गहरी आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है । इस सम्बन्ध के अतिरिक्त उसके शेष कामसम्बन्ध केवल धारीरिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन मात्र रहे हैं । जाक के सम्बन्ध ने उसे अकेलेपन की पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए दूरिस्ट बना दिया है । दूरिस्ट के नाते ही वह इन्टरप्रेटर का काम करने वाले इंदी में मिली । इंदी और रायना में उम्र का अन्तर भी उपेक्षणीय नहीं है । इंदी जवान है और रायना प्रौढ़ । इससे अतिरिक्त रायना के साथ भीना भी है, जो उसके उत्तरदायित्व और अलगाव को बनाये रखने का कारण है ।

इंदी और रायना का प्रथमतः मिलन इन्टरप्रेटर और दूरिस्ट का मिलन था । दूरिस्ट में मूलतः ही ठंडा सा परायापन होता है । तिस पर यह दूरिस्ट तो अपनी पूर्वस्मृतियों के कारण विशेष रूप में अन्तर्मुख है । उससे परिचय बढ़ाने के लिए उसका अपने से बाहर निकलना आवश्यक था । अपने को दूसरे तक बढ़ा कर ही

परिचय बढ़ाया जा सकता है, इसलिए बहिर्मुखता परिचय या सम्बन्ध की पहली शर्त है। कोई भी मनुष्य बहिर्मुख होकर किसी नए व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। नए व्यक्ति से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करते समय मुरझा की भावना व्यक्ति-मात्र में आती ही है। इसी कारण रायना ने इंदी को पहले-पहले खतरनाक-सा समझ लिया था। नयेपन के आतंक को दूर करने के लिए एक दूसरे के अँधेरे को भेदने वाला विश्वास अपक्षित है। नयेपन के संकोच और संदेह को दूर करके ही यह विश्वास पाया जा सकता है। इंदी के केवल इन्टरप्रेटर मात्र बने रहने पर यह बात संभव नहीं थी। इसलिए वह रायना को सहजतः प्रसन्न करने के लिए प्रयत्न कराता है। इसके लिए वह रायना के लिए अधिकतम उपयोगी होना चाहता है, जिससे कि वह कृतज्ञ होकर वह इंदी के प्रति उन्मुख हो सके। रायना के लिए उपयोगी न हो सकने की स्थिति में उसे झूझलाहट-सी होती है। शॉपिंग के समय जमन जाने वाली शॉपिंग के प्रसंग में इंदी ने इसीलिए अपने को बेकार-सा महसूस किया है। वह रायना के लिए उपयोगी पड़ने के प्रयत्न में 'रिल्केरेदेवू' का विल अदा करना चाहता है, किन्तु दूसरी ओर उसके द्वारा विल चुकाए जाने पर रायना जरूरत से अधिक गम्भीर हो जाती है। वह नहीं चाहती उसके कारण दूसरे को खर्च करना पड़े। किन्तु इसके साथ ही वह इंदी के प्रति अपने को उपकृत अनुभव करती है। वह इंदी से यह कहती है कि अगर तुम न होते, तो मैं इतना सब कुछ नहीं देख सकती थी। इस प्रकार दोनों के बीच नयेपन का संकोच और संदेह ज्यों-ज्यों दूर होता चला गया, त्यों-त्यों पहचान बढ़ती चली गई। इंदी और रायना यह मुल गये कि वे टूरिस्ट और इन्टरप्रेटर से बातें कर रहे हैं।

इंदी और रायना की बढ़ती हुई पहचान के बीच सहसा अपहचान के क्षण उभर आते थे। बहिर्मुख होने पर भी रायना आन्तरिक दुःखद स्मृतियों के स्पर्श से बीच-बीच में अचानक ही अस्वस्थ हो उठती थी। उसकी आँखों में अजीब-सा ठंडापन घिर आता था। उसकी हँसी ऐसी हो जाती थी कि वह मन को अधिक आश्वस्त नहीं करती थी। उसका स्वर सब प्रकार के भावों से निचुड़कर एकदम खाली-सा हो उठता था। यद्यपि वह बियेना से छुटकारा पाने के लिए प्राग आई थी, किन्तु प्राग में वह उन्हीं चीजों को देखना चाहती थी, जिन्हें वह जाक के साथ पहले देख चुकी थी। परिणामतः वह बियेना के अतीत से छूट नहीं पाती थी। अतीत से लगाव के कारण ही वह सेंट लारेंतों को अकेले ही देखना चाहती है। इस प्रसंग में अकेलेपन का अवसर देने के कारण वह इंदी के प्रति कृतज्ञ-सी हो उठती है। अतीत की स्मृतियों के कारण रायना और इंदी के बीच कितनी ही बार अनुपस्थित जाक सर्वाधिक उपस्थित जान पड़ता था। जाक की इन उपस्थितियों का अनुभव करके इंदी को लगा कि वह रायना से बहुत बाद में मिला है। इसके अतिरिक्त रायना और जाक

के सम्बन्धों का मयूरतम मूर्त रूप मूर्ति मीना है, जिसे नकार भक्तता रायना के लिए असम्भव है। मीना सभी जाक के साथ रहता है और सभी रायना के साथ। रायना अक्सर शनिवार की शाम को जाक से मिलती रहती है और उसने अब भी यह विश्वास खोया नहीं है कि उसका और जाक का सम्बन्ध फिर से उसी प्रकार गुरु हो सकता है, जिस प्रकार वह प्रथमतः गुरु हुआ था। इन सब कारणों से इदी को रायना के साथ रहते हुए ऐसा अनुभव होता है, जैसे वह किसी घर के भीतर पहुँचने के बावजूद घर के बाहर खड़ा है।

एक ओर रायना जहाँ जाक को मुला नहीं पाती, वहाँ वह जाक की स्मृतियों से पीड़ित होकर उनसे मुक्त होना भी चाहती है। वह इदी के साथ बिताये जा रहे वर्तमान के काल में कल को पूरी तरह भूल जाना चाहती है। वह अपने अतीत की दृष्टि से पूरी तरह मर जाना चाहती है, किन्तु मरना सरल मो नहीं है। वह दूसरे दिन इदी से यह कहती है कि आज मैंने पूरे दिन वियेना के बारे में नहीं साचा। मेरे सग ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। रायना के इस कथन के तुरन्त बाद ही सेंट लॉरेन्स का प्रसंग है। वह कल के वर्ने-वनाए चीजों के घरे से बाहर आना चाहती है, किन्तु बाहर आते ही पुनः घेर ली जाती है। इदी के कमरे पर इन चीजों के घिराव से बचने के लिए वह इदी की आवाज सुनते रहना चाहती है। उस भय है कि कहीं उसे जेले पाकर पूर्वस्मृति की डायन झपट्टा मार कर फिर से उठा न ले जाये। बिनती ही बार इदी ने उसे पूर्वस्मृति के चगुल से छुड़ाकर वर्तमान में खीच लाने के लिए प्रयत्न किया है। इस प्रकार अतीत की स्मृतियाँ रायना के अन्तर में जलने-बुझने विद्युत्दीपों के समान कार्यरत रही हैं। स्मृतियों के ये विद्युत्दीप प्रज्वल हुए दीप नहीं हैं। इसी कारण इदी और रायना के सम्बन्ध के बीच में पहचान और अपहचान की लुकाछिपी उपन्यास में आघात चलनी ही रही है।

इदी और रायना के सम्बन्ध का एक पहलू दैहिक भी है। रिल्के रेंडेवू में रायना ने अवोय ढग से फलट होकर इदी के हाथ पर अपना हाथ रख दिया और उसने हाथ की गरमाई के साथ इस सम्बन्ध की गरमाई का आरम्भ हुआ। स्वेटिंग रिक की ओर जाते समय ठंड से बचने के लिए रायना ने अपना हाथ इदी के डफ्फ-कोट की जेब में डाल दिया था। जब हमाल निकालने और रखने के लिए इदी जेब में हाथ डालता, तो रायन के हाथ का स्पर्श पाकर उसके सारे शरीर में झुरझुरी-भी फैल जाती थी। इसी प्रसंग में मडक को स्वेटिंग रिक से जोड़ने वाले छोटे-से सँकरे सरुडी के पुत्र पर से गुजरते हुए इदी रायना का हाथ जेब से निकाल कर पकड़ लेता है और पुल पार कर लेने के बाद डर के रहने पर भी रायना इदी के हाथ को बमकर पकड़े रही है। पहले ही दिन परिचय में इतनी सधनता आ गई थी कि रायना ने विस्मय हो रहा था कि वह इदी से सुबह ही तो मिली थी। यद्यपि पूरे

दिन विशेष कुछ नहीं हुआ था, किन्तु 'होने का सुख' अपनेपन के कारण 'शुरू' हो गया था। निकटता का अनुभव करने के लिए रायना इंदी से 'मिसेज रैमान' न कह कर सिर्फ 'रायना' कहने के लिए कहती है। सम्बन्ध की थोड़ी-सी सघनता के साथ इंदी के मन में विस्मयकारी डर से जुड़ी हुई अजीब-सी पगली आकांक्षा ने झांकना शुरू कर दिया था, किन्तु रायना की आँखों में सिमट आये अजीब-से डर को देखकर वह जहाँ की तहाँ स्तब्ध बनी रही। उस दिन होटल के पोरच के पास परस्पर विदा लेने के बाद इंदी की आकांक्षा और रायना का डर एक दूसरे से बेखबर रात-भर पड़े रहे।^{१०}

पहले दिन परस्पर विदा होने के बाद रायना बहुत देर तक सो न सकी। वह होटल के बाहर भटकने के लिए निकल गई और उसने म्यूजियम के पास के टेलीफोन बूथ से इंदी को फोन किया, किन्तु इंदी कमरे पर नहीं था। दूसरे दिन रायना ने इंदी से पूछा कि मेरे फोन करने से तुम्हें बुरा तो नहीं लगा। इसी दिन इंदी की रायना को चूमने की इच्छा अप्रत्याशित रूप से दो बार पूरी हुई। प्रथम प्रसंग में रायना के मुँह फेर कर कुछ कहते हुए इंदी के होंठ उसके मुँह पर घिसटते चले गये और अबसर से लाम टठाकर इंदी ने उसे चूम लिया। 'मीता आता होगा' कहकर रायना ने अपने को अलग कर लिया। इसी दिन पुनः 'हूंगरवाल' के निकट रायना के द्वारा जलती हुई तीली बुझाने के बाद स्थानीय प्रथा के अनुसार फिर से चुंबन लिया और कपड़ों को भेदकर नंगे वदन को टटोलने वाला आलिंगन भी पाया। इन अप्रत्याशित चुंबन और आलिंगन को पाने के बाद दूसरे दिन रायना से विदा होने से पूर्व कुछ 'बीज' इंदी की देह में फड़फड़ाने लगे।^{११}

तीसरे दिन थियेटर जाते समय गली में से गुजरते हुए प्रेमी-युगलों की छायाएँ देखकर इंदी असमंजस में रायना से कुछ अलग हो जाता था, जिसके कारण रायना जरा-सा मुसकरा देती है। वह सहज ढंग से आउट-डोर प्रेमियों को देखकर आगे बढ़ जाती थी। इस सहजता के कारण इंदी को रायना अपने से बढ़ी लगने लगती थी। इसके बाद थियेटर के अँधेरे में संगीत के प्रभाव से रायना और इंदी की घमनियों में चाह के स्पंदन फड़फड़ाने लगे। इस चाह में डर और नुख दोनों थे। किन्तु थियेटर से निकलकर मानेश रेस्तराँ में भरपूर पी लेने के बाद एक अजीब-सी लापरवाही में डर विलीन हो गया। एक निडर-सा चमकोला आह्लाद दोनों पर छा गया। रेस्तराँ से बाहर आने पर उन्होंने अपनी चाह में सिमट आये विश्वास का अनुभव किया, जिसे वे पिछले तीन दिनों से अँधेरे में टटोल रहे थे। दोनों ही इस विश्वास की छाया में होस्टल के कमरे में पहुँचे। वहाँ अब वह चाह उन दोनों के शरीरों में मोमबत्ती की काँप रही थी। उस नर्मांतक चाह ने दोनों को अपने में घसीट लिया। दोनों ने एक दूसरे के अलगाव को भेद कर एक दूसरे की देह में अपनी सतह को

टटोलते हुए डूब जाने दिया । इस प्रकार इंदी और रायना शारीरिक एवं मानसिक सम्बन्ध के विकास पर टिप्पणी करना चाह, तो हम रायना के शब्दों को उधार लेकर कह सकते हैं कि—‘इट इज सो विविड एण्ड बडरफुल ।’

रायना और इंदी के विवाहवाह्य काम सम्बन्ध के इस प्रसंग में नैतिकता की समस्या उठाई जा सकती है । स्वयं रायना ने इसके सम्बन्ध में यह कहा है कि—‘यह शायद अनैतिक है ।’ यह सम्बन्ध समाज की पारम्परिक धारणाओं के अनुसार अनैतिक होने हुए भी व्यक्ति की सहज शारीरिक आवश्यकताओं के नाते स्वाभाविक भी है । सम्भवतः इसीलिए रायना ने ‘शायद’ शब्द का प्रयोग किया है । यह ठीक है कि शरीर धर्म के नाते मनुष्य के कामसम्बन्ध की अवहेलना नहीं की जा सकती, किन्तु ‘मनुष्य’ के नाते कुछ तथ्यों का पालन उतना ही अनिवार्य है । मनुष्य के काम-सम्बन्ध का पहला पथ यह है कि इसमें सहभोक्ताओं की आपसी रजामन्दी अवश्य हो । बलात्कार इस सम्बन्ध का सबसे बड़ा कुपथ्य है । आपसी रजामन्दी के बाद दूसरा पथ सह भाक्ताओं पर पड़ने वाला स्वस्थ प्रभाव है । तात्कालिक कामज्वर की सन्निपात दशा में सम्बन्ध घटित हो जाने के बाद ज्वर के उतरने के बाद अगर सह भोक्ताओं में से किसी एक को भी पछतावा हो, तो वह सम्बन्ध स्वस्थ प्रभाव का अविरোধी न होने के कारण केवल ‘मिजरी’ बन कर रह जाता है । कामसम्बन्ध का तीसरा पथ दायित्व से सम्बन्धित है । दायित्व की दृष्टि से कामसम्बन्ध के सह-भोक्ता विश्वामित्र के समान अपने सामाजिक दायित्व से इनकार करना हम शोध की सबसे बड़ी अनैतिकता है । स्वस्थ कामसम्बन्ध की ये न्यूनतम कसौटियाँ हैं और इन कसौटियों के अनुसार इंदी और रायना के कामसम्बन्ध को विवाहवाह्य होने मात्र से अस्वस्थ नहीं कहा जा सकता । विवाहवाह्य होते हुए भी यह सम्बन्ध सौहार्दवाह्य नहीं है । इस सम्बन्ध में जहाँ दोनों की आपसी रजामन्दी है, वहाँ वे दोनों सम्बन्धोत्तर काल में पछतावे की भावना से मुक्त हैं । इस सम्बन्ध की उपलब्धि की पर्याप्तता से रायना सतुष्ट ही है । सामाजिकता की दृष्टि से प्रस्तुत प्रसंग में भीता को सामाजिक दायित्व का केन्द्र कहा जा सकता है । हम देखते हैं कि रायना ने अपने और इंदी के सम्बन्ध को भीता से छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है । रायना के इस काम-सम्बन्ध के दायित्व की केन्द्रेतर अनेक परिधियाँ बही जा सकती हैं, और उनकी दृष्टि से इस सम्बन्ध की विवादास्पदता अवश्य है ।

इंदी और रायना के सम्बन्ध को क्या वे माध्यम से अवलोकन की संवेदना को अभिव्यक्त करना ही लेखक का उद्देश्य है । इसी उद्देश्य की पूर्ति में उपन्यास के सभी उपकरण या तत्व समर्पित हैं । कथानक के नाम पर केवल पाँच दिनों की कहानी है, जिनमें पहला और अन्तिम दिन कथानक के भूमिका और उपसंहार भागों के समान है । कथानक को स्मृत्यात्मक पद्धति में उपस्थित किया गया है और कथा-

नक का प्रारम्भ कालविपर्यय की पद्धति का अवलम्ब करके उपस्थित किया गया है। इस कथानक में ऐसा कुछ नहीं है, जिसे हम घटना कह सकें। केवले 'होने के सुख' की अमिव्यक्ति है। केवल इंदी और रायना तीन-चार दिन साथ रहे हैं, जिसे असाधारण घटना तो क्या घटना भी कह सकना कठिन है। दोनों के साथ रहते-रहते जो कुछ हुआ, वह एकदम अप्रत्याशित नहीं है। इस साथ रहने में जो कुछ भी समय व्यतीत हुआ है, वह कुछ भी मानी नहीं रखता। महत्त्व तो उन दोनों के सम्बन्ध के बीच जिंदगी का अहसास कराने वाले मुलगते क्षणों का है और यह उन्हीं क्षणों की कहानी है। इसलिए इस उपन्यास के कथानक में याद करके तरतीबवार ढंग से कहने लायक विशेष कुछ नहीं है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी लम्बी-चौड़ी बातें उपस्थित करने के लिए बहुत कम अवकाश है। अकेलेपन की संवेदना की आलोचना के प्रसंग में इंदी और रायना के चरित्र के विविध पहलुओं का उल्लेख किया जा चुका है। चरित्र-चित्रण के नाम पर उसे यहाँ फिर से दोहराना निरर्थक है। केवल इंदी और रायना से भिन्न चरित्रों का संक्षेप में विचार कर लेना उपयुक्त है। इन गौण चरित्रों में भीता ही ऐसा पात्र है, जो इंदी और रायना, दोनों के संपर्क में आया है। वह बालक होते हुए भी समझ का आदी है। उसमें बचपन की जिद्द का अभाव है। वह वही सब कुछ करना चाहता है, जिससे उसकी माँ की प्रसन्नता बढ़े। शॉपिंग के समय माँ के कुछ समय के लिये न मिलने पर वह परेशान अवश्य हो जाता है, किन्तु आर्तकित नहीं; क्योंकि वह माँ के विचित्र व्यवहार से परिचित है; लेकिन वह यह नहीं चाहता कि एक अजनबी इंटरप्रेटर भी इतनी जल्दी माँ के इस व्यवहार का परिचय पा ले। उसके इस व्यवहार के कारण स्वयं इंदी को अपनी ध्वराहट बचकानी सी जान पड़ी। भीता के सम्बन्ध की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात सेंट लॉरेंटों के प्रसंग में दीख पड़ती है। सेंट लॉरेंटों के भीतर से वापस आने के बाद वह गत स्मृतियों और माँ के दुःख के कारण अँधेरे में कण विपाद से भरकर सिसकने लगता है। भीता की यह अकाल-प्रीड़ता रायना के गहनतम दुःख की अमिव्यंजना भी है।

इंदी, रायना और भीता के अतिरिक्त गौण पात्रों में थानथुन, फ्रांज और मारिया महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें थानथुन इंदी के नमान अकेलेपन से ग्रस्त है। उसके स्वभाव में आक्रामकता का अंश विशेष उल्लेखनीय है, जो कहां बहुत गहरी अधीरता के साथ जुड़ी हुई है; इसीलिये उसे अकेला छोड़ देते समय इंदी का हमेशा एक भय जकड़ लेता है। थानथुन के समान फ्रांज नाम का दूसरा चरित्र है। वह हिनेमाटो-ग्राफी का अध्ययन करने के लिए प्राग आया हुआ है, किन्तु वह अपने अध्यापन केन्द्र से संतुष्ट नहीं है। वह बहुत जल्दी टेस्परेट हो जाता है। उसके सम्बन्ध में इंदी यह सोचता है कि अगर वह हिटलर के काल में बच्चा न होकर बयस्क होता तो वह

नाजो-मासन को कैसे निभा पाता । आज उसकी आयु अष्टादश वर्ष की है और मारिया को वह अपनी 'लडकी' बहकर इदी से परिचित कराता है । वह मारिया को अपने साथ जर्मनी ले जाना चाहता है, किन्तु दो साल से कोशिश करने के बाद भी उसे वीसा नहीं मिल पाता । वह चाहें तो मारिया से विवाह करके वीसा पाने का मार्ग पा सकता है, किन्तु वह ऐसा नहीं करना चाहता । वह मारिया से विवाह यदि करेगा, तो वीसा की शर्त पर नहीं । इस समय तो वह 'मिर्क साथ' रहता है । "विवाह न करके सिर्फ साथ रहने की उसकी बात कुछ सगत नहीं जान पड़ती । साथ रहने में साथी की सुविधा अंतर्निहित है और यह विवाह द्वारा ही सम्भव है ।

मारिया इस उपन्यास का गौण पात्र होते हुए भी अविस्मरणीय है । वह जर्मन एम्बेसी में काम करती है तथा रोमन कैथोलिक लडकियों के फ्लैट के एक कमरे में स्टेफान्का के साथ रहती है । उसके जीवन में स्लीपवाकर की निर्मयता है । सजी-मँवरी 'बापी' में लिखे किसी पूर्वनिश्चित रफ ड्राफ्ट के अनुसार जीने जैसी बात उसमें है ही नहीं । उसमें जो कुछ है, वह अन्तिम रूप से 'आखिरी' है । उसने अगर फ्राज को चाहा है, तो महज ढग से चाहा है । उसका डेस्परेट होना भी उसकी सहजता का बंग होता है । इसलिये अपना दुःख किसी दूसरे को दिखाने की प्रवृत्ति उसमें नहीं है । वह यह जानने दृष्टे भी कि फ्राज को उसकी जरूरत नहीं है, अपने सहज प्रेम के कारण फ्राज के साथ रहती है । फ्राज मारिया को बिना सूचित किये बलित जाने वाला है, यह बात मारिया को मायूम है, किन्तु उसे इस बात की शिकायत नहीं है ।

मारिया के जीने में जिस प्रकार सजे-मँवरे ड्राफ्ट का स्थान नहीं, उसी प्रकार कपड़े पहनने के मामले में भी सजा-मँवरापन नहीं है । उसके मायी अकसर मोचते हैं कि मारिया को कपड़े पहनने का सलीका उसे भले ही न आता हो, किन्तु सहज ढग से जिदगी जीने का सलीका वह जानती है । उसका अन्तःकरण सम्पन्न है । किसी भी प्रकार की प्रत्यादान की भावना के बिना वह अपने मित्रों की सहायता करती चली जाती है । जब इदी आदि के पास कुछ न रहता था, तब अक्सर वे मारिया के घर खाने चले जाते थे । कितनी ही बार रात की अनुचित घड़ियों में उन्होंने उसे कुछ ब्राउन्स के लिए जगाया था । कहने का आशय यह है कि मारिया के जीवन में औपचारिकता ढूँढ़ने पर भी दिवाई नहीं देती ।

जिस प्रकार मारिया के जीवन में जीने का ड्राफ्ट का अभाव है, उसी प्रकार उपन्यास में उसका अस्तित्व पूर्वनिर्धारित ड्राफ्ट का अंग नहीं प्रतीत होता ।

'वे दिन' उपन्यास का देशकाल अत्यन्त सीमित है । उपन्यास के अवसादपूर्ण अवेलेपन की सवेदना के अनुसार ही उसका स्वरूप है । प्रत्युत उपन्यास विगत दिनों की कहानी है । पुराने दिनों की अवसादपूर्णता के समान पुराने होस्टल की पुरानी

मंजिल इंदी का निवासस्थान है। एक सर्दीला साँवला-सा मँलापन उपन्यास के सारे वातावरण में घुला हुआ है। गिरते हुए वर्फ के गालों के बीच वक्तियों का पीलापन रास्तों पर फैला हुआ दिखाई देता है। रास्तों पर वर्फ के कारण तरल गिलगिलापन गोली थरथराहट लिए पड़ा दिखाई देता है। ये क्रिसमस की छुट्टियों का समय है। चार दिन की चाँदनी के समान 'झूठे वसन्त' के दो-एक दिन देखते ही देखते धुन्ध में खो जाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास की नापा-धौली सचमुच ही अद्भुत है। इन्द्रियों के नूक्षमतर संवेदनों को इतनी सहजता और सशक्तता से साथ अंकित किया गया है कि उन्हें पढ़कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। इन्द्रिय संवेदनों की कुशल अभिव्यक्ति के स्थल उपन्यास में न जाने कितने हैं, उनमें से इने-गिने संवेदनों का ही यहाँ नमूने के रूप में उल्लेख कि जा सकता है। इन्द्रिय संवेदनों में स्पर्शसंवेदनों की अभिव्यक्ति के स्थल सबसे अधिक हैं। इंदी के कमरे पर बुक-शेल्फ से सिर टिकाकर अनजाने मोड़ें हुई रायना का वर्णन करते हुए कहा गया है—“उसके चेहरे पर अब नी ‘जागे रहने’ का चौंका-सा भाव था, जो अक्सर उन लोगों के चेहरे पर जमा रहता है, जो बिना सोने का इरादा किए अनायास सो जाते हैं।” लाउंज के नीचे वाले होटल के बार में से बियर पीकर बाहर आने पर किया गया वर्णन देखिए—“जब हम भीतर बैठे थे, दोपहर चली गई थी। अब अँबेरा था—नर्म और उज्ज्वल, जैसा दोपहर के बाद जाता है, अगर वह दिन-भर सूखी और चमकीली रहो ही।”¹¹

स्पर्शसंवेदन के समान स्वरसंवेदन की अभिव्यक्तिधर्मता के स्थल भी ‘दो दिन’ में अनेक हैं। स्वरसंवेदनों की नूक्षमता की ऐसी पकड़ अन्यत्र दुर्लभ है। लेतना पहाड़ी की ऊँचाई पर पहुँचने के बाद हवा की आवाज से अलग नदी की ‘डार्क एण्ड टोप’ आवाज के सम्बन्ध में इंदी कहता है—“इतनी ऊँचाई से उसका स्वर एक घोंमी-सी थपथपाहट-सा लगता था। कभी वह एक एकदम बुझ जाता था। तब हवा बीच में आ जाती थी……। फिर वह उठता था, अपने आप एक कमजोर आग्रह की तरह जैसे वह अपने आप एक कमजोर आग्रह की तरह, जैसे वह अपने को हवा से मुक्त करने के लिए छटपटा रहा हो।”¹² प्रस्तुत उपन्यास में संगीत के विविध संवेदनों के प्रभावभेद का तो अव्याख्येय ढंग से अंकन हुआ है। ऑडियोविशुअल में आर्केस्ट्रा की वायलिन के स्वर का अंकन देखिये—“आर्केस्ट्रा के जंगल से सिरुँ एक वायलिन की सांस उठती थी, घास पर हिलती हुई—एक चौंकी-नी चीख, सरसराने पानी के नीचे एक चमकीले पत्थर की तरह भीगी, कठोर और चमकीली, जिसे तुम छू सकते थे, फिर वह मरने लगती थी।”¹³ ‘ए सीस वाई रावेल्’ के रिकॉर्ड से निकलने वाले “पियानों के मुर बहुत ऊपर जाकर फूलझड़ियों की तरह खुल जाते थे।”¹⁴ मानेय रेस्तराँ में मुने स्वरों का स्वरूप देखिये—“आर्केस्ट्रा के वायलिन का मुर ऊपर उठा

था—मुनहरा और भूरा, हवा में कांपता हुआ—जैसे कोई हाथ से मुँह ढक् कर बहुत धीरे-धीरे रो रहा हो ।”” इन अभिव्यक्तियों में विशिष्ट इन्द्रियसंवेदन को तदितर इन्द्रियसंवेदन की शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त करने में तो जैसे लेखक को कमाल हासिल है । वही वही एक से अधिक इन्द्रियसंवेदनो को बड़ी सहजता से व्यक्त किया गया है । शब्द और गद्य की समन्वित अभिव्यक्ति देखिये—“जहाँ (होस्टल की छत पर) हर इतबार को प्राग के गिरजों की घटियाँ तिरती आती हैं तुम सोते हुए भी उन्हें मुन सकने हो । तुम उन्हें मूँध सकते हो । उनमें चिमनियों का घुंआ है ।””

इन्द्रियसंवेदनो के वैविध्य के समान ही विचारों और मानसिक स्थितियों का भी उसी क्षमता से उपन्यास में स्थान-स्थान पर वर्णन हुआ है । स्त्रीवांछितों को पीने के बाद की चकराहट को देखिये—“चकराहट का भी वंसा अजीब रंग होता है वादल-सी हल्की और सफेद—सिर की नमों के बीच तिरती हुई—तुम जानते हो, वह पक्कड़ के बाहर है, लेकिन उसके पीछे भागते रहने हो, जब तक नींद उसे दबोच नहीं लेती ।”” एक अन्य उदाहरण देकर हम इस चर्चा को समेट लेना चाहते हैं । रायना द्वारा अपनी प्रतीक्षा किये जाने की बात साधकर इसी उसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है—“एक उम्र में यह विचार ही बहुत रूखासा लगता है कि कोई साली साली सा होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो एक सग बहुत मुम-सा भी होता है—बाद में । लगता है, तुम सबसे अलग हो । तुम्हें अचानक पहली बार अपनी अनिवार्यता का पता चलता है । और उस बात से डर का जिसमें पहली बार तुम्हारे माँ-बाप सांझा नहीं करते तुम्हारे मित्र भी नहीं । वह डर कुछ वैसा ही विस्मयकारी है, जब पहली बार तुम किसी हवाई बम्पनी के पैम्फलेट में ये शब्द देखते हो—Once in the sky, you are on your own !””

भाषा-शैली की उपर्युक्त सामर्थ्य के साथ एक अन्य विशेषता की ओर पाठक का ध्यान बरबस खला हो जाता है । विशिष्ट विचार या अनुभूति को गहराने के लिए वाक्यविशेष की विविध प्रसंगों में पुनरावृत्ति करने की प्रवृत्ति उपन्यास में दिखाई पड़ती है । “सच क्या तुम विश्वास नहीं करते ?”—वाक्य यत्किंचित हेर-फेर के साथ उपन्यास में आठ स्थलों पर आया है । इसी प्रकार रायना द्वारा उच्चरित वाक्य—“आई विल डाई” भी अनेक स्थलों पर रायना की वेदना को तीव्र-तर रूप में व्यक्त करने के लिए दोहराया गया है ।

‘वे दिन’ उपन्यास की भाषा-शैली में एक विशिष्ट दोष भी है । जिस प्रकार टूरिस्ट एजेन्सी का चीफ अग्रेजी बोलने का मौका हाथ से नहीं जाने देता था, उसी प्रकार लेखक इस उपन्यास में अग्रेजी शब्द एवं वाक्य धुमेड देने का मौका अपने हाथ से जाने नहीं देता । उपन्यास में सैंकड़ों स्थानों पर अग्रेजी शब्दों का आवश्यक और

अनावश्यक रूप में प्रयोग किया गया है। 'कॉरीडोर', 'म्यूजियम' आदि शब्दों के स्थान पर 'गलियारा', 'अजायबघर' आदि शब्दों का प्रयोग किया जा सकता था। संज्ञा शब्दों तक गनीमत है, किन्तु अनेक स्थानों पर अंग्रेजी के विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है—'ऑलकोहालिक आँखें' (शराबी आँखें) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। सारे उपन्यास में अंग्रेजी के पच्चीस से अधिक पूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया गया है और इनमें से दो-तीन स्थानों पर ये वाक्य रोमन लिपि में ही अंकित किये गए हैं। अंग्रेजी के शब्द, विशेषण और वाक्य ही नहीं, अपितु व्याकरण भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुआ है—'क्राउन्स', 'कॉन्ट्रासेप्टिव्ज' आदि बहुवचन रूप इसी प्रकार के हैं। 'अपना समय लेना' आदि प्रयोग अंग्रेजी मुहावरों के मक्खीमार अनुवाद होने से अनुचित हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का घटनास्थल चेकोस्लोवाकिया है, अतः कुछेक चेक शब्दों और वाक्यों का आना स्थानीय रंगत देने के लिए क्षम्य हो सकता है। 'चैडोक' (टूरिस्ट व्यूरो), 'लीपा' (लिडन ट्री) आदि इनेगिने शब्दों का प्रयोग उचित ही लगता है। उपन्यास में कुछेक चेक वाक्य भी आये हैं। मानेश रेस्तराँ में एक अधेड़ व्यक्ति इंदी से एक-दो प्रश्न चेक में करता है, जिनका अनुवाद बंवनियों में दे दिया गया है। इस प्रसंग के 'बिल्मीहंस्का' (बहुत मुन्दर है)^{१५} आदि वाक्य इसी प्रकार के हैं। किन्तु एक स्थान पर चेक बोलने से नफरत करने वाला थानथुन अत्यधिक प्रसन्नता की मनोदशा में 'ताक नजदार'^{१६} कहता है, जिसका अर्थ न दिये जाने के कारण हम ताकते ही रह जाते हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के बाद संक्षिप्ततम निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि बुनियादी अकेलेपन की संवेदना को अभिव्यक्त करने वाला यह उपन्यास इन्द्रियसंवेदनों और मनोदशाओं को 'विविड' और 'बंडरफुल' ढंग से अंकित करने के कारण अद्वितीय हो गया है।

टिप्पणियाँ

१. आज का हिन्दी उपन्यास—डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पृ० १००
२. वे दिन, (तृतीय संस्करण), पृ० ९७
३. वे दिन, पृ० २११
४. वही, पृ० ८२
५. वही, पृ० ३०
६. वही, पृ० १६६
७. वही, पृ० ३७
८. वही, पृ० ९३

- ९ वही, १९१
- १० वही, पृ० ९२
- ११ वही, पृ० १४४
- १२ वही, २०८
- १३ वही, ९७
- १४ वही, पृ० २१४
- १५ वही, पृ० १७०
- १६ वही, पृ० १३०
- १७ वही, पृ० १७७
- १८ वही, पृ० १७८
- १९ वही, पृ० १९३
- २० वही पृ० १००
- २१ वही, पृ० ३७
- २२ वही, पृ० १०४
- २३ वही, पृ० १९२
- २४ वही, पृ० ३३

धरती धन न अपना :

युगयुगांतर के सर्वकष शोषण की कहानी

डॉ० चन्द्रमानु सोनवणे

"प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य 'आर्थिक अमावां की चक्की में युगयुगान्तरों से पिस रहे हरिजन वर्ग के जीवन का चित्रण करना है।"

—श्री जगदीशचन्द्र

कथ्य की दृष्टि से 'धरती धन न अपना' उपन्यास हरिजनों की आर्थिक शोषण की कहानी है।

उपन्यास की कहानी कथ्य के अनुकूल विकसित होती है, किन्तु अन्त में वह प्रेमकथा के रूप में पर्यवसित होती है।

यह व्यक्ति प्रधान उपन्यास नहीं है। हमारे समस्त समाज के व्यापक शोषण का चित्र खींचा गया है।

धरती धन न अपना

भारत की लोकसंख्या मुख्यतः गाँवों में बसती है। शहर की अपेक्षा गाँव का आर्थिक ढाँचा भिन्न प्रकार का होता है। शहर के आर्थिक ढाँचे का आधार उद्योग और व्यापार होता है तथा गाँव के आर्थिक ढाँचे का आधार खेती। मुख्यतः खेती पर जीवननिर्वाह करने वाले ग्रामीण समाज को हम सहज ही दो भागों में बटा हुआ पाते हैं। इस समाज का पहला भाग भूस्वामियों का होता है तथा दूसरा भाग भूमिहीन कृषि-मजदूरों का। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में जमींदारी व्यवस्था और रैयतद्वारी व्यवस्था के कारण भूस्वामियों की स्थिति बहुधा भिन्न-भिन्न रही है, किन्तु भूमिहीन मजदूरों की स्थिति सारे देश में एक-सी ही दिखाई देती है। मुंशी प्रेमचन्द ने अल्पभूधारक किसान के जीवन को केन्द्र बनाकर अपने 'गोदान' में उनके आर्थिक शोषण का सच्चा चित्र खींचा है। 'गोदान' के होरी ने यह कहा है—“मजूर बन जाय, तो किसान हो जाता है। किसान बिगड़ जाय, तो मजूर हो जाता है।” होरी का यह कथन सीमित मात्रा में ही सत्य है। सामान्यतः गाँव का भूधारक सवर्ण होता है और गाँव का असवर्ण वर्ग भूमि-मजदूर। उत्तर भारत में गाँव का यह मजदूर प्रायः चमार होता है। हर गाँव में इन असवर्ण चमारों की बस्ती सवर्णों की बस्ती से अलग बसी हुई होती है, जिसे पंजाब में 'चमादड़ी' कहा जाता है। उत्तर भारत की लोकसंख्या में चमारों के अनुपात को देखकर आश्चर्य होता है। यदि 'चमार' शब्द 'चर्मकार' से निकला हुआ माना जाए, तो इस अनुपात के सम्बन्ध में कोई सयुक्तिक कारण नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः 'चर्मकार' शब्द के अतिरिक्त 'चमार' शब्द का मूल स्रोत 'शम्बर' शब्द भी है।^१ आग्नेय वंश की कृष्णवर्णीय शम्बर जाति को पराजित करके गौरवर्णीय आर्यों ने उन्हें भूमिहीन बनाकर भूदास ही नहीं बनाया, अपितु उन्हें हमेशा के लिए असवर्ण वर्ग में भी डाल दिया है। जातिगत इस परम्परा के कारण चमारों का रंग काला ही होता है। इसी कारण चमारों से गाली गलौज करते हुए सवर्ण लोग उन्हें 'कोयले के पुत्तर' कह देते हैं। सवर्णों और असवर्णों में पाया जाने वाला रंगविषयक यह भेद पंजाब, हरयाणा आदि प्रदेशों में विशेषतः

देखा जा सकता है। कमी कमी अपवाद रूप से असंख्य वर्गों में एक-आध गोरे रंग का व्यक्ति दिखाई पड़ जाता है। हरामी इसी प्रकार का लड़का है। "गोरा कमीन और काला ब्राह्मण दोनों हरामी होते हैं" की कहावत के अनुसार उसके बाप ने ही उसका यह नामकरण कर दिया है। पालो और बगों के घोल-घप्ये का सारा प्रसंग ही इसी रंग-विषयक दृष्टि से आपूर्ण है। परम्परा और रंग विषयक इस चर्चा को यही रोककर मुख्य विषय के विस्तरेषण की ओर हम मुड़ते हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द ने अल्प-भूधारक किसान की समस्या का चित्रण 'गोदान' के माध्यम से किया है। भूमिहीन मजदूरों की समस्या की व पूरी समझ के साथ 'गोदान' में उपस्थित नहीं कर सके हैं। इन भूमिहीन मजदूरों की समस्या का चित्रण करने के लिए हिन्दी साहित्य किसी अन्य 'कलम के मजदूर' की प्रतीक्षा कर रहा था। इस प्रतीक्षा को श्री जगदीशचन्द्र ने 'घरती घन न अपना' लिखकर बहुत कुछ सफल करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने उपन्यास के प्रारम्भिक वक्तव्य 'मेरी ओर से' में यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य "आर्थिक अभावों की चक्की में घुगघुगातरो से पिस रहे हरिजन" वर्ग के जीवन का चित्रण करना है। हमें यह देखना है कि भारतीय जीवन के इस कटे हुए सदर्भ के चित्रण में लेखक कहाँ तक सफल हो सका है।

गाँव में भूधारक और भूमि मजदूर परस्परश्रित होते हैं। भूमि मजदूरों के बिना न भूधारकों का गुजारा हो सकता है और न ही भूधारकों के बिना मजदूरों का। भूधारकों और मजदूरों की यह परस्परश्रितता शोषक और शोषित के सम्बन्ध पर टिकी हुई होती है। शोषक और शोषित का यह सम्बन्ध परम्परा से चला आ रहा है। गाँव की व्यवस्था का ढाँचा ही कुछ इस प्रकार का होना है कि परम्परा से चले आते हुए धड़े को बदलना आसान नहीं होता। इस व्यवस्था के कारण किसी चमार का भूस्वामी बनना असम्भव-सा हो जाता है। अपवाद रूप में ही किसी चमार के पास जमीन होती है। चमार दूसरों की जमीनों पर मजदूरी करते चले आए हैं। प्रायः हर जमीन मालिक का अपना चमार होता है, जो उसके घर पर गोबर-गानी आदि का सारा काम किया करता है। कमी-कमी एक आध चमार मजदूरी करने के लिए गाँव छोड़कर शहर चला भी जाता है, तो वह अपने रिस्ती-नातों के आकर्षण में बँधकर वापस गाँव चला आता है। काली इसी प्रकार का व्यक्ति है। वह छह वर्ष शहरों में रहकर बड़े अरमानों के साथ अपने गाँव लौटा है। गाँव लौटने पर उसे यह जानने में देर नहीं लगी कि दुनिया, विशेषतः गाँव की दुनिया, गरीब आदमी के लिए बड़ी तंग जगह है। गाँव की दुनिया में कोई चमार अगर किसी कारण से खुशहाल भी हो जाता है, तो उसकी खुशहाली चार दिन की चाँदनी बनकर रह जाती है। यही दशा काती की होने में देर नहीं लगी। अपनी थोड़ी-बहुत खुशहाली

के काल में उसने यह अनुभव किया कि गाँव में चमार होना ही बहुत बड़ा पाप है। शहर में उसे हर चीज पैसे देकर मिल जाती थी, किन्तु गाँव में चमार के हाथ दूध बेचने में अपमान समझने वाले चौधरियों के यहाँ से उसे दूध मिलना मुश्किल हो गया। गाँव में तो चमार को दूध, लस्सी आदि चीजें भीख की सूरत में मिलती थीं और भीख जबरदस्ती नहीं ली जा सकती थी। इसी प्रकार विभिन्न प्रसंगों पर उसने अनुभव किया कि चौधरी हरनाम सिंह उसे चमार होने के कारण नीच समझता है; छज्जू शाह उसे कर्ज देने की दृष्टि से किसी गिनती में शुमार नहीं करता; मट्ठे वाला मुंशी उसे विश्वासयोग्य नहीं समझता, क्योंकि उसके पास जमीन नहीं है। इतना ही नहीं, गाँव का हर सवर्ण आदमी चमार को पशु और मूढ़ समझता है। संतासिंह तो यहाँ तक कहता है कि—“गाँव में कुत्तों और चमारों की पहचान रखना मुश्किल है।” अपना पुराना कोठा खदेड़कर नया मकान बनाने के समय उसे यह ज्ञात हुआ कि चमादड़ी की सारी जमीन गाँव के जमींदारों की साँझी जमीन है। अपने मकान की जमीन के लिए निकलू से उसे लड़ते हुए देखकर जब छज्जूशाह ने कहा—“इन कमीनों के दिमाग में जरूर कोई कीड़ा होगा, जो उस जमीन के लिए लड़ रहे हैं जो इनकी नहीं है”—तो काली ने महसूस किया कि वह तो मलबे का भी मालिक नहीं है, क्योंकि मलबे की मिट्टी भी गाँव के उस छप्पड़ की मिट्टी है, जो सबका साँझा छप्पड़ है। उसे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि गाँव में उसकी हस्ती शून्य के बराबर है। उसने महसूस किया कि—“इस मुहल्ले में हर चीज मोहसी है……चमारों की औलाद तक मोहसी है।”

अकिंचनता की स्थिति के कारण गाँव में चमार की कोई इज्जत ही नहीं समझी जाती। गाँव में तो सिर्फ जमीन और जूते की इज्जत होती है। कितनी ही बार चौधरी लोग अपनी साख बनाने और चौधर मनवाने के लिए चमादड़ी में आकर बेबात ही मारपीट कर जाते थे। चौधरी हरनाम सिंह ने अपनी फसल के बरबाद होने पर केवल मंगू के कहने मात्र से जीतू को बुरी तरह से पीटा। इस प्रसंग में चमादड़ी के लोगों को बेकसूर होकर भी गालियाँ खाते और पिटते हुए देखकर काली को बड़ा दुःख हुआ। कितने ही चमार इस प्रसंग में गालियाँ सुनकर इस प्रकार से हँस पड़ते थे, जैसे कि उन पर फूल फेंके गए हों। काली को भी स्मरण हो आया कि स्वयं उसने लड़कपन में इसी प्रकार कई बार मार खाई थी और उसे कभी शर्म महसूस नहीं हुई थी। किन्तु अब जीतू को बिना बात के पीटे जाने पर उसे गुस्सा आ रहा था। उसे यह देखकर अत्यन्त दुःख हुआ कि चौधरी द्वारा वायल किए गए जीतू को उसके घर तक पहुँचाने की हिम्मत भी किसी में नहीं है। चौधरियों ने चमारों को मारपीट करके इतना ‘सीधा’ और निरीह बना रखा था कि उनमें से किसी को भी कान में डालने पर चुभने का सवाल नहीं उठता था। किसी

में इतनी हिम्मत नहीं थी कि आग बढ़कर किसी चौधरी से यह कह सके कि वह नाजायज रूप से मार-पीट कर रहा है, आगे बढ़कर हाथ पकड़ लेने की बात तो बहुत दूर की चीज थी। जब काली ने चौधरी मुशी को निरपराध नंदसिंह को पीटने से रोकना चाहा, तो हरनामसिंह ने इस प्रसंग में काली से स्पष्ट रूप से कह दिया—“कान खोल कर सुन ले, चौधरी के मुकाबले में गलती हमेशा कमीन की होती है।” ऐसी स्थिति में नदी में रह कर मगरमच्छों से विरोध करने की हिम्मत ही किसी में नहीं रह गई थी। सब लोग अपनी-अपनी चमड़ी बचाए रखने में ही कुशल धैर्य समझते थे। चाची प्रतापी ने इसीलिए काली को सलाह दी थी कि दूसरों के झगड़ों में हमें क्या लेना है।

चौधरियों और चमारों के किसी भी झगड़े में अदालत में न्याय मांगने में चौधरियों को हठी महसूस होती थी। चमार तो चौधरियों के विरुद्ध अदालत और धाने तक जाने की मोच भी नहीं सकते थे। उन्हें मालूम था कि धानेवाले चौधरियों से पूजा पाकर चमारों को ही दिन में सारे और रात में मूरज दिखाए बिना न रहेंगे। ऐसी स्थिति में अपने मन को समझाने का एक ही तरीका था कि गरीबी की आह प्लेज से भी बुरी होती है। आत्मसमाधान की इस प्रवृत्ति के कारण हरे दर्जे की गरीबी में भी वे बिना किसी शिकायत और विरोध के अपनी जिन्दगियाँ बिताए चले जाते थे। चमादड़ी में गरीबी इतनी थी कि सारे मूहल्ले में किसी का पक्का भवान तो क्या, किसी का पक्का चूल्हा तक नहीं था। खाने-पीने की दशा यह थी कि गेहूँ की रोटी उन्हें सौगान लगती थी। काली को गेहूँ का आटा खाने और खाँड पीने पर प्रीतो को हैरानी होनी है और वह महसूस करने लगती है कि जैसे काली किसी देश का राजा हो। गाड़ी लरसी ही निहाली के न्यामत बन गई है, उसे भी देते हुए कई साल हो गये हैं। वह तो थी का रंग और स्वाद तक मूल-सी गई है। चाची प्रतापी की चिन्ता से उठने वाली थी की सुगंध को सूँघ कर प्रीतो कहती है—“माभी प्रतापी ने पिछले जन्म में बहुत ही अच्छे कर्म किए होंगे जो उसकी चिन्ता पर भी देशी घी डाला गया है। एक हम हैं, जिन्होंने जीते जी भी देशी घी चख कर नहीं देखा।” गरीबी की इस दशा के कारण चमार की जवानी चार दिन भी टिक नहीं पाती। ऐसा लगता है कि जैसे यौवन और बुढ़ापा दोनों उसके पास एक साथ ही पहुँच जाते हैं। सूखे बेर जैसी प्राणहीन-भी चमारों की शर्त्ते मानो उनके शोषित जीवन का साक्षात् प्रमाण बनकर हमारे सामने उपस्थित हो जाती है।

एक ओर आर्थिक दृष्टि से दीन-हीन चमारों की यह दुर्दशा है, तो दूसरी ओर चौधरी लोग अच्छा खाते-पीते हैं। इन खाते-पीते लोगों में भी सतासिंह जैसे लोग हैं, जिनकी जिन्दगी ब्याह के बिना मुलमती लकड़ी से बन गई है। सिर पर

माँ-बाप की छाया न होने से शादी न हो सकी और अपनी भामिनी के वचनों को पोसने में ही उसकी जिन्दगी बरबाद हो गई । उसके पास दो चार खेत होते तो सहज ही उसकी शादी हो सकती थी । क्योंकि पास में पैसा हो तो अर्थी पर लेट कर भी शादी करने के लिए लड़की मिल जाती है । यह संतासिह नंदसिह की लड़की पाशो से फँसा हुआ है । ऐसे लोगों को सुलगती लकड़ी को बुझाने के लिए चमारिनें मिल ही जाती हैं । काली ने जब नंदसिह से उसके पाशो के सम्बन्ध के विषय में पूछा तो उसने बिना किसी झिझक के उत्तर दिया—“वही जो कुत्ते का कुतिया से होता है ।” संतासिह के समान गाँव के दूसरे जाट भी चमादड़ी की लड़कियों को जब तब भोगते रहते हैं । ये जाट लोग तो केवल अपनी सगी बहन की सींगंव खाते हैं । संतासिह स्पष्टतः कहता है—“जो आदमी रोज पाशो भर अन्न खाता है वो हर जवान लड़की को अपनी बहन नहीं समझ सकता । बीबा, जवानी चीज ही ऐसी है ।” इस प्रकार की स्थिति के कारण ही प्रीती और प्रतापी के झगड़े के समय गाँव का कोई जाट ऐसा नहीं रह गया था, जिसका जिक्र इस लड़ाई के समय न हुआ हो । चौवरी हरदेव लच्छो के पीछे पड़ा है और मंगू चमार बड़ी वेगमी से उसे यह सलाह देता है कि “यह उसी घोड़ी की बछेरी है जिस पर कभी बड़ा चौवरी बहुत मेहरवान था ।” लच्छो को देखकर ‘तेरे हिक ते आलना पाया नीं जंगली कवूतर ने’—गाने वाले हरदेव से मंगू कहता है—“यह कवूतरी जंगली नहीं, पालतू है । दाना देखते ही बैठ जाएगी ।” उसे यह कहने में कोई शर्म महसूस नहीं हुई कि जाट लड़कों के मुगटित शरीरों का फायदा चमारन को ही होता है । चौवरी हरनामसिह के धामरे का लाम उठा कर मंगू ने चमादड़ी में कम ज्यादातियाँ नहीं की हैं । उससे दिलमुख ने कहा है—“अरे मंगू...तू तो चमादड़ी का राँझा है । पट्टे ने उसे (लच्छो को) पूरी तरह जवान भी न होने दिया । पहले ही उस पर काठी डाल दी ।” जाट लोग चमारिनों के सम्बन्ध में वेगमी से बातें करने में संकोच नहीं करते और मंगू जैसे चमार की वेगमी हृद से गुजर जाती है, जब कि वह अपनी बहन के सम्बन्ध में बुरी बातें सुन कर भी हीन्ही करके हँसते हुए मून लेता है । चौवरी हरनाम सिंह मंगू को ‘कुत्ता चमार’ कहता है, किन्तु फिर भी मंगू चौवरी की दहलीज चाटता रहता है । कभी मंगू के बाप ने चौवरी से पाँच साँ रुपए लिए थे । इस कर्ज को उतार न पाने पर वह सारी उम्र चौवरी के यहाँ काम करता रहा और उसके मरने के बाद पाँच-सात साल से मंगू भी चौवरी का काम कर रहा है । सारी चमादड़ी के काम करने से इनकार करने पर भी कर्जदार होने के कारण मंगू काम करने से इनकार नहीं कर सकता ।

गाँव में काम है, मेहनत है; किन्तु कमाई नहीं है । तिस पर चौवरीयों के यहाँ बेगार करनी पड़ती है, सो अलग । जीनू ने सारे साल चौवरी हरनामसिह के

यत्रो वेगार की है, किन्तु इतना करने पर भी चौधरी उसे बुरी तरह से पीटता है। सारे जमाने की हवा बदल गई है, किन्तु चमादडी की हवा ज्यों की-सी है। काली के आने के बाद अवश्य परिवर्तन दिखाई देता है। बाढ़ के बाद तोड़े गए बाँध को दुरुस्त करने के लिए चमारो ने चौधरी ने जब वेगार लेनी चाही, तो काली के नेतृत्व में चमार वेगार करने से इनकार कर देते हैं। चमारो की हड़ताल का जवाब चौधरियो ने बायकाट करके देने का प्रयत्न किया। घरती और धन के अभाव में चमारो की हड़ताल छह दिनों के बाद टूट गई। पेट की खाड़ी-बहुत व्यवस्था किए बिना हड़ताल टिक ही कैसे सकती थी। हड़ताल के दिनों में गाँव के व्यापारी जमींदारों के साथ थे, क्योंकि शोषक व्यवस्था में वे भी जमींदारों के सहभागी थे। इसके अतिरिक्त चौधरियो की शक्ति के सामने व्यापारियों को झुकने के सिवाय चारा भी नहीं था। डॉक्टर विघ्नदास गरीबी का इलाज केवल खजानी रूप में बताते थे, ठोस रूप में वे भी सहायता करने को तैयार न थे।

परलोक मुधारने का दावा करने वाले धर्म भी चमारो के इहलोक को मुधारने में कोई मदद न दे सके। हिन्दू धर्म ने चमारो के मन में यह बात पक्की तरह से बिठा दी थी कि—“खजी ने जिमको चमार पैदा किया है, वह चमार ही रहेगा, चौधरी नहीं बनेगा। सब कर्मों का फल है।” वे केवल परमात्मा का आसरा ढूँढ़ते रह जाते थे। बाढ़ में जाटो ने अपने कुएँ पर चमारो की पानी भरने नहीं दिया और मन्दिर के परमात्मा का कुआँ भी उनके लिए निषिद्ध था। पादरी के नल पर पानी भरने लगे, तो पादरानी ने उन्हें रोख दिया। उसी प्रकार हड़ताल के समय जब पादरी से काली ने सहायता पानी चाही तो पादरी ने यह स्पष्ट कह दिया कि वह विधमियों को किम बूते पर सहायता दे सकता है। यदि धम बदल भी लिया जाए, तो चमार की स्थिति में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। धर्म बदलने से ज्ञात तो बदलती नहीं। पंडित मतराम जैसे लोगों को दुर-दुर करने से तग आ कर नद सिंह सिख बन गया, किन्तु रहा वह चमार का चमार ही। मजहबी सिख का नया नाम अवश्य उसे मिल गया। अन्त में वह ईसाई बनने का निश्चय कर लेता है। ईसाई बनने के बाद नदसिंह और उसके लडके कैसे दीखते हैं, यह देखने के लिए चर्च के पास बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इस प्रसंग में सरना नार्द उनके बाल भूँड़ने के लिए भी तैयार नहीं होता, किन्तु पैस के लालच में अन्त में बाल भूँड़ देता है। ईसाई बनने के बाद एक दिन मुँहफट घड़म चौधरी नदसिंह से कहता है—“सुना चमारा, ईसाई बनने के बाद कुछ फर्क पड़ा है? क्या टट्टी-पंशाव पहले की तरह करता है या तरीका बदल गया है।” वस्तुतः धर्मों का वर्तमान रूप शोषितों के लिए अफीम की तरह है। धर्म के आधार पर ही मतराम जैसे लोग मुफ्त की खाते हैं। घड़म चौधरी का कहना सही है—“पंडिता, तुम्हें पक्की-पक्की

रोटी मिल जाती हैं। मेंह हो या आंधी, बूष हो या छाँव तेरे होंगे (दान की रोटी) पक्के हैं। “दो दिन मेंहनत करके रोटी खानी पड़े तो तुम्हें पता चल जाए कि पेट से बड़ा कोई पापी नहीं।” वह इसी प्रसंग में संतराम से यह भी कहता है कि— “सबरे-शाम ठाकुरों को स्नान कराना, बंटी बजाना, बूष जलाना और शंख बजाना। बाकी मौज ही मौज है।” “ठाकुरों का तो नाम ही है, असली भोग तो तू ही लगाता है।

शोपित समाज के लोग परमात्मा से डरते रहने में ही अपनी कुशल समझते हैं। इसके बावजूद हुकमा के बारह बच्चे मर गये। परमात्मा के डर के कारण उसने कमी शिकायत भी नहीं की। शिकायत करने पर न जाने तेरहवाँ बच्चा भी शिकायत के दण्ड के रूप में कहीं परमात्मा न छीन ले! वार्षिक बन्धनों के कारण ही काली अपने गोत्र की लड़की जानो से विवाह नहीं कर सकता।

कथ्य की दृष्टि से ‘बरती घन न अपना’ उपन्यास हरिजनों के आर्थिक शोषण की कहानी है। इस कहानी को कालीदास की कहानी के माध्यम से अनिव्यक्त किया गया है। उपन्यास की कहानी कथ्य के अनुकूल विकसित होती है, किन्तु अन्त में वह प्रेम कथा के रूप में पर्यवसित हो जाती है। हड़ताल के टूटने के बाद उपन्यास के अन्तिम चार परिच्छेद काली और जानों की प्रेम कहानी बनकर उपन्यास के पूर्व प्रभाव को विवेक-सा देते हैं। जानों की प्रेम व्यथा के कारण काली बरती का परित्याग करने को विवश हो जाता है। काली न जाने कितने अरमानों को लेकर ही वह न जाने बरती के किस कोने में विलीन हो गया। यदि वह कहीं जिन्दा भी रहा होगा, तो उसका गाँव वापस आने का ह्याल केवल तड़प में ही बदल कर रह गया होगा।

श्री जगदीशचन्द्र ने उपर्युक्त संपूर्ण कथ्य को संजाव के घोड़वाहा गाँव की चमादड़ी को आधार बनाकर व्यक्त किया है। कथानक का प्रारम्भ काली के ग्राम प्रवेश के साथ किया गया है और अन्त निष्क्रमण के साथ। संपूर्ण कथानक उत्तवास परिच्छेदों में विभक्त है। गत्यती से तीसवाँ परिच्छेद छत्तीसवें परिच्छेद में समाविष्ट हो जाने के कारण उपन्यास से नदारद ही हो गया है। इसी कारण छत्तीसवाँ परिच्छेद अपेक्षाकृत अधिक लम्बा हो गया है। छत्तीसवें परिच्छेद के आठवें पृष्ठ पर “लोगों का विश्वास था”—से प्रारम्भ होने वाले अनुच्छेद को तीसवें परिच्छेद का प्रारम्भ समझना चाहिए। उपन्यास के प्रारम्भ से अन्त तक जहाँ चमादड़ी के आर्थिक शोषण पर लेखक की दृष्टि केन्द्रित है, वहाँ काली और जानों की प्रेमकथा पर भी उनका उतना ही ध्यान है। अन्त में पहुँच कर तो उपन्यास प्रेमकथा की दुःखान्ता पर समाप्त हुआ है।

‘बरती घन न अपना’ उपन्यास व्यक्ति प्रधान उपन्यास नहीं है। इसमें

चमार समाज के व्यापक शोषण का चित्र खींचा गया है। इसी कारण चमार पात्रों का बाहुल्य स्वभाविक ही है। उपन्यास में लगभग अस्सी पात्र हैं, जिनमें से चालीस पात्र चमार समाज के हैं। चमारों के अतिरिक्त बाजीगर, धेवर, कुम्हार आदि अन्य निम्न वर्गों के शोषित पात्र भी प्रसंगत आए हैं, किंतु उन पात्रों के चित्रण में लेखक ने विशेष रुचि नहीं दिखाई है। बाजीगर लोग बिन्ली, गीदड़ आदि का भी मोस खा लेते थे, इसलिए उन्हें गाँव से बाहर ही रखा जाता था। पंडित सतराम जैसे लोग तो बाजीगरों की परछाई तक को सहन नहीं कर सकते थे। बाजीगरों में खुशिया, रोटे और हरामी का ही सिरकिया के प्रसंग में चलता हुआ उल्लेख हुआ है। चमारों के बाद उपन्यास में सबसे अधिक पात्र जाट वर्ग के हैं। इन पात्रों की आवश्यकता इसलिए पड़ी है, क्योंकि शोषित की कहानी शोषकों के बिना पूरी ही नहीं होती।

चमार वर्ग के पात्रों में सबसे अधिक महत्व काली का है। काली के कारण ही कान में डालने पर भी न चुमने वाले चमार कुछ पैने हो गए हैं। काली धोड़-साहा गाँव का ही चमार है। वह माछे का लडका है किन्तु पिता के गुजर जाने के कारण सिद्धू चाचा और प्रतापी चाची ने उसे पालपोस कर बड़ा किया है। बचपन में वह अपने ही गाँव की पाठशाला में चार जमातें पढ़ा है। पढ़ाई के कारण उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। उसमें ही क्या, धोड़साहा गाँव के किसी चमार में भी पढ़ाई के कारण सचरित चैतन्य का उल्लेख लेखक ने नहीं किया है। काली अपने बचपन में अन्य चमार लड़कों के समान चौधरियों के हाथों मार खाता रहा है, पर इसके लिए उसने कभी शर्म महसूस नहीं की थी। छह वर्ष सहर में रहकर गाँव लौटने के बाद चमार के नाते अपने साथ किए जाने वाले अपमानास्पद व्यवहार के कारण वह तिलमिला उठता है। इतना ही नहीं, अपने समाज के लोगों का अपमान भी उसे अपना अपमान महसूस होता है। इसी कारण वह चौधरी मुंशी को नरसिंह के साथ ज्यादाती करते हुए देखकर गुस्से में आ जाता है। चमार होने के कारण चौधरियों द्वारा ली जाने वाली बेगार के विरुद्ध चमारों का नेतृत्व उसी ने किया है। हड़ताल के प्रसंग में सवर्ण लोगों के नेतृत्व की पीठ उसने सामने पूरी तरह से खोल जाती है। उसे अपने ही समाज के भगू को चौधरियों के शोषण में सहायक बनता हुआ देखकर गुस्सा आता है, किन्तु निक्कू के साथ नींव खुदाई के प्रसंग में उसका व्यवहार अत्यन्त ही विनयपूर्ण है। वह निक्कू और प्रीतो को मनाने का प्रयत्न करना है। स्पष्ट है कि निक्कू और प्रीतो के प्रति उसके इस व्यवहार के मूल में यह धारणा है कि निक्कू और प्रीतो एक ओर वहाँ बुजुर्ग हैं, वहाँ दूसरी ओर भगू के खिलौने बने हुए हैं। इसलिए काली बड़ी समझ-बूझ के साथ इस प्रसंग में व्यवहार करता है। मार-पीट और लड़ाई-झगड़े के प्रसंग

में भी उसने कभी पहल नहीं की है। पर इतना स्पष्ट है कि वह डर से लड़ाई-झगड़े से दूर रहने वाला व्यक्ति नहीं है। डर-डर कर दिन गुजारने से मर जाना ही उसे अच्छा लगता है।

काली के चरित्र का दूसरा पहलू उसके दिल की कोमलता है। वह अपनी चाची के कारण शहर से गाँव लौटा है। चाची के प्रति उसके प्रेम का परिचय चाची की बीमारी के प्रांग में दीख पड़ता है। जानो के प्रांग में उसके प्रेमी स्वरूप का परिचय मिलता है। वह जानो के रूप पर ही नहीं, अपितु उसके गुणों पर भी मुग्ध है। जानो के प्रेम के कारण ही लोग उसे 'चमादड़ी का राजा' कहने लगे हैं। हड़ताल के प्रसंग के बाद सामाजिक कार्य की असफलता के कारण निराशाग्रस्त होकर ही संभवतः उसने अपने को जानो में खोने का प्रयत्न किया है। लालू पहलवान को उसका यह सम्बन्ध अनैतिक प्रतीत हुआ है और इसीलिए उसने काली को अपने काम पर से निकाल दिया है। इसके बाद काली आजीविका के लिए क्या-कुछ करता रहता, इसका विचार लेखक ने नहीं किया है। केवल जब-तब, जहाँ-तहाँ विविध प्रकार की मिलनपद्धतियों को आविष्कार करते हुए उसे दिखाया है। जानो की मृत्यु के साथ वह ऐसे लुप्त हो गया था जैसे उसे जमीन निगल गई हो।

काली के बाद उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र जानो है। जीतू की पिटाई के प्रसंग में जानों का प्रवेश एक बेबाक और निडर पात्र के रूप में होता है। नाजायज रूप से पिटने वाले लोगों पर उसे गुस्सा आता है। मुँह खोल बिना पिटने वाले बेगैरत लोगों के कारण उसे शर्म महसूस होती है। जायज बात कहने में वह डरती नहीं है। निक्कू और काली के झगड़े के प्रसंग में उसने अपने ही भाई के विरोध में यह स्पष्टतः कहा कि निक्कू का सिर काली ने नहीं, मंगू ने फोड़ा है। अपनी इस प्रकार की स्पष्टवादिता के कारण उसे कितनी ही बार घर में पिटेना पड़ा है। इसके अतिरिक्त जानो साहसी प्रेमिका के रूप में भी हमारे सामने आती है। काली के शीशम के रंग के मुगठित शरीर एवं स्वाभिमानी स्वभाव पर वह रीझ गई है। उसको अपने घर में उपस्थित पाकर काली को 'चानन ही चानन' नजर आने लगता है। काली के साथ उसके सम्बन्ध में कामभावना हावी नहीं है। कितनी ही बार काली के शरीर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करने पर उसने नाराजी व्यक्त की है। इसलिए घड्डम चौधरी का यह कहना असंगत है—“मोरनिए तेरे अन्दर कितनी आग है, जो बुझने में नहीं आती।” प्यार की प्यास अवश्य उसकी अनंत है। काली के साथ इसी प्यार भरे सम्बन्ध के कारण वह 'काली की मोरनी' बन गई है। गर्म-वती हो जाने के बाद जानो काली से अनुनय करती है कि वह उसे घोड़वाहा से किसी और जगह भगा कर ले जाए। पर नाबालिग जानो को ले जाने का साहस काली में नहीं था। अन्त में गर्म गिराने के प्रयत्न में वह जहर का शिकार बनकर सदा के लिए

इस दुनिया से विदा हो जाती है ।

काली और ज्ञानो के अतिरिक्त चमारो में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मगू है । मगू के पिता ने चौधरी हरनाम सिंह से कर्ज के रूप में पाँच मो रुपये लिए थे । उस कर्ज के व्याज में मगू के पिता ने हरनामसिंह के यहाँ बेगार की और उसके बाद मगू कर रहा है । इसी कारण वह हड़ताल के दिनों में चौधरी का काम करने से इनकार नहीं कर सकता था । अमलियत ता यह है कि वह कर्जदार न भी होता तो भी शायद काम करने से इनकार न करता । चौधरी का एजेण्ट बनकर भारी चमादडी पर अपना रीव गाँठना चाहता है । कमी झूठी शिकायत करके जीनू को पिटा जाता है और धमी अपनी चौधर न मानने वाले काली के विरुद्ध निक्कू को झगडा करने के लिए उकसाता है । इतना ही नहीं, चौधरी हरदेव को खुश करने के लिए लच्छो की इज्जत लूटने के लिए प्रेरित करता है । बाबे फनू आदि बड़े बुजुर्गों का मान-सम्मान करना उसने सीना नहीं है । और तो और अपनी ही बहन को उसकी सवाई की प्रवृत्ति के लिए जब तब पीट दिया करता है । संक्षेप में, मगू चमादडी का मयसे अधिक जहरीला आदमी है ।

बाबे फतू चमादडी का बयोवृद्ध एवं अनुभवगूढ़ आदमी है । मुँहदेखी बात करना उसे नहीं आता । उसके इस गुण के कारण चौधरी लोग भी उसकी दृग्गत करते हैं । बग्गा और पालो के झगडे के प्राण में उसकी स्पष्टवादिता उल्लेखनीय है । चमारो में निक्कू भी एक विशिष्ट पात्र है । काम करने में उसकी रुचि नहीं है । उस पर बरसते हुए प्रीतो कहती है कि वह बच्चों की पलटन तैयार करने में ही केवल मर्द है । अन्यथा नितना तोड़ने में भी उसकी जाँहें दर्द करने लगती हैं । मगू द्वारा शराब पिलाने के आश्वसन पर वह काली से झगड पड़ता है । चमार पात्रों में प्रीतो पर भी ध्यान गए बिना नहीं रहता । यह जहानमर की बेधम औरत है । दो दर्जन के लगभग बच्चों को जन्म देने के बाद भी तेल आदि के सहारे जीवन की सीमाओं में बनी रहना चाहती है । चाची प्रतापी उसके चाल चलन के कारण कहती है—“तूने तो हरजार्ड रुनिया की भी पीछे छोड़ दिया है ।” सतासिंह भी काली को सलाह देता है कि—“प्रीतो की मत्तीजी से ब्याह न करना । अगर वह अपनी बुआ जैसी निक्कली तो तुम्हें अपने बच्चों को पहचान करना भी मुश्किल हो जाएगी ।” इस हरबाईपन के अतिरिक्त हमेशा घाने-पीने की बातों में ही आनंद आता है । उसकी दोनो भूखें तेज हैं ।

सवर्ण पात्रों में कुछ विशिष्ट पात्र हैं, जिन्हें मुलाया नहीं जा सकता । इनमें से एक लालू पहलवान है । वह लेंगोट का पक्का है । वह माया का लेंगोटिया पार रह चुका है । इसलिए वह काली की बड़ी आत्मीयता के साथ सहानुभूति करता है । वह टूटी हड्डी जोड़ने में बड़ा निपुण है । यह काम वह आजीविका के रूप में नहीं,

अपितु धर्म के रूप में करता है। नूरा पहलवान का हाँथ तोड़ने के अपराध में उसके उस्ताद ने उसका लँगोट लेकर पीपल की छँची टहनी के साथ बाँधकर लालू को अखाड़े में उतरने से मना कर दिया था। तब से वह आदमी को अंगहीन होने से बचाने को अपना धर्म समझता है। वह काली को अपने यहाँ काम के लिए रख लेता है, किन्तु जानो के साथ काली के सम्बन्ध को जानने के बाद उसे वह अपने घर से निकाल देता है। सवर्ण जाटों में घड़म चौवरी (नत्थासिंह) भी हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। उसे कानून कचहरी का बड़ा शौक है। दूसरे के कामों में हस्तक्षेप करना उसे अपना धर्म प्रतीत होता है। वह अपनी सारी जमीन बेचकर खा चुका है। वह निःसंतान विधुर है, अतः उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। गाँव की हर बात की जानकारी उसे होती है। वह बड़ा मुँहफट है। काली और निक्कू के झगड़े के प्रसंग में वह पटवारी की लीजो की गरदावरी करने के कारण निन्दा करता है और झगड़े का निपटारा करने में सहायता करके काली से दो रूपए ले लेता है। पटवारी की इस रियवत में उसकी भी साझेदारी है। उपन्यास के अन्य पात्र प्रायः वर्ग चरित्र हैं। डॉक्टर विजयदास हिन्दुस्तानी नेता हैं। स्यापे की तरह लम्बी बातें करने में ही उसकी अधिक रुचि है। साम्यवादी होते हुए सर्वहारा वर्ग की यातनाओं के साथ उसे केवल बौद्धिक हमदर्दी है।

लेखक का ध्यान उपन्यास के देशकाल पर प्रायः नहीं है। घोड़वाहा गाँव शिवालक पर्वत के निकट का एक गाँव है, जिसके पास एक नाला सटकर बहता है। उपन्यास में सावन के महीने में आई बाढ़ का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। इसी प्रसंग के बाद उपन्यास का हड़ताल का प्रसंग है, जिसे आर्थिक समस्या की दृष्टि से उपन्यास की चरमसीमा का प्रसंग कहा जा सकता है। प्रेमकथा की दृष्टि से उपन्यास की चरम सीमा जानो की मृत्यु और काली का लापता होना है। इसके अतिरिक्त देशकाल वर्णन पर लेखक की दृष्टि नहीं जाती है। चाची प्रतापी की बीमारी के प्रसंग में सातवीं के चाँद का उल्लेख है तथा नर्दासिंह के ईसाई होने के प्रसंग में रविवार होने का। यह उपन्यास ग्रीष्म और वर्षाकाल का उपन्यास है। उपन्यास से सम्बन्धित दिनों की गिनती करने पर ज्ञात होता है कि यह केवल चत्वारसीस दिनों की कथा है।

भाषा शैली की दृष्टि से हमारा ध्यान सबसे पहले पंजाबी शब्दों और वाक्यों की ओर जाता है। यद्यपि पंजाबी हिन्दी की बोली नहीं है, किन्तु लेखक ने उसका भरपूर उपयोग किया है। इसका पहला कारण तो यह है कि लेखक कथानक को आंचलिकता के विशिष्ट रंग से चमकाना चाहता है तथा दूसरा कारण मंदावी की भाषा को अधिक स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न है। लेखक ने सैकड़ों पंजाबी शब्दों का प्रयोग उपन्यास में किया है। चो, डुड, तंद, डंग, किदा, मुड्डा, बबूना, तंगल,

चीचड़ आदि अनेक शब्द उपन्यास में बिखरे पड़े हैं। इनमें से कुछ शब्दों की वर्तनी अस्थिर है। 'नय' और 'स्तून' शब्दों को 'नै' और 'स्तून' रूप में भी प्रयुक्त किया है। कितने ही शब्दों का अर्थ उनकी बन्धनियों में दिया गया है। उपन्यास में लगभग सौ स्थानों पर बन्धनियों का प्रयोग हुआ है। शब्द के अर्थ का बधनीगत स्पष्टीकरण उपन्यास में उम शब्द के प्रथम प्रयोग के अवसर पर होना चाहिए, किन्तु कितनी ही बार ऐसा नहीं हुआ है। तब कामा आदि ऐसे कुछ शब्द हैं, जिनका स्पष्टीकरण उनके प्रथम प्रयोग के स्थान पर नहीं किया गया है। वही-वही स्पष्टीकरण अस्पष्ट है। 'धम्मी' 'लकड़ी का मोटा लड़' ही नहीं होती, अपितु 'छन को महारा देने वाला लकड़ी का स्तून' होता है। वही-वही बन्धनियों का गलत स्थान पर प्रयोग हुआ है। गेहूँ के (बालियाँ) सिट्टे के स्थान पर गेहूँ के भिट्टे (बालियाँ) होना चाहिए। निरर्थक रूप में भी बधनियों का प्रयोग खटकता है। 'दो साफ (ईट) रोडे' के स्थान पर 'दो साफ ईट के रोडे' होना चाहिए। इसी प्रकार लोग आकर प्रतापी चाची से पूछते हैं—'चाची (नमक) है, चाची (मिर्च) है।' इस स्थान पर बधनी का प्रयोग निरर्थक है। 'साहवेला' का अर्थ बधनी में 'बैकफास्ट' दिया है, जो अर्थ की दृष्टि से ठीक होते हुए भी इसलिए खटकता है कि स्पष्टीकरण अंग्रेजी शब्द के द्वारा न किया जा करके किसी हिन्दी शब्द के द्वारा किया जाना चाहिए था।^{१३}

पंजाब में दीर्घकाल तक मुसलमानों शासन के प्रभाव के कारण उर्दू का बोल-वाला रहा है। 'घरती धन न अपना' में उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुत बड़ी मात्रा में हुआ है। गदम, जुंवा, यादफरा मोश, जेहन आदि अनेक ऐसे ही उर्दू शब्द हैं। कहीं-कहीं वर्तनीगत अस्थिरता का दोष इन उर्दू शब्दों में भी पाया जाता है। 'वाहमुवाह' और 'खामुवाह' ऐसे ही प्रयोग हैं। कहीं-कहीं एक ही शब्द के उर्दू और हिन्दी के पर्याय कुछ-एक शब्दों के अन्तर पर ही प्रयुक्त हुए हैं। 'खोर' और 'भय' का प्रयोग केवल एक पंक्ति के अन्तर पर हुआ है। उर्दू शब्दों का पंजाबी रूप भी अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। 'शिरत' (गिरफ्त), 'फरेव' (फरेव) आदि ऐसे अनेक शब्द हैं। 'पेजेवर खिलाड़ी' के स्थान पर (पेसावर खिलाड़ी) का प्रयोग खटकता है।

उपन्यास में केवल शब्दों का ही नहीं, अपितु वाक्यांशों, मुहावरों, वाक्यों और कहावतों में भी पंजाबी वाक्यांश आदि हैं। 'रख साइयाँ दी' 'तेरे सदेके' आदि ऐसे ही वाक्यांश हैं। कुछ विशेष पंजाबी मुहावरे भी जहाँ-तहाँ आए हैं। 'दाढा-दाडी करना', 'बकरे बुलाना' आदि ऐसे ही मुहावरे हैं। 'थूक से पकौड़े पकाना', 'कटी उँगली में नमक छिड़कना' आदि मुहावरे हिन्दी को समृद्ध करने के लिए उपयोगी हैं। 'घड़ी में मेर और पल में माशा होता' की अपेक्षा 'पल में तोला और पल में भासा होना' अधिक अर्थवाहक मुहावरा है। 'जोरावर का सान बीम का सौ' पंजाबी कहावत का हिन्दी रूप है। 'गोरा बमोन और काला ब्राह्मण दोनों हरामी होते हैं।'

यह कहावन भी पंजाबी कहावत का हिन्दी रूपान्तर है ।

पंजाबी और उर्दू भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के भी बहुत से शब्द डाक्टर विश्वनाथ आदि की भाषा में आए हैं । परोलतारी, प्रोलतारिया, सावोताज आदि ऐसे अनेक शब्द हैं । 'रिट' (रिपोर्ट), 'स्प्रिट' (स्परिट) आदि कुछ शब्द पंजाबी उच्चारण के अनुकूल रखे गए हैं । अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग में भी वर्तनीगत अस्थिरता है । कहीं 'परोलतारी' है, तो कहीं 'प्रोलतारी' । कहीं 'बूरज्वा' का प्रयोग हुआ है तो कहीं 'बूर्जवा' रूप का । इस मामले में लेखक को अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए थी । पंडित संतराम की भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में हुआ है और वह स्वाभाविक भी है । 'अज्ञान' 'शराव' आदि ऐसे ही पंजाबी उच्चारण से प्रभावित संस्कृत शब्द हैं ।

उपन्यास में कुछ सुन्दर सूक्तियाँ भी दीखती हैं । इनमें से कुछेक सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—“गरीबी आदमी का जमीर खत्म कर देती है”; “जिसके पास चादर है, वही चौवरी है”^{११} आदि ।

प्रस्तुत उपन्यास में अलंकारों का प्रयोग अत्यंत सहज रूप में हुआ है । ग्रामीण व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त अलंकार एवं स्वयं लेखक द्वारा प्रयुक्त अलंकार ग्रामीण वातावरण के अत्यधिक अनुकूल हैं । ‘मूखे बेर जैसी प्राणहीन शायलें’; ‘कानों के पदें तर-बूज के खप्पर की तरह मोटे’ आदि प्रयोग ऐसे ही हैं । अपने हाथों अपनी रसाई तैयार करने वाले संतासिह का यह कहना उपयुक्त ही है कि—“व्याह के बिना जिदगी मुलगती लकड़ी की तरह है ।” अन्धेरी रात में जानों के दरवाजे पर दस्तक देने पर काली ने “इस नमी से साँकल उतारी जैसे किसी मुटियार के सिर से चुन्नी उतार रहा हो ।”^{१२} यह उपमा प्रसंग के अत्यधिक अनुकूल है । प्रतापी चाची का काली से यह कहना कि वह खेड़ से बिछुड़ी बछिया को देखकर रो दिया करती थी, स्मरण अलंकार का सुन्दर उदाहरण है ।^{१३} अलंकारों का सीमित एवं सहज प्रयोग उपन्यास में सर्वत्र देखा जा सकता है ।

इस उपन्यास में भाषा की दृष्टि से कुछ व्याकरणगत त्रुटियाँ बहुत खटकती हैं । एक ही प्रसंग में एक ही व्यक्ति के लिए ‘तू’ और ‘तुम’ सर्वनामों का प्रयोग किया गया है । चाची प्रतापी कहती है—“तुम्हें तो याद उसकी मूरत भी याद न हो । सारे खानदान की तू ही तो एक निशानी है ।”^{१४} “तू...बैठो”; ‘मुनाओ तू’ आदि ऐसे ही अनेक प्रयोग हैं । शब्दों के विकारी रूपों का प्रयोग भी ऐसे ही विकारग्रस्त है, जैसे—‘चाचे ने’ । ‘मजमा से हट कर’ में विकारी रूप का प्रयोग आवश्यक है । ‘इत-मीनान का साँस’ में लिंगगत दोष है । ‘साँस’ शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग है । ‘धीवर’ या ‘वेवर’ का स्त्रीलिंग रूप ‘धीवरी’ या ‘वेवरी’ ही ठीक है, ‘वेवरानी’ नहीं ।^{१५} ऐसी ही अनेक व्याकरणगत त्रुटियाँ उपन्यास में इतस्ततः बिखरी पड़ी हैं । इन त्रुटियों

को दूर करना आवश्यक है। इस प्रकार की धुटियों के बावजूद उपन्यास की भाषा सहज एवं संप्राण है।

टिप्पणियाँ

- १ निपाद बाँसुरी—ले० श्री कुवेरनाथ राय
- २ घरती घन न अपना (प्रथम संस्करण) पृ० १०७
- ३ घरती घन न अपना, पृ० १०८
- ४ वही, पृ० ६७
- ५ वही, पृ० २३४
- ६ वही पृ० २१६
- ७ वही, पृ० १६९
- ८ वही, पृ० १९६
- ९ वही, पृ० २७१
- १० वही, पृ० ८७
- ११ वही, पृ० १२४
- १२ वही, पृ० २६३
- १३ वही, पृ० ६९
- १४ वही, पृ० २२३
- १५ वही, पृ० १३
- १६ वही, पृ० १३
- १७ वही, पृ० ११३

तमस :

साम्प्रदायिकता के अंधेरे में अटकता आम आदमी

सूर्यनारायण रणसुभे

ये लोग अपने इतिहास को जानते नहीं, ये केवल उसे जीते भर हैं ।

—तमस

देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हे आपस में लड़ाते हो । क्यों ठीक, है ना !

—तमस

लड़ने वालों के पाँच बीसवीं सदी में थे, सिर मध्य-युग में ।”

—तमस

काफिर को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर जान-गहवान के पनाह-गजीन को मारना दूसरी बात । उसका खून करना पहाड़ की छोटी पार करने से ज्यादा कठिन हो रहा था । भजहवीं जनून और तफरत के इस माहौल में एक पतली-सी लकीर कही पर अभी भी खिंची थी, जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था ।

—तमस

उसे लगा जैसे मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होना, वास्तव में महत्त्व केवल सामंतीय मूल्यों का होता है ।

—तमस

इस देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए जो विभिन्न आन्दोलन हुए, उनके परिणामस्वरूप ही अन्ततः अंग्रेजों की राजनीतिक स्वतन्त्रता की घोषणा करनी पड़ी। इन विभिन्न आन्दोलनों के कारण अंग्रेज आरम्भ में भारतीयों को विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक स्वतन्त्रता दे रहे थे। इसी कारण चुनाव की नई पद्धति शुरू हुई। नगर-परिषदों से लेकर धीरे-धीरे प्रान्तीय स्तरों तक के कारोबार में भाग लेने की छूट दी जाने लगी। कारोबार में भाग लेने का अर्थ ही है—सत्ता के निकट चले जाना। सत्ता में हिस्सा मिलने का अर्थ ही है—विशेषाधिकारों को प्राप्त कर लेना। अपने ऐतिहासिक और संगठित संघर्ष के कारण ये विशेषाधिकार कांग्रेसियों को अधिक प्राप्त होने लगे। और यहीं से दो सम्प्रदायों के बीच दूरी बढ़ने लगी। आधुनिक शिक्षा की स्पर्धा में हिन्दू मुसलमानों से अधिक जागरूक थे। राजनीतिक सजगता भी उनमें अधिक रही है। इसी कारण कांग्रेस में इनकी संख्या अधिक थी। नगर परिषद के चुनावों से लेकर अन्य क्षेत्रों में कांग्रेस को अधिकार मिलने लगे। परिणामस्वरूप अधिकारों का केन्द्रीकरण हिन्दुओं में अधिक होने लगा—इसे देखकर शिक्षित मुसलमान तिलमिला उठा और धीरे-धीरे वह अपनी कौम को विविध तर्कों देकर संगठित करने लगा; मड़काने लगा। यहाँ पर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि हिन्दुओं के भीतर भी सनातनी और कट्टर साम्प्रदायिक शक्तियों की कमी नहीं थी (जो पुनरुत्थान के नाम से उभरी थी)। ये शक्तियाँ भी इस अलगाव को बढ़ाने में अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दे रहीं थीं।

बढ़ते हुए राजनीतिक आन्दोलन, विश्व राजनीति की परिवर्तित दिशाएँ, दूसरा महायुद्ध तथा वस्तुनिष्ठा की बदली हुई सरकार—इन विविध कारणों से ६ मार्च १९४७ को सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा अंग्रेजों को करनी पड़ी। इसके पूर्व ही यहाँ साम्प्रदायिक अलगाव अपने चरम-उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। १९३३ में रहमतअली ख़ाँ पाकिस्तान की योजना रख चुके थे। आरम्भ में मुस्लिम लीग ने इस योजना को अस्वीकार करते हुए—इसे बचकानी हरकत कहा था। इस कठोर टीका

के बावजूद रहमतअली भारन-विभाजन अर्थात् स्वतन्त्र पाकिस्तान का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। काँग्रेस तथा अग्रजों के साथ समझौता न होने के कारण मुस्लिम लोकमत धीरे-धीरे पाकिस्तान के पक्ष में जाने लगा। श्री जिना—जो अब तक स्वतन्त्र पाकिस्तान के विरोधी थे—बदली हुई परिस्थितियों को देखते हुए—इस माँग का राजनीतिक उपयोग कर देने लगे। मार्च १९४० के मुस्लिम-लीग के लाहौर अधिवेशन में पहली बार स्वतन्त्र पाकिस्तान की माँग रखी गई। इस माँग के कारण सारे देश में खलबली मच गई। इस तरह १९४० से १९४६ तक पाकिस्तान की चर्चा विभिन्न तरीकों से हो रही थी। काँग्रेस तथा अन्य हिन्दुत्ववादी सघटनाएँ इस विभाजन का विरोध कर रही थी और मुस्लिम-लीग 'लेके रहेगे पाकिस्तान' का नारा लगा रही थी। लीग के कार्यकर्ता इस नारे को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य व्यवस्थित रूप से कर रहे थे। १० अप्रैल १९४६ को श्री जिना ने मुस्लिम लीग की एक बैठक दिल्ली में बुलाई और उसमें उन्होंने पाकिस्तान की सीमाओं और उसमें सम्मिलित प्रदेशों की योजना स्पष्ट की। उनके अनुसार पाकिस्तान में छः प्रान्त होंगे—बंगाल एवं असम [उत्तर पूर्व में] पंजाब, उत्तरपश्चिम सीमा प्रदेश एवं प्रान्त, सिन्ध, बलूचिस्तान [उत्तर पश्चिम में]

इसका अर्थ यह हुआ कि अप्रैल १९४६ से ही उपर्युक्त प्रान्तों के हिन्दू एवं मुसलमानों में तनाव के बीज पड़ चुके थे। यह तनाव धीरे-धीरे बढ़ने लगा। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद (२० फरवरी १९४७) ६ मार्च १९४७ को काँग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसमें ब्रिटिश सरकार की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा का हुरामत स्वीकृत किया गया तथा स्वतन्त्र पाकिस्तान के बजाय मुस्लिम-लीग के साथ समझौता करने का आग्रह किया गया। रखी हुई बातचीत से रास्ता निकालने की कोशिश फिर शुरू हो गई। काँग्रेस ने यह सुझाया कि बहुमस्यको के आधार पर प्रान्त रचना के लिए वह तैयार है। इस प्रकार पंजाब और बंगाल के विभाजन को काँग्रेस तैयार हो गई। हिन्दू पंजाब एवं मुस्लिम पंजाब। हिन्दू बंगाल एवं मुस्लिम बंगाल। काँग्रेस के कुछ सदस्यों को यह योजना मान्य नहीं थी। इसलिए काँग्रेस-अध्यक्ष ने स्पष्टीकरण देने हुए कहा कि पंजाब के विभाजन की बात हम केवल इसलिए कर रहे हैं कि हिंसात्मक घटनाओं की समाप्ति हो जाय। काँग्रेस के इस प्रस्ताव को लीग ने नामजूर कर दिया और यह कहा कि पाकिस्तान की माँग से वह एक इंच भी पीछे नहीं आना चाहती। काँग्रेस के पंजाब विभाजन की प्रतिक्रिया पंजाब में हुई। हिंसात्मक घटनाओं की समाप्ति के लिए यह योजना रखी गई थी परन्तु दुर्भाग्यसे हिंसात्मक घटनाएँ बढ़ने लगीं। मुसलमान यह मानकर चलने लगे कि अब उनके प्रदेश में हिन्दुओं की आवश्यकता नहीं है और हिन्दू यह कहने लगे कि अब हमारे प्रदेश में मुस्लिम नहीं रह सकते। लोगों पर अत्याचार शुरू हुए।

इस दृष्टि से मार्च १९४७ से लेकर जनवरी १९४८ तक का दम महीने का समय अराजकता, दंगे, आगजनी, बलात्कार और क्रूरता का समय रहा है। उसमें भी मार्च १९४७ ने अगस्त १९४७ यह छ. महीने सर्वाधिक क्रूर और भयावह रहे हैं। इन छः महीनों में मनुष्यता के लिए लज्जास्पद घटनाएँ घटित हुईं। २४ मार्च १९४७ को लॉर्ड माऊंटबैटन यहाँ आए। उनके लगातार के प्रयत्न के कारण विभाजन की योजना काँग्रेस को स्वीकार करनी पड़ी। दो जून १९४७ को काँग्रेस कार्यकारिणी ने विभाजन की माँग को अर्थात् स्वतन्त्र पाकिस्तान के निर्माण को मान्यता दे दी। आम जनता की रही-सही आशाएँ समाप्त हुईं। सबको ऐसा लग रहा था कि महात्मा जी इस प्रस्ताव को मान्यता नहीं देंगे। परन्तु अब सारी आशाएँ खत्म हुईं। क्योंकि उनके विरोध के बावजूद पाकिस्तान की स्वीकृति दी गई। परिणामस्वरूप मुस्लिम बहुसंख्य प्रदेशों में जो हिन्दू थे, वे मुस्लिमों की क्रूरता के शिकार बने और यही स्थिति हिन्दू बहुसंख्यक प्रदेशों के मुस्लिमों की हुई। केवल एक माह के भीतर यह तय किया गया कि पंजाब और बंगाल का कौनसा प्रदेश हिन्दुस्तान में जाएगा और कौनसा पाकिस्तान में। सर्वनामान्य जनता आगिर तक धीमे में रही। स्वतन्त्रता के छह माह पूर्व भी उन्हें यह पता नहीं था कि वे जहाँ हैं वह पाकिस्तानी प्रदेश में जानेवाला इलाका है अथवा हिन्दुस्तान में।

मार्च १९४७ से अगस्त १९४७ के बीच सर्वनामान्य व्यक्तियों की जो अनहान्य स्थिति हुई; विभाजन के नाम पर जो क्रूर अत्याचार हुए; साम्प्रदायिक शक्तियाँ जिन प्रकार कार्य कर रही थी—इन सबको उपन्यासों द्वारा समेटने का प्रयत्न कुछ लेखकों ने किया है। विभाजन की इस आसदी को लेकर बदीउज्जर्मा ने लिखा है कि “हजारों वर्षों बाद इस देश में महामारत जैसी एक और आसदी घटी।” इस आसदी को विभिन्न कोणों से देखने का प्रयत्न हुआ है। ‘तमस’ इस प्रकार के उपन्यासों की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। ‘तमस’ के पूर्व यशपाल का “झूठा-सच”, यजदत्त शर्मा का “इन्सान”, गुरुदत्त का “देश की हत्या”, रामानन्द नागर का “और इन्सान मर गया” कमलेश्वर का “लॉटे हुए मुसाफिर”—प्रकाशित हो चुके हैं। तमस के लेखक भीष्म साहनी पंजाब के हैं और विभाजन के समय वे उसी प्रदेश में थे। इस कारण इस उपन्यास का महत्त्व अधिक है। एक जनवादी लेखक ने इस समस्या को किम दृष्टि से देखा है—उसकी खोज भी करना जरूरी है।

कथावस्तु : अप्रैल १९४७ के समय के पंजाब के एक जिले की परिवेश के रूप में यहाँ स्वीकार किया गया है। यह जिला और उसमें सम्बन्धित कुछ देहानों के साम्प्रदायिक तनाव, संघर्ष और फिनाद की कथावस्तु के रूप में यहाँ स्वीकार किया गया है। यह वह समय है जब कैबिनेटमिशन की योजना के अनुसार केन्द्र में अन्तरिम सरकार बन चुकी थी। पं० नेहरो इस सरकार के प्रमुख थे। लॉर्ड माऊंटबैटन

दिल्ली आ चुके थे। विभाजन के लिए वे अनुकूल वातावरण बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। छ मार्च १९४७ को कांग्रेस कार्यकारिणी विभाजन को रोकने के लिए बहुसंख्यकों के आधार पर पंजाब और बंगाल का विभाजन करके दो प्रान्तों के निर्माण की योजना रख चुकी थी। पंजाब विभाजन की योजना मुस्लिम-लीग अस्वीकार कर चुकी थी। अप्रैल के पूर्व ही दिल्ली में ये राजनीतिक घटनाएँ घटित हो चुकी थी। दिल्ली से दूर पंजाब के एक मुस्लिम बहुसंख्यक जिले में इन सबकी प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक था। हिन्दुओं के प्रति मुस्लिमों को भड़काया जा रहा था। साम्प्रदायिक शक्तियाँ इसे और अधिक उभार रही थी। कांग्रेस और कम्युनिस्ट समझौता और अमन के लिए प्रयत्नशील थे। और अंग्रेज अधिकारी इन दोनों सम्प्रदायों के हिंसात्मक आन्दोलनों को खामोशी से देख रहे थे। बड़े तबके के शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की अपेक्षा छोटे तबके के लोग सर्वाधिक परेशान थे। उपन्यास में वर्णित इस जिले में कुल छ विभिन्न शक्तियाँ कार्य कर रही थी। कम अधिक मात्रा में हिन्दू-मुस्लिम फिमादों के समय सारे देश में यही छ शक्तियाँ कार्यरत थी। इनमें से कुछ शक्तियाँ एक-दूसरे के विरोध में खड़ी थी तो कुछ एक दूसरे के सहयोग में। एक दूसरे का विरोध करने वाली ये शक्तियाँ एक बिन्दु पर एक दूसरे से मिल जाती हैं। मजदूर बात यह है कि ये छ शक्तियाँ आम आदमी की सुरक्षा और फायदे का नारा लगाती हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि इनके कारण आम आदमी की हानि ही अधिक हुई। सुरक्षा और फायदे का इनका नारा एक बहुत बड़ा झूठ था। यह छ शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१ अंग्रेज सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर अंग्रेज थे। आरम्भ से इनकी नीति और समय-समय पर इनके द्वारा लिए गये निर्णय यह स्पष्ट करते हैं कि दो सम्प्रदायों को लड़ाने में ही वे खुद को सुरक्षित अनुभव करते थे। "प्रजा अगर आपस में लड़े तो शासक को किस बात का खतरा है।" "यह देखना निहायत जरूरी था कि जनता का असंतोष ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध न मड़के।" "हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौनसी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग हैं।" इन विविध चक्रव्युत्तों से स्पष्ट है कि यह शक्ति दो घमों के तनाव को किसी भी स्तर पर कम नहीं करना चाहती थी। हाँ, काफ़ी कुछ हो जाने के बाद बहुत कुछ करने का नाटक अलबत्ता वे जरूर करते हैं।

मुस्लिम-लीग मुस्लिमों के हित का नारा लगाकर मुस्लिम-लीग १९०६ से कार्य कर रही है। पढ़े-लिखे और बट्टर धार्मिक मुस्लिम अपने हित के लिए मुस्लिम-लीग के झंडे के नीचे आ गये। जिना जैसा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति लीग को मिल जाने से उसमें नई जान आ गई। १९४० तक आते-आते मुस्लिम बहुसंख्यक

प्रान्तों में सभी स्तरों पर लीग की स्थापना हुई । "कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है । इसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है ।" कांग्रेस की नफरत से ही लीग उमरी थी । हिन्दू-मुस्लिम एका करने वाली शक्तियों को भी ये नफरत करते थे । इसी कारण कांग्रेस में कार्यरत मुसलमानों की इन्होंने खिल्ली उड़ाई । भीलाना आजाद हिन्दुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है । "हमें हिन्दुओं से नफरत नहीं, इनके कुत्तों से नफरत है ।" कांग्रेस मुस्लिमों की नुमाईन्दी नहीं कर सकती ।" लीग के सामान्य कार्यकर्ता भी जिना के शब्दों में घोल रहे थे । धीरे-धीरे लीग कट्टर साम्प्रदायिक शक्ति के रूप में उमरी । लीग की इसी कट्टरता के कारण पंजाब के हिन्दुओं को जबरदस्त नुकसान पहुँचा तो दूसरी ओर पंजाब तथा ५० बंगाल के मुस्लिमों को भी काफी नुकसान उठाना पड़ा ।

३. आर्य-समाज : १८७५ में स्थापित आर्य-समाज सामाजिक सुधार एवं धार्मिक पुनरुत्थान के लिए उठ खड़ा हुआ था । शिक्षा एवं सामाजिक क्षेत्रों में आर्य-समाज का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है । धार्मिक क्षेत्र में तो यह कार्य कुछ सीमा तक क्रांतिकारी ही है । परन्तु धीरे-धीरे समाज के नेता राजनीति के क्षेत्र में उतर आये । अगर वे केवल अग्रजों के विरुद्ध ही जनमत तैयार करते तो कोई हानि की बात नहीं थी । परन्तु धार्मिक पुनरुत्थान के नाम पर बात-बात में हिन्दू-संगठन का आग्रह, हिन्दुओं की महानता पर बल, व अन्य धर्मों की खिल्ली उड़ाने की वृत्ति के कारण समाज मुस्लिमों की विरोधी शक्ति के रूप में उमरने लगा । उधर मुस्लिमों में इसी प्रकार का कार्य "बहावी तहरीक" द्वारा गुरु हुआ । परिणामतः तनाव बढ़ने लगा । अगर ये दोनों पुनरुत्थानवादी चाराएँ धर्म तक ही सीमित रहती तो शायद पृथक राष्ट्रीय आन्दोलनों के विकास का कारण न बनती ।" इस प्रकार अलगाव की इस प्रक्रिया में आर्यसमाज ने गति ला दी ।

कम्युनिस्ट : विभाजन के पाप के भागीदार कम्युनिस्ट भी हैं । परन्तु इसके बावजूद यह सन्चाई है कि इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काफी प्रयत्न भी किए । विशेषतः सन् १९४७ के समय लाहौर, अमृतसर तथा पंजाब के अन्य बड़े शहरों में वे इस एकता के लिए प्रयत्नशील थे । "हमें यह नहीं मूलना चाहिए कि हम लोगों को मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जा रहा है । हम झूठी अफवाहें सुनकर एक-दूसरे के खिलाफ तैश में आ रहे हैं ।" इनकी दृष्टि राजनीतिक अधिक थी; मानवीय कम ।

५. कांग्रेस : म० गांधीजी के नेतृत्व में विकसित कांग्रेस अपने तरीके से विभाजन का विरोध कर रही थी । राष्ट्रीय स्तर पर इस पार्टी की नीति बहुत ही स्पष्ट थी । परन्तु जब दंगे बढ़ने लगे, हिन्दुओं को नुकसान पहुँचने लगा, तब सामान्य कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का विश्वास अहिंसा से उठता गया । मुस्लिम-लीग के जबरदस्त

प्रचार और प्रवाह में ये अकेले पड़ते गये । लोगों के मन में यह बात बैठ गई थी । कि कांग्रेस हिन्दुओं की सस्था है ।" जो मुसलमान कांग्रेस में थे, उनको सर्वाधिक तक्लीफ हुई । इस उपन्यास के वशी जी इसके प्रमाण हैं । विभाजन के निर्णय के बाद तो पूर्वी पंजाब के कांग्रेसी सर्वाधिक हतबल हो गये । उन्हें यह महसूस हो गया कि साम्प्रदायिक शक्तियाँ और हिंसा के सम्मुख गांधीजी के सिद्धान्त पराजित हो गये हैं । फिर भी आखरी समय तक पमादों को रोकने की कोशिश कांग्रेसी कर रहे थे ।

६ सिख-पंजाब के विभाजन का सर्वाधिक विरोध सिख-जमात ने किया । परन्तु यह विरोध विधायक नहीं था । क्योंकि इनके विरोध से साम्प्रदायिक शक्तियाँ अधिक उमरी । वे बार-बार सिख वीम के इस सक्क को तीन सौ वर्ष पहले लड़े गये धर्मयुद्ध के साथ जोड़ रहे थे । लडाकू जाति के रूप में प्रसिद्ध सिखों ने अल्पमत के बावजूद भी मुस्लिमों से टकराने की हिम्मत की । इस सम्पूर्ण समस्या को विवेक और तटस्थता से देखने के बजाए वे इसे केवल युद्ध के स्तर पर ही देखते रहे । परिणामतः नफरत की आग अधिक बढ़ती गई । "लड़ने वालों के पाँच बीसवीं सदी में थे, सिर मध्ययुग में ।" ११

१९४६-४७ के पंजाब के किसी भी कस्बे में उपर्युक्त छ शक्तियाँ कार्यरत थी । इनमें से चार-कांग्रेस, आर्यसमाज, सिख-समाज और कम्युनिस्ट-विभाजन के विरोध में थे । लीग विभाजन के लिए प्रयत्नशील थी और अंग्रेज-जिनके हाथों में सुरक्षा के सारे सूत्र थे वे पूर्णतः तटस्थ थे । अंग्रेजों की इसी हृदयहीन तटस्थता के कारण ही विभाजन का इतिहासारक्त, आगजनी और बलात्कार के साथ जुड़ गया ।

उपर्युक्त छ शक्तियाँ इस उपन्यास की कथा पर पूर्णतः छा गयी हैं । शिक्षित-अशिक्षित न्यक्तियों की विचारधारा इनमें से किसी-न किसी एक से प्रभावित है । उनकी चेतना पर यह शक्तियाँ छा गई हैं और उसी के फलस्वरूप वे त्रियारत हैं । मुस्लिम-लीग, आर्य समाज और सिख-समाज अपनी सम्पूर्ण कट्टरता के बावजूद एक बिन्दु पर निबट आते हैं और वह बिन्दु है-धर्म का राजनीति के लिए उपयोग । इनके कारण ही दंगे बढ़ते गये । सिख और हिन्दू मुसलमानों के प्रति नफरत बढ़ा रहे थे और लीग भी यही कार्य कर रही थी । इन तीन प्रखर शक्तियों के सम्मुख कांग्रेस अकेली पड़ गयी । लीग धर्म के नाम पर जान-बूझकर दंगों के लिए वातावरण तैयार करवा रही थी ।

कथावस्तु दो खण्डों में विभाजित है । पहले खण्ड में कुछ तेरह प्रकरण हैं । नत्थू नामक एक मामूली चमार से कथावस्तु का आरम्भ हो जाता है । पशुओं की खाल उतारना नत्थू का व्यवसाय है । मुरादअली नामक एक कट्टर मुस्लिम व्यक्ति ने उसे एक काम सौंपा है । इस काम के लिए नत्थू को पाँच रुपये दिये गये हैं । बस्वे

बूढ़ सज्जन बार-बार यह समझाने की कोशिश कर रहे थे कि "डिप्टी कमिशनर से मिल लेना जरूरी है। उन्हें सारी स्थिति समझायी जाए। "परन्तु उधर कोई गौर नहीं कर रहा था। आश्चर्य इस बात का है कि शहर का एक भी ऐसा वर्ग नहीं है जो इस सारी घटना के मूल में जाकर सच्चाई का उद्घाटन कर सके।" "मस्जिद की सीढ़ियों पर मुखर की लाश देखकर "मुस्लिम तंश में आ गये हैं। और गो-हत्या से हिन्दू। लीगो और हिन्दू दोनों इन पशु हत्याओं की पूँजी बनाकर एक-दूसरे के विरोध में नारे लगा रहे हैं और संगठित होकर मुकाबले की तैयारी कर रहे हैं। किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की है कि मुखर को मारा किसे? मस्जिद पर लाकर फेंका किसे? इसके मूल में किसी की शरारत है अथवा किसी का कोई भयानक पड़थ ?

बट्टर हिन्दुत्ववादी घटनाएँ भी अपने तरीके से कार्य कर रही हैं। मास्टर जी रणवीर तथा अन्य आर्यवीर वालकों को समझा रहे हैं "म्लेच्छ तो गन्दे लोग होते हैं, म्लेच्छ नहाते नहीं, पाखाना करके हाथ नहीं धोते, एक-दूसरे का झूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नहीं जाते ।" रणवीर तथा अन्य वालकों को वे मुस्लिमों के खून करने के नये-नये तरीके समझा रहे हैं।

शहर की इस बदली हुई स्थिति को देखकर कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों के लोगों ने डिप्टी कमिशनर रिचर्ड से मिलना जरूरी समझा। इस घटना के तीन चार घंटों बाद ही छ. व्यक्ति (चार सिख, दो कांग्रेसी, एक लीगो) रिचर्ड के यहाँ पहुँचे। साथ में मिश्र कॉलेज के अमरीकी प्रिन्सिपल हरवर्ट भी थे। "सरकार की तरफ से फौरन ऐसी कार्रवाई की जानी चाहिए जिससे स्थिति काबू में आ जाए।

‘ ‘ बरना बरना इस शहर पर खोलें मँडरायेंगी ।" बरुजी जी बार-बार इस वाक्य को दुहराते हैं। परन्तु रिचर्ड इस सम्बन्ध में कुछ भी करना नहीं चाहता। क्योंकि "हम इनके धार्मिक झगड़ों में दखल नहीं देते ।" "इन झगड़ों से अग्रज सरकार की जड़ें अधिक शक्तिशाली होने वाली हैं। जब बरुजीजी यह फिर दुहराते हैं कि "शहर की रक्षा तो आप ही की जिम्मेदारी है।" तो रिचर्ड यह बहकर के "ताकत तो इस वक्त पंडित नेहरू के हाथ में है"—टाल देते हैं।" "अगर शहर में पुलिस गश्त करने लगे, जगह-जगह फौज की चौकियाँ बिठा दी जाएँ तो दंगा फिसाद नहीं होगा, स्थिति काबू में आ जाएगी।" अथवा "आप फौज नहीं बँटा साने तो शहर में कर्फ्यू लगा दें। इसी में स्थिति समल जाएगी। पुलिस की ही चौकियाँ बँटा दें।" "इस वक्त हालत नाबुक है। अगर मार-काट शुरू हो गई तो उसे संभालना कठिन होगा। अगर एक हवाई-जहाज ही शहर के ऊपर उड़ जाए तो लोगों को खान हो जाएँगे कि सरकार बाखबर है। फिसाद को रोकने के लिए इतना भी काफी होगा।" "इन विविध पर्यायों में से एक भी रिचर्ड स्वीकार करने की तैयार नहीं

है। विनी न किमी वहाने वह प्रत्येक बात को टाल देता है। अग्रेजी नीति का मंडा-फोटो लेखक ने यहाँ किया है। इसी कारण दम्जीजी यह कहकर उठने है कि “आपके अवीन नव कुछ है, माह्व, आप कुछ करना चाहें तो।”^{१३} उलटे व्यंग्य ने रिचर्ड यह उत्तर देता है कि “वान्तव मे आपका मेरे पास निकायत लेकर जाना ही गलत था। आपको तो पं० नेहरू या डिफेंस मिनिस्टर मरदार वलदेवमिह के पाम जाना चाहिये था। सरकार की बागडोर उनके हाथ मे है।”^{१४} अर्थात् वह इन लोगो की मजबूरी और अनहायता की हंसी उड़ा रहा है। अमरीकी पादरी प्रिन्सिपल हर्बर्ट इस नमन्या को मानवीय दृष्टि से देख रहा है। इसलिए वह भी रिचर्ड को नम्रता-पूर्वक यह आग्रह करता है कि, “गहर की डिफाजत का मवाल राजनीतिक नहीं है, यह राजनीतिक पार्टियों के ऊपर का मवाल है, गहर के मनी लोगो का, नागरिकों का मवाल है। इनमे अपनी-अपनी पार्टियों को मूल जाना होगा। सरकार का भी रोल इनमे बहुत बड़ा है। हम सबको मिलकर गहर की स्थिति को मँनाल लेना चाहिए।” एक अग्रेज का दूसरे अग्रेज से यह आवाहन था। परन्तु इनका कोई परिणाम रिचर्ड पर नहीं होना। वह तो लोगो को ही उलटे यह समझाता है कि वे अमन कमेटी द्वारा यह काम कर सकते हैं। इसी समय एक और गवर यह आ गई कि, “पुल के पार एक हिन्दू को कल कर दिया गया है। मनी बाजार बन्द हो गये हैं।”^{१५} गुजर की हत्या की प्रतिक्रिया गुल्म हुई है। नारे लींग मक्ते मे आ गये हैं और अग्रेज बहादुर सामोनी ने यह नव देस रहे हैं। रिचर्ड के यहाँ ने निक्लने तक बग्गी जी ने यह रट लगायी है कि “अभी भी वक्त है, आप कफ्यू लगा दें।”^{१६} अगर अग्रेज मरगार के विरुद्ध मानृलीन्मा भी आन्दोलन होता तो क्या रिचर्ड इस प्रकार की भूमिका लेते? स्पष्ट है कि रिचर्ड के नाथ की यह दैठक अनकल रही। इसी अनजल्ता को लेकर नारे नदम्य बाहर निकले हैं। नुरक्षित घर पहुँचेंगे अथवा नहीं इनका डर ज्येक को है। काग्रेजी हिन्दुओं का चिरवान डगमगा रहा है। “नाले के पार का नारा उठाका मुसलमानी है और मेरा घर नाले के निर पर है। जिनाद हो गया तो उन वक्त तुम मुझे दवाने आओगे? या बापूजी आकर बचावेंगे? उन वक्त तो मुझे मुहल्ले वाले हिन्दुजो का ही आसरा है। घुरा मारने वाला मुजने यह तो नहीं पूछेगा कि तुम काग्रेम मे थे या हिन्दू-मना मे ...”^{१७} केवल कुछ घंटो मे ही नारे विख्यात दूट रहे हैं। हिन्दू-मपदन का आग्रह तो अब काग्रेमी भी कर रहे हैं। आदमी की अपेक्षा अब व्यवहार को महत्व दिया जा रहा है। परन्तु कोई भी अमलिगत की गोज करना नहीं चाह रहा है। मय ने विवेक को सत्म-मा कर दिया है। दुपहर तब गहर के कुछ हिन्सो मे यह तनाव धीरे-धीरे कम होने लगा है। “जातावरण मे स्थिरता थी। गुवह की घटना ने पैदा होने वाला तनाव कुछ दब गया था। कुछ बिगड़ गया था। ... नगर का कार्यकलाप फिर से जँने

किमी संगीत की लय पर चलने लगा हो। जब इब्राहीम इत्रफरोश कबो और पीठ पर से तरह-तरह की बोतलें लटकाये एक गली से दूसरी गली इत्रफूँल की आवाज लगाना अपनी स्थिर चाल से गुजरता जाना तो लगता नगर की इस धुन पर उसके पाँव उठ रहे हैं, इसी धुन पर औरतें अपने घड़े लेकर गली के नल पर जाती, इसी धुन की लय पर सड़को पर टांगे चलते, इसी धुन पर बच्चे स्कूल जाते, लगता शहर का सारा व्यापार किसी भीठी सहज धुन पर चल रहा है। लगता, इसकी एक बड़ी टूटेगी तो साज के सारे तार टूट जाएंगे।" कितना खूबसूरत है यह शहर। परन्तु सवेरे की घटना ने इसकी खूबसूरती को तोड़ दिया है। शहर के पुराने मन्दिर की दीवार के ऊपर एक घड़ियाल लगा था। आज वह घड़ियाल दुरस्त किया जा रहा है। खुदाबख्श दर्जी ने इसको देखते हुए कहा है कि 'या अल्लाह, शहर में फिसाद का डर है इस घड़ियाल की आवाज सुनकर यह काप जाती है। पहले फिसाद में जब बजा था तो मण्डी में आग लगी थी और शोले आधे आममान को ढके हुए थे।' आज फिर इसकी तैयारी हो रही है।

एक खबर और फैली है कि गोल्डा शरीफ के पीर आये हैं। 'पीर साहब बाफिरो को हाथ नहीं लगाते, बाफिरो से नफरत करते हैं।' इस तरह साम्प्रदायिकता की यह आग भड़क रही है। यह सब जिस मुजर के कारण हुआ, उसे मारने वाला नल्थु चमार परेदान है। वह बार-बार इस बात पर पछता रहा है कि उसने गलत काम कर लिया गया है। उसी रात मण्डी में आग लगा दी गई। घड़ियाल बड़े जोरो से बजाना जाने लगा। "इस घड़ियाल को सुनते हुए लगता है जैसे समुद्र में तूफान उठा हो और कोई जहाज खतरे की घण्टी बजा रहा हो।" घड़ियाल की यह भयावह आवाज डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड भी नींद में सुन रहे हैं। पत्नी लीजा घबरा गई है। वह बार-बार रिचर्ड से कह रही है कि वह इस फिसाद को रोकें। परन्तु रिचर्ड का एक ही तर्क है कि हम उनके धार्मिक झण्डों में दखल नहीं देते। लीजा ने यह पूछा कि 'ये लोग आपस में लड़े, क्या यह अच्छी बात है।' रिचर्ड ने उत्तर दिया है कि 'क्या यह अच्छी बात होगी कि ये लोग मिलकर मेरे बिलाफ लड़े, मेरा धून करें।' रिचर्ड के इस वाक्य में अंग्रेजों की नीति बहुत स्पष्ट हो गई है। अंग्रेज यह जान चुके थे कि जब तक ये लोग आपस में नहीं लड़ेंगे तब तक हमें कोई खतरा नहीं है। परन्तु जैसे ही यह आपस में लड़ना छोड़कर एक हो जाएंगे, खतरा हम है। इसलिए वे तटस्थता की भूमिका अपना रहे थे। रिचर्ड के तर्क को सुनकर लीजा केवल यही सोच सकी कि "जैसे मानवीय मूल्यों का कोई महत्व नहीं होता, वास्तव में महत्त्व केवल शासकीय मूल्यों का होता है।" रान के इस घुण्ण अन्धेरे में लाला लक्ष्मीनारायण परेदान हैं। क्योंकि उनका बेटा रणदीव अभी तक घर लौटा नहीं है। लाला जी पैसे बाँटे जाने माने व्यक्ति हैं, ऊँचे प्रबान में रहते हैं,

किसका हाथ उन पर उठ सकता था ? आस-पास मुसलमान लोग रहते थे लेकिन सभी छोटे तबके के थे । शहर के अनेक मुसलमान व्यापारियों के साथ लाला जी व्यापार करते थे । “उन्हें मुसलमानों के खिलाफ गुस्सा तो अक्सर आता था, पर उन्हें इस बात का विश्वास था कि अंग्रेज उन्हें दवाकर रखेंगे ।”^{११५} यह विश्वास न केवल लाला जी को था, अपितु उन लाखों हिन्दुओं और मुसलमानों को था जो पूर्वी और पश्चिमी पंजाब में इस समय साँस ले रहे थे । और आश्चर्य इस बात का है कि जिस पर विश्वास था वह इस समय चैन की नींद ले रहा था ।

दूसरे दिन सवेरे ही उस रात को घटना के व्योरे मिले । कुल सत्रह दुकानें जलकर राख हो चुकी थी । इस प्रकार सुअर वाली घटना के चौबीस घण्टों के भीतर ही सारा माहील बदल-सा गया है । आगजनी की इस घटना से पूरे शहर भर की मानसिकता में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है । “मुहल्लों के बीच लीकें खिच गई थीं, हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमानों को जाने की अब हिम्मत नहीं थी और मुसलमानों के मुहल्लों में हिन्दू-सिख अब नहीं जा सकते थे । आँखों में संशय और भय उत्तर आये थे ।”^{११६} सुअर की उस घटना से लाखों का नुकसान हुआ था । केवल नुकसान ही नहीं सक्की दृष्टि बदल गई थी, एक दूसरे के लिये सब अजनबी बन गये थे ।^{११७} हर दरवाजे बन्द थे, शहर का कारोबार, स्कूल, कालिज, दफ्तर सभी ठप हो गये । और ऐसे संशय भरे, नफरत में जलते हुए माहील में कांग्रेसी जरनैल चबूतरे पर खड़े होकर जोर-जोर से तकरीर दे रहा था—“साहिबान्, चूँकि आज सभी बुजदिल चूहों की तरह घरों में घुसे बैठे हैं, मुझे अफसोस करना पड़ता है कि आज प्रमातफेरी नहीं होगी………आप सब शहर में अमन बनाए रखें । यह शरारत अंग्रेज की है जो भाई-भाई को आपस में लड़ाता है ।”^{११८} परन्तु इस जरनैल की कौन सुनने वाला है ? इस तनाव भरे वातावरण में शाहनवाज अपने दोस्त के लिए कई खतरे उठा रहा है । तो दूसरी और मुस्लीम लीगी मौला दाद हैं जो इस वातावरण को और भयावह बनाने की फिर्क में हैं । कम्युनिस्ट कार्यकर्ता कॉमरेड देवदत्त कस्बे की इस बदली हुई परिस्थिति से परेशान है । अमन के लिए वह सर्वपक्षीय बैठक बुलाने के लिए प्रयत्नशील है । अपने दो साथियों जगदीश और कुर्बान अली के साथ इसी चर्चा में वह व्यस्त है । एक साथी के अनुसार, “सभी पार्टियों के नुमाइन्दे की मीटिंग हो नहीं सकती । क्योंकि कांग्रेस के दफ्तर पर ताला है । लीगवालों से बात करो तो वे पाकिस्तान के नारे लगाने लगते हैं । वे हर बात में कहते हैं, पहले कांग्रेस वाले कबूल करें कि कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है, फिर हम उनके साथ बैठने के लिए तैयार हैं ।”^{११९} देवदत्त यह समझ नहीं पा रहा है कि इस जड़ता को कैसे तोड़े । अगर नेतृत्व करने वाले ही खामोश बैठ जाएँ तो दंगे रुकेंगे कैसे ? और उसी समय यह खबर आई है कि, “मजदूरों की वस्ती में भी फिसाद हो गया है और दो सिख बढ़ई मारे

गये हैं । "देवदत्त की समझ में यह नहीं आ रहा है कि अब आगे क्या होगा ? क्योंकि कम्युनिस्ट विचार प्रणाली के अनुसार तो मजदूर आपस में लड़ते नहीं, अथवा उन्हें लड़ना नहीं चाहिए । अगर मजदूर ही आपस में लड़ते हैं तो यह विष बहुत गहरा असर कर चुका है ।" इसी दोपहर एक और मौत हुई । जर्नेल मारा गया । लाठी के एक ही भरपूर वार से उसकी खोपड़ी लीगियो ने फोड़ दी । इस वस्त्र में अमन के लिए प्रयत्नशील एक शक्ति का अन्त हुआ । मावुक देवदत्त पराजित हो गया है । बाकी काँग्रेसी हिन्दू मघटनाओं से मेल-मिलाप कर रहे हैं और अंग्रेज रिचर्ड फिमाद को लेकर निष्क्रिय है । विवेक की शक्तियाँ समाप्त हुई हैं । बच गये हैं केवल वे ही सर जो मध्ययुग में जाकर सोच रहे हैं । इसके प्रमाण हैं आर्यवीर दल और लीगियो के काम । एक ओर आर्यवीर दल नौजवानों को छुरे मोकने और लाठियाँ चलाने की शिक्षा दे रहा है तो दूसरी ओर लीग हिन्दुओं को लूटने की योजनाएँ बना रहे हैं । इस कुशिक्षा का परिणाम यह हुआ कि १२-१५ वर्ष का रणवीर मासूम इत्रफरोश का खून कर देता है ।

इस वस्त्र में पिछले ३०-३५ घण्टों में चार छः खून हो चुके हैं । सत्रह से अधिक दुकानें जल चुकी हैं । और यह सब हुआ है नत्थू द्वारा सुअर की हत्या करने के कारण । इस सारे पाप का भारी मैं ही हूँ ऐसा वह समझ रहा है । परन्तु उसने जान-बूझकर तो ऐसा नहीं किया है । "मैंने जो कुछ किया वह अनजाने में किया, ये लोग जो आग लगा रहे हैं और राह जाते लोगों को मार रहे हैं, ये आँखें खोलकर सब काम कर रहे हैं, ये क्यों बुरा काम कर रहे हैं ?" उसकी पत्नी उसे बार-बार समझा रही है कि "पर इसमें तेरा क्या दोष ? तुझसे लोगों ने धोखे से काम करवाया है" फिर भी नत्थू ऐसा अनुभव कर रहा है कि कोई अदृश्य छाया उसका पीछा कर रही है ।

प्रथम खण्ड की कथावस्तु यहाँ समाप्त हो जाती है । बल् तैरह प्रकरणों में प्रातः चार बजे से लेकर दूसरे दिन के दोपहर तक का चित्रण किया गया है । अर्थात् केवल ३०-३५ घण्टों का चित्रण । सुअर की लाश मस्जिद की सीढ़ियों पर दिखालाई देने के बाद ३०-३५ घण्टों में जो विभिन्न प्रतिक्रियाएँ हुयी—उसका विवरण इस प्रथम खण्ड में दिया गया है । इस खण्ड की कथावस्तु का सम्बन्ध एक जिले से है, विविध प्रकार के दफ्तर हैं, नगर परिषद है । पढ़े लिखे लोगों की सख्या भी यहाँ काफी है । जब इतने सुबुद्ध नागरिकों के होते हुए भी मारे शहर में आगजनी, खून और इसी प्रकार की भयावह एवं क्रूर घटनाएँ घटी हैं तो फिर इस जिले से दूर बसे हुए उन देहातों की कल्पना हम कर सकते हैं, जहाँ पिसादों को रोकने वाली शक्तियाँ नहीं के बराबर हैं । इस जिले में पिछले दो दिनों में जो कुछ हुआ है, उसमें नफरत की आग तेजी से फैलती गयी है । आम-आस के देहातों में इसकी प्रतिक्रिया

होना स्वाभाविक है। देहात मुस्लिमबहुल हैं। इनमें हिन्दुओं की अपेक्षा सिख अधिक हैं। परिणामस्वरूप उपन्यास के दूसरे खण्ड में सिख और मुसलमान ही आये हैं।

‘ढोक इलाहीबख्श’ एक ऐसा ही छोटा सा देहात है। हरनाम सिंह और वन्तो नामक वृद्ध सिख दम्पति यहाँ एक छोटा सा होटल लगाकर अपनी उपजीविका चला रहे हैं। शहर में जिस दिन नुअर वाली घटना घटी है, उसके दूसरे ही दिन के दोपहर से कथा आगे बढ़ती है। केवल परिवेश बदल जाता है। हरनाम सिंह और वन्तो से इसी देहात के करीमखान ने कहा है कि वे तुरन्त इस गाँव को छोड़ कर चले जाएँ; वरन् बलवाई उनकी हत्या कर देंगे। करीमखान यह नहीं चाहता कि ये दोनों नाहक मारे जाएँ। इसीलिए वह उन्हें आगाह कर रहा है। “वन्तो और हरनाम सिंह अपने तीन कपड़ों में और थोड़ी बहुत पूँजी और बन्दूक सँभाले दुकान को ताला लगाकर बाहर निकल आए। घर के बाहर कादम रखते ही सारा प्रदेश पराया हो गया।”^{११} उनके निकलने के थोड़ी ही देर बाद बलवाई वहाँ आए और उन्होंने उनकी होटल लूट ली। रात भर ये दोनों चलते रहे; अपनी जान बचाने के लिए। सवेरे वे ढोक मुरीदपुर पहुँच गए। यहाँ पर भी यही स्थिति है—मुस्लिम बहुसंख्यक देहात। फिर भी मजबूरी से वे एक का दरवाजा खटखटाते हैं और उन्हें वहाँ एक मुस्लिम स्त्री अपने यहाँ आसरा देती है; जबकि वह यह जानती है कि उसके बेटे और पति को यह विल्कुल पसन्द नहीं आएगा। क्योंकि वे दोनों बलवाई बनकर गाँव के गाँव लूट रहे हैं और काफिरों की सरे-आम हत्या कर रहे हैं। परन्तु यह मुस्लिम स्त्री इन दोनों बूढ़े-बुढ़ियों की मजबूरी देखकर उन्हें शरण दे देती है। इसी कारण हरनाम सिंह कहता है कि; “सलामत रहे करीमखान उसने हमारी जान बचा दी। और सलामत रहो तुम बहन, जिसने आसरा दिया है।”^{१२} मीत के कगार पर खड़े इन दोनों को इस स्त्री ने सहारा दिया है। यह स्त्री मानो साक्षात् स्नेह और मानवीयता की मूर्ति है। इन दोनों को घर के ऊपरी हिस्से में छिपाया गया। थोड़ी ही देर बाद उस स्त्री का पति एहसानअली और बेटा रमजान वहाँ आ गए। और यह बात भी खुल गयी कि घर में काफिरों को छिपाकर रखा गया है। रमजान आग बबूला हो गया। उन दोनों को खत्म करने की उसकी इच्छा है। परन्तु जब वह मारने जाता है तब, “काफिरों को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर के जान-पहचान के पनाहगनीज को मारना दूसरी बात। उसका खून करना पहाड़ की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था। मणहवी जूनून और नफरत के इस माहील में एक पतली-सी लकीर कहीं पर अभी भी खिंची थी जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था।”^{१३} यही वह पतली-सी लकीर है जिस कारण रमजान उनकी हत्या न कर सका और यही वह पतली लकीर है जिस कारण उन दोनों को वहाँ दिनभर आसरा मिला। रात के समय रमजान को माँ राजो उन्हें गाँव के आगिरी

छोर पर छोड़ने आयी । वह कहती है, "मैं नहीं जानती मैं तुम्हारी जान बचा रही हूँ या तुम्हें मौत के मुँह में झोंक रही हूँ ।" अपने पुत्र इकबाल सिंह और बेटों जसबीर की याद हरनाम को बहुत सता रही है । ये दोनों पाम के देहातो में ही रहते थे । लेखक अब हमें इकबाल और जसबीर की ओर ले जाता है ।

अपने बाप की इकबाल सिंह अपनी जान बचाते हुए भाग रहा था । परन्तु रास्ते में ही बलवाईयों ने उसे देख लिया । और वे पत्थर लेकर उसका पीछा करने लगे । बड़ा ही क्रूर और करुण दृश्य है यह । अवेला इकबाल सिंह और १०-१२ मुसलमान । क्या करेगा वह ? आखिर उसको पकड़ा गया और इस क्षण पर उसकी जान बचा दी गई कि वह इस्लाम कबूल करेगा और कलमा पढ़ेगा । मौत और जिन्दगी में से किसी एक को चुनना था । धर्म परिवर्तन से ही जिन्दगी सम्भव थी । इकबाल सिंह सिवा हाँ के और कुछ नहीं कह सका । उसके हाँ कहने से माहौल बदल गया । उसके खून के प्यासे उसके गले मिलने लगे ।" इकबाल सिंह को यह आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी माहौल बदल जायगा कि उसके खून के प्यासे लोग उसे छाती से लगाने लगेंगे । "दिन ढलते ढलते इकबालसिंह में वह शेष इकबाल अहमद हो गया । उसकी सुन्नत भी हुई । 'शाम ढलते ढलते इकबालसिंह के शरीर पर की सब अलामतें दूर कर दी गई थी और मुसलमानों की सभी अलामतें उत्तर आई थी । पुरानी अलामतें हटाकर नई अलामतें लाने में देर थी कि इनसान बदल गया था, काफिर नहीं था, मुसलमान था ।" "

हरनामसिंह की बेटों जसबीर इस समय सैयदपुर के गुम्बारे में मुराजित है । इस गाँव में सिलों की मफ्या अधिक है । परन्तु यहाँ बाहर से बलवाई बहुत बड़ी सख्या में आ रहे हैं । इस कारण गाँव के सभी मिथों ने गुम्बारे में शरण ली है और वहाँ से बुद्ध की तैयारियाँ की जाने लगी है । 'गुम्बारा खचाखच मरा था और सगत मस्ती में झूम रही थी । सगत में सबके हाथ जुड़े हुए, आँखें बन्द और सिर वज्र में हिलते हुए । यह कुर्वानी की आवाज शताब्दियों के पासले लाघकर फिर से गूँज रही थी । तीन सौ साल पहले भी ऐसा ही गीत दुश्मन स लोहा लेने के पहले गाया जाता था । आत्म-बलिदान की भावना से ओत प्रोत वे सब कुछ भूले हुए थे । "रिटायर जत्येदार विसनसिंह बन्दूक सँभाले खड़े हैं । हरिसिंह निहगसिंह, विघनसिंह आदि सभी तैयारी में हैं । नफरत की इस आग ने गाँव की एकता को क्षत्म कर दिया है ।' गुम्बारे में एक बूढ़ा प्रवचन कर रहा है कि "आज फिर झालसा पक्ष को गुड के सिहों के खून की जरूरत है । हमारे इम्तहान का वक्त आ गया है, हमारी आजमाइश का वक्त आ गया है । महाराज का इस वक्त एक ही हुक्म है—कुरवानी ! कुरवानी ! कुरवानी ! राज करेगा झालसा, याकी रहे न कोय ।" इस प्रकार के आवाहनों से वहाँ का वातावरण तप्त हो रहा था ।

इनमें से कोई यह सोच नहीं पा रहा था कि युद्ध का निर्णय कितना वेवकूफी से भरा हुआ है। इससे दोनों पक्षों की जवरदस्त हानि होने वाली है। और जब वे सभी ओर से घिरे हुए हैं तब तो युद्ध ठान लेना कोई अच्छी रणनीति भी नहीं है। शस्त्र के वजाए बुद्धि से काम लेना जरूरी था। परन्तु यह समझाए कौन ? फिर भी कम्युनिस्ट सोहन सिंह बीच में ही उठकर इस बात को स्पष्ट करना चाहता है कि, 'हम लोगों को मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जा रहा है। और मुसलमानों को हमारे खिलाफ। हम झूठी अफवाहें सुनकर एक-दूसरे के खिलाफ तैश में आ रहे हैं। हमें अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिए कि गाँव के मुसलमानों के साथ मेल-जोल बनाए रखें और हतुलकसा कोशिश करें कि गाँव में कोई फिसाद न हो।'^{११}

परन्तु उसके इन विचारों को सुनकर उसे गद्गार कह कर चुप कर दिया जाता है। मीरदाद, हरवंससिंह और सोहनसिंह कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता हैं। ये अपने तरीके से इन वारदातों को रोकने की कोशिश करते हैं। परन्तु इनकी कोई नहीं सुन रहा है। साँझ होते-होते गुरुद्वारे में खामोशी बढ़ती गई। लगा कि आज रात निश्चित हमला होने वाला है। सिंहों की स्त्रियाँ गुरुद्वारे के दूसरे हिस्से में बैठी थी। और उसी समय यह खबर आ गई कि "तुर्क आ गए।" ढोल बजने लगे। "अल्ला हो अकबर" और "जो बोले सो.....निहाल : सत् सिरी अकाल" के नारे लगने लगे। "तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिखों पर हमला बोल रहे हैं और सिखों के जेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की शृंगला में एक कड़ी थी। लड़ने वाले के पाँव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्ययुग में।"^{१२}

घमासान युद्ध हुआ। दो दिन और दो रात तक चलता रहा। अमन के लिए प्रयत्नशील सोहनसिंह मारा गया। अड़तालीस घण्टों के युद्ध के बाद दोनों पक्ष समझौते की बात करने लगे। सभी सिखों को नदी पार सुरक्षित पहुँचाने के लिए तुर्क दो लाख माँग रहे थे। दो लाख की यह राशि तुरन्त इकट्ठी हो सकती थी। परन्तु ऐसे समय भी सौदे-वाजी। आखिर एक लाख पर सौदा तय करने के लिए ग्रंथीजी को भेजा गया। और उसी समय 'अल्ला हो अकबर' के नारे गुंजने लगे। अर्थात् दुश्मनों को कुमक मिल गई। स्पष्ट है अब समझौता नहीं होगा। ढोल पीटते और आगे बढ़ते जा रहे थे। तलवारें हवा में उठीं। स्त्रियाँ आत्म-बलिदान के लिए तैयार हुयीं। गाँव के सिखों के मकानों में आग लगाई गई। स्त्रियों का झुण्ड पक्के कुएँ की ओर बढ़ता जा रहा था। "सबसे पहले जसवीर कौर (हरनामसिंह और वन्तो की बेटा) कुएँ में कूद गई। और देखते-देखते गाँव के दसियों औरतें अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद गई।"^{१३}

रात के किसी पहर लूट-पाट बन्द हो गई थी। सुबह होने पर आग की लपटें मन्द पड़ गई थी। छोटे-छोटे घर जलकर राख हो गये थे। कुएँ में लाशें

फूलने लगी थी । गलियाँ सुनसान पड़ी थी । लाशें बिखरी हुई थी । एक खूबसूरत गाँव में बेहद सामोशी थी । युद्ध निर्णायक नहीं हुआ था । गुम्दारे में युद्ध परिषद की बैठक चल रही थी । और सहसा वायुमंडल में एक अजीब-सा शब्द सुनाई देने लगा गहरा, धीमा, धरधराता-सा शब्द । सभी ठिठक गये । मोटे कमाई का बेटा भी ठिठक गया जो गुम्दारे को आग लग ने जा रहा था । " धीरे-धीरे सभी हाथ यम गये अब और कुछ नहीं होगा, अग्रेज तक फिमाद की खबर पहुँच गई है, अब कोई आग नहीं लगायेगा, बन्दूक नहीं चलायेगा । " "

११७ गाँव और एक शहर की बरबादी के बाद अग्रेजों के हवाई जहाज आकाश में भड़का रहे हैं । पाँच दिन तक अग्रेज सामोश रहा । क्या वह जान-बूझकर इन्हें आपस में लड़ा रहा था ? जिस दिन मरा हुआ मुअर मस्जिद की सीटियों पर डाला गया था और बालावरण में तनाव बढ़ रहा था उसी दिन कांग्रेसी बक्शीजी ने डिप्टी कमिश्नर साहब से कहा था कि " इस वक्त हालात नाजुक है । अगर मारकाट शुरू हो गई तो उसे सँभालना कठिन होगा । अगर एक हवाई-जहाज ही शहर के ऊपर उड़ा दिया जाये तो लोगों को कान हो जाएँगे कि सरकार वास्तव में है । फिमाद को रोकने के लिए दूतना भी काफी होगा । " " अगर उसी समय यह सुझाव मान लिया जाता तो ? " " पाँच दिन के बाद जब दोनों ओर के लोग थक गये थे तब हवाई-जहाज उड़ा और फिमाद रोकने का श्रेय अग्रेजों को मिला । इन तीन-चार दिनों में नफरत की जो आग सब के दिलों में धर कर गई है वह कब निकलने वाली है ? हवाई-जहाज के कारण, " बस्त्रों का माहौल बदल चुका था । लोग बाहर आने लगे थे, लड़ाई बन्द हो गई, लाशें ठिकाने लगीं । दोनों सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने धर्म-स्थान को धो-धोकर साफ कर रहे थे । " "

इधर शहर का भी माहौल बदल गया है, जहाँ से नफरत की आग फैली थी । फिमादों के चौथे दिन डिप्टी कमिश्नर साहब ने कर्फ्यू लगा दिया था । (हालाँकि पहले ही दिन कर्फ्यू लगवाने का आग्रह किया गया था ।) इन चार-पाँच दिनों में हजारों लोग बेघरबार हुये थे । उनके लिये रिफ्यूजी कैम्प लग रहे थे । डिप्टी कमिश्नर साहब की फिर तारीफ शुरू हुई थी । वे लगातार आज्ञाएँ दे रहे थे । रिफ्यूजी कैम्प के सम्बन्ध में, कुएँ के लाशों को निकालने के सम्बन्ध में । और कम्युनिस्ट देवदत्त अमो भी अमन के लिए प्रयत्नशील था । लीजा रिचर्ड की इन व्यवस्था से अस्वस्थ है । उसे यह बात समझ में नहीं आ रही है कि रिचर्ड इस फिमाद को पहले क्यों नहीं रोक सका ? जान-बूझकर वह तटस्थ क्यों रहा ? तीन दिन पहले अगर वह थोड़ी-सी सुरक्षा की व्यवस्था करता तो हजारों लोग बेघरबार न होते, गाँव न जलते, शहर की मण्डी में आग न लगती । रिचर्ड के अनुसार 'मिविल सर्विस' में तटस्थ बनना पड़ता है । हम यदि हर घटना के प्रति भावुक होने लगे तो

प्रशासन एक दिन भी नहीं चलेगा।”^{१५} रिपगूजी कैम्प बन गये हैं। रिलिफ-कमेटी बन गई है। नुकसान के आँकड़े इकट्ठे किए जा रहे हैं। अनेक सिख और हिन्दू आँकड़ा-वावू के डर्द-गिर्द बैठे हैं। कोई अपनी लड़की ढूँढना चाह रहा है, कोई लड़का, कोई अपने मकान की कीमत लिखवा रहा है, कोई कुछ ! देवदत्त इस बात की फिक्र में अधिक है कि “गरीब कितने मरे और खाते-पीते कितने मरे।”^{१६} कॉंग्रेसियों का विश्वास अहिंसा पर से उठ गया है। एक पंडित और उनकी पत्नी अपनी जवान और खूबसूरत लड़की को अब स्वीकार करना नहीं चाहते क्योंकि “अब हमारे पास आकर क्या करेगी जी, बुरी वस्तु तो उसके मुँह में उन्होंने पहले ही डाल दी होगी।” इनकी बेटी प्रकाशो अब अल्लाहरखा के घर पर रखैल के रूप में है। माँ-बाप अब उसे स्वीकार को करने तैयार नहीं हैं। असहाय्यता, सनातनी वृत्ति, कट्टरता, क्रूरता, जीवन-प्रियता, संपत्ति-मोह आदि की विभिन्न मानवी प्रवृत्तियों के दर्शन यहाँ होते हैं।

अमन कमेटी बनने वाली है। मालदार हिन्दू, सिख और मुसलमान एक दूसरे से बड़े प्यार से मिल रहे हैं। उनके इस मेल-मिलाप को देखकर दो चपरासी आपस में यह कह रहे हैं कि “हम जाहिल लोग लड़ते हैं, समझदार खानदानी लोग नहीं लड़ते। यहाँ सभी आये हैं हिन्दू भी, सिख भी, मुसलमान भी; मगर कैसे प्यार-मुहब्बत से बातें कर रहे हैं।”^{१७} परन्तु क्या यह सही है ? परदे के पीछे क्या यही पढ़े-लिखे और खानदानी लोग नहीं हैं जो आम-आदमी को लड़ा रहे हैं ? हिन्दू, सिख और मुसलमानों में से कितने प्रतिनिधि लिये जाए इस पर वाद-विवाद हो रहा है। इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी कुर्सी के प्रति मोह कम नहीं है। अकेला देवदत्त अन्त तक समझौते की कोशिश कर रहा है। अमन कमेटी जब सारे शहर में घुमने वाली है। “हिन्दू-मुस्लिम एक हो” के नारे लगाने वाली है। आश्चर्य इस बात का है कि अमन कमेटी की बस में सबसे आगे बैठा हुआ और एकता का नारा जोर-जोर से लगाने वाला मुराद अली था—वही मुराद अली जिसने नत्थू चमार से सुअर मरवाकर मस्जिद की सीढ़ियों पर फिकवा दिया था। केवल उसी घटना के कारण चार दिन तक यह फिसाद हुआ।

(१)

विवेचना—हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अलगाव की भूमि पहले ही तैयार हो चुकी थी। मुस्लिम लीग, हिन्दू-महासभा तथा आर्य समाज इस अलगाव को बढ़ा रहे थे। इस अलगाव के कारण ही ये दोनों समुदाय एक-दूसरे से दूर जा रहे थे। केवल दूर ही नहीं, इनके भीतर एक-दूसरे के प्रति नफरत भी फैलायी जा रही थी। मुस्लिम लीग ने यह काम सर्वाधिक किया। नफरत की यह आग फैलने से जिस प्रकार की प्रतिक्रिया हुई और दोनों ओर के लोगों को कैसी तकलीफ हुई—

इसका जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। विभाजन-पूर्व की यह कथा है। १४ जून १९४७ को विभाजन को मान्यता मिली। इसके पूर्व ही पाकिस्तान की निर्माण की बात की जा रही थी। परन्तु पाकिस्तान बनेगा—ऐसा विश्वास दोनों वर्गों में से किसी को नहीं था। इसलिए इस उपन्यास का सम्बन्ध विभाजन की समस्या से नहीं है। विभाजन पूर्व साम्प्रदायिक समस्या से इसका सम्बन्ध है। हिन्दू और मुसलमानों में आन्तरिक एकता स्थापित करने के लिए कई शक्तियाँ पिछले कई वर्षों से प्रतिबद्ध हैं। ठीक इसी प्रकार इनमें अलगाव बढ़ाने वाली शक्तियाँ भी हैं। इस दूसरी शक्ति के उभरने से हिंसा किम प्रकार से उभरती है तथा किस प्रकार मानवीय मूल्यों की होली होती है—इसे यह कथावस्तु स्पष्ट करती है। इस प्रकार इसकी कथावस्तु इस देश के एक नाजुक परन्तु उतने ही महत्वपूर्ण मसले को लेकर चलती है। इस मसले को यथातथ्य रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सामान्य आदमी इस नफरत की आग में किस प्रकार झुलसता गया इसका सहज चित्रण इसमें हुआ है।

(२)

इसके पहले खंड का सम्बन्ध नागरी जीवन से है। इस खंड में “नागर जीवन में साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना कैसे उभरी, अंग्रेजी नौकरशाही ने वैमनस्य की आग को कैसे मड़का दिया, परिणामतः हिन्दू और मुसलमानों के सगठन बंसे बनते गये और एक-दूसरे के गली-मुहल्लों में जाना कैसे खतरनाक हो गया—इत्यादि बातों का वर्णन किया गया है।” पहला प्रकरण तेरह प्रकरणों में विभाजित है। (पृष्ठ १ में १७६) इसमें प्रातः चार बजे से दूसरे दिन दोपहर तक का अर्थात् ३०-३५ घण्टों का मात्र चित्रण किया गया है। मुराद अली नामक मुसलमान घोड़े से नत्थू चमार से सुअर भरवा लेता है और उसे किसी ईसाई व्यक्ति के सहारे मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंक देता है। मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर दिखलाई देने के पहले यह नगर रोज की तरह की जिन्दगी जी रहा था। परन्तु जैसे ही सुअर की लाश दिखलाई देती है, वैसे ही पूरे नगर का सगीत रुक-सा जाता है। इस प्रकार प्रथम खंड में घटना एक ही है—सुअर की लाश का मस्जिद की सीढ़ियों पर पा जाना। इस घटना की विभिन्न प्रतित्रियाओं को प्रथम खंड में रखा गया है। ताज्जुब की बात यह है कि इस घटन के मूल में कोई जाना नहीं चाहते। न हिन्दू न मुसलमान न अंग्रेज। इस घटना के कारण सब एक दूसरे को सन्देह की नजर से देखने लगते हैं और खुद को असुरक्षित अनुभव करते हैं। ऐसा लगता है कि मानो बहुत पहले से ही सबके भीतर शका, भय और असुरक्षितता की भावना थी। इस घटना ने उसे अविन्यक्ति मात्र दी। लीगियो ने इस घटना का तुरन्त फायदा उठाना शुरू कर दिया है। प्रतित्रियास्वरूप ही आर्य-समाजी, सिख और सनातनी हिन्दू एकत्र हो रहे हैं। उनमें इस सगठन से खतरे और

बढ़ रहे हैं। अंग्रेज कमिश्नर इस घटना की कोई जाँच नहीं करवा रहा है मानो वह चाहता था कि ऐसा कुछ हो। इन ३०-३५ घण्टों में पूरी मंडी जल चुकी है। और लाखों का नुकसान हुआ है। दो हिन्दू मारे गये हैं। खोमचेवाला इत्रफरोश (मुसलमान) का खून कर दिया गया है। इन घटनाओं से अंग्रेजों की नीति स्पष्ट होती है। अलावा इनके मुस्लिम लीग, आर्य समाज, कम्युनिस्ट, काँग्रेसी तथा आम आदमियों की मनोवृत्ति तथा नीतियों का पर्दाफाश हुआ है। तथाकथित बुद्धिवादी और पढ़े-लिखे लोग साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने में कितने प्रयत्नशील होते हैं यह भी स्पष्ट किया गया है। तो हमारी ओर इस तनाव भरे वातावरण में भी एकता और भाईचारे का नाता दृढ़ करने वाली शक्तियाँ भी हैं। शाहनवाज, जरनैल और देवदत्त इसी शक्ति के प्रतीक हैं। यह दुर्भाग्य है कि एका बढ़ाने वाली शक्तियाँ धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगी। यहाँ तक कि जरनैल का खून कर दिया गया।

(३)

राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली भावनात्मक स्थितियों तक ही लेखक ने अपने परिदृश्य को सीमित रखा है। राजनीतिक घटनाओं, दायपेंचों और बौद्धिक उहापोह से लेखक ने अपने को पूर्णतः बचाया है—डॉ० वाँदिवडेकर जी का यह मत पूर्णतः स्वीकार किया जा सकता है। लेखकीय प्रतिभा की मर्यादा के रूप में नहीं अपितु शक्ति के रूप में। इसी कारण तो यह उपन्यास अधिक जीवन्त, सच्चा और यथार्थ लगता है। कथावस्तु इसी कारण सरल और सपाट है। समाज के विभिन्न स्तरों पर जीने वाले लोगों की प्रतिक्रियाओं को लेकर लेखक चला है। वह राजनीतिक घटनाओं की विवेचना नहीं करता। आम आदमी घटनाओं की गहराई में उतरना नहीं चाहता। उन घटनाओं की बौद्धिक उहापोह की अपेक्षा वह तुरन्त अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करते चलता है। इसी आम आदमी की अविकता के कारण उपन्यास में बौद्धिक उहापोह नहीं है।

(४)

१९४७ के अप्रैल माह के दूसरे अथवा तीसरे सप्ताह की यह कहानी है। पंजाब के सभी जिलों और देहातों में इस समय भय और आशंका व्याप्त थी। अधिकतर लोगों को ऐसा सन्देह था कि कुछ अप्रत्याशित होने वाला है। परन्तु क्या होने वाला इसकी स्पष्ट कल्पना किसी को नहीं थी। सैकड़ों वर्षों से वे इस भूमि पर रहे रहे थे। उनके कई वंशजों की कहानियाँ इसी भूमि से जुड़ी हुई थी। ६ मार्च १९४७ को काँग्रेस कार्यकारिणी ने पंजाब विभाजन का प्रस्ताव पारित किया। पंजाब के अलग-अलग जिलों और देहातों में रहने वाले हिन्दू अथवा मुसलमान यह समझ नहीं पा रहे थे कि उनकी जमीन किवर जायेगी। पाकिस्तान के बढ़ाने लीग में इकट्ठे चंद आवारा लोग हिन्दुओं और सिक्खों को परेशान कर रहे थे। नुखर वाली घटना

से इन गुण्डों को यह अवसर मिल गया । इस प्रदेश में जीने वाले लोगों की अप्रैल माह की भानसिक्ता को पकड़ने का प्रयत्न भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में किया है ।

(१)

इसकी कथावस्तु समस्यामूलक है । "दो सम्प्रदायों के बीच के तनाव" की समस्या को यहाँ लिया गया है । इस समस्या को लेखक नये ढंग से देख रहा है । धर्म, राजनीति और सम्प्रदाय से एकदम अलग हटकर सूढ़ मानवीय घरातल से । देवदत्त के प्रति लेखक के अनावश्यक मोह से यह भी स्पष्ट है कि वे अपनी तटस्थता को पूर्णतः निभा नहीं सके हैं । कम्युनिस्ट पार्टी और उसके कार्यकर्ताओं के प्रति लेखक पूर्णतः तटस्थ नहीं रह सका है । कम्युनिस्ट पार्टी का रोल अगर सचमुच इस प्रकार का रहा होगा तो फिर कोई आरोप नहीं । परन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कम्युनिस्ट पार्टी विभाजन के विरोध में नहीं थी ।

साम्प्रदायिक समस्याओं पर हिन्दी में अनेक उपन्यास लिखे गये हैं । परन्तु तमस इन सब में विशिष्ट है । क्योंकि इसमें समस्या को आम आदमी की दृष्टि से देखा गया है । कोशिश ऐसी की गई है कि "मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल में इन्सानियत की कहीं कोई एक पतली-सी लकीर है अथवा वह भी लुप्त हो गई है ।" कमलेश्वर ने अपने उपन्यास में इसी की तलाश की है । भीष्म साहनी भी इस समस्या के मूल में जाकर यही खोज कर रहे हैं कि ऐसे तनाव एवं नफरत के वातावरण में सब वहशी हो चुके थे अथवा कहीं कोई करुणा और मानवीयता की रेखा थी । शाहनवाज, राजो, जरनैल, बम्सी आदि में उन्हें यह रेखा दिखलाई देती है ।

(६)

उपन्यास के दूसरे खण्ड का सम्बन्ध देहाती इलाकों से है । ढोक इलाही बरहा, खानपुर, भीरपुर, ढोक-मुरीदपुर, भीरदाद, सैयदपुर, नूरपुर आदि देहातों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उल्लेख हुआ है । पहले खंड के पात्र नागरी जीवन से सम्बन्धित पढ़े-लिखे एवं कुछ सीमा तक बुद्धिजीवी हैं तो दूसरे खंड के पात्र केवल देहाती । शहर की घटनाओं की प्रतिक्रियाएँ देहातों में हो रही हैं । और काफी क्रूरता के साथ हो रही है । यहाँ सिख और मुसलमान दो ही जमात के लोग हैं । दूसरे खंड की शुरूवात ढोक इलाही बरहा के हरनाम सिंह और बन्तो से हो जाती है । प्रकरण चौदह और सोनह में इन दोनों की अमहाभ्यता का तया संग्रह में इनके बेटे इकबाल सिंह के क्रूर धर्म-परिवर्तन का बड़ा ही करुण और भयावह चित्रण किया गया है । प्रकरण पन्द्रह और अठारह में सैयदपुर के गुरदारे का तथा मुस्लिम-सिख के संघर्ष और युद्ध का चित्रण है । इस प्रकार इन पाँच प्रकरणों में देहाती जीवन का अत्यन्त

तटस्थ, सपाट और करुण चित्रण मिलता है। यहाँ जबरदस्ती और क्रूरता के साथ धर्म-परिवर्तन करने वाले हलवाई भी हैं और जान बचाने वाले मानवीय पात्र भी।

यह दूसरा खंड पहले खंड में एकदम अलग ओर टूटा हुआ-सा लगता है। पहले खंड में व्याप्त भय, संशय, करुणा और प्यार-यहाँ भी व्याप्त है। दोनों खंडों में चित्रित जीवन का सम्बन्ध एक विशिष्ट वातावरण से है। नागरी और देहाती जीवन के चित्रण के वहाने जीवन की समग्रता को पकड़ने का प्रयत्न साहनी कर रहे हैं। आम आदमी की प्रतिक्रियाओं को इस दूसरे खंड में अधिक अभिव्यक्ति मिली है। इस प्रकार ये दोनों खंड एक दूसरे के पूरक हैं।

(७)

उन्नीस, बीस और इक्कीसवें प्रकरण में लेखक ने दोनों खंडों की की कथा को जोड़ने का प्रयत्न किया है। पहले खंड में चित्रित डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय से उन्नीसवें प्रकरण की शुरुवात हो जाती है। इस सारे हादसे को रोकने की कोशिश अंग्रेज कमिश्नर कर रहे हैं। रिप्यूजी कैम्प खोले गये हैं। रिलीफ कमेटी के वावू लोग नुकसान से आँकड़े इकट्ठे कर रहे हैं। दूसरे खंड के पात्र यहाँ अपनी तकलीफों के साथ इकट्ठे हुए हैं। इक्कीसवें प्रकरण में फिर अमीर और बुद्धिजीवी लोगों की चालवाजियों का चित्रण हुआ है। इस प्रकार अन्तिम तीन प्रकरणों के कारण कथा-वस्तु फिर जुड़ जाती है।

सुअर की लाश दिखलाई देना कथावस्तु का आरम्भ है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कथावस्तु का विकास होता है। आगजनी, खून आदि विकास में ही लिये जा सकते हैं। फिर कथा रुक-सी जाती है। फिर दूसरा खंड—यहाँ भी कथावस्तु का आरम्भ है, विकास है। उन्नीस, बीस और इक्कीसवें प्रकरण में दोनों कथावस्तुएँ एक दूसरे-से मिलकर समाप्ति की ओर बढ़ते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ दो स्वतन्त्र कथा-वस्तुएँ हैं। वास्तव में परम्परावद्ध समीक्षा के चौखट में बिठलाकर समीक्षा करना कठिन ही है। क्योंकि कथावस्तु का सम्बन्ध किसी व्यक्ति अथवा परिवार से नहीं एक सम्पूर्ण प्रदेश और विशिष्ट राजनीतिक घटनाओं से है। इन घटनाओं की प्रतिक्रियाएँ एक शहर और कुछ देहातों पर किस प्रकार हुई—यही लेखक बतलाना चाहता है।

(८)

इसकी कथावस्तु अत्यन्त यथार्थ है। अप्रैल १९४७ से सितम्बर १९४७ तक पंजाब और बंगाल में इससे भी अधिक भयावह एवं क्रूर घटनाएँ हुई हैं। एक सरकारी रपट के अनुसार इन छः महीनों में छः लाख व्यक्तियों के खून हुए और चौदह लाख से भी अधिक लोगों को अपने प्रदेश से हटकर दूसरे प्रदेशों में शरण लेना

पडा । औरतो के शरीर के साथ जो क्रूर खेल खेले गये उसे मनुष्य जाति के इतिहास में दूसरी मिसाल नहीं है । उलटे कहना होगा कि साहनी इस प्रकार के चित्रण में अत्यधिक भयभीत हैं । आगजनी, खून घर्म-परिवर्तन के जो चित्र यहाँ आये हैं वे अत्यधिक यथार्थ और मार्मिक हैं । यथाथ पर की उनकी पकड़ में कहीं पर भी ढोल नहीं है । उलटे, आलोचकों का यह आरोप है कि इस उपन्यास में कल्पना की कमी है । प्रसंगों को उभारने में कल्पना का जो स्पर्श स्थान-स्थान पर अपेक्षित होता है, उससे भीष्म साहनी का व्यक्तित्व वंचित है । परिणामतः यथातथ्यता बेहद आती है ।^{११} वास्तव में यथार्थ की यह अधिकता साहनी की कमजोरी नहीं शक्ति है । वे इस यथार्थ को कलात्मक स्तर पर ले जान में सफल रहे हैं । इसी कलात्मकता के कारण ही यह उपन्यास नीरस नहीं लगता ।

[९]

विभाजन के पूर्व तथा विभाजन के बाद पंजाब और बंगाल में जो कुछ घटित हुआ उस पर अनेक उपन्यास लिखे गये हैं । मनुष्य की क्रूरता, उसकी पशुवन् प्रवृत्ति तथा उसकी मानवीयता के जो दर्शन इस समय हुए हैं—उन्हें शब्दबद्ध करना वास्तव में किसी भी कलाकार के लिए चुनौती ही है । हमारे यहाँ विभाजन की इस घटना को लेखकों ने मुख्यतः तीन दृष्टिकोणों से देखा है । (अ) एक राजनीतिक समस्या के रूप में—इस प्रकार के लेखकों ने इस समस्या के लिए जिम्मेदार राजनीतिक व्यक्तियों अथवा तत्कालीन परिस्थितियों का ही चित्रण अधिक किया है । उदा गुटदत्त । (आ) इस घटना को भस्ते और रोमांटिक ढंग पर प्रस्तुत करने वाले लेखक । (इ) तटस्थ और मानवीय दृष्टिकोणों से इस समस्या को देखने वाले लेखक । साहनी तीसरे प्रकार के लेखक हैं । आम आदमी की दृष्टि से इस समस्या को देखा गया है । इसी कारण यहाँ पात्रों की विविधता है । कुल २८४ पृष्ठों के उपन्यास में सत्तर से भी अधिक पात्र हैं । बौद्धिक ऊहापोह के चक्कर में न पड़ते हुए सामान्य मनुष्य की प्रतिक्रियाओं को रेखांकित करने का प्रयत्न यहाँ हुआ है । ऐसा करते समय प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों की तोड़-फोड़ नीति का, बुद्धिजीवियों की अलगाव की नीति का, आर्य-समाजी एवं मुस्लिम लीगियों की बटुटरता तथा धार्मिक धट्टाओं के आधार पर सामान्य आदमी की गुमराह करने की वृत्ति का भण्डाफोड़ किया गया है । ऐसा करते समय कम्युनिस्ट पार्टी एवं उसके कार्यकर्त्ताओं को लेखक की अधिक सहानुभूति मिल गई है । अर्थात् यह उनके लेखनीय व्यक्तित्व की सीमा है ।

[१०]

इसकी कथावस्तु की कुछ सीमाएँ डा० वान्दिवडेकर जी ने स्पष्ट की हैं । उनके अनुसार (१) कथावस्तु में बौद्धिकता को तिलाजलि दी गई है जिससे उपन्यास

उच्चस्तर पर पहुँच नहीं सका है। (२) नट्यू चमार और उसकी पत्नी के मधुर-प्रेम सम्बन्ध अपने आप में उत्तेजक होने पर भी उपन्यास के मूल स्वर से असम्बद्ध लगते हैं। (३) प्रकाशो और रक्खा का प्रेम-प्रसंग गलत स्थान पर रखा गया है जो उपन्यास के स्वर को विकृत कर देता है। (४) प्रसंगों को उभारने में कल्पना के स्पर्श की अपेक्षा थी; उसका यहाँ अभाव है। (५) उपन्यास में गति बहुत ही धीमी और सपाटता अधिक है। (६) ऐसे प्रसंगों को, जिनका विस्तार में चित्रमय रूप अपेक्षित नहीं होता, बल्कि संक्षिप्त वर्णन ही पर्याप्त होता है, परिश्रमपूर्वक उपस्थित करना अपव्यय लगता है और यह अपव्यय तमस में खूब हुआ है।^{११}

इनमें से कुछ आरोपों की चर्चा अब तक के विवेचन में की गई है और उसका यथास्थान समाधान भी किया गया है। नट्यू चमार और उसकी पत्नी का प्रेम-सम्बन्ध उत्तेजक नहीं लगता क्योंकि एक तो यह पति-पत्नी का प्रेम है और दूसरी बात यह है कि नट्यू जिस मानसिकता से गुजर रहा था यह प्रसंग उसके द्योतक हैं। (विस्तार के लिए देखें नट्यू का चरित्र-चित्रण) प्रकाशो और रक्खा का प्रेम निश्चित रूप से गलत स्थान पर रखा गया है। अन्य दोनों आरोपों में कुछ सीमा तक तथ्य है।

इस प्रकार कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि तमस की कथावस्तु यथार्थ और जीवन्त है। तमस का अर्थ है अन्धकार ! अन्धकार मरे इतिहास के पृष्ठों को एक लेखक की दृष्टि से देखने का प्रयत्न यहाँ हुआ है और आश्चर्य इस बात का है कि इस घुप्प अँवरे में भी जरनैल, देवदत्त और राजो रूपी प्रकाश रेखाएँ दिख रही हैं। यह प्रकाश रेखाएँ ही तमस को खत्म करने वाली हैं। इन छिटपुट प्रकाश के टुकड़ों के कारण ही यह उपन्यास अधिक गहरे में स्पर्श करके चला जाता है। यही इसकी कथावस्तु की शक्ति है।

चरित्र-चित्रण—कथावस्तु के विवेचन में एक स्थान पर यह कहा गया है कि इसमें पात्रों की खूब भरमार है। किसी विशिष्ट पात्र का विस्तार से चित्रण करने के बजाए लेखक ने आम आदमियों की प्रतिक्रियाओं को ही अधिक महत्त्व दिया है। परिणामतः यहाँ प्रातिनिधिक पात्र ही अधिक हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन पात्रों का वर्गीकरण विभिन्न पद्धतियों से किया जा सकता है—(१) क्षेत्रीय आधार पर : नागरी : अनागरी। (२) वर्म के आधार पर : हिन्दू, मुस्लिम, सिख एवं ईसाई। (३) विचारधारा के आधार पर : कांग्रेसी, कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीग, आर्य-समाज, साम्राज्यवादी इत्यादि। इनमें से किसी भी एक पद्धति को स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ विचारधारा अर्थात् जीवन दृष्टिकोण के आधार को स्वीकार किया गया है।

(१) साम्राज्यवादी अर्थात् अंग्रेजी सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र :

इसमें दासक दल के ही पात्र आने हैं। डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रातिनिधिक पात्र है। पूरे उपन्यास पर उसकी अदृश्य काली छाया भडरा रही है।

रिचर्ड—रिचर्ड एक सरकारी अफसर है। इतिहास विशेषतः भारतीय इतिहास का सजग विद्यार्थी भी है। इस देश के इतिहास, गित्य तथा बौद्ध धर्म से वह प्रभावित है। इस देश के इतिहास के प्रति उसकी इस लगन को देखकर जब उसकी पत्नी लीजा यह कहती है कि, 'तुम तो रिचर्ड भी बातें कर रहे हो जैसे यह देश तुम्हारा अपना देश है'—तब उसका यह उत्तर कि 'देश अपना नहीं है, पर इतिहास का विषय तो अपना है'—उसके इतिहास प्रेम को स्पष्ट करता है। ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुओं का संग्रह वह करता रहता है। रिचर्ड को इस बात का दुःख है कि "भारतीय अपने इतिहास को जानने नहीं हैं उसे केवल जीते भर हैं।" वह अक्सर यह अनुभव करता है कि "बंगले के बाहर होता हूँ तो हिन्दुस्तान के किसी शहर में होता हूँ। बंगले में लौटता हूँ तो पूरे हिन्दुस्तान में लौटता हूँ।" क्योंकि बंगले के हर कमरे में भारतीय इतिहास से सम्बन्धित दर्जनों वस्तुएँ करीने से मजा कर रखी गयी थी। "इन कमरों में घूमते रिचर्ड को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह जिले का सबसे बड़ा अफसर है। यहाँ पर तो वह भारतीय इतिहास का भूमंज था, भारतीय कला का पारखी। हाँ, जब वह प्रशासन की कुर्सी पर बैठता तो वह ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि था और उन नीतियों को क्रियान्वित करता जो लन्दन से निर्णीत होकर आती थी।"

रिचर्ड का यह आरम्भिक चरित्र देखकर उसके प्रति कुछ क्षणों तक आत्मीयता उमर आती है। परन्तु इतिहास का अध्येता रिचर्ड साम्राज्यवादियों का सच्चा एवं ईमानदार प्रतिनिधि है। उसके आदर्श अलग हैं और आचरण अलग। इसी कारण वह सोचता है कि 'यह विचार कि हमारा आचरण हमारी मान्यताओं के अनुरूप होना चाहिए, एक ऐसा भोडा आदर्शवाद है जिससे सिविल-सर्विस में नाम लिखति ही अफसर अपना पिण्ड छुड़ा लेता है।" आचरण और आदर्श की यह विसंगति रिचर्ड में आरम्भ से अन्त तक है। [और लीजा इस विसंगति को समझ नहीं पाती।] हिन्दुस्तानी लोगों के स्वभाव का उसका अध्ययन बहुत ही पक्का है। वह यहाँ की जनता की दुखती नस को जानता है। "मुनो! सभी हिन्दुस्तानी चिड़चिड़े मिजाज के होते हैं, छोटे-से उकसाव पर भड़कने वाले, धर्म के नाम पर खून बरने वाले, सभी व्यक्तिवादी होते हैं।" इस स्वभाव का फायदा अपेक्ष उठा रहे थे। रिचर्ड भी यही कर रहा है। उसके अनुसार "भारतीय धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।" परन्तु असंस्थित लीजा जानती है। इसी कारण वह कहती है कि देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और

धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो ।”^{१००}

कांग्रेस तथा शहर के अमनपसन्द लोग रिचर्ड से बार-बार यह आग्रह करते हैं कि फिसाद शुरू होने से पहले वह उसे रोके । कम-से-कम एक हवाई-जहाज तो उड़ायें । परन्तु रिचर्ड इस बात को किसी-न-किसी बहाने टालता रहा । मुअर वाली घटना की उसने कोई जाँच नहीं करवाई । क्योंकि वह और उसकी सरकार यह चाह रहे थे कि भारतीय लोग धर्म के नाम पर आपस में खूब लड़ें । जब तक ये आपस में लड़ेंगे तब तक वे सुरक्षित हैं । फिसाद होने के पाँचवें दिन बाद मुरझा की व्यवस्था करने का प्रयत्न वह करता है । और आश्चर्य है कि लोगों की सहानुभूति उसे मिल जाती है । जानबूझकर नजर-अन्दाज करना और काफी कुछ होने के बाद बहुत कुछ करने का नाटक करना—अंग्रेजों की इस नीति का प्रतिनिधित्व करता है रिचर्ड । उसके अनुसार “प्रजा अगर आपस में लड़े तो शासक को किसी बात का खतरा नहीं होता ।”^{१०१} हिन्दू और मुस्लिमों में अलगाव बनाये रखने की कोशिश अंग्रेज हमेशा करते रहे हैं । रिचर्ड भी यही कर रहा है । “जालिग, हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कानून-सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग हैं ।”^{१०२} हिन्दुओं और मुस्लिमों में तनाव बढ़ रहा है—इसकी खबर टिप्पि कमिश्नर साहब को मिल रही हैं । परन्तु वह इन दोनों के झगड़ों को निपटाना नहीं चाहता । उल्टे वह उन्हें समझाता है कि “तुम्हारे धर्म के मामले तुम्हारे निजी मामले हैं, इन्हें तुम्हें खुद सुलझाना चाहिए ।”^{१०३} मन्चे इतिहास को वह जानता है परन्तु यहाँ के लोगों से यह मन्चा इतिहास वह छिपाता है । मण्डी में आग लगा दी जाती है तब भी वह खामोज है । मानवीय मूल्यों के मामले शासकीय मूल्य जीत जाते हैं ।

अंग्रेज सरकार की तरह रिचर्ड की यह कोशिश है कि जनता का असन्तोष ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध न बढ़े । अप्रैल १९४७ में तो सारे देश की जनता ब्रिटिश सरकार विरोधी बन गई थी । पंजाब में स्थिति और नाजुक थी । जनता अगर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध चली जाए तो नौकटों अंग्रेज नागरिकों की जान खतरे में आ सकती थी । इसलिए रिचर्ड यह कोशिश करना है कि जनता आपस में लड़े । उसके कैरियर में यह निर्णायक घड़ी थी । वह एक अजीब-सा मन्तुलन बनाए रखने में सफल हो चुका था । उन्हें लड़ा भी रहा था और उनके मन में ब्रिटिशों के प्रति वाक भी जमा रहा था । इसी मन्तुलन के कारण लोग उसकी ईमानदारी से प्रभावित हुए थे । किन्ती भी घटना के प्रति वह भावुक नहीं होता । इस देश के इतिहास से प्रभावित हो जाने के बावजूद भी इस देश के प्रति उसके मन में कोई लगाव नहीं । “यह मेरा देश नहीं है । नहीं ये मेरे देश के लोग हैं ।”^{१०४}

सम्पूर्ण उपन्यास में रिचर्ड का प्रधानकीय रूप ही अधिक उभरा है । वह

अंग्रेज सरकार के एक ईमानदार नौकर के रूप में ही हमारे सम्मुख आया है। इस देश का इतिहास, यहाँ की नस्लें, हिंदू मुस्लिमों की एकता भिन्नता आदि के बारे में वह सब कुछ जानता है। यह उसका गम्भीर, चिकित्सक अध्येता रूप है। दूसरी ओर वह एक कठोर प्रशासक है। साम्राज्यशाही का सरक्षक है। अध्येता और प्रशासक को वह निकट आने नहीं देता। उसके व्यक्तित्व के ये दो परस्पर-विरोधी रूप हैं। इन दोनों रूपों में वह सन्तुलन बनाये रख सका है। यह उसकी शक्ति है अथवा कमजोरी नहीं मालूम। परन्तु इतना सच है कि वह अंग्रेजों के गुण दोषों का सही रूप में प्रतिनिधित्व करता है।

लीजा—डिप्टी कमिशनर की पत्नी लीजा “अबकी बार छ महीने के बाद विलायत से लौटी है।”^१ अक्सर चार छ महीने में ही वह नई जगह से ऊब जाती है और विलायत छोड़ती है। रिचर्ड उसकी इस आदत से परेशान है। वह चाहता है कि लीजा उसके साथ यही भारत में रहे। परन्तु लीजा दिनभर बड़े बँगले में बैठकर क्या करे? एक अजीब-सा खालीपन और निरर्थकता के बोझ को वह निरन्तर अनुभव करती है। इन दोनों के स्वभाव में समानता कम और विरोध अधिक है। लीजा बड़ी भावुक और मानवीय दृष्टि से सम्पन्न है। रिचर्ड गम्भीर, तटस्थ धूर्त और निर्ममता के साथ आज्ञाओं का पालन करने वाला व्यक्ति है। उसे इतिहास में अधिक रुचि है, लीजा इतिहास में दूर भागती है। और सबसे मुश्किल बात यह है कि लीजा रिचर्ड के आचार और विचारों की विसंगति से नफरत करती है। एक ओर वह बुद्ध के कथन के सन्देश को महान और ठोस बतलाता है। बुद्ध की कथन आँसों में वह अत्यधिक प्रभावित है तो दूसरी ओर खून, आगजनी की घटनाओं को रोक्ने के बजाए बढ़ाता है। उसके इस विमंगत व्यवहार से लीजा चिढ़ जाती है। रिचर्ड के साथ रहने से वह अंग्रेज सरकार की चालवाजी को, तोड़-पीढ़ की नीति को जान चुकी है। वह यह समझ नहीं पाती कि हिन्दुओं और मुसलमानों में अलगाव कहाँ पर है?

पृष्ठ ९१ पर उसकी मन स्थिति का बड़ा स्वामाबिक चित्रण किया गया है। वह अकेलेपन से त्रस्त है। “जब वह भारत आई थी तो बहुत-सी योजनाएँ बनाकर कि वह भारत की दस्तकारी के नमूने इकट्ठे करेगी, खूब धूमेंगी, तमबोरें उतारेगी, घेर की पीठ पर बैठकर तम्बीर खिचवाएगी, साड़ी पहनकर घूमा करेगी और जाने क्या क्या? परन्तु यहाँ उसे मिली थी चिलचिलाती घूप, बड़े बँगले का कारावास, कभी न खत्म होने वाला दिन और गौतम बुद्ध के बुत और छिपकलियाँ और साँप”^२ इस अकेलेपन से ऊबकर वह पाराव पीती और बेहीशी में रहने की कोशिश करती।

उसे बड़ा ताज्जुब होता है कि शहर के डिप्टी कमिशनर की हेसियत से रिचर्ड

फसादों को रोकने की कोशिश क्यों नहीं करता । उस रात जब मंडी जल रही थी, खतरे की घंटी बज रही थी, तब भी रिचर्ड आराम से नींद ले रहा था । “लीजा सिर से पाँव तक काँप उठी ।.....उसे लगा जैसे मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होता, वास्तव में महत्त्व केवल शासकीय मूल्यों का होता है ।”^{५५} दंगे शुरू हो जाने के बाद की रिचर्ड की खामोशी लीजा कतई पसन्द नहीं है । वह इस बात को समझ नहीं पाती कि फसादों को रोकने की शक्ति होने के बावजूद भी रिचर्ड खामोश क्यों है ? इस प्रकार की तटस्थता से वह घृणा करती है । पाँच दिनों के बाद जब रिचर्ड सुरक्षा के प्रपंच करने लगता है तब लीजा को हँसी आती है । इसलिए वह पूछती है कि “इतने गाँव [१०३] तो जल गये रिचर्ड, अभी भी तुम्हें काम है ?” रिचर्ड ठिठक गया । क्या लीजा व्यंग्य कर रही है ? क्या उसके दिल में मेरे प्रति घृणा पैदा होने लगी है जो इस तरह की बातें करने लगी है ।”^{५६}

अकेलेपन के बोझ से त्रस्त, मानवीय मूल्यों की हत्या से अस्वस्थ एवं रिचर्ड के विसंगत व्यवहार से परेशान—इन विभिन्न मानसिक स्थितियों को लेकर लीजा यहाँ उपस्थित हुई है । एक अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर की पत्नी के बावजूद पाठकों की सहानुभूति इसे चली जाती है ।

(२) कांग्रेसी विचारधारा के पात्र—देश के अन्य हिस्सों की तरह पंजाब में भी कांग्रेस पार्टी जिलों तथा तालुकाओं के स्तर तक फैल चुकी थी । गांधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर उनके नेतृत्व में ये लोग गंगठित हुए थे । हिन्दू, मुसलमान और सिख तीनों सम्प्रदायों के लोग इस पार्टी में थे । चौधरी हयातबख्श, मास्टर रामदास, मि० मेहता, कदमीरीलाल, जर्नैल, अब्दुलगनी तथा सरदार बिसनसिंह इस जिले के प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता हैं । सभी सम्प्रदायों में अमन बनाये रखने का प्रयत्न ये लोग करते हैं । रोज सवेरे प्रभात फेरी निकालना, चरखा कातना, शहर की गन्दगी को कम करना आदि विधायक कार्य ये करते रहते हैं । मु० लीग कांग्रेस का जबरदस्त विरोध कर रही है । फिर भी ये अपने काम पर डटे हैं ।

(१) बख्शी जी—अंग्रेज हिन्दू-मुस्लिम तनाव को बढ़ा रहे हैं और लीगी इस तनाव का फायदा उठा रहे हैं—इसे कांग्रेसी बख्शी जी बखूबी जानते हैं । परन्तु वे अकेले पड़ते जा रहे हैं । दुर्भाग्य से इस इलाखे में कांग्रेस में हिन्दुओं की संख्या अधिक है । और बख्शीजी मुसलमान हैं । अधिकतर मुसलमान लीग में ही हैं । इस कारण इन्हें मुस्लिमों से ही अधिक तकलीफ होती है । लीगी बख्शी जी को बार-बार यह समझाते हैं कि “कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है और लीग मुसलमानों की ।”^{५७} परन्तु बावजूद इसके बख्शी जी यही उत्तर देते हैं कि “कांग्रेस में हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं और सिख भी हैं ।”^{५८} लीगियों के इस आरोप को कि कांग्रेस के

पीछे घूमने वाले मुसलमान असली मुसलमान नहीं हैं, मोगना आजाद हिन्दुओं का मक्के बड़ा कुत्ता है"—बस्ती जी चुपचाप सह लेते हैं और अमन के रास्ते से पीछे नहीं हटते। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि यह सब अंग्रेजों के कारनामे हैं। "फिसाद करवाने वाला भी अंग्रेज, फिसाद रोकने वाला भी अंग्रेज, मूर्खों मारने वाला भी अंग्रेज, रोटी देने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज। जब से फिसाद शुरू हुए हैं बस्ती जी के दिमाग में धूल से उड़ने लगी थी, वस केवल इतना भर ही बार-बार कहने रहे कि अंग्रेज फिर बाजी मार ले गया।" वे हिंसा और अन्याय के विरोधी थे। फिसादों के बाद जब सब कांग्रेसों इकट्ठे हो जाते हैं, और बीती घटनाओं पर चर्चा करने लगते हैं, तब अधिकतर कांग्रेसियों का यही स्वर होता है कि अहिंसा से काम नहीं चलेगा। काफी मस्ते मजाक भी हो रहे हैं। जैसे "अगर कोई तुम पर हमला करे तो तू उसे कहना, ठहर मैं कांग्रेस के दफ्तर से पूछ आऊँ कि मुझे अपना बचाव करना या नहीं।" तब बस्तीजी अहिंसा पर अपने दृढ़ विश्वास को व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार बुरी से बुरी स्थिति में भी व्यक्ति को दृढ़ता से अहिंसा का रास्ता अपनाना चाहिए। "तू खुद तसद्दुद नहीं कर। नम्बर एक। तू तसद्दुद करने वाले को समझा भी, अगर समझाने का मौका हो तो। नम्बर दो। और अगर वह नहीं मानता तो डटकर मुकाबला कर। यह है नम्बर तीन।" अन्य कांग्रेसियों की अपेक्षा बस्तीजी अधिक शांत, गम्भीर और अपनी निष्ठा के प्रति बफादार है।

(२) जरनैल—इस कम्बे का एक और ईमानदार कांग्रेसी मैजिक। उम्र पचास के ऊपर। बस्ती की जेल के बाद शरीर में कुछ नहीं रह गया था। "जहाँ शहर के अन्य कांग्रेसियों को कम-से-कम की क्लास मिलता था, जरनैल को हमेशा सी-क्लास में डाला जाता रहा, जिससे वह बीमार भी पड़ता रहा और बालू से भरी रोटी भी खाता रहा। पर जरनैल ने न तोबा की, न अपनी जरनैली बर्दी को छाड़ा। जवानी के दिनों में लाहौर-कांग्रेस के समय वह अपने शहर से लाहौर में बालण्टियर बनकर गया था। नेहरूजी के साथ वह भी रावी के किनारे नाचा था जब पूर्ण स्वराज्य का नारा लगाया गया था। उमी दिन से वह बालण्टियर की बर्दी पहनता आया था। जब दिन अच्छे होते तो उस बर्दी में कमी सीटी लग जाती, कमी तिरंगे की डोरी बंध जाती। "न जरनैल को कोई काम मिला, न उसने किया। कांग्रेस के दफ्तर से पन्द्रह रुपये महीना प्रचारक का मेहनताना लिया करता था। मन में सनक थी, उमी के बल पर जिन्दगी के दुख और क्लेश पार कर जाता था। उसका न घर था न घाट, न बीबी न बच्चा, न काम न धाम।" अन्य किसी भी पात्र की अपेक्षा जरनैल के मूतकाल के सम्बन्ध में लेखक ने अधिक लिखा है। जरनैल को भाषण देने की आदत है। दस-बीस लोग का समूह दिखलाई दिया कि वह शत

से किसी ऊँची जगह पर खड़ा होकर अंग्रेजों के खिलाफ और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के एक जोशीली तकरीर देने लगता । इस दृष्टि से वह कुछ सीमा तक विक्षिप्त है । हिन्दुस्तान की आजादी के स्वप्न को लेकर वह जी रहा है । “साहिबान, मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है जब हिन्दुस्तान आजाद होगा । कांग्रेस अपने मकसद में जल्द कामयाब होगी । जो शपथ मैंने रावी के किनारे”^{५५} इस वाक्य को वह बार-बार दुहराता रहता है । वह एक ऐसा आदमी था, “जो आन्दोलन हो या न हो, जेल जाता रहता था, जलसे हों या न हों, शहर में स्वयं तकरीरें करता फिरता था, हर आधे दिन शहर में कहीं-न-कहीं उसकी पिटाई हो जाया करती थी । वगल में छोटा-सा बेंत दबाये वह सदा कभी एक मुहल्ले में, कभी दूसरे में मुहल्ले में घूमता नजर आता था ।”^{५६}

जरनैल सनकी है, अशिक्षित है, लेकिन निर्भय है । सुअर की लाश मस्जिद की सीढ़ियों पर दिखलाई देने के बाद केवल जरनैल ही यह सोचता है कि यह किसी की शराबत है । और इसीलिए वह चिल्ला-चिल्ला कर कहता है कि, “यह अंग्रेज की शराबत है, मैं जानता हूँ ।”^{५७} शहर में जिस दिन फिसाद शुरू हुआ उसी दिन दोपहर को जरनैल मारा गया । सनकी तो था ही । सारे शहर में तनाव छाया हुआ है । कोई भी अपने घर से अकेले निकल नहीं रहे थे । लीगियों के जरये लूट-पाट का काम बड़े आराम से कर रहे थे । ऐसे में जरनैल अकेला निकला, दंगा रोकने के लिए वह यह सोचते हुए निकला था कि शहर में दंगा हो रहा था, यह क्या कोई अच्छी बात है और वे सभी कांग्रेसी गद्दार हैं जो घर पर बैठे हैं ।”^{५८} वह निकला और जगह-जगह सड़क के किनारे कभी एक चबूतरे पर तो कभी दूसरे चबूतरे पर खड़ा होकर लेक्चर देने लगा । वह लगातार मटक रहा था । अमन के लिए चिल्ला रहा था । उसे यह भी मालूम नहीं था कि वह किस मुहल्ले में है, कहाँ है वह केवल कहता जा रहा था, साहिबान, मैं आपसे कहता हूँ कि हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं, शहर में फिसाद हो रहा है, आगजनी हो रही है और उसे कोई रोकता नहीं । मैं कहता हूँ कि हमारा दुश्मन अंग्रेज है । गांधीजी कहते हैं कि वही हमें लड़ाता है और हम भाई-भाई हैं । हमें अंग्रेज की बातों में नहीं आना चाहिए । और गांधी जी का फर्मान है कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा । मैं भी यही कहता हूँ कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा । हम एक हैं, हम भाई-भाई हैं, हम मिलकर रहेंगे”^{५९} और इसी समय उसके सर पर लाठी का एक भरपूर वार पड़ा । खोपड़ी फूट गई । जरनैल वहीं ढेर हो गया ।

अमन और एकता के लिए अन्तिम सांस तक जरनैल संघर्ष करता रहा । वह गांधी जी का सच्चा सिपाही था । ईमानदार कांग्रेसी । और इन सबके परे एक भावुक मनुष्य ! हिंसा और बदले की भावना से भी खून हुआ और अमन कायम करने

में प्रयत्नशील लोगों के भी खून हुए । परन्तु इन दोनों मृत्युओं में कितना बड़ा अन्तर है । ज़रनैल उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो किसी थोड़े मूल्य के लिए जीते थे और उसी की पूर्ति के लिए मृत्यु के अधीन हो जाते थे । उसका खून वास्तव में शान्ति, अहिंसा, मैत्री और भाई चारे का ही खून है ।

(३) साम्प्रदायिक शक्तियाँ और उनसे परिचालित पात्र—एक ओर एकता को बढ़ाने वाली क्षीण शक्तियाँ कार्यरत हैं तो दूसरी ओर अलगाव बढ़ाने वाली शक्तियाँ । इनमें से प्रत्येक का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(अ) आर्य-समाजी दृष्टि और उससे सम्बन्धित पात्र—हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए आर्य-समाज का निर्माण हुआ । हिन्दू धर्म को अधिक शास्त्र शुद्ध और और वीर्यवता प्रदान करने का ऐतिहासिक कार्य आर्य समाज ने किया है । परन्तु बाद में धीरे-धीरे आर्य-समाज राजनीति के क्षेत्र में उतरने लगा । अपने कार्य को धर्म और समाज-सुधार तक सीमित रखने के बजाए दूसरे धर्म पर कठोर प्रहार करना उसने शुरू किया । परिणामस्वरूप अलगाव की वृत्ति शुरू हुई । प्रस्तुत उपन्यास में इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व पुष्पात्मा वानप्रस्थीजी, मन्त्रीजी, देवव्रत, बोधराज, लाला लक्ष्मीनारायणलाल, उनका बेटा रणवीर आदि करते हैं ।

वानप्रस्थीजी का तो नारा है कि “फँलाये घोर पाप यहाँ मुसलमान ने । अमन फलक ने छीन ली, दोलत जमीन ने” । शहर के हिन्दुओं से वे बार-बार यह आग्रह करते हैं कि वे अपनी रक्षा का प्रवन्ध करें । “सभी सदस्य अपने-अपने घर में कनस्तर बड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें । उबलता तेल क्षत्रु पर डाला जा सकता है, जलने अगारे छत पर से फँके जा सकते हैं ।” हिन्दू-मुसलमान इस प्रदेश में सैकड़ों वर्षों से जी रहे थे परन्तु अब उन्हें एक-दूसरे के क्षत्रु के रूप में उभारने का कार्य वानप्रस्थीजी कर रहे हैं । युवक समाज को लाठी सिखलाने का कार्य शुरू किया जा रहा है । इन सब बातों की प्रतिक्रिया मुस्लिम-समाज पर क्या होगी—यह सोचने को कोई तैयार नहीं है । मुस्लिम बहुसंख्यक प्रदेश में हम जी रहे हैं, इस प्रकार की तैयारियों से आम आदमी पर क्या परिणाम होंगे, देहातों में जहाँ हिन्दू कम सख्या में हैं उनका क्या होगा—इस पर विस्तार से ये लोग सोचना ही नहीं चाहते । काँग्रेसियों की निन्दा में लोग हमें ना करते रहे हैं—“नालियाँ माफ करने से स्वराज्य नहीं मिलता ।” अथवा “यह सारा काम काँग्रेसियों ने बिगाड़ा है । उन्होंने ही मुसलमानों को सिर पर चढ़ा रखा है ।”

अधिकतर आर्य-समाजियों में विवेकहीन आदेश है । “भो बप हुआ तो यहाँ खून की नदियाँ बह जाएँगी ।” मुसलमानों के प्रति नफरत फैलाने के प्रत्येक अवसर का ये उपयोग कर लेते हैं । “म्लेच्छ तो गंदे होते हैं, म्लेच्छ नहाते नहीं, पाखाना करके हाथ नहीं धोते, एक दूसरे का झूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नहीं करते”

गलतफहमियाँ फैलाने का यह सबसे गन्दा और निचला स्तर है। इससे अलगाव की भूमि विस्तृत होने लगी। हिन्दू-धर्म के झूठे अभिमान को आर्य-समाजी बढ़ाते रहे। वेदों में सब कुछ है, दुनिया के बाकी सब धर्म गलत और असारनीय हैं, हिन्दू जाति की तेजस्विता को फिर से प्राप्त करा देना है—आदि बातें युवकों में भरा देते हैं। इसमें दोनों कौमों में नफरत बढ़ती गई। अलगाव को बढ़ाने की उनकी इस वृत्ति के कारण दूसरी ओर ऐसी ही उग्र प्रतिक्रिया हुई है।

(आ) मुस्लिम लीग और उससे सम्बन्धित पात्र—आर्य समाज की ही तरह अथवा उससे भी अधिक भयावह कार्य मुस्लिम-लीग मुस्लिम समाज में कर रही थी। अलगाव की नीति को बढ़ाना, नफरत के जहर को फैलाना यही लीग का कार्य रहा है। लीग का मामूली-सा कार्यकर्ता भी जिन्ना के शब्दों में बोल रहा था—“कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है। इसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है। कांग्रेस मुस्लिमों की रहनुमाई नहीं कर सकती।”^{११} मौलाना अबुल कलम आजाद इनकी नजरों में गाँधीजी के कुत्ते हैं। वे इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि असली अग्र तो अंग्रेज है। “हमारा अंग्रेजों ने क्या विगाड़ा ओए? हिन्दू मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है। काफिर-काफिर है और जब तक दीन ईमान नहीं लायेगा वह दुश्मन है। काफिर को मारना सबाब है।”^{१२} इसी धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू हजारों की संख्या में मारे गये, स्त्रियों पर बलात्कार दृष्ट और क्रूर धर्म-परिवर्तन किये गये। इकबाल सिंह का धर्म-परिवर्तन इस बात का प्रमाण है। मुबारक अली और मौला दाद इनके नेता हैं। और सामान्य मुसलमान एहसान अली, रमजाना, अकरा आदि इनके स्वयं सेवक।

गोल्डा शरीफ के पीर भी इसी साम्प्रदायिक कट्टरता का प्रतिनिधित्व करते हैं। “पीर सावह काफिरों को हाथ नहीं लगाते; काफिरों से नफरत करते हैं।”^{१३} पीर साहब भी अलगाव बढ़ाने में सक्रिय सहयोग देते हैं।

मुराद अली भी इसी प्रकार का व्यक्ति है। अन्य मुसलमानों की तुलना में मुराद अली अधिक बुद्धिमान, पड़्यन्त्रकारी और दुहरे व्यक्तित्व को लेकर आया है। एक ओर वह भाई-भाई का नारा लगाता है, अमन कमेटी में तक्रारी देता है दूसरी ओर नत्यू-चमार के माध्यम से मुअर की हत्या करके मस्जिद की सीढ़ियों पर फिकवा देता है। मुराद अली के कारण ही नफरत की आग फैलती गई है। इस कस्बे में आगजनी, खून और बलात्कार की जो घटनाएँ हुईं उसके लिए मुराद अली ही जिम्मेदार हैं। बुद्धिजीवी हमेशा अलगाव की राजनीति खेलते रहे हैं और आम आदमी के शांत जीवन को उध्वस्त करते रहे हैं—इस बात का प्रमाण है मुराद अली का व्यवहार।

(इ) सिख समाज—उपन्यास के दूसरे खंड में सिख पात्र सर्वाधिक आये हैं।

या यूँ कहें कि दूसरे खंड का सम्बन्ध सिख और मुस्लिम समाज में ही है। हरजाम सिंह, बन्तो, उनका बेटा इब्राल सिंह, बेटी जमवीर, किशन सिंह, सरदार हरिसिंह, तेजसिंह, प्रीतमसिंह, निहंगसिंह, गोपालसिंह, मंगलसिंह मुनार, प्रीतमसिंह बजाज, मंगतसिंह पसारी, ग्रन्थी साहिब आदि अलग-अलग देहानों के सिंह यहाँ आये हैं।

सिक्ख जाति मूलतः लडाकू रही है। इनके धर्म का इतिहास मुस्लिमों के सघर्ष के साथ जुड़ा हुआ है। इसी कारण "मुस्लिमों के विरोध में युद्ध करना"—धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में वे स्वीकार करते हैं। इसी धार्मिक दृष्टि से इन्हें आह्वान भी किया जाता है—"तीन सौ साल पहले भी ऐसा ही गीत दुश्मन से लोहा लेने के लिए गाया गया था। उनकी चेतना फिर से शताब्दियों पहले के वायुमंडल में सास लेने लगी। सगत का प्रत्येक सिंह सिर हथेली पर रखे बैठा था।" "आज फिर से खालसा पथ को गुरु के सिंहों के खून की जरूरत है।"

परिस्थिति का तटस्थ विश्लेषण करने की जगह ये लोग भी महसूस नहीं कर रहे हैं। कम्युनिस्ट विचारों का सोहनसिंह गुरुद्वारे में झूठे समी सिंहों के इस अविवेकी निर्णय को (मुस्लिमों के साथ युद्ध करना) रोकने की पूरी कोशिश करता है और यह समझाता है कि "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम लोगो मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जा रहा है और मुसलमानों को हमारे खिलाफ। हम झूठी अपवाहं गुन-गुनकर एक दूसरे के खिलाफ तेंस में आ रहे हैं। हमें अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिये कि गांव के मुसलमानों के साथ मेल जोल बनाये रखें और कोशिश करें कि गांव में फिसाद न हो।" परन्तु उसे गद्दार बहकर चुप विठलाया जाता है। धार्मिक कट्टरता के सम्मुख विवेक हार जाता है। इसी अविवेकी दृष्टि के कारण दो दिन और दो रात ये लगातार लड़ते रहे। इस समय की इनकी मानसिकता को लेकर लेखक ने ठीक ही लिखा है कि "लड़ने वालों के पाँव चौखत्री सदी में ये और सर मध्ययुग में।"

इस युद्ध का परिणाम इन्हे ही भुगतना पड़ा। गांव की अधिकतर सिख स्त्रियों ने कुएँ में डूबकर आत्महत्याएँ कर ली। १५ से अधिक सिंह मारे गये। लाखों की जायजाद जलकर राख हो गई। वस्तुस्थिति का तटस्थ निरीक्षण करने निर्णय लेने की वृत्ति अन्य साम्प्रदायिक गुटों की तरह इनमें भी नहीं थी।

(४) कम्युनिस्ट दृष्टि से परिचालित पात्र—देवदत्त, रामनाथ, जगदीश, अजीज, सोहनसिंह, हरबससिंह, मोरदाद—ये कम्युनिस्ट विचारों के पात्र इस उपन्यास में आये हैं। लेखक भीष्म साहनी इस विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं। शायद इसी कारण इन पात्रों के प्रति उनमें अधिक सहानुभूति भी है। इन सात कौमरेडों में देवदत्त का ही थोड़ा-सा विस्तार से विवेचन सम्भव है। इन पर विचार करने से पूर्व विभाजन के सम्बन्ध में पार्टी के विचारों का संक्षेप में अध्ययन जरूरी है।

१९३०-४० के बीच कांग्रेस और लीग के बाद तीसरा महत्त्वपूर्ण स्थान कम्युनिस्ट पार्टी का ही था। विघेपतः मेरठ पड़्यन्त्र तथा अन्य इसी प्रकार की विस्फोटक कारवाइयों के कारण वृद्धिजीवियों और अन्य नेताओं की सहानुभूति पार्टी को मिल रही थी। दिसम्बर १९३० के अपने एक प्रस्ताव में पार्टी ने कांग्रेस को "पूँजीगतियों की संस्था" कहा था। स्वतन्त्रता-संग्राम में कांग्रेस के साथ हाथ मिलाने की इच्छा इनकी कभी नहीं रही। दिसम्बर १९४० के कम्युनिस्ट विद्यार्थी-सम्मेलन में भविष्य के भारत का जो चित्र खींचा गया है, उसमें उन्होंने अधिकाधिक स्वायत्तता के साथ प्रान्तों की रचना का आग्रह किया है। कुछ सीमा तक वे भारत में छोटे-छोटे स्वतन्त्र राष्ट्रों के सपने देख रहे थे। १५ अप्रैल १९४६ को कैबिनेट मिशन के सम्मुख उन्होंने जो स्मरण-पत्र दिया है उसमें स्पष्ट कहा गया है कि "प्रान्त रचना के लिए तुरन्त सीमा-आयोग की घोषणा कर दी जाये तथा भाषिक एवं सांस्कृतिक एकता के आधार पर प्रान्त रचना की जाये। सिंध, पठान-प्रदेश, बलूचिस्तान, पश्चिम पंजाब आदि प्रदेशों के लोगों को इस वान की स्वतन्त्रता दी जाये कि वे भारत के किसी प्रान्त में रहना चाहते हैं अथवा किसी दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्र में अथवा केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में।" स्पष्ट है कि विभाजन के प्रस्ताव को कम्युनिस्ट पार्टी १९४६ के पूर्व ही स्वीकार कर चुकी थी। इसके बहुत पहले से ही हिन्दू-मुस्लिम एकता का आग्रह पार्टी कर रही थी। तत्कालीन परिस्थिति में यह विसंगत व्यवहार ही था। लाहौर, अलीगढ़ तथा पंजाब के अन्य स्थानों में पार्टी का कार्य अधिक था। विभाजन के पूर्व इस पार्टी के सामान्य कार्यकर्ता अपने तरीके से साम्प्रदायिक तनाव को कम करने की कोशिश कर रहे थे। प्रस्तुत उपन्यास के कम्युनिस्ट पात्र भी इसी दिशा में प्रयत्नशील हैं।

देवदत्त—शहर में फिसाद जुहू हो जाने के बाद विभिन्न पार्टियों की बैठक लेने का पहला प्रयत्न देवदत्त करता है। "शहर में दंगों को रोकने के लिए एक बार फिर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडरों को इकट्ठा करना होगा।.....साथियों की कमी है परन्तु जहाँ तक वन पड़े दंगों को रोकने का काम करना होगा।" १०५

देवदत्त अत्यन्त निर्भय एवं साहसी है। माँ-पिता का वह लाड़ला बेटा है। परन्तु उनकी बात वह कभी नहीं मानता। माँ-पिता की इच्छा है कि वह ऐसे समय शरह में न घुमें, परन्तु देवदत्त अपने विचारों के प्रति प्रतिवद्ध है। पिता की दृष्टि से "सभी गालियाँ देते हैं, न काम, न वाम। दो-दो पैसे के पांडियों, मजदूरों, कुलियों को इकट्ठा करता फिरता है, उन्हें लेकर लेकर झाड़ता फिरता है, हरामी मुंह पर दाढ़ी नहीं उतरी, लीडर बन गया है....." १०६ कम्युनिस्ट विचारवारा का उसका ज्ञान बहुत गहरा नहीं है। फिर भी अपने काम के स्वरूप को जानता है। "सड़कों पर खुलने वाले मकान मध्यमवर्ग के, गलियों में खुलने वाले मकान निम्न वर्ग

के । '११' शहर की रचना का उसका यह साम्यवादी विश्लेषण है । हिंदू आर्थिक दृष्टि में सम्पन्न हैं, इसलिए उनकी सहानुभूति मुस्लिमों के साथ अधिक है । इस कारण वह हिन्दुओं में बदनाम भी अधिक है । आज सबरे की घटना के कारण उसके एक मुस्लिम कॉमरेड का विश्वास पार्टी पर से उठ चुका है और वह देवदत्त के इस तर्क का कि यह धरारत अंग्रेजों की है यह जवाब दे रहा है कि, "अंग्रेज की धरारत, हममें अंग्रेज कहाँ आ गया । मस्जिद के सामने सुअर फेंकते हैं मेरी आँखों के सामने तीन गरीब मुसलमानों को काटा है । हटाओ जी, सब बरबाद है ।"१२' देवदत्त केवल इतना ही कहता है कि 'हम मध्यमवर्ग के लोग हैं, पुराने तस्कारों का हम पर गहरा प्रभाव है । मजदूर वर्ग के होने तो हिन्दू-मुसलमान का सवाल तुम्हें परेशान नहीं करता ।'१३' उसके इस उत्तर से स्पष्ट है कि वह पार्टी का एक ईमानदार स्वयं सेवक मात्र है, उस विचारधारा का गहन अध्येता नहीं । उसका विश्वास है कि समाज के उच्च और मध्यम वर्ग के लोग ही धर्म के नाते पर लड़ते और लड़ाते हैं । मजदूर कभी आपस में धर्म के नाम पर लड़ते नहीं हैं । परन्तु जब उसे यह खबर मिलती है कि दो सिख बड़ई मारे गये तब "उसे लगा कि अगर मजदूर आपस में लड़ सकते हैं तो यह विष बहुत ही गहरा असर कर चुका है ।"१४' इसका सोचने का तरीका बड़ा ही फार्मूलाबद्ध है । इसी कारण फिसाद रक जाने के बाद आँकड़ा-बाबू से धार वार पूछता है कि गरीब किनने मरे और अमीर कितने । उसका दृढ़ विश्वास है कि फिसादों के मूल में अंग्रेजों की तोड़ फोड़ नीति ही है । उसे लगता है कि अंग्रेज और पूँजीपति वर्ग समाज के अन्य वर्गों को धर्म के नाम पर लड़ा रहे हैं और खुद अधिक सुरक्षित हैं । आश्चर्य इस बात का है कि देवदत्त भी इस बात की खोज नहीं करता कि मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर आया कहाँ से ? उसे किमने मारा अथवा भरवाया है ? शान्ति स्थापना करने का उसका तरीका भी बड़ा मामूली है । सर्वपक्षीय बैठक लेकर एक पत्रक निकाला जाये अथवा सर्वपक्षीय नेता सारे शहर में एकता के लिए घोषणा देते हुए धूम-समस्या के समाधान का बस यही एक तरीका उसके पास है ।

एक सच्चे, ईमानदार कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप में वह हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है ।

अन्य कार्यकर्ता—दूसरे खंड में कामरेड सोहनसिंह का चित्रण हुआ है । सिख जमात गुन्धारे में मुद्द की तैयारियाँ कर रहे हैं तब दुबला-पतला सोहनसिंह उन्हें समझाने की कोशिश कर रहा है कि हम लोगों को मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जा रहा है हमें अपनी तरफ से कोशिश करनी चाहिये कि गाँव में फिसाद न हो । यहाँ के अमन पसंद सिख और मुसलमान मिलकर उन्हें रोकें । वह हमारे डर से अमला

इकट्ठा कर रहे हैं, हम उनके डर से असला इकट्ठा कर रहे हैं।”^{११०} परन्तु सोहन सिंह की इस बात को कोई नहीं मानता। उसे गद्दार कह कर चुप बिठाया जाता है।

मीरदाद भी अपने तरीके से फिसाद रोकने की कोशिश कर रहा है। मीरदाद मुस्लिमों को समझाते हुए कहता है कि असली शत्रु तो अंग्रेज है सिख अथवा हिन्दू नहीं। “अगर हिन्दू-मुसलमान-सिख मिल जाते हैं, उनमें इत्तहाद हो जाता है, तो अंग्रेज की हालत कमजोर पड़ जाती। अगर हम आपस में लड़ते हैं तो उसकी हालत मजबूत बनी रहती है।”^{१११} “जबसे फिसादों का तनाव शुरू हुआ था मीरदाद कस्बे में जगह-जगह, नानवाई की दुकान पर, गंडा सिंह चाय वाले की दूकान पर, शेख की बैठक में, कुएँ-झलार पर, जहाँ चार-पाँच आदमी बैठे हुए होते हैं यही चर्चा बैठता था,……मगर कस्बे में तनाव बढ़ने पर और बाहर से तरह-तरह की खबरें आने पर, वह उत्तरोत्तर अकेला होता गया था। उसकी बात में वजन इसलिए भी नहीं था कि उसके पास जमीन नहीं थी, न जमीन न मकान।”^{११२} बड़ी अजीब स्थिति है यह। कम्युनिस्टों की विचारधारा जनसामान्य शायद तभी मानेंगे जब कोई पूँजीवादी समझायेगा।

मीरदाद, सोहनसिंह, हरवंशसिंह आदि सामान्य कार्यकर्ताओं ने जान बोके में डालकर फिसादों को रोकने की कोशिश की है। इस कोशिश में सोहन सिंह मारा भी गया।

(५) सहज मानवीय दृष्टि से परिचालित पात्र—इस तनाव भरे वातावरण में ऐसे भी पात्र हैं जो मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में देख रहे हैं। वर्म, जाति अथवा किसी पार्टी की विचारधारा से ऊपर उठकर मात्र मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का यह प्रयत्न अधिक वैज्ञानिक, मानवीय एवं लाभदायक है। परन्तु दुर्भाग्य से यही शुद्ध दृष्टि तिरोहित हो जाती है। एक संवेदनशील लेखक इसी दृष्टि की खोज तटस्थता से करता रहता है। इस प्रकार की मानवीय दृष्टि को लेकर जीने वाले पात्र सभी सम्प्रदायों और वर्गों में थे। संख्या की दृष्टि से ये बहुत कम थे। या कहना होगा कि इनकी आवाज दबा दी गई है। प्रस्तुत उपन्यास में डिप्टी कमिश्नर की पत्नी लीजा, काँग्रेसी स्वयं सेवक जर्नेल शाहनवाज, एहसान अली की परनी राजो—इसी प्रकार के पात्र हैं। विशेषतः लीजा, शाहनवाज एवं राजो अधिक प्रभावित करते हैं। वे इस सम्पूर्ण समस्या को शुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से देखते हैं। इसी कारण लीजा रिचर्ड को बार-बार कहती है कि वह फिसाद को रोके। उसके अनुसार, “मैं तो तभी तक हिन्दू और मुसलमान को अलग-अलग पहचान भी नहीं सकती। तुम पहचान लेते हो रिचर्ड कि आदमी हिन्दू है या मुसलमान।”^{११३} रिचर्ड यह अच्छी तरह जानता है कि इन दोनों कौमों में अलगाव की अपेक्षा एकता ही

अधिक है। पर वह मौन है और लीना बार-बार उसे मानवीय दृष्टि से समस्या को देखने का आग्रह करती है।

शाहनवाज—ऊँचा रोबीला शाहनवाज अमीर खानदान से सम्बन्धित है। किसी भी राजनीतिक विचारधारा से उसका कोई मतलब नहीं है। लाला लक्ष्मी-नारायण, उनकी पत्नी और बेटी जब अपने ही घर में करीब करीब बंद हैं तब उन्हें उस बस्ती से सुरक्षित निकालने का काम शाहनवाज ही करता है। लालाजी की पत्नी के अनुसार, "ऐसे लोगों के दिलों में भगवान बसता है जो मुसीबत में लोगों का हाथ पकड़ते हैं।" इस नफरत भरे वातावरण में एक मुसलमान द्वारा हिन्दुओं को बचाना बड़ी हिम्मत की बात है। "शाहनवाज के चेहरे की ओर देखते हुए वह नहीं लगता था कि कभी उसके मन में ओछे या शुद्ध विचार उठ सकते होंगे। रोबीला जवान, छाती तनी रहती, तुर्रि लहराता रहता, बूट चमचमाने रहते, सदा सरसराती घोड़ी के घुले कपड़े पहनता था। अब वह धीरे-गम्भीर दुनियादार आदमी था, पेट्रोल की दो पम्पो का मालिक दोस्त परिवार, मिलनसार, हँसमुख जगवाती।" जब शहर में गडबडी शुरू हुई तो वह अपने सब हिन्दू मित्रों की प्बर लेने आता था। उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाना, आर्थिक सहायता करना, उनकी कीमती वस्तुएँ सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाना—संक्षेप में "दोस्त परिवारी उमका ईमान थी।" एक ओर शहर के सारे मुसलमान हिन्दुओं को खत्म करने की योजनाएँ बनवा रहे थे तो दूसरी ओर अकेला शाहनवाज उन्हें बचाने की कोशिश कर रहा था। इतना ही नहीं वह हिन्दुओं के आसपास के घरों में रहने वाले मुसलमानों को यह कहकर आता है कि, 'देख, पकीरे, बान खोलकर मुन ले। अगर मेरे घर के घर को किसी ने दुरी नजर से देखा तो मैं तुझे पकड़ूँगा। कोई उस घर के नजदीक नहीं आये।' अपने इस नेक काम के कारण वह लोगों की गालियाँ भी सुनता है। लीना उसका कुछ बिगाड नहीं सकते थे क्योंकि वह रईस है। रघुनाथ उसका एक और निवटस्थ मित्र है। उसके गहने वह सुरक्षित लाकर देता है। शाहनवाज के इस साहस को देखकर "रघुनाथ अन्दर-ही-अन्दर उसके चरित्र, उसके ऊँचे विश्वास की प्रशंसा कर रहा था जिनके कारण आज के जमाने में इन चारों ओर आग की लपटें उठ रही थी, एक मुसलमान दोस्त उसके प्रति इतना निष्ठावान् था।" और रघुनाथ की पत्नी "इस बात पर भी शाहनवाज की वृत्तज्ञ थी और उसके ऊँचे प्रशस्त ललाट, दमकते चेहरे को देख-देखकर उसे लग रहा था जैसे वह किसी पुण्यात्मा के दर्शन कर रही है।" वास्तव में इस कस्बे की राजनीतिक पार्टियाँ, आर्य-समाज तथा इस प्रकार के दलों ने शाहनवाज की तरह कार्यरत शक्तियों को इकट्ठा करते तो यह सारी बातें नहीं होतीं। दुर्भाग्य से एका बढाने वाली शक्तियों को यहाँ कभी उभारा नहीं गया। उलटे कोशिश ऐसी की गई कि ये

शक्तियाँ अकेली पड़ जाएँ । परन्तु वायजूद अपने इस अकेलेपन के इन शक्तियों ने बहुत बड़ा काम किया है ।

राजो : हरनामसिंह और बन्तो जब ढोक इलाही वक्ष से निकाल दिये जाते हैं तब अपनी जान बचाते-बचाते वे ढोक-मुरीदपुर में आते हैं । दिन निकल आया है । अब उन्हें कोई मुस्लिम देख ले तो तुरन्त मार डालेंगे । किसके यहाँ आसरा मांगें ? “जहाँ सबको जानता था, वहाँ किसी ने सहारा नहीं दिया……यहाँ न जानने वालों से क्या उम्मीद हो सकती है ?”^{११०} परन्तु कई बार ऐसा होता है कि अपने पराये हो जाते हैं और पराये अपने । हरनामसिंह के साथ यही हुआ । ढोक-मुरीदपुर में जब वे किसी अजनबी का दरवाजा खटखटाते हैं तब एक मुस्लिम स्त्री दरवाजा खोलती है । “क्षणभर के लिए वह औरत ठिठकी, खड़ी रही, वह निर्णायक क्षण जब मनुष्य अपने समस्त संस्कारों, विचारों, मान्यताओं के पुंजीमूल प्रभाव के आधार पर निर्णय लेता है । औरत कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही । फिर उसने दरवाजा खोल दिया ।”^{१११} यह औरत एहसानअली की पत्नी राजो है । इसका पति और बेटा (रमजान) कट्टर मुस्लिम-लीगी है । जब राजो इस सिख दम्पति को अपने घर में अरण दे रही है उसी समय इसका पति और बेटा दूसरी ओर सिखों को मार रहे हैं, उनके घरों को लूट रहे हैं, आग लगवा रहे हैं । और संयोग की बात यह कि इसी दम्पति की होटल लूटकर वे दोनों घर की ओर निकले हैं ।

राजो अपनी मर्यादा जानती है और इसी कारण थोड़ी देर बाद कहती है कि, “सुनो, सरदारजी, मैं तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं, मेरा घरवाला और बेटा दोनों गाँव वालों के साथ बाहर गये हुए हैं । वे अभी लौटते होंगे । मेरा घरवाला तो अल्लाह से डरने वाला आदमी है, तुम्हें कुछ नहीं कहेगा, पर मेरा बेटा लीगी है और उसके साथ और लोग भी हैं । तुम से वे कैसा सलूक करेंगे, मैं नहीं जानती ।”^{११२} यह सुनकर हरनामसिंह निराश होकर वहाँ से उठा और यह कहते हुए कि “तेरे दिल में रहम जागा, तूने दरवाजा खोल दिया । अब तू कहेगी बाहर चले जाओ तो हम बाहर चले जाएँगे । चल बन्तो……”^{११३} राजो ज्यों-की-त्यों आंगन के बीचो-बीच खड़ी रही और उसकी ओर देखती रही । और जब हरनामसिंह ने साँकल खोलने के लिए हाथ उठाया तो औरत फिर बोल उठी, “न आओजी, रुक जाओ, साँकल चढ़ा दो । तुमने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया है, दिल में कोई आस लेकर आये हो । जो होगा देखा जायगा ।” राजो की द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति क्षण भर की है । उसके भीतर की मनुष्यता अधिक शक्तिशाली है । वह इस दम्पति की असहायता से परेशान है । इसी कारण वह बहुत बड़ा खतरा भोलेकर उन्हें अपने घर में पनाह देती है ।

राजो का पति और बेटा आ जाते हैं । पति एहसानअली हरनामसिंह से

परिचित है। वह तो कुछ कहता नहीं। परन्तु लीगी बेटा काफिर को पनाह देने की बात सुनकर चिढ़ जाता है। इच्छा होते हुए भी वह उन दोनों को मार नहीं सकता। "काफिर को मारना और कान है, अपने घर के अन्दर जान-पहचान के पनाह-भाजीन को मारना दूसरी बात। उनका खून करना पहाड़ की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था। मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल में एक पतली सी लकीर कहीं पर अभी भी खिंची थी जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था।" यही वह पतली-सी लकीर है जो राजों में सुरक्षित है।

लगभग आधी रात के समय राजों हरनाम और बन्तों की गाँव के उस पार सुरक्षित छोड़ने के लिए लेकर निकलती है। गाँव के पार आने के बाद वह बड़ी गम्भीरता से कहती है। "सीपे किनारे किनारे चले जाओ। आगे जो तुम्हारी किस्मत। आर्द्र हो उठी। "मैं नहीं जानती कि मैं तुम्हारी जान बचा रही हूँ या तुम्हें मौत के मुह में झोक रही हूँ। चारों तरफ आग लगी है।" चारों तरफ लगी इस आग में राजों का व्यक्तित्व शीतल जल की तरह है।

राजों के इस चरित्र को पढ़ते समय बरबस कमलेश्वर के 'छोटे हुए मुसाफिर' की नसीबन याद आती है। नफरत की उस भयावह आग में नसीबन भी इसी प्रकार के मानवीय भावों से प्रेरित थी।

क्या हिन्दू, क्या मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में इस प्रकार के शुद्ध मानवीय परातल पर आकर सोचने वालों की सख्या की कमी नहीं थी। कमी थी केवल उन राजनीतिज्ञों और नेताओं की जो इस प्रकार की शक्तियों को उभारते।

(६) सामान्य पात्र। इसके अन्तर्गत यहाँ उन चरित्रों पर विचार किया जा रहा है जो समाज के विभिन्न स्तरों में आए हुए हैं परन्तु जो किसी भी राजनीतिक विचारधारा से सम्बन्धित, प्रेरित अथवा प्रभावित नहीं हैं। ये पात्र अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में ही परेशान हैं। इन्हें लीग, काँग्रेस, विभाजन अथवा अन्य किसी से भी कोई मतलब नहीं है। आम भारतीयों की तरह ये अपनी छोटी छोटी समस्याओं से जूझ रहे हैं। ऐसे में अचानक नफरत की आग फैलने लगती है। और दुर्भाग्य से इस आग में सर्वाधिक रूप से ये ही झुलस जाते हैं। उपन्यास का आरम्भ ही इस प्रकार के सामान्य व्यक्ति द्वारा हुआ है।

(१) नट्यू। इस उपन्यास का सबसे अभागा पात्र है नट्यू। नट्यू व्यवसाय से चमार है। मुरादबली नामक इस कस्बे के एक प्रमुख व्यक्ति ने उस पर एक जिम्मेदारी सौंपी है। हमारे सलोतरी साहिब को एक मरा हुआ सुअर चाहिए, डाक्टरों के काम के लिए।" नट्यू सुअर मारना नहीं चाहता। उसने कहा भी है कि "हमने कभी सुअर मारा नहीं मालिक, और सुनने हैं सुअर मारना कठिन काम है। हमारे बस का नहीं होगा हुजूर! खाल-वात उतारने का काम हो तो दें। मारने का

काम तो पिगरीवाले ही करेंगे।”^{११०} परन्तु मुरादबली जब पाँच रुपये की नोट उसके जेब में ठूस देता है तो नत्थू इस काम के लिए विवश हो जाता है। एक अत्यन्त सामान्य और गरीब व्यक्ति के लिए पाँच रुपये बहुत बड़ी राशि है। फिर काम भी केवल इतना कि सुबर को जान से मार देना। बस ! और सुबर ! पिगरीवालों के सुबर बहुत घूमते हैं। एक को पकड़ लो। सलोतरी साहिब खुद बाद में पिगरीवालों से बात करेंगे।”^{१११} मुरादबली तो मामूली आदमी है नहीं। नगरपरिषद का मेम्बर है। उनसे अवसर काम पड़ता है। और वह इस काम के लिए पाँच रुपये दे रहा है और सुबर तो सलोतरी साहब को चाहिए डाक्टरी काम के लिए। मोला नत्थू इस काम को बड़ा सहज समझ रहा था। वह इसके पीछे की राजनीति नहीं जानता था। इस कारण वह इस काम को स्वीकार कर लेता है। हर्लाकि सुबर मारने में उसे बहुत तकलीफ होती है। पाँच छः घण्टे संघर्ष के बाद प्रातः वह इस काम में सफल हो जाता है।

काटे हुए सुबर को वहीं फेंककर वह घर की ओर निकलता है। उसके मन में कई सवाल उठते रहे हैं, सलोतरी साहब को मरे हुए सुबर की जरूरत क्यों पड़ी। जरूर कहीं सुबर का माँस बेचने के लिए उसे मरवाया गया होगा……”^{११२} सुबर ने नत्थू को बहुत परेशान किया था। उसे इस प्रकार के काम का अनुभव भी नहीं था। वह बहुत अस्वस्थ हो गया है। उसकी यह अस्वस्थता पश्चात्ताप में परिवर्तित हो जाती है। जब उसे पता चल जाता है कि सुबर की लाश मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकी गई है। इस घटना के कारण सारे शहर में तनाव छा गया है। मार-काट शुरू हुई है।” जब से वह उस सुबर के दड़वे में से निकला था, वह कभी शहर के एक हिस्से में तो कभी दूसरे हिस्से में चक्कर काट रहा था। जहाँ बैठता लोग सुबर की चर्चा करते सुनाई देते।”^{११३} वह अन्दर ही अन्दर बड़ा परेशान था। उसके साथ बहुत बड़ा बोझ हुआ था। वह डर रहा था कि अगर लोगों को मालूम हो जाए कि उसी ने सुबर को काटा है तो फिर उसका क्या होगा ? उसे थोड़े ही मालूम था कि मुरादबली सुबर की लाश का इस प्रकार उपयोग करेगा ? अगर उसे मालूम था तो वह इस पापकार्य को थोड़े ही करता ? अब वह घर जाने से भी घबरा रहा है। शहर के इस तनाव भरे वातावरण के लिए वह खुद को अपराधी समझ रहा है। वह बहुत दुःखी हुआ है। “दुख से छुटकारा पाने के लिए आदमी सबसे पहले औरत की तरफ ही मुड़ता है।”^{११४} दोपहर तक शहर का वातावरण पहले जैसा होने लगा। नत्थू हल्का-हल्का-सा अनुभव कर रहा है। उसे विश्वास होने लगा कि उसका यह काम किसी को मालूम नहीं हुआ है। बाजार में एक स्थान पर उसकी मेट मुरादबली से हो जाती है। परन्तु मुरादबली अजनबी बनकर आगे चला जाता है। नत्थू फिर अस्वस्थ हो जाता है। पृष्ठ ११५ से १२० तक में उसका और

उसकी पत्नी की प्रेम-झोडा का विस्तार ये विवेचन हुआ है। वह पूर्णतः पवरा गया है। वह बेचैन और अस्वस्थ है। अपनी इस बेचैनी और अस्वस्थता को वह पत्नी से खिलवाड करके कम करना चाहता है।

बादज़ूद इस खिलवाड और शारीरिक सुख के उसकी परेशानी कम नहीं हुई है। अपनी कोठरी के बाहर बैठा हुआ वह चिलम फूँके जा रहा है। जितना अधिक वह मार-काट की अफवाहों को सुनता, उतना ही अधिक उसका दिल बँठ जाता। "उसकी इस मानसिकता का चित्रण विस्तार से प्रकरण १३ में हुआ है। "आखिर इस काम को मैंने क्यों किया"—यही सवाल उसे बार-बार सता रहा है। उसके इस कृत्य से ही सारा कत्वा बरबाद हो रहा है। परन्तु अपनी इस स्थिति को और सुअर मारने के उस घृणित काम को उसने अभी तक किसी से कहा नहीं। परन्तु अब उसे ऐसा लगता है कि ये सारी बातें अपनी पत्नी को कह देना जरूरी है। तभी शायद वह स्वस्थता का अनुभव करेगा। अथवा यूँ कहें कि वह अपनी ईमानदारी को स्पष्ट करना चाहता है। वह अपने मन को समझाने की कोशिश भी कर रहा है, मैंने जान बूझकर कुछ नहीं किया है। मैंने तो जो कुछ किया अनजाने में किया, ये लोग जो आग लगा रहे हैं और राह जाते लोगों को मार रहे हैं, ये तो आँखें खोलकर सब काम कर रहे हैं, ये क्यों बुरा काम कर रहे हैं? मेरे एक सुअर मार देने से क्या होता है? मैं मुजरिम हूँ तो क्या ये लोग मुजरिम नहीं हैं? मैंने जान-बूझकर कुछ नहीं किया। वास्तव में नन्धू इस सारे फिसाद के लिए कारणीभूत है ही नहीं। उसके साथ धोखा हुआ है। फिर भी दोनों मन ही मन यह अनुभव करते हैं कि कोई अदृश्य छाया उनके घर में प्रवेश कर गयी है। उनके जीवन पर धीरे-धीरे छा रही है।

उपन्यास के अन्तिम प्रकरण में एक स्थान पर केवल इतना संकेत भर है कि नन्धू मर गया। नन्धू मर चुका था वरन् नन्धू यहाँ मौजूद होता तो उसे (मुरादअली) पहचानने में देर नहीं लगती।

एक पापभीरु और ईमानदार व्यक्ति के रूप में नन्धू यहाँ उपस्थित हुआ है। उसकी मानसिक स्थिति का बड़े विस्तार से विवेचन किया गया है। संभवतः इसी कारण डा० वादिवडेकरजी ने लिखा है कि "नन्धू चमार और उसकी पत्नी के बीच के मधुर प्रेम सम्बन्ध अपने आप में उत्तेजक होने पर उपन्यास के मूल स्वर से असंबद्ध लगते हैं।" नन्धू जिस मानसिक स्थिति से गुजर रहा था, उसे स्पष्ट करने के लिए ये प्रेम सम्बन्ध आए हैं—इसे हम न मूलें। बुद्धिजीवी और तथाकथित प्रतिष्ठित लोग सामान्य व्यक्तियों का किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिए अथवा साम्प्रदायिक जलगाव के लिए उपयोग कर लेते हैं—इसका प्रमाण है नन्धू। सवाल यह है कि क्या नन्धू इस सारी याजना का मण्डाफोड नहीं कर सकता था? नन्धू जिस

वर्ग से आया है, उसमें इसका उत्तर निहित है। अगर वह यह कहता कि यह सब मुरादअली का काम है तो उस पर कोई विश्वास न करते और उसकी ही पिटाई होती। दूसरी बात, मुरादअली इतना प्रतिष्ठित है कि उसके विरोध में नत्थू कुछ न कह सकता। व्यक्ति किस विशिष्ट जाति का है, उसकी आर्थिक स्थिति क्या है— इस पर से ही उसके द्वारा कही गयी बातों पर समाज विश्वास करता है। नत्थू अपनी जाति के कारण उपेक्षित रहा है।

आम आदमियों की प्रतिक्रियाएँ : इस उपन्यास में सामान्य जनता के दर्शन अधिक होते हैं। “भीष्म साहनी ने सामान्य जनता के स्तर पर रहकर ही लेखन किया है जिससे उपन्यासकार की जन-जीवन की सन्मुखता अवश्य प्रकट होती है।”^{१११} “कमलेश्वर के लौटे हुए मुसाफिर” में भी सामान्य आदमी ही केन्द्र में हैं। यहाँ पर भी आम आदमी की प्रतिक्रियाओं को रेखांकित करने का प्रयत्न हुआ है। गहरी और देहाती इलाकों के ये पात्र पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। इनमें से कुछ की प्रतिक्रियाएँ :—

[१] दर्जी खुदावरश : इसके यहाँ शहर के सभी हिन्दू, मुस्लिम और सिख धोस्तें कपड़े सीने डालती हैं। हरेक के साथ इसका व्यवहार अत्यन्त स्नेह भरा है। उस दिन चौकवाले मन्दिर के ऊपर का घड़ियाल टुगस्त किया जा रहा था। उसे देखकर ही खुदावरश घबड़ा गया। वह अन्दाजा लगाता है कि “फिसाद होने का डर है।” इस घड़ियाल की आवाज सुनकर रूह कांप जाती है।^{११२}

[२] मजदूर : इस शहर के मजदूर आजादी, विभाजन आदि विषयों पर अवगमन चर्चा करते हैं। कई बार इनकी इन चर्चाओं से उनकी आंतरिक वेदना अचानक व्यक्त हो जाती है। उदा : “बाबू ने कहा आजादी आने वाली है। मैंने कहा, आए आजादी, पर हमें क्या ? हम पहले भी बोझा ढोते थे, आजादी के बाद भी बोझा ढोयेंगे।”^{११३} अधिकतर लोग आस्तिक, पापमीरु और भाग्य पर भरोसा रखने वाले हैं। एक बूढ़े ने कहा है, “सगी कुछ मालिक के हाथ में है, इनसान के हाथ में कुछ भी नहीं। सब काम पाक परवरदिगार के हुक्म से होते हैं। उसका जो हुक्म होगा, वही होगा।”^{११४} दुर्भाग्य से उस प्रकार की मनोवृत्ति के कारण ही फिसाद अधिक हुए। क्योंकि हिन्दुओं को मारना खुदा का हुक्म माना गया।

[३] एक कार्यकर्ता : विभाजन संभव नहीं है अगर हो भी जाए तो आज जो जहाँ है वही रहेगा—ऐसा अधिकतर लोगों का विश्वास था। उदा :—“छोटो बाद-घाह, यह सयामतदानों के चोचले हैं। वन भी गया तो क्या होगा, लोग तो यहीं पर रहेंगे, कहीं भागे तो नहीं जा रहे……”^{११५} यह विश्वास कितना गलत था, यह आगे की घटनाओं ने सिद्ध किया है। इसी विश्वास के कारण लोग वहाँ से निकले नहीं। परिणामतः अधिक सक्ते में आ गए। इस फिसाद के कारण इतना तो ज़रूर

हुआ कि, "अब हिन्दुओं के मुहल्ले में न तो कोई मुसलमान रहेगा और न मुसलमानों के मुहल्ले में कोई हिन्दू। इस पत्थर की लकीर ममज़ो। पाकिस्तान बने या न बने, अब मुहल्ले अलग-अलग होंगे, साफ़ बात है।"।¹¹¹

[४] दो चपरासी फ़िमाद के बाद अमन कमेटी की बैठक बुलवाई गई है। हिन्दू, मुस्लिम और सिख भारी संख्या में उपस्थित हैं। सब एक-दूसरे के गले मिल रहे हैं। इन्हें इस स्थिति में देखकर बाहर बैठे हुए दो चपरासी आपस में कह रहे हैं कि, "हम जाहिल लोग लड़ते हैं, सभ्यदार खानदानी लोग लड़ते नहीं। यहाँ सभी आए हैं हिन्दू भी, सिख भी, मुसलमान भी, मगर कैसे प्यार-मोहब्बत की बातें कर रहे हैं।"।¹¹² परन्तु क्या यह सही है। यहाँ इकट्ठे लोगो ने तो झगड़े लगवाये हैं। इस भीड़ में कहीं मुरादजली भी है, जो सबसे गले मिल रहा है। चपरासियों के इस कथन द्वारा लेफ़क ने बुद्धिजीवियों पर जबरदस्त अंगुष्प किया है।

[५] सैयदपुर का पसारी इस फ़िमाद और दंगों में भी लोग अपनी ईमानदारी पर आँच नहीं आने देना चाहते। सैयदपुर के सारे सिख गुरुद्वारे में घेर लिये गये हैं। वे गाँव के बाहर सुरक्षित जाना चाह रहे हैं। समझौते शुरू हुए हैं। सैयदपुर के मुसलमान इस काम के लिए दो लाख रुपये माँग रहे हैं। अर्थात् सिख रुपये पहले दें फिर वे उन्हें सुरक्षित पहुँचाएँगे। इसी कारण एक सरदार जब यह सवाल उठाता है कि 'अगर कहीं धोखा हुआ तो?' "तब मुस्लिम पसारी तैरा में आकर कहता है, "बग़ो, क्या हम लाहौरिये हैं? अमृतसिये हैं? कि आज कुछ कहें, थोर बल कुछ? हम सैयदपुर के रहने वाले हैं, हमारी जवान पत्थर की लकीर होती है।"।¹¹³

विभिन्न मनोवृत्तियों का चित्रण सभी दिशाओं से जब मानवीमूल्यों की हत्या होने लगती है, जीवन का जो कुछ भी अच्छा, पावन और थोड़ा जल जाने लगता है, जब सभी आँखों में मय, सन्देह और अत्याचार उभरने लगता है तब मानवी-मन की असहाय्यता, क्रूरता, जीवनप्रियता, मोह आदि के दर्शन होने लगते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी इन विविध भावों के संकेत मिलते हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

[१] सनातनी क्षुत्ति हरनामसिंह और उनकी पत्नी बन्तो असहाय्य अवस्था में शरण के लिए मारे मारे घूम रहे हैं। ऐसी स्थिति में एहसानजली की पत्नी राजो उन्हें अपने घर में शरण देती है। ये दोनों पूरे तीस घण्टे भूखे हैं और कई मील चल कर आए हैं। इस असहाय्य अवस्था में एक मुस्लिम स्त्री ने इन्हें शरण दिया है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि वे उसका छुआ खाना पसन्द नहीं करते। जो स्त्री अनेक खतरे मोलकर इन्हें शरण दे रही है, उसने बदकर और बोन से हाथ धुवित्र हो सकते हैं? अन्त में मजबूर होकर वे उसका छुआ खा लेते हैं। अर्थात् केवल

मजबूरी से ही ।

एक दूसरा दृश्य किसी ब्राह्मण पंडित-पंडितानी का है । फिसाद में इनकी जवान लड़की प्रकाशो को कोई उठाकर ले गया है । फिसाद खत्म हो जाने के बाद इनको कहा गया है कि इनकी बेटी मिली है, उसे वे जाकर ले आएँ । परन्तु ये दोनों स्पष्ट रूप से नकारते हैं । क्योंकि “अब हमारे पास आकर क्या करेगी जी, दूरी वस्तु तो उसके मुँह में उन्होंने पहले से ही डाल दी होगी ।”^{१५} सनातनी वृत्ति के सम्मुख वात्सल्य का गला घोट दिया गया है । प्रकाशो को गुंडा उठा ले गया है । इसमें प्रकाशो का क्या दोष ? अब प्रकाशो क्या करें ? माँ-बाप स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं । सिवा वेदशा वनने के अब दूसरा मार्ग उसके सम्मुख नहीं है । वह भ्रष्ट हो गयी है अब उसे हिन्दू-समाज में स्थान नहीं है । धार्मिक कट्टरता के नाम पर ये अपनी लड़की को दुतकार रहे हैं । ऐसी कई घटनाएँ विभाजन के समय हुई हैं ।

धार्मिक क्रूरता—हिन्दुओं को जबरदस्ती मुस्लिम बनाया गया । इतिहास इसका साक्षी है । प्रस्तुत उपन्यास का सत्रहवाँ प्रकरण इसी क्रूरता को स्पष्ट करता है । हरनामसिंह का बेटा इकबालसिंह लीगियों के हाथ में पड़ गया । उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार हुए । उसकी धार्मिक भावनाओं की क्रूर हँसी उड़ाई गई । गो-मांस का टुकड़ा जबरदस्ती से उसके मुँह में डाला गया । बड़ी क्रूरता के साथ उसका सुन्ता किया गया । और कुछ ही घंटों में सिख-धर्म के सारे बाह्य चिह्न उतारकर उसे इकबाल-अहमद बनाया गया । उसके इस धर्म-परिवर्तन का बड़ा ही सशक्त, करुण और यथार्थ चित्रण किया गया है ।

क्रूरता के कुछ अन्य प्रसंग प्रकरण अठारह में मिलते हैं । “हम जब गली में घुसे……हिन्दुओं की एक लड़की अपने घर की छत पर चढ़ गई । हमने देख लिया जी । सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गये … … जव हमने उसे पकड़ लिया … … तब बारी-बारी से उसे दबोचा । … … जव मेरी बारी आई तो नीचे न हूँ, न हाँ, वह हिले ही नहीं, मैंने देखा तो लड़की मरी हुई … … मैं लाश से ही जना किए जा रहा था ।”^{१६}

जीवन-प्रियता—एक और हरनाम की लड़की जसवीर और सैयदपुर की दर्जनों सिख औरतें हैं; जो मुस्लिमों के हाथ में पड़ने के बजाए सामूहिक आत्महत्याएँ कर लेती हैं, तो दूसरी ओर एक स्त्री इस प्रकार की भी है, जो दंगे-खोरों से कह रही है,—“मुझे मारो नहीं, मुझे तुम सातों अपने पास रख लो, एक-एक करके जो चाहो कर लो । मुझे मारो नहीं ।”^{१७} सचमुच बड़ी असहाय्य और करुण स्थिति है यह !

सम्पत्ति-मोह—एक सरदार रोज आँकड़ा बाबू को परेशान कर रहा है कि कुएँ में कूदकर आत्महत्या करने वाली उसकी स्त्री की लाश उसे वतलाई जाए ।

क्योंकि उसकी पत्नी के शरीर पर उस वक्त काफी गहने थे । “पाँच-पाँच तोले का एक-एक बड़ा है । गले में सोने की जजीरी है । अब धरवाली डूब मरी, जो सबके साथ हुई है, वह मेरे साथ भी हुई है, पर ये कड़े और जजीरी मैं कैसे छोड़ दूँ ।”

देश-काल वातावरण—कथावस्तु के विवेचन में यह स्पष्ट किया गया है कि इसकी कथा का सम्बन्ध पंजाब के एक जिले से है । यह जिला ऐतिहासिक तक्षशिला से सनह मील दूरी पर है । इस शहर की कथा पहले खड में तथा इस जिले के अन्य छोटे देहातो-खानपुर, ढोक मुरीदपुर, सैयदपुर, ढोक इलाही बख्श, नूरपुर की कथा दूसरे खड में रखी गई है । इस प्रकार शहरी और ग्रामीण अंचल—इन दोनों को समेटती हुई इसकी कथा आगे बढ़ती है । इन प्रदेशों का बड़ा ही जीवन्त चित्रण इसमें किया गया है ।

इस शहर की रचना अन्य शहरों जैसी नहीं है । “यह शहर ही इस बेदखले से बना है कि, हर मुहल्ले में हिन्दू भी रहते हैं और मुसलमान भी रहते हैं ।” पिछले सैकड़ों वर्षों से यहाँ हिन्दू मुसलमान बस रह हैं । दोनों का जीवन एक दूसरे के साथ गहरे रूप से जुड़ा हुआ था । एक-दूसरे के प्रति किसी के मन में सन्देह था नहीं । इसी कारण घर बनाते समय किसी ने यह नहीं सोचा कि आस-पास हिन्दू हैं अथवा मुसलमान । बड़ा खूबसूरत शहर है यह । “एक घर के सामने एक आदमी गली में बँधी गाय के पास खड़ा सानी-पानी कर रहा था । चाय तैयार हो रही थी । इतने में सामने से कोई और दुपट्टे में मुँह तिर लपेटे मुँह से गुनगुनाती हुई पास से गुजरी । पास ही किसी घर में से प्याले खनकने और साथ में चूड़ियाँ खनकने की आवाज आई । चाय तैयार हो रही थी । बड़े सहज सामान्य ढंग से दिन का व्यापार शुरू हो रहा था ।

प्रभात के झुटपुटे में एक फकीर इकतारा बजाता हुआ और घीमी आवाज में गाता हुआ शहर की गलियों में से गुजर रहा था ।” अथवा “शहर में सब काम जैसे बँटे हुए थे, कपड़े की ज्यादातर दूकानें हिन्दुओं की थी, जूतों की मुसलमानों की, मोटर-कारियों का सब काम मुसलमानों के हाथ में था अनाज का काम हिन्दुओं के हाथ में । छोटे मोटे काम हिन्दू भी करते थे, मुसलमान भी ।” कहीं कोई दुराव नहीं था । शहर की इस व्यवस्थित जिन्दगी को देखकर लगता मानो इस शहर का कार्य-कलाप फिर से जैसे किसी सगीत की लय पर चलने लगा हो । सगीत की किसी धुन पर सारा शहर उठता हो और उसी धुन पर कार्य करता हो । लगता इसकी एक बड़ी दूटपी तो साज के तार टूट जाएँगे । “आप इसे सगीत कह लीजिए या लाजूक-सा सन्तुलन जिसमें व्यक्तियों के आपसी रिश्ते, जन-समूहों के आपसी रिश्ते एक विशेष धारा पर स्थिर हो चुके होते हैं ।”

ऐसे शहर में १९२६ में एक बार दगा हुआ था । “पहले फिमाद में जब यह थडियाल बजा था तो मड़ी में आम लगी थी और दोनो आधे आममान को ढके

थे ।^{११५१} परन्तु १९२६ के बाद धीरे-धीरे वातावरण ठीक होता गया । लोग उस घटना को करीब-करीब भुल चुके थे । परन्तु सुअर वाली घटना से आज फिर-से वातावरण में तनाव छा गया है । और उस रात मंडी में आग लग जाने के बाद तो वातावरण पूर्णतः बदल गया । “मुहल्लों के बीच लीकें खिंच गई थी, हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमान को जाने की अब हिम्मत नहीं थी और मुसलमानों के मुहल्ले में हिन्दू या सिख अब नहीं आ-जा सकते थे । आँखों में संशय और भय उतर आया था ।”^{११५२} स्पष्ट है कि लेखक फिसाद के पूर्व का हँसते भरे वातावरण का तथा फिसाद के बाद के सन्देह भरे वातावरण का तटस्थता से चित्रण करता है । परिवर्तित वातावरण तथा उसके पूर्व के वातावरण में केवल ३०-३२ घंटे भर का अन्तर है । ३०-३२ घंटों की भयावह घटनाओं ने सैकड़ों वर्षों की एकता, प्यार तथा अपनत्व को खत्म कर दिया है । आरम्भ के चित्रण के कारण तो बाद के परिवर्तित वातावरण की तीव्रता अधिक बढ़ गयी है । प्रथम खंड में इसी शैली को अपनाया गया है ।

द्वितीय खंड में भी लेखक ने इसी शैली को अपनाया है । देहाती जीवन का बड़ा मार्मिक किन्तु संक्षिप्त चित्रण यहाँ किया गया है । “यों देखा जाय तो यह गाँव बड़ा सुन्दर था, अमन-चैन के दिन कोई यहाँ आए तो इसकी खूबसूरती पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता था । लगता भगवान ने अपने हाथ से इसे बनाया है । छोटी-सी नदी के ऊपर एक छोटी-सी पहाड़ी पर घोड़े की नाल की शक्ल में यह गाँव खड़ा था । नदी के नीले जल-प्रवाह के पार लुकाटों के घने वाग थे जहाँ अनेक झरने बहते थे, इन दिनों लुकाट पक रहे थे और तोते के झुंड पेड़ों में बसे हुए थे । इन दिनों नदी का रंग भी आसमान के रंग की तरह गहरा नीला लग रहा था । इसी प्रकृति-स्थल की गोद में इस गाँव के सभी लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहते चले आये थे ।”^{११५३} फिसाद के कुछ घंटों बाद इसी गाँव की स्थिति “गाँव पर साये उतर-उतर आए थे । नारों की गूँज और अधिक तेज होने लगी थी । बाई ओर ढलान के ऊपर सचमुच किवाड़ तोड़ने और चिधाड़ने की आवाजें आने लगी थी ।”^{११५४} इन दंगों में जो लूटे गए, अपनी जमीन से उखाड़ दिए गए, जिनके घरवाले बिछड़ गए—उनकी मन-स्थिति का और उस समय के वातावरण का बड़ा ही उत्कट चित्रण एक स्थान पर किया गया है । “रिफिल-ऑफिस के आँगन में धूमता प्रत्येक व्यक्ति अपना विशिष्ट अनुभव लेकर आया था । लेकिन इस अनुभव को जाँचने, परखने, उसमें से निष्कर्ष निकालने की क्षमता किसी में नहीं थी । आगे क्या होगा उसकी बुँबली-सी रूपरेखा भी किसी की आँखों के सामने नहीं थी । लगता, जैसे कोई अनिवार्य घटना-चक्र चल रहा है, जिस पर किसी का वस नहीं, न किसी के हाथ में निर्णय है, न संचालन, न संचालन की क्षमता, कठपुतलियों की तरह सब घूम रहे थे, भूख लगती तो उठकर इधर-उधर से कुछ खा लेते, याद आती तो रो देते और कान

लगाए सुबह से शाम तक लोगो की बाने सुन्ते रहते ।”

इस प्रकार वातावरण का तुलनात्मक चित्रण यहाँ किया गया है । इस तुलनात्मकता के कारण ही यह चित्रण अधिक यथार्थ लगता है । इस वातावरण चित्रण में कल्पना का सूक्ष्म सौन्दर्य नहीं है, प्रकृति-चित्रण का कड़ीव-करीव अभाव-सा है । अप्रैल के दूसरे-तीसरे सप्ताह के काल को स्वीकार करने के कारण भी प्रकृति चित्रण पर मर्यादा था गई है ।

टिप्पणियाँ

- १ सचेतना जनवरी-मार्च १९७६ पृ० २७
- २ तमस - पृ० ५१
- ३ वही पृ० २५४
४. वही, पृ० ४९
- ५ वही, पृ० ३४-३५
- ६-७ वही, पृ० २७८
- ९ सचेतना जनवरी-मार्च १९७६
- १०-११ तमस - पृ० १९७
- १२ वही, पृ० २३१
- १३ वही, पृ० १०
१४. वही, पृ० ११
- १५ वही, पृ० ६०
- १६ वही, पृ० ६६
- १७ वही, पृ० ७०
- १८ वही, पृ० ७२
- १९ वही, पृ० ८१
- २० वही, पृ० १२२
- २१ वही, पृ० ८१
- २२, २३, २४ वही, पृ० ८२-८३
- २५, २६ वही पृ० ८४
- २७ वही, पृ० ८५
- २८ वही, पृ० ८९
- २९ वही, पृ० ९८
- ३० वही, पृ० १०१
३१. वही, पृ० ११०
- ३२ वही, पृ० १२१

३७२ । हिन्दी उपन्यास : विविध आयाम

३३. तमस : पृ० १२२

३४. वही, पृ० १२३

३५. वही, पृ० १२६

३६. वही, पृ० १३५

३७. वही, पृ० १३६

३८. वही, पृ० १५३

३९, ४०. वही, पृ० १५५

४१. वही, पृ० १६९

४२. वही, पृ० १७३

४३. वही, पृ० १८४

४४. वही, पृ० २०९

४५. वही, पृ० २२०

४६. वही, पृ० २२२

४७. वही, पृ० २२७

४८. वही, पृ० २३०

४९. वही, पृ० १९०

५०. वही, पृ० १९५

५१. वही, पृ० १९७

५२. वही, पृ० २३१

५३. वही, पृ० २३९

५४. वही, पृ० २४०

५५. वही, पृ० १४१

५६. वही, पृ० ८३

५७. वही, पृ० २४३

५८. वही, पृ० २५५

५९. वही, पृ० २६३

६०. वही, पृ० २७७

६१. धर्मयुग (साप्ताहिक) २२ दिसम्बर १९७४ डॉ चन्द्रकान्त वांदिबडेकर जी का लेख, "इधर के कुछ सफल उपन्यास" : पृ० १८

६२. धर्मयुग (साप्ताहिक) २२ दिसम्बर १९७४ : पृ० १९

६३. वही, पृ० १९

६४. तमस : पृ० ३८

६५. वही, पृ० ४०

६६, ६७ तमस पृ० ४४

६८ वही, पृ० ४८

६९, ७० वही, पृ० ४८

७१, ७३ वही, पृ० ५१

७३ वही, पृ० ४९

७४ वही, पृ० २५५

७५ वही, पृ० ३७

७६ वही, पृ० ९३

७७ वही, पृ० १२३

७८ वही, पृ० २५३

७९, ८० वही, पृ० ३४

८१ वही, पृ० ३५

८२ वही, पृ० २५०

८३ वही, पृ० २६४

८४ वही, पृ० २६५

८५ वही, पृ० २६

८६ वही, पृ० २७

८७ वही, पृ० २०

८८ वही, पृ० ६१

८९ वही, पृ० १५६

९० वही, पृ० १५७

९१ वही, पृ० ६६

९२ वही, पृ० ५७

९३, ९४ वही, पृ० ६८

९५ वही, पृ० ७५

९६ वही, पृ० ३४

९७ वही, पृ० १९९

९८ वही, पृ० ११०

९९ वही, पृ० १९०

१०० वही, पृ० १९५

१०१ वही, पृ० १९७

१०२ वही, पृ० २३१

१०३ आर्द्र० ए० आर० १९४६ • सङ्ग १ पृ० २२०

१४६, १४७. तमस : पृ० २३५

१०५, १०६. वही, पृ० १५१

१०७, १०८. वही, पृ० १५५

१०९. वही, पृ० १५५

११०. वही, पृ० १९७

१११. वही, पृ० १९९

११२. वही, पृ० २००

११३. वही, पृ० ४१

११४. वही, पृ० १३७

११५, ११६. वही, पृ० १३८

११७. वही, पृ० १३८

११८, ११९. वही, पृ० १४८

१२०. वही, पृ० १८८

१२१. वही, पृ० २०९

१२२, १२३. वही, पृ० २११

१२४. वही, पृ० २२०

१२५. वही, पृ० २२१

१२६, १२७. वही, पृ० १०

१२८. वही, पृ० ११

१२९. वही, पृ० ३१

१३०. वही, पृ० १०५

१३१. वही, पृ० १०७

१३२. वही, पृ० १६८

१३३. वही, पृ० १६९

१३४. वही, पृ० २८२

१३५. वर्मयुग (साप्ताहिक) २२ दिसम्बर ७४ पृ० १९

१३७. वही,

१३८. तमस : पृ० १०१

१३९, १४०. वही, पृ० १०८

१४१, १४२. वही, पृ० २७३

१४३. वही, पृ० २७७

१४४. वही, पृ० २३४

१४५. वही, पृ० २६७

१०५. तमस : पृ० १४९, १५०

१४८. वही, पृ० २६२

१४९. वही, पृ० ६९

१५०. वही, पृ० ३०

१५१. वही, पृ० ९८

१५२. वही, पृ० ९९

१५३. वही, पृ० १०१

१५४. वही, पृ० १३५

१५५. वही, पृ० १९४

१५६. वही, पृ० २०७

१५७. वही, पृ० २७१

डॉ० चन्द्रमानु सीताराम सोनवणे

जन्म • १९३१ ईस्वी में, ग्राम मोगरगा, तहसील औसा, जिला उस्मानाबाद महाराष्ट्र में ।

मातृभाषा • मराठी ।

शिक्षा • वेदालकार • गुरुकुल कागडी से;

एम० ए० • आगरा वि० वि० से,

पी एच डी • सिवाजी वि० वि० कोल्हापुर से,

अध्यापन कार्य • डी० ए० बी० कॉलेज, सोलापुर (महाराष्ट्र) १७ वर्ष । १९७२ से १९७७ तक स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, दयानन्द कला महाविद्यालय, लातूर (महाराष्ट्र) में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में । अप्रैल १९७७ से हिन्दी विभाग, मराठवाडा वि० वि० औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में प्रपाठक के रूप में कार्यरत ।

प्रकाशित पुस्तकें : (१) हिन्दी गद्य साहित्य ।

(२) विपाश्चर्य • मुक्ति की उपनिषद् ।

(३) भारतेन्दु के विचार • एक पुनर्विचार ।

(४) साहित्यशास्त्र ।

सूर्यनारायण मारणिक रणसुभे

जन्म • अगस्त १९४२ ईस्वी में, गुलवर्गा (पुराने हैदराबाद का जिला, अब कर्नाटक प्रदेश में) में ।

मातृभाषा • मराठी ।

शिक्षा • बी० ए० कर्नाटक वि० वि० (घारवाड) से १९६३ में ।

एम० ए० (हिन्दी) इलाहाबाद वि० वि०, इलाहाबाद से १९६५ में ।

अध्यापन कार्य : १९६५ से दयानन्द कला म० वि० लातूर (महाराष्ट्र) के हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक ।

प्रकाशित पुस्तकें • (१) आधुनिक मराठी साहित्य का प्रवृत्तिमूलक इतिहास ।

(२) कहानीकार कमलेश्वर • सन्दर्भ और प्रवृत्ति ।

(३) हिन्दी साहित्य का अमिनव इतिहास भाग १, भाग २ (प्रा० घ० न० भुतडाजी के सहयोग से)

३७६ । हिन्दी उपन्यास : विविध आयाम

ओम्प्रकाश वासुदेव होलीकर

जन्म : १९४४ ईस्वी में, ग्राम होली, तहसील औसा, जिला उस्मानाबाद
(महाराष्ट्र) में ।

मातृभाषा : मराठी

शिक्षा : विद्यालंकार : गुरुकुल कांगड़ी से ।

एम० ए० (हिन्दी) कुरुक्षेत्र वि० वि०, कुरुक्षेत्र से १९६८ में ।

अध्यापन कार्य : १९६९-७० में वैद्यनाथ म० वि० परली वैजनाथ (महाराष्ट्र) में ।

१९७० से दयानन्द वाणिज्य म० वि० लातूर (महाराष्ट्र) में
हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में ।